# परमाणु से सितारों तक

## आधुनिक विज्ञान के तथ्य और कल्पनाएँ

जॉर्ज गैमो

लेखक द्वारा चित्र–सज्जित

अनुवादः
राकेश पोपली

वि P
V प्र

**विज्ञान प्रसार**

**प्रकाशक**

**विज्ञान प्रसार**

C-24, कुतुब इंस्टिट्युशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016

फोन : 6864022, 6864157, 6967532

फैक्स : 6965986

ई-मेल : vigyan@hub.nic.in

vigyanp@vsnl.net.in

इंटरनेट : http://www.vigyanprasar.com

© सभी अधिकार विज्ञान प्रसार के पास सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 1947

संशोधित संस्करण : 1961

प्रथम हिंदी संस्करण : 1998

परमाणु से सितारों तक

आधुनिक विज्ञान के तथ्य और कल्पनाएँ : जार्ज गैमो

अनुवाद : राकेश पोपली

Hindi verson of

**One two three... infinity**

Facts & Speculations of Science

by George Gamow

आइ एस बि एन : 81-7480-038-7

**मुद्रकः**

रैक्मो प्रेस प्राईवेट लिमिटेड, ओखला फेस -1, नई दिल्ली-110 020, (भारत), फोन. 6816282, 6814886, टेलिफे:

# विषय - सूची


| | | |
|---|---|---|
| | चित्र सूची | iv |
| | प्राक्कथन | ix |
| | विज्ञान प्रसार (एक परिचय) | x |
| | अनुवादक का निवेदन | xv |
| | भूमिका | xvii |
| | 1961 संस्करण की भूमिका | xix |
| | **प्रथम खंड : संख्याओं के खेल** | |
| एक | बड़ी–बड़ी संख्याएँ | 3 |
| दो | प्राकृतिक एवं कृत्रिम संख्याएँ | 20 |
| | **द्वितीय खंड : आकाश, समय और आइंस्टाइन** | |
| तीन | आकाश के अजीब गुण | 35 |
| चार | चार आयामों वाला संसार | 54 |
| पाँच | आकाश व समय की आपेक्षिकता | 69 |
| | **तृतीय खंड : लघु जगत्** | |
| छः | सीढ़ी–दर–सीढ़ी उतरना | 93 |
| सात | आधुनिक कीमिया | 119 |
| आठ | अव्यवस्था का सिद्धांत | 156 |
| नौ | जीवन एक पहेली | 186 |
| | **चतुर्थ खंड : बृहत् जगत्** | |
| दस | फैलते क्षितिज | 219 |
| ग्यारह | सृष्टि के आरंभिक दिन | 242 |
| | **इंडैक्स** | 273 |

# चित्र - सूची


1. एक प्राचीन रोमवासी "दस लाख" लिखने की कोशिश में 4
2. बड़ा वज़ीर सिस्सा बिन दाहिर अपना इनाम माँगता हुआ 7
3. "सृष्टि के अंत" की समस्या 8
4. स्वचालित छपाई–मशीन 10
5. एक अफ़्रीकी आदिवासी और प्रो० जी० कैंटोर अपनी गिनने की क्षमताओं की तुलना करते हुए 12
6. किसी रेखा पर बिंदुओं की संख्या 17
7. किसी वर्ग में बिंदुओं की संख्या 17
8. पहली तीन अनंत–क्रम की संख्याएँ 18
9. एराटोस्थानस की "छलनी" 22
10. वास्तविक व काल्पनिक संख्याएँ 28
11. अधिकल्पित संख्याओं के सहारे ख़ज़ाने की खोज 30
12. निर्देशांक–पद्धतियाँ 36

12★. समकोणीय व ध्रुवीय निर्देशांकों के उदाहरण 36

13. क्षेत्रों में बँटा हुआ गोला जो बहुफलक में बदल गया 38
14. पाँच नियमित बहुफलक और एक गड़बड़झाला 39
15. आयलर के प्रमेय का प्रमाण 40
16. साधारण घन के दो प्रतिद्वंद्वी 42
17. स्थिति–विज्ञान के नक्शे 43
18. दो कीड़ों द्वारा खाया हुआ दुहरा सेब 46
19. दुहरा सेब जो डोनट में बदल गया 48
20. ब्रह्मांड को अंदर–बाहर उल्टा करना 49
21. दाहिने व बायें हाथ जैसी चीज़ें एक–सी होती हुई भी अलग हैं 50
22. समतल पर "दो–आयामी" छाया–जंतु 51
23. मोबियस की सतह और क्लाइन की बोतल 52
24. किसी तीन–आयामी वस्तु को पिचका कर दो–आयामी सतह में बदल देना 54
25. दो–आयामी जंतु तीन–आयामी घन की छाया को देखते हुए 55
26. चौथे आयाम से आया मेहमान 56
27. ग्लोब का समतल प्रक्षेप 56
28. आकाश–समय का महाघन
29. एक मानव–शरीर का आकाश–समय में फैलाव
30. सूर्य, पृथ्वी व धूमकेतु की संसार–रेखाएँ
31. प्रकाश का वेग मापने की तीन कोशिशें
32. दो घटनाओं के बीच चार–आयामी दूरी

| | | |
|---|---|---|
| 33. | प्रो० आइंस्टाइन जादूगर के रूप में | 66 |
| 34. | दो आकाशी निर्देशांकों की अक्षों का काटा | 69 |
| 35. | आकाश—समय के अक्ष—काटे को घुमाना | 70 |
| 36. | माइकेलसन का उपकरण | 76 |
| 37. | आकाश की विकृतियों के कारण बिगड़ी हुई चीज़ों की आकृतियाँ | 79 |
| 38. | चलती हुई सभी चीज़ों में संकुचन | 80 |
| 39. | यूक्लिड के प्रमेय की जाँच करते हुए दो—आयामी विज्ञानी | 84 |
| 40. | (क) वक्र आकाश को मापना | |
| | (ख) प्रकाश की किरणों द्वारा बनाये गये कोणों को मापना | 86 |
| 41. | आइंस्टाइन की वक्र आकाश की थ्योरी का दो—आयामी अनुरूप | 87 |
| 42. | सपाट व वक्र आकाश | 89 |
| 43. | जल की सतह पर तेल की पतली परत | 98 |
| 44. | पदार्थ की आणविक संरचना दर्शाते हुए | 100 |
| 45. | आणविक किरण के वेग के अध्ययन के लिए स्टर्न का यंत्र | 101 |
| 46. | सूक्ष्मदर्शी यंत्र के लिए एब्बे की गणितीय थ्योरी | 103 |
| 47. | विभिन्न परमाणुओं की कल्पित आकृतियाँ | 104 |
| 48. | परमाणु के बारे में थॉमसन की धारणा | 105 |
| 49. | इलैक्ट्रोन के आवेश व भार का अनुपात मापने के लिए थॉमसन का उपकरण | 106 |
| 50. | रदरफ़ोर्ड द्वारा बनाया परमाणु का चित्र | 107 |
| 51. | तत्त्वों की आवर्त—सारणी | 109 |
| 52. | सोडियम क्लोराइड अणु में तत्त्वों का संयोजन | 110 |
| 53. | विद्युत व गुरुत्व के आकर्षण | 111 |
| 54. | परमाणु में इलैक्ट्रोन की गति | 115 |
| 55. | प्रकाश का परावर्तन व अपवर्तन | 116 |
| 56. | प्रक्षेप—पथ की धारणा | 117 |
| 57. | प्राउट की अधिकल्पना | 121 |
| 58. | दो विपरीत इलैक्ट्रोनों की "विनाश" प्रक्रिया, और इलैक्ट्रोनों की जोड़ी की "सृष्टि" | 123 |
| 59. | अंतरिक्ष—किरणों की एक बौछार का स्रोत | 124 |
| 60. | ऋणात्मक व धनात्मक बीटा—विकार | 127 |
| 61. | तोपख़ाने व नाभिकीय भौतिकी में प्रतिक्षेप की समस्या | 128 |
| 62. | आधुनिक भौतिकी के मूलभूत कणों का चार्ट | 130 |
| 63. | द्रव में पृष्ठ—तनाव के बलों की व्याख्या | 133 |
| 64. | पृष्ठ—तनाव और "डाइमोस" | 134 |
| 65. | दो लघु बूँदों का विलयन; एक बूँद का विखंडन | 135 |
| 66. | कार्बन व ऑक्सीजन का एकीकरण | 137 |
| 66★. | यूरेनियम-235 से शुरू होने वाली रेडियो—धर्मी शृंखला | 138 |

| | | |
|---|---|---|
| 67. | पहली बार परमाणु को कैसे तोड़ा गया | 140 |
| 68. | विल्सन के बादल–बक्से की रूपरेखा | 141 |
| 69. | स्थिर–विद्युत–जेनेरेटर का सिद्धांत | 142 |
| 70. | साइक्लोट्रोन का सिद्धांत | 143 |
| 71. | रेखाकार त्वरित्र का सिद्धांत | 143 |
| 71★. | बादल–बक्से से प्राप्त कुछ प्रतिनिधि चित्र | 144 |
| 72. | परमाणुओं पर प्रक्षेपकों की वर्षा | 146 |
| 73. | विखंडन प्रक्रिया के क्रमिक चरण | 148 |
| 74. | विखंडनीय पदार्थ के गोलाकार टुकड़े में नाभिकीय शृंखला–प्रतिक्रिया | 150 |
| 75. | आइसोटोपों को अलग–अलग करना | 151 |
| 76. | यूरेनियम–पुंज | 152 |
| 77. | अणुओं के थपेड़ों से इधर–उधर फेंका जाता हुआ एक जीवाणु | 156 |
| 78. | तापीय हलचल | 158 |
| 79. | तापमान का विनाशकारी प्रभाव | 160 |
| 80. | पियक्कड़ की चहलकदमी | 162 |
| 81. | छः टहलते हुए पियक्कड़ | 164 |
| 82. | रंग का विसरण | 165 |
| 83. | दो बार सिक्का उछालने पर चार संभव संयोग | 167 |
| 84. | चित व पट की संख्याओं की तुलना | 169 |
| 85. | फ़्लश (हुक्म में) | 170 |
| 86. | फुल हाउस | 171 |
| 87. | कप्तान किड का संदेश | 174 |
| 88. | माचिस की तीलियों और झंडे वाली समस्या | 177 |
| 89. | माचिस वाली समस्या में साइन का आलेख | 178 |
| 89★. | भार "आने आप" कैसे ऊपर उठ सकता है? | 183 |
| 90. | विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ | 187 |
| 91. | अल्कोहल का एक अणु, संघटक की भूमिका में | 190 |
| 92. | कोशिका के विभाजन के प्राथमिक चरण (माइटोसिस) | 192 |
| 93. | युग्मकों का बनना, और एक अंड–कोशिका का निषेचन | 195 |
| 94. | पुरुष और स्त्री के चेहरों में अंतर क्यों है? | |
| 95. | अंड–कोशिका से आदमी तक | |
| 96. | रंगांधता की आनुवंशिकता | |
| 97. | प्रभावी जीनें | |
| 98. | उदासीन विशिष्टता की एक व्याख्या | |
| 98★. | तीसरी पीढ़ी में आनुवंशिक विरासत | |
| 99. | क्रोमोसोमों के अंगों की अदला–बदली | |

| | | |
|---|---|---|
| 100. | फल की मक्खी के विशिष्ट गुणों का नक्शा | 205 |
| 100★. | टी०एन०टी० अणु के तीन प्रकार | 208 |
| 101. | आनुवंशिकता की "तावीज़" | 209 |
| 102. | फल की मक्खी में अपने आप उत्परिवर्तन | 210 |
| 103. | जीवाणुओं, वायरसों व अणुओं के बीच भेद | 213 |
| 104. | प्राचीन यूनानियों का संसार | 219 |
| 105. | पृथ्वी की गोल आकृति के विरुद्ध एक तर्क | 220 |
| 106. | एराटोस्थानस द्वारा पृथ्वी की माप | 222 |
| 107. | लंबनिक विस्थापन (दिग्भेद) | 223 |
| 108. | नौसेना का दूरी–मापक यंत्र | 224 |
| 109. | चंद्रमा के प्रेक्षण में दिग्भेद | 225 |
| 110. | हंस के 61 वें तारे के प्रेक्षण में दिग्भेद | 226 |
| 111. | आकाश–गंगा के तारों को देखता हुआ एक खगोलविद | 230 |
| 112. | मंदाकिनी का केंद्र | 231 |
| 113. | कुंडली बनने की कोपर्निकस की व्याख्या | 232 |
| 114. | तारों की मंदाकिनी का अपनी धुरी पर घूमना | 233 |
| 115. | मंदाकिनी के सामान्य विकास के विभिन्न चरण | 237 |
| 116. | अंतरिक्ष की खोज के मील के पत्थर | 239 |
| 117. | सृष्टि–विज्ञान में दो प्रकार की विचार–धाराएँ | 244 |
| 118. | वाइज़ैख़र की थ्योरी | 249 |
| 119. | वृत्ताकार और दीर्घवृत्ताकार गति | 252 |
| 120. | आदि सूर्य के आवरण में धूल–कणों के चलने के रास्ते | 253 |
| 121. | सूर्य में ऊर्जा की उत्पत्ति के लिए ज़िम्मेदार चक्रीय नाभिकीय शृंखला–प्रतिक्रिया | 257 |
| 122. | तारों का मुख्य क्रम | 259 |
| 123. | विशाल व अति विशाल तारे | 259 |
| 124. | सफ़ेद बौने तारे | 260 |
| 125. | लोहे के नाभिक में अर्का–प्रक्रिया | 264 |
| 126. | सुपरनोवा विस्फोट के विभिन्न चरण | 265 |
| 127. | फैलते हुए गुब्बारे पर बिंदियाँ एक–दूसरे से दूर भागती हैं | 268 |
| 128. | बम के गोले के टुकड़ों की जड़ता बनाम गुरुत्वाकर्षण | 270 |

## प्राक्कथन

तीन से अधिक दशक पूर्व मैंने जार्ज गैमो द्वारा लिखित **"वन टू थ्री ... इन्फिनिटी"** पहली बार पढ़ी थी। मुझे याद है कि पुस्तक मुझे बहुत रोचक और अच्छी लगी थी। उन दिनों में भौतिकी में पी. एच. डी. कर रहा था। कई वर्ष बाद भी बीच बीच में मैंने इस पुस्तक को फिर से पढ़ा। पढ़ कर हर बार मज़ा आया। एक लोकप्रिय पुस्तक की इससे अच्छी पहचान और क्या हो सकती है?

"परमाणु से सितारों तक ..." जार्ज गैमो की उसी लोकप्रिय पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। काश हिन्दी में (तथा अन्य भारतीय भाषाओं में) भी बड़ी संख्या में विज्ञान विषयों पर उत्कृष्ट एवं मौलिक लोकप्रिय पुस्तकें उपलब्ध होतीं। विज्ञान प्रसार इस दिशा में भरसक प्रयास कर रहा है। हिन्दी (तथा अन्य भारतीय भाषाओं) में उच्चकोटि के मौलिक लोकप्रिय सहित्य के प्रकाशन के साथ–साथ हमारा यह प्रयास भी है कि विश्वप्रसिद्व लोकप्रिय विज्ञान प्रकाशनों के हिन्दी (एवं अन्य) रूपान्तर भी हमारे विज्ञान प्रेमियों को अपनी भाषा में उपलब्ध हों। कुछ अन्य विश्वप्रसिद्व पुस्तकों के रूपान्तर प्रकाशनाधीन हैं।

"परमाणु से सितारों तक..." जैसी पुस्तकों की अपनी ही एक विशेष भूमिका है: विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हो रही प्रगति और उनके विकास के इतिहास के रूप में। एक ज़माना था जब अध्यापकों और छात्रों के हाथों में ऐसी पुस्तकें दिखा करती थीं। वर्तमान काल में छात्र तो क्या अधिकतर विज्ञान–अध्यापकों की ही ऐसी किताबों में रुचि देखने में नहीं आती या फिर उन्हें इन पुस्तकों के बारे में पता ही नहीं है। इधर कई वर्षो से यह अनुभव किया जा रहा है कि टेलिविज़न के बढ़ते प्रसार के साथ–साथ और हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली के चलते, बच्चों और बड़ों में, पुस्तकें पढ़ने की आदत, लुप्त न सही, कम तो लगातार होती जा रही है। इसके कई कारण हो सकते हैं: ऐसी पुस्तकों का सहज में उपलब्ध न होना, बहुत महंगा और व्यक्तिगत पहुंच से परे होना, या फिर इन का मात्र अंग्रेज़ी में होना। और यदि अध्यापक इन्हें स्वयं नहीं पढ़ेंगे (या पढ़ पायेंगे) तो छात्रों को इनके बारे में पता भी कैसे चलेगा।

विज्ञान प्रसार इस ओर प्रयासरत है कि भारतीय भाषाओं में विज्ञान के मूल प्रकाशनों, विश्वप्रसिद्व पुस्तकों के पुनर्प्रकाशन एवं भाषा.रूपान्तरों के द्वारा उपरोक्त समस्याओं का कुछ हद तक निवारण हो सके।

अपने अनुभव पर आधारित मेरे निजि मत के अनुसार अध्यापकों और छात्रों द्वारा ऐसी सशक्त किताबों का न पढ़ा जाना विज्ञान के विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति घट रहे रुझान का एक कारण है .. और किताबें पढ़ने की प्रवृत्ति में हो रही लगातार कमी का एक और कारण इन किताबों का जगह-जगह उपयुक्त कीमतों पर आसानी से उपलब्ध न होना है।

"परमाणु से सितारों तक..." एक सैंतीस साल पुरानी अंग्रेज़ी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। इस बात का ध्यान रखते हुए विषय वस्तु में जहां तहां आवश्यकतानुसार आधुनिकतम जानकारी एवं ज्ञान का समावेश किया गया है और जहां कहीं भी ऐसा किया गया है, पाठकों के लिए इस बात की सूचना भी सम्मिलित की गई है।

यदि कुछ पाठक इस पुस्तक को पढ़ कर विज्ञान की ओर प्रेरित हो सके तभी विज्ञान प्रसार इस प्रयास को सफल एवं अर्थपूर्ण मान सकेगा।

**नरेन्द्र सहगल**
**निदेशक**
**विज्ञान प्रसार**

# विज्ञान प्रसार
## *(एक परिचय)*

विज्ञान को बड़े पैमाने पर लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से सन् 1989 में विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, द्वारा एक पंजीकृत स्वायत्त सोसायटी के रूप में विज्ञान प्रसार की स्थापना की गयी थी। इस के प्रमुख उद्देश्यों का सारांश निम्नलिखित है :

- आम जनता के बीच विज्ञान और प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने तथा उनमें वैज्ञानिक मिज़ाज पैदा करने के लिए तत्संबंधी प्रयासों को समन्वित, निर्देशित, उन्नत और संवर्धित करने का काम हाथ में लेना और समाज के सभी वर्गों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषय में रुचि और जानकारी को बढ़ावा देना।

- विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों, एजेन्सियों, शिक्षण तथा अकादमिक निकायों, प्रयोग-शालाओं, संग्रहालयों, उद्योगों, व्यापारिक संस्थानों और अन्य संगठनों के बीच लगातार प्रभावी सहयोग को प्रोन्नत करना ताकि उनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी आदान–प्रदान तथा प्रचार–प्रसार हो सके।

- संचार साधनों और व्यवस्थाओं से संबंधित दृश्य, श्रव्य, दृश्य–श्रव्य तथा मुद्रित सामग्री के विकास को हाथ में लेना जिस से कि आम जनता, श्रमूर्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों और संक्रियाओं को बेहतर तरीके से समझ सके और उनकी कदर कर सके।

- सोसायटी के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए अन्वेषण कार्यों, पाठ्यक्रमों, कार्यशालाओं,गोष्ठियों, परिसंवादों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, मेलों, प्रदर्शनियों, फिल्म–शोज़, सार्वजनिक चर्चाओं, नुक्कड़ नाटकों, समस्यामूलक पहेलियों और संगीत–नृत्य–नाटिकाओं आदि का आयोजन करना।

विज्ञान प्रसार की स्थापना के बाद यह संस्था कुछ वर्षों तक निष्क्रिय–सी ही रही। वर्ष 1994 से ही कुछ कार्य गंभीरता पूर्वक हाथ में लिए जा सके । विज्ञान प्रसार द्वारा शुरू किये गये कुछ प्रारंभिक कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम था **'मुद्रण के लिए** विज्ञान पृष्ठ परियोजना, जिसका प्रयोजन था भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हो रहे विकास कार्यों से सम्बद्ध एक या दो प्रमुख आलेखों के साथ अन्य कई छोटी मदों को लेकर अखबारी आकार का एक सचित्र और सुनियोजित पृष्ठ तैयार करना इसे इसी रूप में छापने के लिए विभिन्न समाचार पत्रों को मोहैया करना ।

आरंभ में इस तरह का पृष्ठ हिंदी और अंग्रेजी में मासिक आधार पर जारी करने की योजना बनायी गयी। तदनंतर इस में अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं के पृष्ठ और एक फीचर पैकेट सेवा को भी जोड़ा गया। आज भारत भर में लगभग 20 समाचार पत्रों के 30 से भी अधिक संस्करणों में ये पृष्ठ महीने में एक, दो या अधिक बार प्रकाशित किए जा रहे हैं। दरअसल, आज देश में विज्ञान प्रसार के ये विज्ञान–पृष्ठ किसी भी अन्य विज्ञान पृष्ठ की तुलना में कहीं अधिक कई गुणा संख्या में छप रहे हैं। इन सभी समाचार पत्रों की संयुक्त मुद्रण संख्या 25 लाख प्रतियों से भी अधिक है। इन पृष्ठों की वजह से दूसरे समाचार पत्रों में भी विज्ञान संबंधी सामग्री सम्मिलित करने की मांग में वृद्धि हुई है ।

अब विज्ञान प्रसार का प्रकाशन कार्यक्रम धीरे–धीरे एक निश्चित आकार लेता जा रहा हैं। इस सिलसिले में कई महत्वपूर्ण पुस्तक श्रृंखलायें शुरू की गई हैं और कईओं की योजना बन रही है। आज़ादी से पूर्व के भारत में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने वाली अग्रणी हस्तियों पर प्रकाशन श्रृंखला में विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी की प्रथम प्रमुख पुस्तक थी : "मेमोआर्ज़ ऑफ रुचि राम साहनीः पंजाब में विज्ञान के लोकप्रियकरण के अग्रणी" यानि पंजाब में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने वाले अग्रणी व्यक्ति रूचिराम साहनी के संस्मरण। इस पुस्तक से विज्ञान प्रसारकों में एक सार्थक चेतना पैदा हुई और उत्साही अन्वेषकों को देश के अन्य भागों में ऐसी हस्तिओं को ढूंढ निकालने की जरूरत का एहसास हुआ । इस के फलस्वरूप ऐसे अनेक व्यक्तिओं के नाम पहले ही प्रकाश में आ चुके हैं जिन्होंने आजादी से पूर्व के भारत में विज्ञान की लोकप्रियता बढ़ाने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया था ।

प्राचीन काल में महान आचार्यों द्वारा लिखे गये विज्ञान संबंधी प्राचीन उच्च ग्रन्थ, जिन से विज्ञान के विद्यार्थियों की अनेक पीढ़ियों को प्रेरणा मिली है, हमारी आज की युवा पीढ़ी के हाथों में दिखाई नहीं देते । ऐसा इसलिए नहीं है कि अब इन पुस्तकों की प्रासंगिकता समाप्त हो गयी है अपितु इस का कारण है इन का उपलब्ध न होना। विज्ञान प्रसार **अपनी लोकप्रिय विज्ञान संबंधी प्राचीन उच्च ग्रन्थावली** योजना के तहत इन पुस्तकों को पुनः मुद्रित करने का इरादा रखता है और इन के कम कीमत वाले संस्करण प्रकाशित करना चाहता है ताकि ये पुस्तकें अधिक से अधिक बच्चों के हाथों में पहुंच सकें। पहले ही ऐसे दो प्राचीन उच्च ग्रन्थ (माइकल फेरेडे द्वारा लिखित) "मोमबत्ती का रासायनिक इतिहास" तथा (सी वी ब्वायस द्वारा लिखित) "साबुन के बुलबुले और बल जो उनको आकार देते हैं" पुनः मुद्रित करवाये जा चुके हैं। इतना ही नहीं अपितु ऐसी अन्य पुस्तकों पर भी कान किया जा रहा है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 1995 के केन्द्रीय विषय अर्थात् "स्वास्थ्य के लिए विज्ञान" से प्रेरित होकर विज्ञान प्रसार ने एक स्वास्थ्य संबंधी ग्रन्थावली की योजना आरंभ की। इसके तहत सभी आम

बीमारियों, उन के संभव निदानों तथा निरोधात्मक उपायों, पर पुस्तकें प्रकाशित की जाएंगी। इन में से तीन विषयों पर अग्रेज़ी में पुस्तकें पहले ही प्रकाशित की जा चुकी हैं। ये विषय हैं : लैंगिक संबंधों द्वारा जन्य गुप्त रोग, अस्थमा (दमा) तथा जौंडिस (पीलिया) । विज्ञान प्रसार भारत की वैज्ञानिक विरासत पर, प्रकाशन–श्रृंखला की अपनी योजना के अंतर्गत, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उन विशिष्ट क्षेत्रों में पुस्तकों का प्रकाशन करेगा जिन में भारत का योगदान समय की कसौटी पर खरा उतरा है और जिसने आधुनिक विज्ञान पर भी एक अमिट छाप छोड़ी है। इस श्रृंखला के तहत प्रकाशित होने वाली पहली पुस्तक है दिल्ली स्थित लौह स्तंभ पर किये गये अध्ययनों के विषय पर: "दि रस्टलेस वन्डर: दि स्टडी ऑफ दि आयरन पिल्लर इन देहली"

24 अक्तूबर 1995 के पूर्ण सूर्यग्रहण ने विज्ञान प्रसार को एक देश व्यापी चेतना अभियान आयोजित करने का एक दुर्लभ अवसर प्रदान किया जिसका उद्देश्य था ग्रहण संबंधी प्राचीन मिथकों और अंधविश्वासों को समाप्त करना और आम जन समुदाय में उनके ज्ञात वैज्ञानिक कारणों को जानने की लालसा का विकास करना।

विज्ञान प्रसार ने राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एन सी एस टी सी) से मिल कर अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जो इस प्रकार हैं :

- विधार्थियों और शिक्षकों के लिए टेलिस्कोप (दूरदर्शी) बनाने की कार्यशालाओं का आयोजन।
- पुस्तकें, पूर्ण सूर्यग्रहण पर एक चार्ट और बच्चों के लिए एक एक्टिविटी किट तैयार करना ।
- अनेक वीडियो फिल्मों का निर्माण और उनका प्रसारण।

विज्ञान प्रसार ने यह सुनिश्चित करने की एक नयी संकल्पना की कि लोग पूर्ण सूर्यग्रहण को देखने के लिए घरों से बाहर निकलें, और उसने इस संकल्पना को कार्यान्वित भी किया। इस क़े लिए विज्ञान प्रसार की तरफ से पूर्ण सूर्यग्रहण संबंधी एक शपथ–पत्र परिचालित किया गया जिसे देश के कोने–कोने से अनेक लोगों ने भर कर अपने हस्ताक्षरों सहित वापिस भेजा। अनेक व्यक्तियों और स्वायत्त संस्थाओं ने इस शपथ–पत्र को स्वयम् ही क्षेत्रीय भाषाओं में अनूदित कर बड़ी संख्या में आम जनता के बीच वितरित किया। इन सभी कार्यवाहियों से इस सिलसिले में पूरे देश में हलचल–सी मच गयी। वि० प्र०, एन सी एस टी सी तथा अन्य संस्थाओं के मिले प्रयासों के फलस्वरूप एक ऐसी स्थिति पैदा हो गयी कि पूर्ण सूर्यग्रहण की इस अ[illegible] घटना को देखने के लिए घरों से लाखों लोगों की भीड़ बाहर निकल आई। अ[illegible] लोगों द्वारा इस प्राकृतिक घटना को देखा जाना एक अनुपम अनुभव था जिस [illegible] देश में विज्ञान प्रसार का नाम घर–घर तक पहुंचा ।

अपने दृश्य–श्रव्य कार्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान प्रसार ने 24 अक्तूबर 1995 के पूर्ण सूर्यग्रहण के अवसर पर वीडियो फिल्मों के एक सेट तथा अनेक रेडियो कार्यक्रमों का निर्माण किया। विज्ञान प्रसार द्वारा इस धटना पर आधारित किए गये प्रयास वृहत् रूप से विज्ञान प्रसार परिवार के लिए बहुत संतोषजनक सिद्ध हुए जिनके प्रति आम जनता की प्रतिक्रिया भी बहुत उत्कृष्ट और सराहनीय रही ।

सभी क्षेत्रों से विज्ञान वेत्ताओं और खास तौर से विज्ञान संचारको की ओर से यह मांग उठती रही है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न पहलुओं से संबंधित एक पृष्ठभूमिक आंकड़ा–आधार और सूचना–भण्डार की स्थापना की जाए जिसका लाभ सभी संबंधित व्यक्तियों को आसानी से उपलब्ध हो सके। इस पुरानी मांग को पूरा करने के लिए, हाल ही में विज्ञान प्रसार ने विप्रिस नाम से एक सूचना पद्धति का निर्माण आरंभ किया है जिस का पूरा नाम है विज्ञान प्रसार इन्फॉरमेशन सिस्टम, यानि सूचना पद्धति। यह कम्प्यूटरी–कृत पद्धति एक-एक विषय क्षेत्र से सम्बंद्ध सूचना–इकाईयों को जोड़ जोड़ कर बनाने के आधार पर तैयार की जायेगी, और इसका उद्देश्य होगा सभी तरह के विज्ञान संचारकों की विज्ञान संबंधी सूचनाओं की समस्त जरूरतों को पूरा करना।

फिलहाल विप्रिस के अंतर्गत विज्ञान सम्बन्धी अखबारी कतरनों पर आधारित पाक्षिक सेवा, दूरदर्शन चैनल–दो की मेट्रो डायरी में दो पृष्ठ प्रतिदिन, एक इलैक्ट्रानिक बुलेटिन बोर्ड सेवा (बी बी एस) उपलब्ध हैं और, साप्ताहिक आधार पर, विज्ञान समाचारों का प्रसारण रेडियो पर भी किया जाता है। इस के अतिरिक्त, सीडी–रौम्ज़ का विकास और उत्पादन, तथा प्रशिक्षण सहित दूसरी अनेक सेवाओं और उत्पादों पर योजनाएं बनायी जा रही हैं जिनमें विभिन्न विषयों, क्षेत्रों, आदि से संबंधित आंकड़ा–आधारों का सृजन एवं विकास भी शामिल हैं।

"पर्यावरण और सुरक्षा कानून : एवं विनियम और मार्गदर्शी प्रालेख" पर डाटाबेस के निर्माण का प्रथम चरण पूरा हो गया है । विज्ञान प्रसार ने अपने होमपेज का प्रारंभ 12 सितम्बर 1996 को किया था। कॉम–कॉम आन लाइन इलैक्ट्रानिक विज्ञान मैगजीन होमपेज के एक भाग के रूप में लायी गयी। होम पेज के अन्य अनुभाग इस प्रकार हैं :–

* विज्ञान प्रसार के विषय में,
* दैनिक मौसम रिपोर्ट
* दिन/मास का आकाश मानचित्र (स्काइमैप)
* अन्य होमपेजिज़ के साथ जोड़ती कड़ियां
* भारत में विज्ञान और प्रोद्योगिकी से संबंधित रिक्त पद ।
* विज्ञान और प्रौद्योगिकी डेटाबेस इत्यादि ।

इस होमपेज में हिंदी एच टी एम एल की सुविधा है और वेब ब्राउज़र प्रयोक्ताओं के लिये उसे हिंदी में उतारने और उसे अपने सिस्टम में स्थापित करने की भी सुविधा है। इसमें परिचर्चा मंच भी उपलब्ध कराया गया है जिसके माध्यम से प्रयोक्ता अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं ।

विज्ञान प्रसार ने 108–भाग वाले रेडियो धारावाहिक "मानव का विकास" (एन सी एस टी सी और ऑल इन्डिया रेडियो द्वारा संयुक्त रूप से निर्मित) के 18 भारतीय भाषाओं में ऑडियो–कैसेट सेटों का भी निर्माण किया है।

इतना ही नहीं, विज्ञान प्रसार बहुत से अन्य कार्यों में भी लगा है । पर वर्तमान के लिये इतना ही पर्याप्त होगा।

**नरेन्द्र सहगल**<br>**निदेशक**<br>**विज्ञान प्रसार**

# अनुवादक का निवेदन

स्व० जॉर्ज गैमो ने अपनी इस प्रसिद्ध कृति में आधुनिक विज्ञान के विविध मुद्दों व खोजों को दैनिक जीवन के उदाहरणों से जोड़ कर अपनी अनुपम शैली में विशेषज्ञ व ग़ैर–विशेषज्ञ, दोनों प्रकार के पाठकों को विज्ञान का स्वाद चखाने का सफल प्रयास किया है। वही मज़ेदार स्वाद हिंदी–भाषी विज्ञान–रसिकों को भी मिले, इसी को ध्यान में रख कर यह अनुवाद किया गया है। हमारा आग्रह रहा है कि मूल पाठ में आये भौतिक विज्ञान, जीव–विज्ञान आदि के तथ्य और व्याख्याएँ ही नहीं, अपितु हास्य–विनोद, गद्य–पद्य आदि के विविध रंग भी अनुवाद में बरकरार रहें। विषय–वस्तु को ज्यों–का–त्यों रखने का आग्रह होते हुए भी कुछ उदारहणों को इस प्रकार बदला गया है कि वे भारतीय पाठकों के लिए सहज हो जायें। भाषांतर के कारण पाठ अधिक बोझिल न हो जाये, इसका ध्यान रखा गया है; बल्कि अनेक स्थानों पर मूल पाठ की भाषागत दुरूहता को कम करने का भी प्रयास किया गया है। मूल पाठ में जहाँ–जहाँ कुछ त्रुटियाँ दिखाई दीं, वहाँ समुचित संशोधन किया गया है। किसी–किसी स्थान पर जटिल विषय को कुछ अधिक विस्तार से समझाने की आवश्यकता भी अनुभव की गयी। पिछले तीन–चार दशकों में कई रोमांचकारी खोजें हुई हैं, प्रगति हुई है, विशेषतः संख्याओं की थ्योरी, भौतिकी के मूलभूत कण एवं क्वार्क थ्योरी, जीनों के जोड़–तोड़ तथा सुपरनोवा की अंतिम परिणति आदि विषयों में। इस प्रगति का भी संक्षेप में समावेश करके पुस्तक को अधुनातम बनाने का प्रयास किया गया है। इन सभी प्रकारों के संशोधनों को अधिकतर पाद–टिप्पणियों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जिन पाद–टिप्पणियों पर क्रम–संख्या दी हुई है, वे मूल लेखक की हैं, और जो* आदि चिह्नों से चिह्नित हैं, वे संशोधन के क्रम में आयी हैं।

पुस्तक में आयी जानकारी को अधुनातम बनाने में डॉ० कमल दत्ता, डॉ० एन० पंचपकेसन, डॉ० आर० सी० गुप्ता, डॉ जगदेव सिंह तथा डॉ० अशोक सिनहा ने मेरी सहायता की है। हिंदी अनुवाद को सरल व सुबोध बनाने में डॉ० के० एल० मेहरा, प्रो० धर्मेंद्र कुमार, डॉ० मिथिलेश कांति, श्री उमेश गर्ग एवं श्रीमती रमा पोपली का योगदान रहा। मैं इन सबका कृतज्ञ हूँ।

इस कार्य को शुरू और पूरा करने में डॉ० नरेन्द्र सहगल की प्रेरणा और मार्ग–दर्शन का कृतज्ञता–पूर्वक उल्लेख करना चाहता हूँ। डॉ० सुबोध महंती एवं रैक्मो प्रेस के कर्मियों के सहयोग के लिए उन सबका धन्यवाद करता हूँ।

जुलाई, 1997 **राकेश पोपली**

"समय आ गया है", वालरस ने कहा,
"कि बात करें ढेरों चीज़ों की".................
—लुइस कैरोल

# भूमिका

...... परमाणुओं, सितारों और नीहारिकाओं की, एंट्रॉपी और जीनों की। हम बात करें कि क्या खाली अंतरिक्ष (आकाश) को मोड़ कर टेढ़ा किया जा सकता है? रॉकेटों की लंबाई क्यों कम हो जाती है? सचमुच, इस किताब में इन सभी की हमें चर्चा करनी है, और ऐसे ही कई अन्य रोचक विषयों की भी।

इस पुस्तक को लिखने के पीछे विचार यह था कि आधुनिक विज्ञान के सबसे अधिक रोचक तथ्यों व सिद्धांतों को इस ढंग से एक साथ एकत्र किया जाये कि जिससे पढ़ने वाले के सामने ब्रह्मांड की विशालतम और सूक्ष्मतम रचनाओं का मोटे तौर पर वही चित्र आ जाये, जैसा आज के विज्ञानी की आँखों के सामने है। इस व्यापाक योजना को लागू करने में मैंने पूरी कहानी सुनाने की तो कोई कोशिश नहीं की है – मैं जानता हूँ कि ऐसी किसी भी कोशिश का परिणाम यही होगा कि बहुत—सी जिल्दों वाला विश्वकोष बन जायेगा। हाँ, चर्चा के लिए विषयों का चुनाव इस तरह से किया गया है कि मूलभूत वैज्ञानिक जानकारी के पूरे संसार की संक्षिप्त झलक मिल जाये और कोई भी कोना अछूता न रह जाये।

विषयों को जब उनके महत्त्व और रोचकता के अनुसार चुना गया, न कि सरलता के आधार पर, तो प्रस्तुति कुछ ऊँची—नीची होनी ही थी। पुस्तक के कुछ अध्याय इतने सरल हैं कि बच्चा भी उनको समझ लेगा, जबकि दूसरे अध्यायों को अच्छी तरह समझने के लिए कुछ एकाग्रता व अध्ययन की आवश्यकता पड़ेगी।* जो भी हो, आशा है कि गैर—विशेषज्ञ पाठक को पुस्तक पढ़ने में बहुत गंभीर कठिनाई पेश नहीं आयेगी।

आपके ध्यान में आयेगा कि पुस्तक का जो अंतिम खंड है, जिसमें "बृहत् जगत्" की चर्चा है, वह "लघु जगत्" वाले खंड की अपेक्षा काफ़ी कम लंबा है। ऐसा मुख्यतः इसलिए है कि मैं पहले ही **दि बर्थ एंड डैथ ऑफ़ द सन** व **बायोग्राफ़ी ऑफ़ अर्थ**[1] में स्थूल—ब्रह्मांड—संबंधी ढेर—से प्रश्नों की विस्तार से चर्चा कर चुका हूँ और यहाँ फिर उसी की विस्तृत चर्चा करने से उबाऊ पुनरुक्ति हो जाती। इसलिए इस खंड को मैंने ग्रहों, तारों व नीहारिकाओं के संसार के भौतिक तथ्यों व घटनाओं और इन्हें नियंत्रित करने वाले नियमों के सामान्य वर्णन तक ही सीमित रखा है; अधिक विस्तार में सिर्फ़ उन्हीं समस्याओं की चर्चा की है जिन पर पिछले कुछ वर्षों में वैज्ञानिक जानकारी के बढ़ने से नया प्रकाश पड़ा है। इस सिद्धांत पर चलते हुए मैंने हाल के उन विचारों पर विशेष ध्यान दिया है, जिनके अनुसार तारों के विशाल विस्फोट, "सुपरनोवा", का कारण "न्यूट्रीनो" नामक कण हैं, जो कि भौतिकी में ज्ञात सबसे छोटे कण हैं। इसी तरह

* उदाहरणतया, अध्याय एक (बड़ी—बड़ी संख्याएँ), छः (सीढ़ी—दर—सीढ़ी उतरना) और दस (फैलते क्षितिज) को तो मध्य विद्यालय के बच्चे भी समझ सकते हैं। दूसरी ओर, जिन्होंने पहले विज्ञान व उच्चतर गणित न पढ़ा हो, उन्हें अध्याय दो, पाँच और नौ को शायद अंत में पढ़ना चाहिए। —अनु०

[1] द वाइकिंग प्रैस, न्यूयार्क, क्रमशः 1940 व 1941.

ग्रहों की नयी थ्योरी पर भी ध्यान दिया है, जिसने अभी तक स्वीकृत इस विचार को नकार दिया है कि ग्रहों की उत्पत्ति सूर्य और किन्हीं अन्य तारों की टक्कर के परिणाम–स्वरूप हुई थी, और कांट व लेप्लैस के पुराने अर्ध–विस्मृत विचारों को फिर से प्रतिष्ठित कर दिया है।

मैं उन बहुत–से कलाकारों व सज्जाकारों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके चित्रों को स्थिति–विज्ञान के ढंग से रूपांतरित करके (देखिए अध्याय तीन, परिच्छेद दो) इस पुस्तक को सजाने वाले कई चित्रों का आधार बनाया गया है। मुझे सबसे अधिक धन्यवाद देना है अपनी छोटी–सी मित्र मैरिना फ़ॉन नायमान को, जो दावा करती है कि वह हर विद्या अपने प्रसिद्ध पिता से बेहतर जानती है – हाँ, सिवाय गणित के, जिसमें वह सिर्फ़ उनकी बराबरी ही कर सकती है। जब उसने इस पुस्तक की पांडुलिपि के कई अध्यायों को पढ़ लिया और मुझे वे ढेर–सी बातें बतायीं जिन्हें वह नहीं समझ पायी थी, तो मैंने पक्का जान लिया कि यह पुस्तक बच्चों के लिए नहीं है, जैसा शुरू में इरादा किया था।

दिसम्बर 1, 1946 **जी० गैमो**

# 1961 संस्करण की भूमिका

विज्ञान की सभी पुस्तकें प्रकाशन के कुछ वर्ष बाद पुरानी हो ही जाती हैं, विशेष रूप से विज्ञान की उन शाखाओं से संबंधित पुस्तकें, जिनमें तेज़ी से विकास हो रहा हो। इस मामले में मेरी पुस्तक "वन टू थ्री . . . . इन्फ़िनिटी", जो तेरह वर्ष पूर्व पहली बार छपी थी, खुशकिस्मत है। इसके लिखे जाने से ज़रा ही पहले कई नयी महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजें हुई थीं, जिनको पाठ में शामिल कर लिया गया था; अतः अभी इसको अधुनातम बनाने के लिए कुछ बदलने और जोड़ने की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम ही पड़ी है।

इस बीच एक महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई हाइड्रोजन–बम के रूप में ऊष्मा–नाभिकीय प्रतिक्रियाओं के द्वारा परमाणु–ऊर्जा की प्राप्ति, और ऊष्मा–नाभिकीय प्रक्रियाओं से नियंत्रित ढंग से ऊर्जा मुक्त करने की दिशा में धीमी परंतु लगातार प्रगति। क्योंकि ऊष्मा–नाभिकीय प्रतिक्रियाओं के सिद्धांत और खगोल–भौतिकी में इनके प्रयोग का वर्णन पुस्तक के पहले संस्करण के ग्यारहवें अध्याय में किया ही जा चुका था, अतः इसी लक्ष्य की ओर मानव की प्रगति को शामिल करने के लिए, बस, सातवें अध्याय के अंत में कुछ नयी सामग्री जोड़ दी गयी।

कुछ अन्य परिवर्तन हैं हमारे ब्रह्मांड की आकलित आयु दो–तीन अरब वर्ष से बढ़ा कर पाँच या इससे अधिक अरब वर्ष कर देना, और कैलिफ़ोर्निया में माउंट पालोमार पर स्थित नये 200 इंच वाले हेल दूरदर्शक–यंत्र से की गयी खोज–बीन के परिणाम–स्वरूप खगोलीय दूरियों के पैमाने में संशोधन।

जीव–रसायन–विज्ञान में हाल की प्रगति के कारण चित्र 101 को फिर से बनाना और इस पर आधारित पाठ को बदलना आवश्यक हो गया, और अध्याय नौ के अंत में सरल सजीव प्राणियों के कृत्रिम उत्पादन के बारे में नयी सामग्री भी जोड़नी पड़ी। प्रथम संस्करण में मैंने लिखा था (पृ० 266) : "हाँ, निर्जीव पदार्थ से सजीव की ओर क़दम बढ़ाने की संभावना अवश्य है, और जब – शायद निकट भविष्य में ही – कोई प्रतिभाशाली जीव–रसायनविद साधारण रासायनिक क्रियाओं से किसी वायरस के संश्लेषण में सफल हो जायेगा, तो उसका यह उद्‌गार उचित ही होगा : 'मैंने अभी–अभी निर्जीव पदार्थ के टुकड़े में प्राण फूँक दिया'।" जी हाँ, कुछ वर्ष पूर्व कैलिफ़ोर्निया में ऐसा वास्तव में कर दिया गया, या लगभग किया गया, और पाठक इस कार्य का संक्षिप्त वर्णन अध्याय नौ के अंत में पायेंगे।

और हाँ, एक और परिवर्तन : पुस्तक का पहला संस्करण समर्पित था "मेरे बेटे आइगोर को, जो गो–पालक बनना चाहता है"। पाठकों में से अनेकों ने मुझे लिख कर पूछा है कि क्या वह गो–पालक बन गया? उत्तर है कि नहीं, वह जीव–विज्ञान मुख्य विषय लेकर इस बार गर्मी में स्नातक हो जायेगा, और आगे आनुवंशिकी में कार्य करने का इरादा रखता है।

कोलोराडो विश्वविद्यालय, नवम्बर, 1960 — जी० गैमो

## प्रथम खण्ड

# संख्याओं के खेल

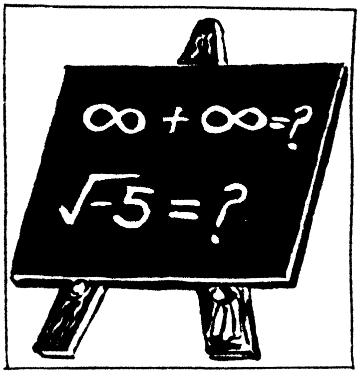

एक

# बड़ी-बड़ी संख्याएँ

## 1. आप कितने तक गिन सकते हैं ?

एक किस्सा है कि दो हंगेरियन भद्रजनों ने कहा, "चलो, एक खेल खेलें। जो अधिक बड़ी संख्या कहेगा, उसी की जीत होगी।"

"अच्छा", उनमें से एक ने कहा, "पहले तुम संख्या बताओ"!

कई मिनट के कठोर परिश्रम के बाद दूसरे भद्रजन ने बड़ी संख्या सोच कर बतायी: "तीन"।

अब पहले वाले की सोचने की बारी थी, परंतु दो घड़ी सिर खुजाने के बाद उसने अंततः हार मान ली : "अच्छा भाई, तुम ही जीते"।

निश्चय ही इन दोनों हंगेरियन भद्रजनों के बौद्धिक स्तर को ऊँचा नहीं कहा जा सकता[1], और यह किस्सा शायद एक विद्वेषपूर्ण मज़ाक ही है। पर यदि ये दोनों सज्जन हंगेरियन नहीं, बल्कि "हॉटेनटॉट" होते, तो इस प्रकार की बात हो सकती थी। सचमुच, अफ्रीका में खोज करने वालों का कहना है कि हॉटेनटॉट लोगों में ऐसे कबीले भी हैं जिनकी शब्दावली में तीन से बड़ी संख्याओं के नाम ही नहीं हैं। वहाँ के किसी आदिवासी से पूछिए कि आपके कितने बेटे हैं, या आपने कितने शत्रुओं का वध किया है, और यदि यह संख्या तीन से बड़ी होगी तो वह कहेगा, "बहुत–से"!* अतः गिनने की विद्या में तो हॉटेनटॉट देश के प्रचंड योद्धा को शिशु–वाटिका जाने वाला भारतीय बच्चा भी हरा देगा जो गर्वपूर्वक दस तक गिन कर दिखा देगा !

आजकल हम इस बात के बिल्कुल आदी हो गये हैं कि हम चाहे जितनी बड़ी संख्या लिख सकते हैं – चाहे युद्ध के खर्चों को पैसों में बताना हो या सितारों की दूरियों को इंचों में लिखना हो – बस, किसी अंक की दाहिनी ओर पर्याप्त बार शून्य लिखना होगा। आप शून्य लिखते जाइए जब तक कि आपका हाथ थक न जाये, और बात की बात में आपके पास इतनी विशाल संख्या हो जायेगी कि ब्रह्मांड में उतने परमाणु भी नहीं होंगे। प्रसंगवश बता दें कि परमाणुओं की यह संख्या है[2]

300,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000, या आप इसे छोटे रूप में लिख सकते हैं : $3 \times 10^{74}$. यहाँ जो 10 के ऊपर दाहिनी ओर छोटा 74 लिखा है, वह संकेत देता है कि इतनी बार शून्य लिखना होगा; दूसरे शब्दों में, 3 को 10 से चौहत्तर बार गुणा करना होगा।

परंतु अंकगणित को बायें हाथ का खेल बनाने वाली यह पद्धति प्राचीन काल में नहीं थी।

---

[1] इसी तरह का एक और किस्सा है कि हंगेरियन भद्रजनों की एक टोली आल्प्स पहाड़ों में घुमक्कड़ी करते हुए रास्ते से भटक गयी। उनमें से एक ने नक्शा निकाला और काफी देर तक उसका सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद चिल्लाया, "आहा, समझ गया, हम कहाँ हैं।" "कहाँ?", सब लोगों ने पूछा। वह बोला, "वह देखो, दूर वह ऊँचा पहाड़ दिखाई दे रहा है न? हम ठीक उसकी चोटी पर हैं!"

* बर्तानी विश्वकोश के अनुसार हॉटेनटॉट लोगों की भाषा में तो हज़ार से भी अधिक संख्याएँ होती हैं। लगता है, लेखक का इशारा उनके पड़ोसी बुशमैन लोगों की ओर है जो तीन से अधिक नही गिन सकते।– अनु०

[2] जहाँ तक बड़े से बड़ा दूरदर्शक–यंत्र देख सकता है, वहाँ तक के परमाणुओं की संख्या।

दो हज़ार से कम ही वर्ष हुए, किसी अज्ञात भारतीय गणितज्ञ ने इसका आविष्कार किया। यह एक सचमुच महान खोज थी, यद्यपि आज हमें आम तौर पर इसका अहसास नहीं होता। इससे पहले इकाई के लिए एक अलग संकेताक्षर होता था, दहाई के लिए अलग, सैंकड़े के लिए कोई और, आदि। इस संकेत को उतनी ही बार दुहरा कर लिखा जाता था जितनी इकाइयाँ हों। उदाहरणार्थ, प्राचीन मिस्र के लोगों द्वारा संख्या 8732 इस प्रकार लिखी जाती थी :

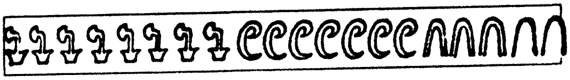

जबकि प्राचीन रोमन सम्राट कैसर के दरबार का कोई मुंशी इस संख्या को इस रूप में दर्शाताः

MMMMMMMMDCCXXXII

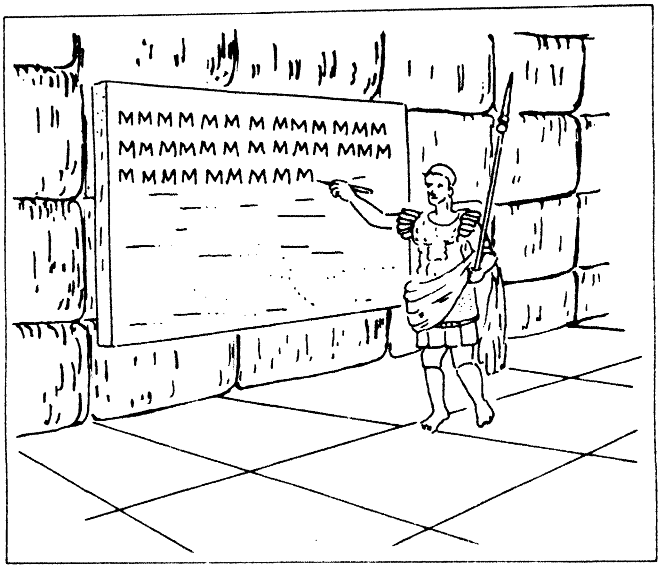

चित्र 1 : एक प्राचीन रोमवासी, जो आगस्तुस कैसर से मिलता–जुलता है, रोमन अंकों में "दस लाख" लिखने की कोशिश कर रहा है। इस दीवार–पट्ट पर जितनी जगह है उसमें तो मुश्किल से "एक लाख" ही लिखा जा सकेगा।

इस दूसरी लिखाई से तो आप परिचित होंगे, क्योंकि रोमन अंक अब भी कभी–कभी प्रयोग में आते हैं – किसी पुस्तक की जिल्दों या अध्यायों को बताने में, अथवा किसी शानदार स्मार पर किसी ऐतिहासिक घटना की तारीख़ दर्शाने में। परंतु प्राचीन काल में एकाध हज़ार से दशमलव इकाइयों के संकेताक्षर नहीं होते थे, क्योंकि उस समय हिसाब की ज़रूरतें कुछ ह संख्या से अधिक नहीं होती थीं।+ जी हाँ, किसी प्राचीन रोमवासी को यदि एक मिलियन (द

+ यह बड़ी रोचक बात है कि भारतीय संस्कृति में अनेक गणितीय खोजों एवं ज़रूरतों का संबंध जीवन पहलू के साथ था। यजुर्वेद में दस के बारहवें घात ($10^{12}$) तक संख्याओं के नाम दिये गये हैं। एक यु में कितने दिन होते हैं, इसे बताने के लिए ऐसी ही बड़ी संख्याओं की आवश्यकता थी। –अनु०

लिखने को कहा जाता, तो भले ही गणित में वह कितना भी दक्ष होता, वह अत्यंत लज्जित होता। अधिक से अधिक वह इतना ही कर सकता कि लगातार एक हज़ार बार M लिखता, जिसमें घंटे–आधे घंटे तक जुटे रहना पड़ता, और ग़लती होने की भी काफ़ी संभावना रहती (चित्र 1)।

आकाश में सितारों की संख्या कितनी है? समुद्र में मछलियों की संख्या कितनी है? समुद्र–तट पर बालू के कणों की? प्राचीन काल के लोगों के लिए इस प्रकार की बहुत बड़ी संख्याएँ "अनगिनत" जैसी थीं। यह वैसी ही बात है जैसे किसी हॉटेनटॉट के लिए "पाँच" बेटे भी "बहुत–से" होकर रह जाते हैं क्योंकि वह पाँच गिन नहीं सकता। सचमुच भीमकाय संख्याओं को भी लिखा जा सकता है, यह सिद्ध करना तीसरी सदी ई0 पू0 के प्रसिद्ध विज्ञानी आर्किमीदस के महान दिमाग़ के ही बूते की बात थी। आर्किमीदस ने अपने ग्रंथ "द सैमाइट्स" (बालू की गिनती) में कहा :

"कुछ लोग हैं जो मानते हैं कि बालू–कणों की संख्या अनंत है, और बालू से मेरा मतलब केवल सिराक्यूज़ और शेष सिसिली के आसपास की बालू ही नहीं, अपितु पृथ्वी के हर आबाद या निर्जन क्षेत्र में पायी जाने वाली सारी बालू है। फिर कुछ लोग हैं जो इस संख्या को अनंत तो नहीं मानते, फिर भी सोचते हैं कि **पृथ्वी के बालू-कणों की संख्या से अधिक कोई संख्या नहीं हो सकती।** अब कल्पना करिए बालू के बने ऐसे पिंड की, जो यूँ तो पृथ्वी के बराबर बड़ा हो, परंतु जिसमें पृथ्वी के सब समुद्र और सब गड्ढे ऊँचे पर्वतों की ऊँचाई तक बालू से भरे हुए हों। उपर्युक्त लोगों का और भी निश्चित मत होगा कि इस प्रकार इकट्ठे किये गये बालू–कणों की संख्या से बड़ी तो कोई संख्या हो ही नहीं सकती। परंतु मैं प्रमाणित करने का प्रयास करूँगा कि मेरे द्वारा बतायी गयी संख्याओं में कुछ ऐसी हैं जो न केवल उपर्युक्त प्रकार से भरी गयी पृथ्वी में समाये बालू–कणों की संख्या से बड़ी हैं, अपितु **पूरे ब्रह्मांड** में समा सकने वाले बालू–कणों की संख्या से भी बड़ी हैं।"

आर्किमीदस ने अपनी प्रसिद्ध कृति में बहुत बड़ी संख्याओं को लिखने की जो विधि बतायी है, वह आधुनिक विज्ञान की विधि से मिलती–जुलती है। उन्होंने पहले उस संख्या को लिया जो प्राचीन ग्रीक अंकगणित में सबसे बड़ी थी: एक "मिरियड" (अयुत) या 10,000। फिर उन्होंने एक नयी संख्या चलायी, "एक अयुत अयुत" (दस करोड़ या $10^8$), जिसको उन्होंने "एक ऑक्टेड" या "दूसरे दर्जे की इकाई" कहा। "ऑक्टेड ऑक्टेड" (या $10^{16}$) को "तीसरे दर्जे की इकाई" कहते हैं, "ऑक्टेड ऑक्टेड ऑक्टेड" को "चौथे दर्जे की इकाई", इत्यादि।

बड़ी–बड़ी संख्याओं को लिखने में भला ऐसी क्या महान बात है कि इस पर किसी पुस्तक के ढेर–से पृष्ठ भरे जायें ? आप भले ही ऐसा सोचें, पर आर्किमीदस के युग में बड़ी संख्याएँ लिखने का तरीका मालूम करना एक महान खोज थी ;गणित–शास्त्र की प्रगति में एक महत्त्वपूर्ण क़दम था।

अब यह गणना करनी थी कि पूरे ब्रह्मांड को भर देने के लिए कितने बालू–कण आवश्यक हैं। इसके लिए आर्किमीदस को यह जानना था कि ब्रह्मांड कितना बड़ा है। उस ज़माने में यह माना जाता था कि ब्रह्मांड एक स्फटिक के गोले (sphere) के अंदर समाया है, और उस गोले की सतह पर स्थिर सितारे लगे हुए हैं। आर्किमीदस के समय के प्रसिद्ध खगोल–शास्त्री सामोस–निवासी अरिष्टार्कस ने अनुमान किया कि पृथ्वी से आकाशीय गोले की सतह की दूरी $10^{10}$ स्टेडियम अर्थात कोई $10^9$ मील है।[3] उस गोले के आकार की तुलना बालू–कण के आकार के साथ करते हुए

---

[3] एक ग्रीक **"स्टेडियम"** 606 फीट 6 इंच या 188 मीटर के बराबर होता था।

आर्किमीदस ने कई गणनाएँ पूरी कीं, जिनको करने में आज के उच्च विद्यालय के विद्यार्थी को नानी याद आ जाती, और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचे :

"स्पष्ट है कि अरिष्टार्कस द्वारा अनुमानित आकाशीय गोले के आकार में समा सकने वाले बालू के कणों की संख्या एक हज़ार अयुत आठवें दर्जे की इकाइयों से अधिक नहीं है"।[4]

यह ज्ञातव्य है कि ब्रह्मांड की त्रिज्या (radius) के बारे में आर्किमीदस का अनुमान आधुनिक विज्ञानियों के अनुमान से काफ़ी कम था : $10^9$ मील की दूरी तो हमारे सौर परिवार के ग्रह शनि से ज़रा ही परे तक जाती है। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, अब दूरबीनों के द्वारा ब्रह्मांड की छान–बीन $5 \times 10^{21}$ मील तक की जा चुकी है। अतः अब तक दिखाई देने वाले ब्रह्मांड को पूरा भर देने के लिए आवश्यक बालू–कणों की संख्या होगी कम से कम :

$10^{100}$ (यानी, 1 के बाद 100 शून्य)।

अवश्य ही यह संख्या ब्रह्मांड के परमाणुओं की कुल संख्या ($3 \times 10^{74}$) से बहुत बड़ी है, पर याद रखिए कि ब्रह्मांड परमाणुओं से भरा हुआ नहीं है। वास्तव में हर एक घन मीटर स्थान में औसतन केवल 1 परमाणु मौजूद है।

वैसे बहुत बड़ी संख्याओं को पाने के लिए पूरे ब्रह्मांड को बालू से ठसाठस भर देने जैसी प्रलयंकर क्रियाएँ करने की ज़रूरत नहीं है। अक्सर ये संख्याएँ ऐसे सवालों में से भी प्रकट हो जाती हैं जो पहली नज़र में बड़े ही सरल लगते हैं, जिनमें आपको कुछेक हज़ार से बड़ी संख्या पाने की आशा क़तई नहीं होगी।

ऐसी ज़बरदस्त संख्याओं का एक भुक्तभोगी था भारत–निवासी राजा श्रीराम। एक पुरानी दंतकथा के अनुसार, उसके महामंत्री सिस्सा बिन दाहिर ने शतरंज के खेल का आविष्कार करके राजा को भेंट किया। राजा ने उसे पुरस्कार माँगने को कहा। चतुर मंत्री ने जो अनुरोध किया, वह बड़ा ही मामूली लगता था। "महाराज", राजा को प्रणाम करते हुए उसने कहा, "आप मुझे शतरंज की बिसात के पहले घर में रखने के लिए गेहूँ का एक दाना प्रदान करें, दूसरे घर के लिए दो दाने, तीसरे घर के लिए चार दाने और चौथे घर के लिए आठ दाने। और इस प्रकार, महाराज ! हर घर में क्रमशः दुगुनी संख्या करते हुए मुझे पूरी बिसात के 64 घरों में रखने के लिए पर्याप्त दाने दे दें, बस।"

"तुमने कुछ अधिक नहीं माँगा, मेरे निष्ठावान सेवक !", राजा बोल उठा। मन–ही–मन वह यह सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि उस अद्भुत खेल के आविष्कारक को मुँहमाँगा इनाम देने की उदारता भी दिखा दी, और वह महँगी भी नहीं पड़ी। "तुम्हारी इच्छा निश्चय ही पूरी की जायेगी", कह कर उसने गेहूँ का एक बोरा सिंहासन के पास लाने की आज्ञा दी।

---

[4] हमारी अंकन पद्धति में यह संख्या होगी :

1 करोड़ (हज़ार अयुत) x 10 करोड़ (दूसरा दर्जा) x 10 करोड़ (तीसरा दर्जा) x 10 करोड़ (चौथा दर्जा) x 10 करोड़ (पाँचवाँ दर्जा)
x 10 करोड़ (छटा दर्जा) x 10 करोड़ (सातवाँ दर्जा) x 10 करोड़ (आठवाँ दर्जा), या $10^{63}$ (यानी, 1 के बाद 63 शून्य)।

चित्र 2 : महामंत्री सिस्सा बिन दाहिर, जो एक कुशल गणितज्ञ है, भारत के राजा श्रीराम से अपना इनाम माँग रहा है।

अब गिनती शुरू हुई। पहले घर के लिए एक दाना दूसरे के लिए 2, तीसरे के लिए 4, आदि। परंतु जब बात कुछ आगे बढ़ी, तो आश्चर्य ! बीसवें घर का हिसाब चुकाने से पहले ही बोरा खाली हो गया। राजा के सामने कई बोरे और लाये गये, लेकिन हर नये घर के लिए आवश्यक दानों की संख्या बहुत तेज़ी से बढ़ने लगी। जल्दी ही स्पष्ट हो गया कि भारत की सारी फसल देकर भी राजा सिस्सा बिन दाहिर को दिया गया वचन पूरा नहीं कर सकेगा। (ऐसा करने के लिए 18, 446, 744, 073, 709, 551, 615 दानों की अपेक्षा थी।[5])

यह संख्या ब्रह्मांड में परमाणुओं की कुल संख्या जैसी भीमकाय तो नहीं है, पर फिर भी काफ़ी बड़ी है। यदि हम मान लें कि गेहूँ के एक बुशेल में लगभग 50 लाख दाने आ जाते हैं तो सिस्सा बिन दाहिर की माँग पूरी करने के लिए $4 \times 10^{12}$ बुशेलों की आवश्यकता होगी।* अब क्योंकि दुनिया में गेहूँ का औसत उत्पादन (आजकल) $2 \times 10^{9}$ बुशेल प्रति वर्ष होता है, अतः महामंत्री द्वारा माँगा गया गेहूँ **करीब दो हज़ार वर्ष के संसार भर के गेहूँ के उत्पादन के बराबर था।**

इस प्रकार राजा श्रीराम ने स्वयं को गले तक अपने मंत्री के ऋण में डूबा हुआ पाया। अब या तो उसे मंत्री के नित नये उलाहनों का सामना करना पड़ता, या फिर उसका सिर कलम कर देना

---

[5] चतुर मंत्री द्वारा माँगे गये दानों की संख्या को इस प्रकार बताया जा सकता है :

$1 + 2 + 2^2 + 2^3 + 2^4 + \dots\dots + 2^{62} + 2^{63}$

अंकगणित में संख्याओं की ऐसी श्रृंखला को, जिसमें हर आगामी संख्या एक ही गुणक के द्वारा गुणा होकर बढ़ती जाती है, **ज्यामितीय श्रृंखला** (geometric progression) कहते हैं। इस उदाहरण में संख्याएँ हर बार दो से गुणा होकर बढ़ रही हैं। यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस प्रकार की श्रृंखला में सभी पदों का योग जानने के लिए स्थायी गुणक (यहाँ 2) का उतना घात उठाते हैं जितने पद श्रृंखला में हैं (अर्थात $2^{64}$), और एक घटा देते हैं। फिर पहले पद से गुणा करते हैं (यहाँ 1 से), और इस गुणनफल को स्थायी गुणक घटा 1 से भाग देते हैं। इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$\frac{2^{64}-1}{2-1} = 2^{64}-1$, जिसको अंकों में लिख सकते हैं : 18,446,744,073,709,551,615।

* एक बुशेल = लगभग 50 किलोग्राम। –अनु०

पड़ता। हमारा ख़्याल है कि उसने दूसरा विकल्प चुना होगा।*

एक और रोचक कहानी है जिसमें एक बड़ी संख्या आती है। यह भी भारत से आयी है और इसका संबंध "संसार के अंत" की समस्या से है। गणितीय विचित्रता के इतिहासकार डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 आर0 बाल इस कहानी को निम्नलिखित शब्दों में कहते हैं :[6]

बनारस के विशाल मंदिर में, उस गुंबज के नीचे जिसे जगत का केन्द्र माना जाता है, एक पीतल की थाली रखी है जिसमें हीरे के तीन खूँटे जड़े हुए हैं। प्रत्येक खूँटा एक हाथ (लगभग 20 इंच) ऊँचा और मधुमक्खी के शरीर के समान मोटा है। इनमें से एक खूँटे में विधाता ने सृष्टि के आरंभ में शुद्ध सोने के चौंसठ चक्र पिरो दिये, जिनमें सबसे बड़ा चक्र सबसे नीचे है और ऊपर रखे चक्र उत्तरोत्तर छोटे होते जाते हैं। यह ब्रह्मा का स्तंभ है। जो पुजारी वहाँ नियुक्त है वह दिन–रात बिना रुके चक्रों को एक खूँटे से निकाल कर दूसरे में पिरोता रहता है। चक्रों को स्थानांतरित करने के लिए ब्रह्मा के निश्चित और शाश्वत नियम हैं जिनके अनुसार : (1) पुजारी एक समय पर एक ही चक्र उठा सकता है, और (2) चक्रों को खूँटों में इस प्रकार पिरोना है कि कभी भी किसी छोटे चक्र के ऊपर बड़ा न आने पाये। जब पूरे चक्र इस प्रकार पहले वाले खूँटे से किसी दूसरे खूँटे पर स्थानांतरित हो जायेंगे, तो स्तंभ, मंदिर और ब्रह्मा सहित सब धूल में मिल जायेंगे और वज्रपात के साथ जगत विलीन हो जायेगा।

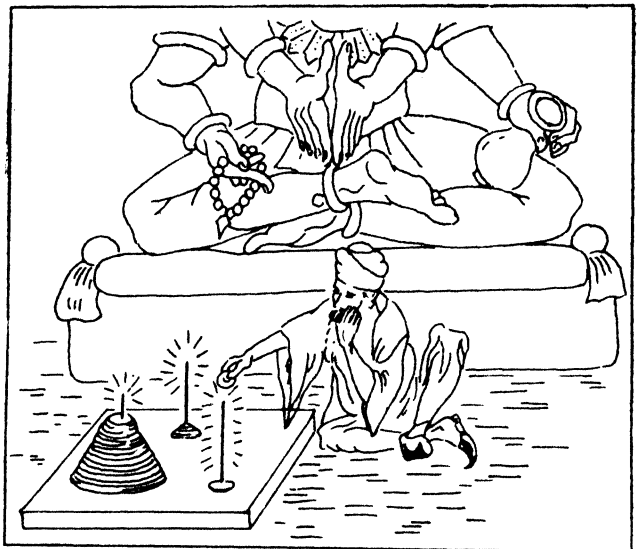

चित्र 3 : ब्रह्मा की विशाल मूर्ति के आगे एक पुजारी "संसार के अंत" की समस्या पर कार्य कर रहा है यहाँ 64 से कम संख्या में चक्र दिखाये गये हैं क्योंकि चित्र में इतने सारे चक्र खींचना कठिन होता।

चित्र 3 में इस कहानी में वर्णित स्तंभ चित्रित किया गया है – हाँ, सुविधा के लिए इ[illegible] की संख्या कम दिखायी गयी है। आप स्वयं यह पहेलीदार खिलौना बना सकते हैं; बस, [illegible] दंतकथा में बताये स्वर्ण–चक्रों की जगह साधारण गत्ते के चक्र और हीरे के खूँटों के स्थान [illegible] की लंबी कीलें (या पेंसिलें) रख लीजिए। चक्रों को स्थानांतरित करने के लिए कितनी बार

---

* एक और विद्वेषपूर्ण मज़ाक ? –अनु०

[6] डब्लू० डब्लू० आर० बाल, **मैथेमैटिकल रिक्रियेशन्स एंड एस्सेज़** (दि मैकमिलन कं०, न्यूयार्क, 1939)।

पड़ेगा, इसका सामान्य नियम खोजना कठिन नहीं है। जब आप इसे करके देखेंगे तो पायेंगे कि हर एक चक्र को स्थानांतरित करने के लिए इससे पहले वाले चक्र की अपेक्षा दुगुनी बारियाँ चलनी होंगी। पहले चक्र के लिए तो एक ही बारी की आवश्यकता है, परंतु बाद के हर चक्र के लिए आवश्यक बारियों की संख्या दुगुनी होती जाती है अर्थात् ज्यामितीय अनुपात में बढ़ती है। इस प्रकार जब चौंसठवें चक्र पर पहुँचते हैं, तो उसे स्थानांतरित करने के लिए उतनी ही बार चलना होगा जितने गेहूँ के दाने सिस्सा बिन दाहिर शतरंज के चौंसठवें घर में रखवाना चाहता था, और कुल उतनी ही बार चलना होगा जितने गेहूँ के दाने उसने माँगे थे।[7]

ब्रह्मा के स्तंभ में पूरे चौंसठ चक्रों को एक खूँटे से दूसरे पर स्थानांतरित करने में कितना समय लगेगा ? मान लीजिए कि पुजारीगण (एक–एक करके) दिन–रात, बिना छुट्टी लिये और बिना रुके कार्य करें और हर एक सैकंड में एक बारी चलें। एक वर्ष में लगभग 31,558,000 सैकंड हैं; अतः इस कार्य को पूरा करने में $5.8 \times 10^{11}$ अर्थात् **पाँच सौ अस्सी अरब** से कुछ अधिक वर्ष लगेंगे।

यह तो हुई ब्रह्मांड की आयु की बिल्कुल पौराणिक किस्म की कल्पना। आधुनिक विज्ञान की भविष्यवाणी से इसकी तुलना करना भी मज़ेदार है। ब्रह्मांड के विकास की वर्तमान थ्योरी के अनुसार ये सितारे, यह सूर्य और हमारी पृथ्वी सहित सब ग्रह लगभग $3 \times 10^9$ वर्ष पूर्व एक अनगढ़ पिंड में से निर्मित हुए थे। हम यह भी जानते हैं कि जो "परमाणु ईंधन" सितारों को और विशेषतः हमारे सूर्य को ऊर्जा देता है, वह $10^{10}$ या $1.5 \times 10^{10}$ वर्ष और निकाल सकता है (देखिए "सृष्टि के आरंभिक दिन", अध्याय ग्यारह)। इस प्रकार हमारे ब्रह्मांड की कुल आयु–सीमा निश्चय ही $2 \times 10^{10}$ वर्ष से कम है, न कि $5.8 \times 10^{11}$ वर्ष जैसी सुदीर्घ, जैसा कि उक्त भारतीय पौराणिक कथा में अनुमान किया गया है। परंतु कथा तो मात्र कथा ही है।*

साहित्य में कभी भी आयी हुई सबसे बड़ी संख्या संभवतः वह है जो प्रसिद्ध "पंक्तियाँ छापने की समस्या" में आती है। मान लीजिए कि हम एक ऐसी छपाई की मशीन बनाते जो एक बार में एक पंक्ति छापती। हर पंक्ति छापने के लिए अपने आप वर्णमाला के अक्षरों तथा अन्य मुद्रण–चिह्नों का एक नया संयोग बनाती और इस तरह लगातार एक के बाद दूसरी पंक्ति छापती जाती। इस प्रकार की मशीन में कई अलग–अलग चक्रिकाएँ होतीं जिनमें से प्रत्येक के पूरे किनारे (हाल) पर अक्षर एवं अन्य चिह्न उठे रहते। इन चक्रिकाओं को गियरों की सहायता से एक–दूसरे के साथ उसी प्रकार संबद्ध किया जाता जैसे आपकी कार के किलोमीटर–मापक यंत्र में अंकों वाली चक्रिकाएँ होती हैं। ऐसी व्यवस्था में किसी भी चक्रिका के एक पूरा चक्कर घूम जाने पर अगली चक्रिका एक क़दम आगे चलती है। हर बार अक्षरों आदि की नयी पंक्ति बनने के बाद एक थान में से निकलता हुआ कागज़

---

[7] यदि हमारे पास केवल 7 चक्र हों तो आवश्यक बारियों की संख्या होगी :

$1 + 2 + 2^2 + 2^3 + \ldots\ldots + 2^6$, अर्थात्

$2^7 - 1 = 2 . 2 . 2 . 2 . 2 . 2 . 2 - 1 = 127.$

यदि आप इन चक्रों को तेज़ी से, बिना कोई ग़लती किये, रखते जायें तो यह कार्य पूरा करने में तीन–चार मिनट लगेंगे। चौंसठ चक्र होने पर कुल आवश्यक बारियों की संख्या होगी :

$2^{64} - 1 = 18,446,744,073,709,551,615.$ यह संख्या उतनी ही है जितने गेहूँ के दाने सिस्सा बिन दाहिर ने माँगे थे।

* यहाँ यह भी मानना पड़ेगा कि वैज्ञानिक गणना भी निश्चित सत्य नहीं है; भविष्य में इसमें संशोधन होने की गुंजाइश है। –अनु०

अपने आप उस पंक्ति पर दबा दिया जाता और पंक्ति छप जाती। ऐसी स्वचालित छपाई मशीन को बनाना कुछ कठिन नहीं है, और इसे चित्र 4 में संक्षेपतः दिखाया गया है।

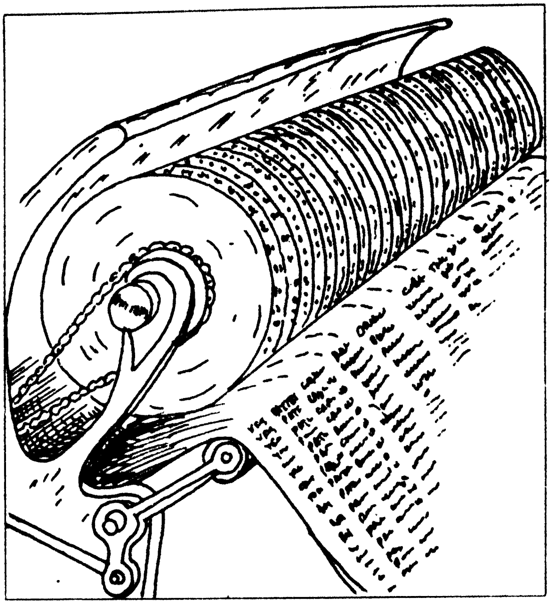

चित्र 4 : एक स्वचालित छपाई मशीन जिसमें से अभी–अभी शेक्सपीयर की एक पंक्ति सही छप कर निकली है।

आइए, इस यंत्र को चला दें और धड़ाधड़ छपती हुई पंक्तियों की अनंत शृंखला को ग़ौर से देखें। अधिकांश पंक्तियों का तो कोई अर्थ ही नहीं है, जैसे :

" aaaaaaaaaaa .......",

या " booboobooboobo.....",

या फिर " zawkporpkosscilm.......".

परंतु चूँकि यह यंत्र अक्षरों और चिह्नों के **सभी संभव** संयोगों को छापेगा, अतः इस अर्थहीन कबाड़ के बीच हमें कहीं–कहीं अर्थ वाले वाक्य भी मिलते हैं। निश्चय ही, इनमें बहुत–से ऊल–फ़िज़ूल वाक्य भी होंगे, जैसे

" horse has six legs and...."
("घोड़े की छः टाँगें हैं और ........ ")

या " I like apples cooked in turpentin....."
("मुझे तारपीन में पकाये सेब पसंद ........")।

परंतु खोज करने पर शेक्सपीयर की लिखी हुई हर पंक्ति भी प्रकट होगी, वे पंक्तियाँ भी जो स्वयं रद्दी काग़ज़ की टोकरी में फेंक दी थीं !

सच तो यह है कि ऐसी स्वचालित छपाई–मशीन वह सब कुछ छाप देती जो मानव के लिखाई शुरू करने से आज तक लिखा गया है : गद्य और पद्य की हर पंक्ति, समाचार–पत्रों का हर संपादकीय और विज्ञापन, वैज्ञानिक ग्रन्थों की गंभीर सामग्री, हरएक प्रेम–पत्र, दूध वाले के लिए लिखी गयी हर हिदायत................

इतना ही नहीं, यह यंत्र आने वाली शताब्दियों में छापी जाने वाली हर बात को भी छाप देता। उस घूमते हुए बेलन से निकलते हुए काग़ज़ पर हमें मिलतीं तीसवीं शताब्दी की कविताएँ, भविष्य की वैज्ञानिक खोजें, सयुंक्त राज्य अमेरिका की 500 वीं संसद में दिये जाने वाले भाषण, और सन् 2344 में होने वाली अंतर–ग्रहीय यातायात दुर्घटनाओं के विवरण। लघु कथाओं और लंबे उपन्यासों के ढेरों पृष्ठ मिलते, जो अभी तक मानव के हाथ से नहीं लिखे गये। जिन प्रकाशकों के कारख़ानों में ऐसी मशीनें होतीं, उन्हें सिर्फ़ इतना ही करना होता कि बहुत सारे कबाड़ में से अच्छी–अच्छी पंक्तियाँ चुन लेना और संपादित कर देना – वैसे वर्तमान में भी तो वे यही काम कर रहे हैं !

ऐसा किया क्यों नहीं जा सकता ?

ज़रा गिन कर देखें कि अक्षरों और अन्य मुद्रण–चिह्नों के सभी संभव संयोगों को प्रकट करने के लिए हमारे यंत्र को कितनी पंक्तियाँ छापनी होंगी ? अंग्रेज़ी वर्णमाला में 26 अक्षर हैं, दस अंक (0, 1, 2, ........9) और 14 सामान्य चिह्न (खाली, पूर्ण विराम, अल्पविराम, अपूर्णविराम, अर्धविराम, प्रश्नचिह्न, विस्मयादि–चिह्न, डैश, योजक, उद्धरण, एपोस्ट्रॉफ़ी, तीन प्रकार के कोष्ठक) – कुल मिला कर 50 संकेताक्षर। यह भी मान लें कि इस यंत्र में 65 चक्रिकाएँ हैं, क्योंकि आम छपी पंक्ति में घरों की संख्या 65 होती है। मुद्रित पंक्ति का पहला चिह्न सभी संकेतों में से कोई भी हो सकता है; अतः हमारे पास इसके लिए 50 संभावनाएँ हैं। इनमें से कोई भी एक चुनने पर पंक्ति के दूसरे घर के लिए फिर 50 संभावनाएँ हैं, अर्थात् पहले दो घरों के लिए कुल $50 \times 50 = 2500$ संभावनाएँ हैं। परंतु पहले दो चिह्नों के किसी भी एक संयोग को लेकर तीसरे घर के लिए हम 50 चिह्नों में से किसी को चुन सकते हैं, और ऐसे ही आगे भी होगा। पूरी पंक्ति में कुल मिला कर संभव संयोगों की संख्या कितनी होगी ? इसे लिखेंगे :

$50 \times 50 \times 50 .......... \times 50 =$ (65 बार गुणा), अर्थात् $50^{65}$, जो कि $10^{110}$ के बराबर है।

क्या आप अनुभव कर सकते हैं कि यह संख्या कितनी विराट है ? मान लीजिए कि ब्रह्मांड का हर परमाणु अपने आप में एक मुद्रण–यंत्र है, अर्थात् एक साथ $3 \times 10^{74}$ मशीनें हमारा काम कर रही हैं। यह भी मान लीजिए कि सृष्टि के आदि से, यानी $3 \times 10^{9}$ वर्षों या $10^{17}$ सैकंडों से, ये सभी मशीनें लगातार चल रही हैं, और प्रचंड वेग से कार्य कर रही हैं। किसी परमाणु में इलैक्ट्रोन 1 सैकंड में लगभग $10^{15}$ बार कंपित होता है; अतः मान लीजिए कि ये मशीनें भी प्रति सेकंड $10^{15}$ पंक्तियाँ छापती हैं। अब तक इन्होंने कुल कितनी पंक्तियाँ छापी होंगी ? यह संख्या है लगभगः

$$3 \times 10^{74} \times 10^{17} \times 10^{15} = 3 \times 10^{106},$$

जो कि पूरी आवश्यकता $10^{110}$ के एक प्रतिशत का तीसवाँ भाग मात्र है !

सचमुच, मुद्रित सामग्री के इस विशाल भंडार में से किसी भी प्रकार का चुनाव करने के लिए बहुत लंबा समय चाहिए।

## 2. अनंत संख्याओं की गिनती कैसे करें ?

पिछले भाग में हमने संख्याओं की चर्चा की, जिनमें से कई तो काफ़ी बड़ी थीं। सिस्सा बिन दाहिर द्वारा माँगे गये गेहूँ के दानों की संख्या भले ही भीमकाय हो, भले ही कल्पना से भी लगभग परे लगती हो, फिर भी यह अनंत नहीं है। परमाणविक मशीन द्वारा छापी गयी पंक्तियों की संख्या भी अनंत नहीं है। यदि पर्याप्त समय मिले तो इन सब संख्याओं को आख़िरी अंक तक लिखा जा सकता है।

परंतु कुछ संख्याएँ सचमुच अनंत भी हैं, यानी इतनी बड़ी हैं कि इन्हें लिखना संभव नहीं है, चाहे कितना भी समय लगाया जाये। अब जैसे, "सभी संख्याओं की संख्या" स्पष्ट ही अनंत है, और इसी प्रकार "किसी रेखा पर आने वाले ज्यामितीय बिंदुओं की संख्या" भी अनंत है।

क्या ऐसी सभी अनंत संख्याएँ बस एक–सी अनंत ही होती हैं या इनमें कोई भेद भी है ? उदाहरणतया, क्या यह संभव है कि दो अलग–अलग अनंतों की तुलना करके देखा जाये कि कौन "अधिक बड़ी" है ?

अगर यह पूछा जाये कि "सभी संख्याओं की संख्या, किसी रेखा पर पड़ने वाले सभी बिन्दुओं की संख्या से बड़ी है या छोटी ?", तो क्या इसका प्रश्न का कोई अर्थ है ? इस प्रकार के प्रश्नों पर, जो पहली दृष्टि में बेतुके लगते हैं, सबसे पहले प्रसिद्ध गणितज्ञ जोर्ग कैंटोर ने विचार किया और उनको सचमुच "अनंत के अंकगणित" का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

हम बड़ी बनाम छोटी अनंतों की बात करना चाहते हैं। पर समस्या यह है कि उन संख्याओं की तुलना कैसे करें जिन्हें हम न कोई अलग–अलग नाम दे सकते हैं और न लिख सकते हैं ? कमोबेश, हमारी स्थिति उस हॉटेनटॉट वाली है जो अपने ख़ज़ाने की पिटारी का निरीक्षण करके जानना चाहता हो कि उसके पास काँच के मनके अधिक हैं या ताँबे के सिक्के ? जैसा कि आपको याद होगा, बेचारा हॉटेनटॉट तीन से आगे गिनने में असमर्थ है। तब क्या उसे अपने मनकों और सिक्कों की संख्याओं की तुलना करने की कोशिश ही छोड़ देनी चाहिए ? बिल्कुल नहीं। यदि वह चतुर है तो एक–एक मनके की एक–एक सिक्के के साथ जोड़ी बना कर उत्तर खोज लेगा। वह एक मनके को एक सिक्के के बगल में रखेगा, दूसरे मनके को दूसरे सिक्के के बगल में, और इसी प्रकार

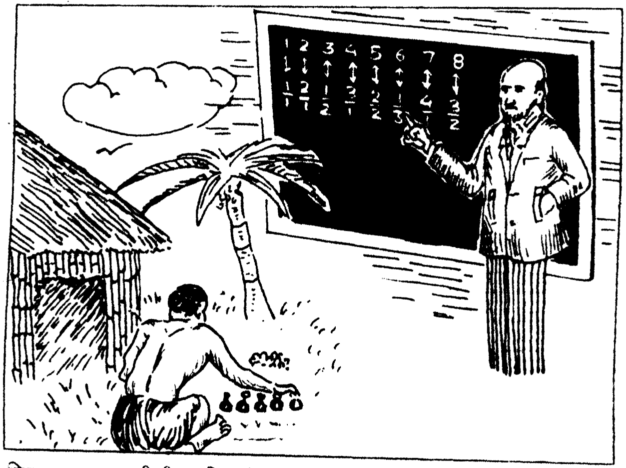


चित्र 5 : एक अफ्रीकी आदिवासी और प्रो० जोर्ग कैंटोर अपनी गिनने की योग्यता से बाहर की संख्याओं की तुलना करते हुए।

आगे, और आगे . . . . । यदि सारे मनके समाप्त हो जायें, जबकि कुछ सिक्के अभी बचे हों, तो उसे मालूम हो जायेगा कि उसके पास मनकों की अपेक्षा सिक्के अधिक हैं। यदि सिक्के पहले समाप्त हो जायें और मनके बच जायें तो सिक्कों की अपेक्षा मनके अधिक हैं, और यदि पूरे–पूरे जोड़े बन जायें तो वह समझ लेगा कि उसके मनके और सिक्के बराबर संख्याओं में हैं।

दो अनंतों की तुलना करने के लिए कैंटोर ने ठीक यही तरीका प्रस्तावित किया : क्यों न दोनों अनंत समूहों की वस्तुओं के जोड़े बनाये जायें? अर्थात् पहले अनंत में से एक–एक वस्तु का दूसरे अनंत की एक–एक वस्तु के साथ जोड़ा बना दिया जाये। अब यदि दोनों में से किसी भी समूह में से कोई वस्तु अकेली न बच जाये, तो दोनों अनंत बराबर हैं। दूसरी ओर, यदि ऐसा करना असंभव हो और हर बार एक ही समूह की कुछ वस्तुएँ अलग बच जाती हों, तो हम कहेंगे कि वस्तुओं का वह अनंत दूसरे अनंत से अधिक या विशालतर है।

स्पष्ट है कि अनंत संख्याओं की तुलना करने के लिए यही नियम सबसे तर्कसंगत है, और वास्तव में एकमात्र संभव नियम है। उदाहरण के लिए, सभी सम संख्याओं का अनंत और सभी विषम संख्याओं का अनंत लीजिए। निश्चय ही आप सहजबुद्धि से अनुभव कर लेंगे कि जितनी सम संख्याएँ हैं, उतनी ही विषम संख्याएँ हैं। उपर्युक्त नियम से भी यह बात पूरी तरह मेल खाती है, क्योंकि इन दोनों प्रकार की संख्याओं को एक–पर–एक करके रखा जा सकता है :

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 3 | 5 | 7 | 9 | 11 | 13 | 15 | 17 | 19 | आदि(विषम) |
| ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | |
| 2 | 4 | 6 | 8 | 10 | 12 | 14 | 16 | 18 | 20 | आदि (सम) |

इस तालिका में हर विषम संख्या का संबंध एक सम संख्या से है, और हर सम संख्या के लिए एक विषम संख्या है; अतः सम संख्याओं का अनंत, विषम संख्याओं के अनंत के बराबर है। यहाँ तक तो सब कुछ सरल और स्वाभाविक लगता है, है न ? पर जब अनंत संख्याओं में हाथ डाला है तो कुछ अजीब, अनपेक्षित बातों की लिए भी तैयार रहना चाहिए। जैसे, आपके विचार से कौन बड़ी है : सभी संख्याओं की संख्या, अर्थात् सम–विषम दोनों मिला कर, या केवल सम संख्याओं की संख्या ? आप तुरंत कह उठेंगे कि सभी संख्याओं की संख्या अधिक बड़ी है, क्योंकि इसमें सभी सम संख्याएँ तो शामिल हैं ही; इसके अतिरिक्त सभी विषम संख्याएँ भी हैं। पर यह सिर्फ़ आपका ख़्याल ही है, और बिल्कुल सही उत्तर पाने के लिए आपको दो अनंतों की तुलना करने वाले उपर्युक्त नियम का प्रयोग करना होगा। और जनाब, आप आश्चर्य–चकित रह जायेंगे कि आपका ख़्याल ग़लत था। वास्तव में देखिए, यह तालिका हाज़िर है, जो कि सभी संख्याओं और सम संख्याओं की एक–पर–एक अनुरूपता दिखाती है, यानी जोड़ियाँ बना कर दिखाती है :

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | .......आदि (सभी संख्याएँ) |
| ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | ↕ | |
| 2 | 4 | 6 | 8 | 10 | 12 | 14 | 16 | .......आदि (सम संख्याएँ) |

सभी संख्याओं में से प्रत्येक का जोड़ा किसी सम संख्या के साथ बन गया है; दोनों समूहों में से किसी में कोई संख्या अकेली नहीं बचती। अनंतों की तुलना के हमारे नियम के अनुसार यह कहना ही पड़ेगा कि सम संख्याओं का अनंत ठीक उतना ही बड़ा है जितना

*कि सभी संख्याओं वाला अनंत।* इसमें कुछ विरोधाभास तो अवश्य लगता है। (भला आधा भाग पूरे के बराबर कैसे हो सकता है?) परंतु हमें याद रखना होगा कि यहाँ अनंत (अपरिमित) संख्याओं के साथ हमारा पाला पड़ा है, और हमें परिमित (finite) की अपेक्षा कुछ अलग गुणों का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा।

वास्तव में अनंत के संसार में **एक भाग पूरे के बराबर हो सकता है।*** प्रसिद्ध जर्मन गणितज्ञ डेविड हिल्बर्ट द्वारा दिया गया एक उदाहरण संभवतः इस बात को सबसे अच्छी तरह दर्शाता है। अपने व्याख्यानों में उन्होंने अनंत संख्यओं के इस विरोधाभासी गुण को इन शब्दों में प्रकट किया:[8]

"आइए, हम कल्पना करें कि एक होटल में निश्चित (परिमित) संख्या में कमरे हैं, और मान लीजिए कि सभी कमरे भरे हुए हैं। एक नया ग्राहक आता है और एक कमरा माँगता है। मालिक कहता है, "मुझे खेद है, जनाब, सभी कमरे भरे हुए हैं।" अब एक ऐसे होटल की कल्पना करें जिसमें अनंत संख्या में कमरे हैं, और सभी कमरे भरे हुए हैं! इस होटल में भी एक नया ग्राहक आता है और कमरा माँगता है।

" 'हाँ, हाँ, अभी लीजिए', मालिक कहता है, और वह 1 नंबर कमरे में रह रहे व्यक्ति को 2 नंबर कमरे में भेज देता है, 2 नंबर वाले व्यक्ति को 3 नंबर में, 3 नंबर वाले को 4 नंबर में, आदि .....। और नये ग्राहक को कमरा नंबर 1 मिल जाता है, जो कि इस सब अदल–बदल के फलस्वरूप खाली हो गया है।**

"अब फिर से अनंत कमरों वाले एक होटल की कल्पना करें, जिसमें सभी कमरे भर चुके हैं, और **अनंत** संख्या में नये ग्राहक आकर कमरे माँगते हैं।

" 'ज़रूर मिलेगा, सज्जनों', मालिक कहता है, 'बस, क्षण भर रुकिए।'

"वह कमरा नंबर 1 वाले ग्राहक को 2 नंबर में भेज देता है, 2 नंबर वाले को 4 नंबर में, 3 नंबर वाले को 6 नंबर में, आदि, इत्यादि। अतः सभी विषम संख्या वाले कमरे (1, 3, 5,.......) खाली हो जाते हैं और अनंत संख्या में आये नये ग्राहकों को उनमें आसानी से स्थान दिया जा सकता है।"

हिल्बर्ट द्वारा वर्णित अनंत ग्राहकों और अनंत क्षमता वाले होटलों की कल्पना करना सहज नहीं है, परंतु इस उदाहरण से निश्चय ही यह बिंदु समझ में आ जाता है कि अनंत संख्याओं के कुछ ऐसे गुण हैं जो हमारे नित्य के व्यवहार के अंकगणित के गुणों से कुछ अलग हैं।

दो अनंतों की तुलना करने के कैंटोर के नियम का अनुसरण करते हुए अब हम यह भी प्रमाणित कर सकते हैं कि 3/7 या 735/8 जैसी सभी साधारण भिन्नों की संख्या, सभी पूर्ण संख्याओं

---

* आपको यह बात निम्नलिखित उपनिषद्–वाक्य से कुछ मिलती–जुलती लगेगी :
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
अर्थात् वह (ब्रह्म) भी पूर्ण है और यह (संसार) भी पूर्ण है। पूर्ण (ब्रह्म) में से पूर्ण (संसार) निकल जाने पर (ब्रह्म) ही बचता है। –अनु०

[8] आर० कूराँ द्वारा बहु–प्रसारित "हिल्बर्ट की कहानियों का संपूर्ण संकलन" से, जो कभी प्रकाशित न... बल्कि कभी लिखा ही नहीं गया।

**अर्थात् अनंत में एक जोड़ने पर अनंत ही प्राप्त होता है। –अनु०

की संख्या के बराबर है। इन दोनों अनंतों की तुलना करने के लिए पहले हमें सभी संभव भिन्नों को *एक पंक्ति में सजाना होगा ताकि पूर्ण संख्याओं के साथ उनकी एक–पर–एक करके जोड़ी बना सकें।* एक पंक्ति में सजाने के लिए निम्नलिखित नियम है : पहले उन भिन्नों को लिखिए जिनमें अंश (numerator) और हर (denominator) का योग 2 के बराबर है; ऐसी केवल एक ही भिन्न है : 1/1. फिर उन भिन्नों को लिखिए जिनमें यह योग 3 के बराबर है : 2/1 और 1/2. फिर उनको लिखिए जिनमें यह योग 4 है : 3/1, 2/2, 1/3. और इसी प्रकार चलते जाइए। इस प्रक्रिया के अनुसार चलने से हमें अनंत शृंखला प्राप्त होगी, जिसमें प्रत्येक संभव भिन्न होगी (चित्र 5)। अब इस शृंखला के समांतर पंक्ति बना कर पूर्णांकों की शृंखला लिख दीजिए; इस प्रकार भिन्नों के अनंत और पूर्णांकों के अनंत के बीच एक–पर–एक का संबंध प्राप्त हो गया। अतः दोनों संख्याएँ बराबर हैं।

"अच्छा, यह तो सब ठीक है", आप कह सकते हैं, "परंतु इसका अर्थ इतना ही है कि सभी अनंत एक–दूसरे के बराबर हैं, है न ? और यदि ऐसी बात है, तो उनकी तुलना करने का उपयोग ही क्या है ?"

नहीं जी, यह बात नहीं, और ऐसा अनंत आसानी से खोजा जा सकता है जो सभी पूर्णांकों या अंकगणित की सभी भिन्नों के अनंत से बड़ा हो। वास्तव में यदि हम किसी रेखा पर आने वाले बिंदुओं की संख्या की तुलना सभी पूर्णांकों की संख्या से करें तो हम पायेंगे कि ये दोनों अनंत असमान हैं। जितने पूर्णांक हैं या जितनी भिन्नें हैं, उससे कहीं अधिक बिंदु एक रेखा पर होते हैं।

इस कथन को प्रमाणित करने के लिए आइए, हम एक रेखा पर आने वाले बिंदुओं तथा पूर्णांकों की शृंखला के बीच एक–पर–एक संबंध स्थापित करने का प्रयास करें। मान लीजिए कि रेखा 1 इंच लंबी है। रेखा पर कोई भी बिंदु लीजिए और रेखा के एक छोर से उसकी दूरी इंचों में नापिए। यह दूरी एक संख्या है जिसे एक अनंत दशमलव भिन्न के रूप में लिखा जा सकता है, जैसे 0.7350624780056 ..... या 0.38250375632......[9] इस प्रकार रेखा के प्रत्येक बिंदु का वर्णन एक संख्या (दशमलव भिन्न) द्वारा किया जा सकता है। अतः हमें सभी पूर्णांकों की संख्या की तुलना सभी संभव अनंत दशमलव भिन्नों की संख्या से करनी है। अब ऐसी अनंत दशमलव भिन्नों और साधारण भिन्नों (जैसे 3/7 या 8/277) में क्या अंतर है ?

आपको अपने अंकगणित के पाठ से अवश्य याद होगा कि प्रत्येक साधारण भिन्न को अनंत **आवर्ती** दशमलव भिन्न* में बदला जा सकता है। जैसे 2/3 = 0.66666 ..... = 0. (6), और 3/7 = 0.428571 428571 428571.......= 0.(428571)। ऊपर हमने प्रमाणित किया है कि सभी अंकगणितीय भिन्नों की संख्या सभी पूर्णांकों की संख्या के समान है। इसलिए सभी **आवर्ती** दशमलव भिन्नों की संख्या भी सब पूर्णांकों की संख्या के बराबर ही होगी। परंतु किसी रेखा के बिंदुओं के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उन्हें आवर्ती दशमलव भिन्नो द्वारा ही दर्शाया जा सके। अधिकतर मामलों में तो हमें ऐसी अनंत दशमलव भिन्नें ही मिलेंगी जिनमें दशमलव अंक या उनके समूह बार–बार दुहराये नहीं जायेंगे। नीचे हम दिखा रहे हैं कि इनको एक शृंखला में सजाना किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

---

[9] ये सभी भिन्नें एक से छोटी हैं, क्योंकि हमने रेखा की लंबाई को एक इंच ही माना है।

* आवर्ती (recurring) दशमलव भिन्न एक विशेष प्रकार की दशमलव भिन्न है जिसमें एक ही अंक या अंकों का समूह बार–बार, अनंत बार, ज्यों–का–त्यों दुहराया जाता है। इस अंक या अंक–समूह को सांकेतिक रूप में कोष्ठक में लिख दिया जाता है। जैसे 0.6666..... को 0.(6) लिखते हैं। –अनु०

मान लीजिए, कोई दावा करता है कि सभी अनंत दशमलव भिन्नों को एक अनंत शृंखला में सजा लिया गया है, जो इस प्रकार दीखती है :

| क्र० | संख्या |
|---|---|
| 1. | 0.38602563078...... |
| 2. | 0.57350762050...... |
| 3. | 0.99356753207...... |
| 4. | 0.25763200456...... |
| 5. | 0.00005320562...... |
| 6. | 0.09903638567...... |
| 7. | 0.55522730567...... |
| 8. | 0.05277365642...... |
| . | ........................... |
| . | ........................... |
| . | ........................... |
| . | ........................... |

अब इन अनंत संख्याओं में से प्रत्येक को अनंत दशमलव अंकों तक लिखना तो असंभव है। अतः स्वाभाविक ही ऐसा दावा किये जाने का अर्थ है कि इस तालिका को किसी वैसे ही सामान्य नियम के अनुसार बनाया गया है, जैसा हमने साधारण भिन्नों को शृंखलाबद्ध करने के लिए बनाया था, और वह नियम इस बात की गारंटी है कि हरएक दशमलव भिन्न, जो भी आप सोच सकते हैं, कभी न कभी इस तालिका में दिखाई देगी ही।

अच्छा, अब बिना किसी कठिनाई के यह दिखाया जा सकता है कि इस प्रकार का कोई भी दावा सही नहीं है, क्योंकि हम हर हालत में ऐसी अनंत दशमलव संख्या लिख सकते हैं जो कि इस अनंत तालिका में शामिल नहीं है। ऐसा कैसे कर सकते हैं ? बहुत आसान है। बस, ऐसी दशमलव भिन्न लिखें जिसमें पहला दशमलव अंक उपर्युक्त तालिका की संख्या क्र0 1 के पहले अंक से अलग हो, दूसरा अंक तालिका की संख्या क्र0 2 के दूसरे अंक से अलग हो, आदि। इससे जो संख्या आप पायेंगे वह कुछ इस प्रकार दिखाई देगी :

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | (3 नहीं) | (7 नहीं) | (3 नहीं) | (6 नहीं) | (5 नहीं) | (6 नहीं) | (3 नहीं) | (5 नहीं) |
| 0. | 5 | 2 | 7 | 4 | 0 | 7 | 1 | 2............आदि, |

और हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह संख्या तालिका में शामिल नहीं है, चाहे आप कितनी भी दूर तक खोज लें। यदि तालिका का लेखक कह दे कि जो भिन्न आपने लिखी है वह उसकी तालिका में क्र0 137 पर अवस्थित है (या किसी भी अन्य क्रमांक पर), तो आप तुरंत उत्तर दे सकेंगे, "नहीं जी, यह वही भिन्न नहीं है, क्योंकि आपकी भिन्न का एक सौ सैंतीसवाँ अंक मेरी सोची के एक सौ सैंतीसवें अंक से अलग है।"

अतः किसी रेखा पर आये सभी बिंदुओं और पूर्णांकों के बीच एक–पर–एक स... करना असंभव है। यदि हम पूर्णांकों की जोड़ियाँ उन बिंदुओं के साथ बनाते हैं जिनकी ... दशमलव भिन्न में है, तो वे सभी बिंदु बिना जोड़ी के बच जायेंगे जिनकी दूरी अनावर्ती द... में है। इसका अर्थ है कि **रेखा के बिंदुओं की अनंत संख्या, सभी पूर्णांकों या भिन्न संख्या... की अपेक्षा अधिक या विशालतर है।**

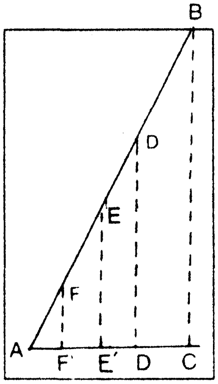


चित्र 6 : दोनों रेखाओं पर बराबर संख्या में बिंदु हैं

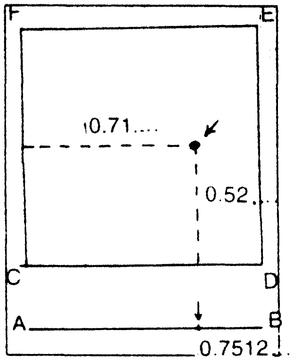


चित्र 7 : रेखा के बिंदुओं और वर्ग के बिंदुओं की संख्याओं की तुलना

हमने अब तक "एक इंच लंबी" रेखा की ही चर्चा की है, परंतु वास्तव में **एक इंच, एक फुट या एक मील लंबी रेखाओं में प्रत्येक पर बराबर संख्या में बिंदु हैं।** हमारे "अनंत के अंकगणित" के नियमों को लेकर इसे आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है। बस, चित्र 6 को देखिए, जिसमें अलग–अलग लंबाइयों वाली रेखाओं AB और AC के बिंदुओं की तुलना की गयी है। इन दोनों रेखाओं के बीच एक–पर–एक का संबंध प्रदर्शित करने के लिए हम AB के प्रत्येक बिंदु से BC के समांतर रेखा खींचते हैं, और जहाँ यह रेखा AB और AC को काटती है, उन दोनों बिंदुओं का जोड़ा बना देते हैं, जैसे D एवं D', E एवं E', F एवं F आदि। अब AC के हर बिंदु के जोड़े का बिंदु AB पर है, और इसका उलट भी सही है। अतः हमारे नियम के अनुसार बिंदुओं के दोनों अनंत बराबर हैं। और यह भी सत्य है कि किसी भी रेखा के बिंदुओं की संख्या पूर्णांकों की संख्या से अधिक है।

शायद इस परिणाम से आप चकित हुए हों। इससे भी अधिक चौंकाने वाला एक अन्य परिणाम इस प्रकार है: **किसी समतल पर आने वाले सभी बिंदुओं की संख्या किसी भी रेखा के सभी बिंदुओं की संख्या के बराबर है।** इसे प्रमाणित करने के लिए एक इंच लंबी रेखा AB के सभी बिंदुओं एवं 1 इंच x 1 इंच माप के वर्ग CDEF में पड़ने वाले सभी बिंदुओं पर ध्यान दें (चित्र 7)। मान लीजिए कि रेखा AB पर किसी एक बिंदु की स्थिति एक संख्या द्वारा बतायी जा सकती है, जैसे 0.75120386.....। इस एक संख्या से हम दो अलग–अलग संख्याएँ बना सकते हैं यदि हम सम और विषम स्थानों के अंकों को अलग–अलग एकत्र कर दें। इस प्रकार हमें प्राप्त हो जायेगा 0.7108........ और 0.5236.....। अब इन दो संख्याओं द्वारा व्यक्त दूरियाँ हमारे वर्ग में (बिंदु C से) दाहिनी तथा ऊपर की ओर नाप ली जायें, तो इस प्रकार प्राप्त हुए बिंदु को रेखा वाले बिंदु के "जोड़े का बिंदु" कहा जा सकता है। इसका उलटा करना हो तो, मान लीजिए, वर्ग में कोई बिंदु है जिसकी स्थिति दो संख्याओं द्वारा व्यक्त हो सकती है, जैसे 0.4835....... एवं .9907.....। अब हम रेखा पर इस बिंदु के "जोड़े का बिंदु" प्राप्त करने के लिए दोनों संख्याओं को मिला देते हैं : 0.49893057......।

स्पष्ट है कि इस विधि से दोनों बिंदु–समूहों में एक–पर–एक संबंध स्थापित हो जाता है। रेखा के हर बिंदु की जोड़ी का बिंदु वर्ग में मिलेगा; वर्ग के हर बिंदु की जोड़ी का बिंदु रेखा पर होगा; और कोई भी बिंदु अलग नहीं बचेगा। अतः कैंटोर की कसौटी के अनुसार किसी वर्ग के अंदर पड़ने वाले सभी बिंदुओं का अनंत किसी रेखा पर पड़ने वाले सभी बिंदुओं के अनंत के बराबर है।

ऐसे ही तरीके से इसे भी आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि किसी घन के अंदर के सभी बिंदुओं का अनंत, किसी रेखा के बिंदुओं के अनंत के बराबर है। इसके लिए हमें इतना ही करना है कि मूल दशमलव भिन्न को तीन भागों में तोड़ें[10] और इस प्रकार प्राप्त तीन नयी भिन्नों का उपयोग निर्देशांकों (co-ordinates) की तरह करके घन के भीतर "जोड़ी के बिंदु" की स्थिति बतायें। और यह भी सत्य है कि किसी वर्ग या घन के भीतर के बिंदुओं की संख्या उतनी ही रहेगी, भले ही उनकी माप कितनी भी हो, उसी प्रकार जैसे अलग–अलग लंबाई की दो रेखाओं की बात है।

तो इस प्रकार सभी पूर्णांकों या भिन्नों की संख्या अनंत है और सभी ज्यामितीय बिंदुओं की संख्या उससे भी बड़ा अनंत, यानी दूसरे दर्जे का अनंत। परंतु क्या यही गणित की सबसे बड़ी संख्या है? या गणितज्ञों को इससे और बड़ी संख्याएँ भी ज्ञात हैं ? वास्तव में यह पाया गया है कि **सभी संभव प्रकार की वक्र रेखाओं की संख्या, जिनमें अजीब आकृतियाँ भी शामिल हैं, सभी ज्यामितीय बिंदुओं की संख्या से अधिक है। अतः इसका वर्णन करने के लिए अनंतों की शृंखला का तीसरा दर्जा चाहिए** (चित्र 8)।

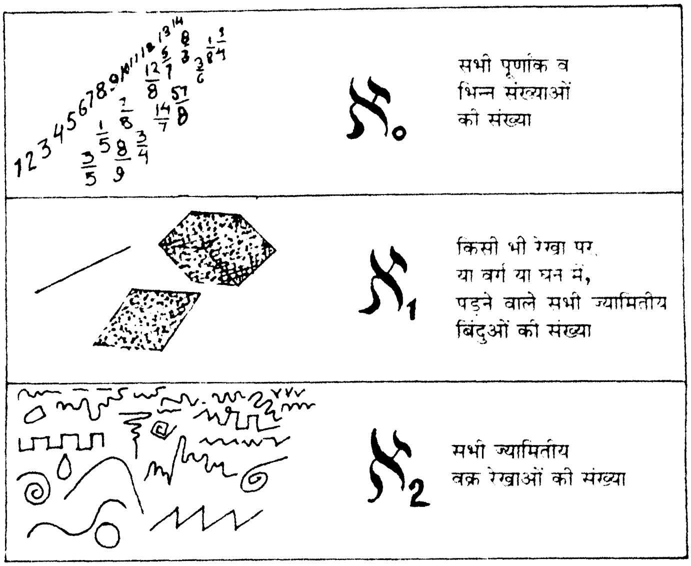


चित्र 8 : पहली तीन अनंत–क्रम की संख्याएँ

अनंतों के अंकगणित के स्रष्टा जोर्ग कैंटोर ने अनंत संख्याओं को हिब्रू लिपि के अक्षर x (अलिफ़) से चिह्नित किया है। इसके नीचे दाहिने कोने में एक संख्या लिखी जाती है जो अनंत का दर्जा दर्शाती है।* अब संख्याओं की शृंखला (अनंत संख्याओं को शामिल करके) इस प्रकार चलती है:

1,2,3,4,5,......................, $x_1$, $x_2$, $x_3$,.........., और हम कहते हैं, "किसी रेखा पर x हैं" या "$x_2$ विभिन्न प्रकार की रेखाएँ होती हैं", ठीक उसी प्रकार जैसे हम कहते हैं कि "... भाग (महादेश) हैं", या "ताश की गड्डी में 52 पत्ते होते हैं"।

---

[10] उदाहरण के लिए, 0.735106822548312........ आदि संख्या से हम तीन संख्याएँ बना सकते हैं : 0.71853......0.30241......., और 0.56282...... ।

* यह संख्या वास्तव में अनंत के दर्जे से एक कम होती है, जैसे दूसरे दर्जे के अनंत को $x_1$ कहा गया है।

अनंत संख्याओं के बारे में अपनी बात समाप्त करते हुए हम ध्यान दिलाते हैं कि अनंत का दर्जा बढ़ाते जाने से जल्दी ही ये संख्याएँ इतनी अधिक बड़ी हो जाती हैं कि उतनी गिनती के वस्तु–समूह की कल्पना करना ही कठिन हो जाता है। हम जानते हैं कि $x_0$ सभी पूर्णांकों की संख्या बताता है, $x_1$ सभी ज्यामितीय बिंदुओं की संख्या व्यक्त करता है, और $x_2$ सभी वक्र रेखाओं की संख्या, परंतु अभी तक कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे अनंत वस्तु–समूह की कल्पना नहीं कर पाया है जिसकी गिनती $x_3$ हो। यहाँ हम पाते हैं कि हम अपने पुराने मित्र हॉटेनटॉट से ठीक उलटी स्थिति में हैं : उसके बहुत–से बच्चे हैं पर वह तीन के बाद गिन ही नहीं पाता, जबकि हमारे पास ढेरों दर्जों वाली अनंत संख्याएँ है, पर तीसरे अनंत के बाद गिनने योग्य कुछ रह ही नहीं जाता !

# दो

# प्राकृतिक एवं कृत्रिम संख्याएँ

## 1. शुद्धतम गणित

गणित को आम तौर पर सभी विज्ञानों की रानी समझा जाता है : कम–से–कम गणितज्ञ तो ऐसा ही मानते हैं। रानी होने के कारण स्वाभाविक ही है कि यह ज्ञान की दूसरी "साधारण" शाखाओं के साथ बराबरी का संबंध बनाने से कतराती है। उदाहरण के लिए, जब डेविड हिल्बर्ट को कहा गया कि "शुद्ध एवं अनुप्रयुक्त गणित* की संयुक्त महासभा" में आपको ऐसा उद्घाटन भाषण देना है जो गणितज्ञों के इन दोनों समुदायों के बीच प्रतीत होने वाले ३६ के संबंध को उलटने में सहायक हो, तो उन्होंने इस प्रकार शुरू किया :

"लोग अक्सर कहते हैं कि शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त गणित एक–दूसरे के प्रतिकूल हैं। यह सत्य नहीं है। शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त गणित एक–दूसरे के प्रतिकूल नहीं हैं। शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त गणित कभी भी एक–दूसरे के प्रतिकूल नहीं रहे। शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त गणित एक–दूसरे के प्रतिकूल हो ही नहीं सकते – क्योंकि वास्तव में दोनों में बिल्कुल कुछ भी समानता नहीं है !"

परंतु गणित भले ही सबसे न्यारा रहना चाहे, दूसरे विज्ञानों को गणित बहुत पसंद है, विशेषतः भौतिक विज्ञान (physics) को, और वे जितना भी हो सके, इससे "भाईचारा" बनाये रखना चाहते हैं। वास्तव में शुद्ध गणित की लगभग हर शाखा का उपयोग अब भौतिक संसार के किसी–न–किसी पहलू की व्याख्या करने में किया जा सकता है। इसमें अमूर्त समूहों (abstract groups) की थ्योरी, अविनिमेय बीजगणित (non-commutable algebra) और ग़ैर–यूक्लिडीय ज्यामिति भी शामिल हैं, जिनके बारे में सदा कहा गया है कि ये शुद्ध गणित हैं, किसी भी अनुप्रयोग के योग्य नहीं हैं।

फिर भी गणित की एक शाखा है जो किसी प्रकार भी काम में आने से बची हुई है (सिवाय दिमाग़ी व्यायाम कराने के) और इस प्रकार शान से "शुद्धता का मुकुट" पहने हुए है। इसे कहते हैं "संख्याओं की थ्योरी" (अर्थात् पूर्ण संख्याओं की थ्योरी), जो कि शुद्ध गणितीय विचार की एक प्राचीनतम और जटिलतम उपज है।

शुद्धतम किस्म के इस गणित (संख्याओं की थ्योरी) को अनुभूतिजन्य विज्ञान+ या प्रायोगिक विज्ञान तक कह सकते हैं, भले ही यह बात आपको अजीब लगे। वास्तव में इसके अधिकतर परिणाम संख्याओं के साथ विभिन्न काम करते–करते ही निकले हैं, उसी प्रकार जैसे भौतिक पदार्थों के साथ विभिन्न काम करने के प्रयासों से भौतिकी के नियम निकले हैं। और जैसे भौतिकी में है, वैसे ही इन परिणामों में से भी कुछ को "गणित की पद्धति से" प्रमाणित किया जा चुका है, जबकि साध्य (theorems) "लगते" तो ठीक ही हैं, परंतु इन्हें प्रमाणित करना अब भी श्रेष्ठतम दिमाग़ों के लिए एक चुनौती है।

---

* अनुप्रयुक्त गणित (applied mathematics) वह गणित है जिसका प्रयोग विज्ञान के अन्य विषयों के लिए किया जा सकता है। –अनु०

\+ विज्ञान के कुछ नियम ऐसे हैं जिनका कोई ठोस तर्क–आधारित प्रमाण नहीं है, पर वे अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं। इन्हें "अनुभूतिजन्य" (empirical) कहते हैं। –अनु०

उदाहरणतया, अभाज्य संख्याओं (prime numbers) की समस्या को ही लीजिए। अभाज्य संख्याएँ वे हैं जिनको दो या अधिक छोटी संख्याओं के गुणनफल के रूप में नहीं बताया जा सकता है। जैसे 1, 2 ,3, 5, 7, 13, 17 आदि ऐसी ही अभाज्य संख्याएँ हैं, जबकि 12 ऐसी नहीं है, क्योंकि इसे 2×2×3 करके लिखा जा सकता है। प्रश्न है कि क्या अभाज्यों की संख्या सीमित है ? या कोई बड़ा से बड़ा अभाज्य भी है, जिसके परे हर संख्या पहले वाले अभाज्यों को गुणा करके प्राप्त की जा सकती है ? इस समस्या को पहली बार स्वयं यूक्लिड ने ही हाथ में लिया था; उन्होंने एक बहुत सरल और सुन्दर प्रमाण दिया कि अभाज्यों की संख्या किसी भी सीमा से परे है और "सबसे बड़ा अभाज्य" नाम की कोई चीज़ नहीं है।

इस प्रश्न की समीक्षा करने के लिए क्षण भर के लिए मान लीजिए कि अभाज्य संख्याओं की संख्या सीमित है और कोई बड़ी–सी संख्या, जिसे सांकेतिक तौर पर N कहा जायेगा, सभी अभाज्यों में सबसे बड़ी है। अब हम सभी अभाज्यों का गुणनफल निकालते हैं, और उसमें 1 जोड़ देते हैं। हम इस संख्या को इस रूप में लिख सकते हैं :

$$N_1 = (1\times2\times3\times5\times7\times11\times13\times.......\times N) + 1$$

निश्चय ही यह नयी संख्या $N_1$ तथाकथित "सबसे बड़ी अभाज्य संख्या" N से बहुत अधिक बड़ी है। परंतु स्पष्ट है कि इस संख्या को N तक के सभी अभाज्यों में से (N सहित) किसी से भी पूरा–पूरा भाग नहीं दिया जा सकता (1 के सिवाय)। जिस प्रकार इस संख्या को बनाया गया है, उससे साफ़ दीखता है कि इसे 2, 3, 5 या किसी भी अभाज्य संख्या से भाग देने पर 1 शेष बच ही जायेगा।

इस प्रकार हमारी बनायी हुई संख्या $N_1$ या तो स्वयं एक अभाज्य संख्या है, या N से बड़ी किसी अभाज्य संख्या से विभाजित हो सकती है : ये दोनों ही स्थितियाँ हमारी उस शुरुआती धारणा के साथ बेमेल हैं कि N सबसे बड़ा अभाज्य हैं

इस प्रमाण में "रिडक्शियो एड एब्सर्डम" की विधि अपनायी गयी है, जिसका अर्थ है किसी कथन को ज़रा देर के लिए मान लेना, और फिर तर्क और गणित की क्रियाओं द्वारा उसे ऐसा रूपांतरित कर देना कि उस कथन के प्रतिकूल या बेमेल परिणाम आ जाये। यह गणितज्ञों के प्रिय साधनों में से एक है।

एक बार जब हम जान गये कि अभाज्यों की संख्या अनंत है, तो हम पूछ सकते हैं कि क्या कोई ऐसी सरल विधि है जिससे इनकी क्रमानुसार सूची बनायी जा सके ? शर्त यह है कि एक भी अभाज्य संख्या छूटनी नहीं चाहिए। ऐसा करने का एक तरीका प्राचीन यूनानी दर्शन–शास्त्री और गणितज्ञ एराटोस्थानस ने सबसे पहले प्रस्तावित किया था, और इसे आम तौर पर "छलनी" कहते हैं। आपको बस इतना ही करना है कि पूर्ण संख्याओं की पूरी शृंखला 1, 2, 3, 4, आदि लिख कर पहले 2 की गुणज सभी संख्याएँ (अर्थात् दो के पहाड़े पर पड़ने वाली जैसे 4, 6 आदि) काट देनी हैं। फिर बची हुई संख्याओं में से 3 की गुणज काट देनी हैं, फिर 5 की, इत्यादि। इस प्रकार काटते जाने से अंत में अभाज्य संख्याएँ ही बच जायेंगी। पहली सौ संख्याओं के लिए एराटोस्थानस की छलनी चित्र 9 में दिखायी गयी है। इसमें कुल छब्बीस अभाज्य हैं। ऐसे ही छलनी वाले तरीके का प्रयोग करते हुए एक अरब तक के अभाज्यों की तालिकाएँ बना ली गयी हैं।

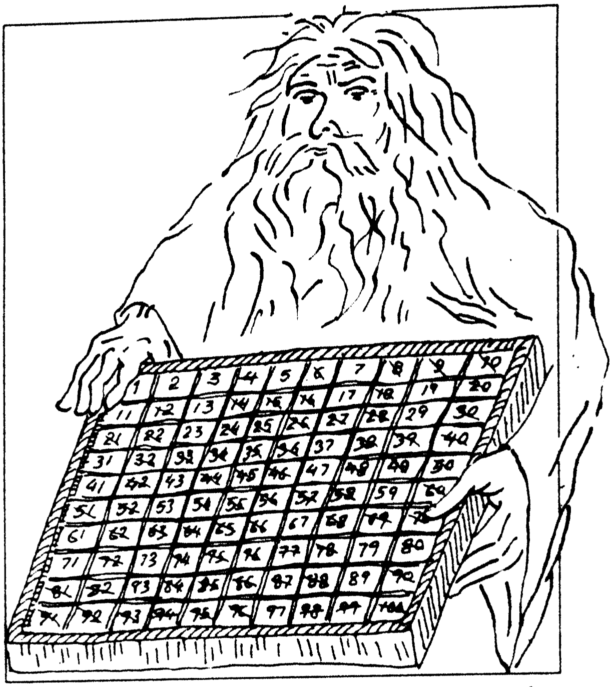

चित्र 9 : अभाज्य संख्याएँ जानने के लिए एराटोस्थानस की छलनी

यह मामला कितना आसान हो जाता यदि कोई सूत्र (फ़ार्मूला) बनाया जा सकता जिससे हमें फटाफट और सीधे अभाज्य संख्याएँ मिलती जातीं, और **सभी** अभाज्य संख्याएँ मिल जातीं! लेकिन सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे प्रयासों के बावजूद ऐसा सूत्र अब तक नहीं मिला है। सन् 1640 में प्रसिद्ध फ़्रांसीसी गणितज्ञ फ़ेरमा ने एक सूत्र तैयार कर लिया था ; उन्होंने समझा था कि यह सिर्फ़ अभाज्य संख्याएँ बनायेगा। उनका सूत्र था, $2^{2^n}+1$, जिसमें n का अर्थ है पूरी संख्याएँ 1, 2, 3, 4, आदि।

इस सूत्र का उपयोग करके हम पाते हैं :

$2^2 + 1 = 5,$

$2^{2^2} + 1 = 2^4 + 1 = 17$

$2^{2^3} + 1 = 2^8 + 1 = 257,$

$2^{2^4} + 1 = 2^{16} + 1 = 65537$

इनमें से प्रत्येक संख्या सचमुच अभाज्य है। परंतु फ़ेरमा की घोषणा के लगभग एक शताब्दी बाद जर्मन गणितज्ञ आयलर ने दर्शा दिया कि फ़ेरमा की पाँचवीं गणना का परिणाम, $2^{2^5} + 1 =$ 4294967297, अभाज्य नहीं है, बल्कि यह वास्तव में 6700417 और 641 का गुणनफल है। अभाज्य संख्याओं की गणना करने का फ़ेरमा का अनुभूतिजन्य नियम दोनों तरह से गलत निक **सभी** अभाज्य संख्याएँ देता है और न **सिर्फ़** अभाज्य।

एक और उल्लेखनीय सूत्र, जिससे कई अभाज्य संख्याएँ बनती हैं, इस प्रकार

$n^2 - n + 41;$

n यहाँ भी 1, 2, 3 आदि के बराबर होता है। यह दर्शाया जा चुका है कि n का मान 1 से 40 तक रखने पर यह सूत्र हर बार केवल अभाज्य संख्या ही देता है, पर हाय ! इकतालीसवें क़दम पर यह बुरी तरह असफल हो जाता है क्योंकि :

$(41)^2 - 41 + 41 = 41 \times 41$,

जो एक वर्ग है, न कि अभाज्य।

इसी प्रयास में एक अन्य सूत्र है :

$n^2 - 79n + 1601$,

जो n के 79 मान तक तो अभाज्य देता है, किंतु 80 वें क़दम पर असफल हो जाता है !

अतः केवल अभाज्य संख्याएँ देने वाले सूत्र को खोजने की समस्या अब भी अनसुलझी ही है।⁺

एक अन्य रोचक उदाहरण के तौर पर संख्याओं की थ्योरी का एक प्रमेय लीजिए जिसको न कोई सही प्रमाणित कर सका है और न ग़लत ही। यह है 1742 में प्रस्तावित "गोल्डबाख़ की अटकल", जिसके अनुसार **कोई भी सम संख्या दो अभाज्यों के योग के बराबर होती है।** आप आसानी से देख सकते हैं कि कुछ सरल उदाहरणों में प्रयोग करने पर यह खरी उतरती है, जैसे 12 = 7+5, 24 = 17+7, 32 = 29+ 3 या 31+1, आदि। परंतु गणितज्ञ न तो कभी भी इस कथन के अचूक होने का निर्णायक प्रमाण दे पाये हैं, और न कोई ऐसा उदाहरण ही खोज पाये हैं जिससे यह ग़लत सिद्ध हो जाये, यद्यपि ढेरों प्रयास इस दिशा में हुए हैं। अभी 1931 में जाकर एक रूसी गणितज्ञ श्निरलमैन ऐसे प्रमाण की दिशा में पहला रचनात्मक कदम उठा पाये। वे इतना ही दर्शाने में सफल हुए कि **हर सम संख्या 300 000 या इससे कम अभाज्य संख्याओं का योग है।** कहाँ तो श्निरलमैन के "तीन लाख अभाज्यों का योग" और कहाँ वांछित "दो अभाज्यों का योग !" और भी हाल में एक अन्य रूसी गणितज्ञ विनोग्रादोफ़ ने इस चौड़ी खाई को काफ़ी हद तक पाट दिया जब वे इसे "चार अभाज्यों का योग" तक ले आये। परंतु विनोग्रादोफ़ के चार से गोल्डबाख़ के दो अभाज्य तक के दो अंतिम कदम सबसे अधिक दुष्कर प्रतीत होते हैं*, और कोई नहीं कह सकता कि इस कठिन साध्य को सही या ग़लत सिद्ध करने में थोड़े-से वर्ष और लगेंगे या कुछ शताब्दियाँ।

तो इस प्रकार लगता है, हम अब भी उस सूत्र को प्राप्त करने से बहुत दूर हैं जिससे जितनी चाहें उतनी बड़ी संख्या तक सभी अभाज्य अपने आप निकल आयेंगे, और इतना भी पक्का मालूम नहीं है कि ऐसा सूत्र भविष्य में कभी मिल ही जायेगा।

चलिए, अब हम इससे छोटा ही एक प्रश्न पूछें – संख्याओं के किसी निश्चित अंतराल में पायी जाने वाली अभाज्य संख्याओं की प्रतिशतता के बारे में। जैसे-जैसे हम बड़ी, अधिक बड़ी संख्याओं पर विचार करते हैं, क्या अभाज्य संख्याओं की प्रतिशतता लगभग स्थिर रहती है? और यदि नहीं, तो क्या यह बढ़ती जाती है या घटती जाती है? तालिकाओं में दिये गये अभाज्यों की संख्याएँ गिन कर हम इस प्रश्न का अनुभूति-जन्य उत्तर दे सकते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि 1 से 100 तक 26

⁺ हाल के कार्य से इतना तो स्पष्ट हो गया है कि ऐसा अचूक सूत्र यदि कोई है तो ऊपर बताये फ़ार्मूलों जैसा सरल नहीं हो सकता, बल्कि बहुत लंबा व दुष्कर होगा जिसमें उच्चतर गणित के पदों का प्रयोग करना होगा। –अनु०

* वास्तव में चार और दो के बीच केवल **एक** कदम है, दो नहीं, क्योंकि तीन अभाज्य (विषम) संख्याओं का योग सम संख्या के बराबर हो ही नहीं सकता। –अनु०

अभाज्य हैं, 1 000 तक 168 अभाज्य हैं, 1 000 000 तक 78 498 अभाज्य हैं और 1 000 000 000 तक 50 847 478 अभाज्य हैं। अभाज्यों की ऐसी हर संख्या को संबंधित संख्या–अंतराल से भाग देते हुए हम निम्नलिखित तालिका बनाते हैं :

| अंतराल 1–N | अभाज्यों की संख्या | अनुपात | $\frac{1}{\log_e N}$ | अंतर (%) |
|---|---|---|---|---|
| 1-100 | 26 | 0.260 | 0.217 | 20 |
| 1-1000 | 168 | 0.168 | 0.145 | 16 |
| 1-$10^6$ | 78,498 | 0.078498 | 0.072382 | 8 |
| 1-$10^9$ | 50,847,478 | 0.050847478 | 0.048254942 | 5 |

यह तालिका सबसे पहले तो यह दर्शाती है कि जैसे–जैसे पूर्णांकों की कुल संख्या बढ़ती है, अभाज्यों का अनुपात धीरे–धीरे घटता है, परंतु ऐसी कोई सीमा नहीं है जिसके आगे कोई भी अभाज्य न हों। हमारा प्रश्न यह है कि बढ़ती संख्याओं के बीच अभाज्यों की घटती हुई प्रतिशतता को गणितीय ढंग से दर्शाने का क्या कोई सरल नियम है ? हाँ, है, और यह नियम पूरे गणित की सबसे अद्‌भुत खोजों में से एक है। यह नियम इतना ही कहता है कि **1 से किसी भी बड़ी संख्या N तक के अंतराल में अभाज्यों की प्रतिशतता N के प्राकृतिक लघुगणक**[1] (natural logarithm) **के व्यतिक्रम (उल्टे) के निकट है**, और जैसे–जैसे N बड़ा होता जायेगा, यह निकटता भी बेहतर होती जायेगी।

ऊपर दी गयी तालिका में आप चौथे कॉलम में N के प्राकृतिक लघुगुणक का उल्टा पायेंगे। यदि आप इसकी तुलना तीसरे कॉलम में लिखे अनुपात से करेंगे, तो आप सचमुच पायेंगे कि इन दोनों में काफ़ी निकट की अनुरूपता है, और जैसे–जैसे N बढ़ता है, यह अनुरूपता भी अधिक निकट की होती जाती है।

ऊपर दिया गया प्रमेय पहले अनुभूति के आधार पर खोजा गया और एक लंबे अर्से तक किसी कड़े गणितीय प्रमाण से इसकी पुष्टि नहीं की जा सकी, जैसा कि संख्याओं की थ्योरी के अन्य कई प्रमेयों के साथ भी हुआ है। वह तो पिछली शताब्दी के लगभग अंत में जाकर फ़्रांसीसी गणितज्ञ हादामर्द और बेल्जियम के द ला वाल्ले पूस्सिन ने अंत में इसे प्रमाणित करने में सफलता पायी। उनका तरीका इतना जटिल और कठिन है कि उसे यहाँ नहीं समझाया जा सकता।

पूर्णांकों की इस चर्चा को विराम देने से पहले प्रसिद्ध "फ़ेरमा के अंतिम प्रमेय" की बात कहना आवश्यक है। संख्याओं की थ्योरी में ऐसी भी रोचक समस्याएँ है जिनका संबंध अभाज्यों से नहीं है। प्रस्तुत समस्या उसी श्रेणी का उदाहरण है। इस समस्या की जड़ें प्राचीन मिस्र तक जाती हैं, जहाँ हर अच्छा बढ़ई जानता था कि किसी त्रिभुज की तीन भुजाएँ यदि 3 : 4 : 5 के अनुपात में हों तो उसमें एक समकोण अवश्य शामिल होगा। सचमुच, मिस्री लोग इस प्रकार के त्रिभुज का उपयोग स्क्वेयर के रूप में करते थे, जिसे अब "मिस्री त्रिभुज" नाम से जाना जाता है[2]।

तीसरी शताब्दी में सिकंदरा का निवासी डायोफ़ांटस सोचने लगा कि क्या केवल ... ही दो पूर्णांक हैं जिनके वर्गों का जोड़ किसी तीसरे पूर्णांक के वर्ग के बराबर है ? उसने द...

[1] प्राकृतिक लघुगुणक की एक आसान परिभाषा इस प्रकार है कि तालिकाओं में मिलने वाले साधारण लघुगुणक ... से गुणा करने पर यह प्राप्त होता है।

[2] बाद में पाइथागोरस ने बताया कि इसका कारण है : $3^2 + 4^2 = 5^2$

इसी गुण वाली और भी तिकड़ियाँ हैं (वास्तव में इनकी संख्या अनंत है), और उसने इन्हें पाने का एक सार्विक (general) नियम भी बताया। ऐसे सभी समकोण त्रिभुज, जिनमें सभी भुजाओं की माप पूर्णांकों में बतायी जा सके, पाइथागोरीय त्रिभुज कहलाते हैं, और मिस्री त्रिभुज इनमें पहला है। पाइथागोरीय त्रिभुजों को बनाने के सवाल को बीजगणित के इस समीकरण में बयान किया जा सकता है जिसमें x, y और z पूर्णांक ही होने चाहिएँ[3]:

$$x^2 + y^2 = z^2$$

वर्ष 1621 में पियेर फ़ेरमा ने पेरिस में डायोफ़ांटस की पुस्तक "अरिथमैटिका" के नये फ्रैंच अनुवाद की एक प्रति ख़रीदी, जिसमें पाइथागोरीय त्रिभुज की चर्चा थी। जब उन्होंने इसे पढ़ा, तो हाशिये में छोटी–सी टिप्पणी लिख दी कि ऊपर लिखे समीकरण के तो अनंत पूर्णांक हल हैं, परंतु $x^n + y^n = z^n$ में **यदि n दो से बड़ा हो, तो इस समीकरण का कोई भी पूर्णांक हल नहीं है।**

"मैंने इसका सचमुच अद्‌भुत प्रमाण पा लिया है", फ़ेरमा ने आगे जोड़ा, "परंतु इस तंग हाशिये में वह समायेगा नहीं", उन्होंने आगे लिखा।

फ़ेरमा की मृत्यु हो जाने पर उनके पुस्तकालय में डायोफ़ांटस की वह पुस्तक पायी गयी, और हाशिये की टिप्पणी में जो लिखा था वह सारे विश्व को मालूम हो गया। इस बात को तीन सौ वर्ष बीत चुके हैं। तब से अब तक हर देश के श्रेष्ठतम गणितज्ञों ने वह प्रमाण फिर से जुटाने की कोशिश की है जो वह टिप्पणी लिखते समय फ़ेरमा के दिमाग़ में था। परंतु इस समय तक कोई प्रमाण नहीं खोजा जा सका है। हाँ, यह सही है कि इस अंतिम लक्ष्य को पाने की दिशा में हम काफ़ी आगे बढ़ चुके हैं। यहाँ तक कि फ़ेरमा के अंतिम प्रमेय को प्रमाणित करने के प्रयासों से गणित की एक बिल्कुल नयी शाखा उपज आयी है जिसे "आदर्शों की थ्योरी" कहते हैं। आयलर ने दर्शाया कि $x^3 + y^3 = z^3$ और $x^4 + y^4 = z^4$, इन समीकरणों के पूर्णांक हल असंभव हैं। डिरिक्ले ने यही बात $x^5 + y^5 = z^5$ के लिए प्रमाणित कर दी, और अनेकों गणितज्ञों के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप अब हमारे पास प्रमाण हैं कि n के 269 से छोटे किसी भी मान के लिए फ़ेरमा के समीकरण का कोई हल संभव नहीं है। फिर भी कोई ऐसा प्रमाण कभी नहीं प्राप्त किया जा सका, जो घातांक n के **हरएक** मान के लिए लागू हो, और यह शंका प्रबल होती जा रही है कि स्वयं फ़ेरमा के पास भी या तो कोई प्रमाण था ही नहीं, या यदि था तो शायद उसमें कोई ग़लती थी। यह समस्या तब विशेष रूप से लोकप्रिय हो गयी, जब इसके हल के लिए एक लाख जर्मन मार्क के इनाम की घोषणा की गयी, हालाँकि धनी होने का सपना देखने वाले शौकिया गणितज्ञों की सारी मेहनतें बेकार रहीं।

निश्चय ही, यह संभावना अब भी है कि यह प्रमेय ही ग़लत हो, और ऐसा उदाहरण खोजा जा सके जिसमें दो पूर्णांकों का बराबर का घात उठा कर जोड़ने पर किसी तीसरे पूर्णांक का उतना ही घात प्राप्त हो। परंतु ऐसे उदाहरण को खोजने के लिए अब 269 से बड़े घातों का ही प्रयोग करना

---

[3] डायोफ़ांटस का सार्विक नियम इस प्रकार है : ऐसी दो संख्याएँ a और b लीजिए कि 2ab पूर्ण वर्ग हो। तब $x = a + \sqrt{2ab}$, $y = b + \sqrt{2ab}$, $z = a + b + \sqrt{2ab}$. तब आप पायेंगे कि $x^2 + y^2 = z^2$, जैसा कि साधारण बीजगणित से आसानी से देखा जा सकता है। इस नियम के उपयोग से हम सभी संभव हलों की तालिका बना सकते हैं जो प्रारंभ में इस प्रकार चलती है :

| | |
|---|---|
| $2ab = 2^2, a = 1, b = 2 : 3^2 + 4^2 = 5^2$ (मिस्री त्रिभुज) | $2ab = 6^2, a = 2, b = 9 : 8^2 + 15^2 = 17^2$ |
| $2ab = 4^2, a = 1, b = 8 : 5^2 + 12^2 = 13^2$ | $2ab = 6^2, a = 3, b = 6 : 9^2 + 12^2 = 15^2$ |
| $2ab = 4^2, a = 2, b = 4 : 6^2 + 8^2 = 10^2$ | $2ab = 8^2, a = 1, b = 32 : 9^2 + 40^2 = 41^2$ |
| $2ab = 6^2, a = 1, b = 18 : 7^2 + 24^2 = 25^2$ | $2ab = 8^2, a = 2, b = 16 : 10^2 + 24^2 = 26^2$ |

होगा; अतः यह खोज कोई आसान नहीं है।*

## 2. रहस्यमय $\sqrt{-1}$

चलिए, अब उच्च गणित का कुछ कार्य किया जाये। दो गुणा दो चार होते हैं, तीन गुणा तीन नौ होते हैं, चार गुणा चार सोलह होते हैं, और पाँच गुणा पाँच होते हैं पच्चीस। अतः चार का **वर्गमूल** दो है, नौ का वर्गमूल तीन है, सोलह का वर्गमूल चार और पच्चीस का वर्गमूल पाँच।[4]

परंतु किसी ऋणात्मक संख्या का वर्गमूल क्या होगा ? क्या $\sqrt{-5}$ और $\sqrt{-1}$ जैसे पदों का कोई अर्थ है ?

यदि आप तर्कपूर्वक इसका अर्थ खोजने का प्रयास करें, तो बेशक इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इन पदों का कोई अभिप्राय है ही नहीं। बारहवीं सदी के ब्राह्मण गणितज्ञ भास्कर के शब्दों में : "धनात्मक संख्या का वर्ग धनात्मक होता है, और ऋणात्मक संख्या का वर्ग भी धनात्मक ही होता है। इसलिए धनात्मक संख्या का वर्गमूल दुहरा होता है, धन और ऋण। दूसरी ओर, ऋणात्मक संख्या का कोई भी वर्गमूल नहीं होता, क्योंकि ऋणात्मक संख्याएँ वर्ग नहीं होतीं।"

पर गणितज्ञ भी बड़े अक्खड़ लोग होते हैं, और उनके सूत्रों में जब कोई ऐसी चीज़ टपक पड़ती है जिसकी कोई तुक प्रतीत न हो, तो वे ज़बरदस्ती उसका कुछ अर्थ बना देते है। और जहाँ तक ऋणात्मक संख्याओं के वर्गमूल का सवाल है, वे तो हर तरह की स्थितियों में टपकते ही रहते हैं। जिस तरह के सरल गणितीय प्रश्नों में पुराने ज़माने के गणितज्ञ अपने सिर खपाया करते थे, उनमें भी ये वर्गमूल आते थे और बीसवीं सदी की समस्या में, जैसे आपेक्षिकता (relativity) के ढाँचे में स्थान और समय के एकीकरण में, भी ये आते हैं।

किसी ऋणात्मक संख्या के अर्थहीन वर्गमूल को सबसे पहले किसी फ़ार्मूले में शामिल करने वाला बहादुर था सोलहवीं सदी का इतालवी गणितज्ञ कार्दान। कार्दान यह जानने का प्रयास कर रहे थे कि क्या संख्या 10 को दो ऐसे भागों में बाँटा जा सकता है जिनका गुणनफल 40 हो ? उन्होंने दर्शाया कि इस समस्या का कोई परिमेय+ हल तो नहीं है, मगर हाँ, दो असंभव गणितीय पदों के रूप में हल पाया जा सकता है : $5 + \sqrt{-15}$ और $5 - \sqrt{-15}$।[5]

कार्दान ने ये पंक्तियाँ लिखते समय अपनी हिचक इन शब्दों में प्रकट की कि यह चीज़

---

* हाल में गणित–जगत में धमाका–सा हुआ अब अंग्रेज़ गणितज्ञ एंड्रू वाइल्स और उनके साथियों ने "एनेल्स ऑफ मैथेमैटिक्स" के अंक 142 (वर्ष 1995) में फ़ेरमा के अंतिम प्रमेय का प्रमाण पेश कर दिया। यह प्रमाण इतना लंबा और दुरूह है कि इसे यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वास्तव में वाइल्स और साथियों ने जिस व्यापक प्रमेय का प्रमाण दिया है, फ़ेरमा का अंतिम प्रमेय उसका छोटा–सा उप–परिणाम है। कई गणितज्ञों को लगता है कि इसका कोई **सरल** प्रमाण होना ही चाहिए; इसकी खोज अब भी जारी है। –अनु०

[4] अन्य बहुत–सी संख्याओं का भी वर्गमूल आसानी से पाया जा सकता है। जैसे, $\sqrt{5} = 2.236......$, क्योंकि (2. (2.236......) = 5.000....., और $\sqrt{7.3} = 2.702......$, क्योंकि (2.702......) × (2.702....) = 7.300....

+ परिमेय संख्या (rational number) वह है जो पूर्णांकों से बनी भिन्न हो, जैसे 1, 2, -5, 3/16, 25/11, आ परिमित या आवर्ती दशमलव संख्याएँ भी परिमेय हैं : उदाहरणतया, .3 = 3/10, परंतु वर्गमूल परिमेय नहीं $\sqrt{5}$, $\sqrt{7}$, $\sqrt{10}$ आदि को भिन्न के रूप में नहीं रखा जा सकता है।

[5] इसका प्रमाण इस प्रकार है :

$(5 + \sqrt{-15}) + (5 - \sqrt{-15}) = 5 + 5 = 10$, और

$(5 + \sqrt{-15}) . (5 - \sqrt{-15}) = (5\times5) + 5\sqrt{-15} - 5\sqrt{-15} - (\sqrt{-15}\times\sqrt{-15})$

$(5\times5) - (-15) = 25 + 15 = 40.$

बिल्कुल अर्थहीन, नकली और अधिकल्पित है; फिर भी उन्होंने लिखा तो सही। तो यदि कोई ऋणात्मक संख्याओं के वर्गमूल लिखने की हिम्मत करे, भले ही वे काल्पनिक हों, तो संख्या 10 को दो वांछित भागों में बाँटने की समस्या हल हो सकती है। बस, एक बार अवरोध टूटने की देर थी, फिर तो बहुतेरे गणितज्ञ ऋणात्मक संख्याओं के वर्गमूलों का बार–बार उपयोग करने लगे, हालाँकि वे कई प्रतिबंधों और समुचित क्षमा–याचनाओं के साथ ही ऐसा करते थे। इन संख्याओं को "अधिकल्पित (imaginary)" कहा जाने लगा, जो कार्दान के विशेषणों में से एक है। स्विस गणितज्ञ लियोनार्द आयलर की 1770 में प्रकाशित बीजगणित की पुस्तक में हम अधिकल्पित संख्याओं के बहुत से अनुप्रयोग पाते हैं, परंतु साथ में यह संकोच–भरी टिप्पणी भी है : "$\sqrt{-1}, \sqrt{-2}$ आदि जैसे सभी पद काल्पनिक या असंभव संख्याएँ हैं, क्योंकि वे ऋणात्मक मात्राओं के वर्गमूलों को बताती हैं। हम सचमुच विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि वे न तो "कुछ भी नहीं" हैं, न "कुछ भी नहीं" से अधिक और न ही "कुछ भी नहीं" से कम, यानी वे अनिवार्य रूप से काल्पनिक या असंभव बन जाती हैं।"

परंतु इन सभी अपशब्दों और क्षमा–याचनाओं के बावजूद अधिकल्पित संख्याएँ जल्दी ही गणित में उतनी ही अनिवार्य हो गयीं जितनी कि भिन्न या वर्गमूल। स्थिति यहाँ तक आयी कि उनका उपयोग किये बिना लगभग कोई भी काम नहीं हो सकता था।

अधिकल्पित संख्याओं के परिवार को हम ऐसे समझ सकते हैं कि ये साधारण या वास्तविक संख्याओं के ही काल्पनिक प्रतिबिंब है। जैसे आप कह सकते हैं कि सभी वास्तविक संख्याओं का आधार 1 है, क्योंकि एक–एक को जोड़ कर या गुणा–भाग करके सभी वास्तविक संख्याओं को प्राप्त किया जा सकता है। ठीक वैसे ही सभी अधिकल्पित संख्याओं को मूलभूत इकाई $\sqrt{-1}$ से बनाया जा सकता है। ( इस इकाई को संकेत **i** से दर्शाया जाता है।) हम आसानी से देख सकते हैं कि $\sqrt{-9} = \sqrt{9}\times\sqrt{-1} = 3i$, $\sqrt{-7}=\sqrt{7}\times\sqrt{-1} = 2.646......i.$, आदि। अर्थात् प्रत्येक साधारण वास्तविक संख्या के प्रतिबिंब के रूप में एक अधिकल्पित संख्या होती है। वास्तविक एवं अधिकल्पित संख्याओं को एक ही पद में मिलाया भी जा सकता है, जैसे $7+\sqrt{-15} = 7 + i\sqrt{15}$, जैसे कि सबसे पहले कार्दान ने किया था। ऐसे मिले–जुले रूप को प्रायः "सम्मिश्र संख्या (complex number)" के नाम से जाना जाता है।

गणित के संसार में टपक पड़ने के बाद अधिकल्पित संख्याएँ दो शताब्दियों से अधिक समय तक रहस्य और अविश्वास के पर्दे से ढकी रहीं, परतु अतंतः दो शौकिया गणितज्ञों ने इनको एक ज्यामितीय अर्थ दे दिया। ये थे नार्वे के सर्वेक्षणकर्ता वैसल, और पेरिस के एक मुंशी रॉबर्ट आर्गंद। उनकी व्याख्या के अनुसार एक सम्मिश्र संख्या, उदाहरण के लिए $3 + 4i$, को चित्र 10ख की तरह निरूपित किया जा सकता है, जहाँ संख्या 3 क्षैतिज (पड़ी) दूरी दर्शाती है, और 4 ऊर्ध्वाधर (खड़ी) दूरी।

सचमुच, सभी वास्तविक संख्याओं को हम क्षैतिज (x) अक्ष पर आने वाले बिंदुओं के रूप में दर्शा सकते हैं। ध्यान दीजिए कि इनमें धनात्मक संख्याएँ मूलबिंदु (0) के दाहिनी ओर पड़ेंगी, जबकि ऋणात्मक संख्याएँ बायीं ओर। इसी प्रकार सभी शुद्धतः अधिकल्पित संख्याओं को ऊर्ध्वाधर (y) अक्ष के बिंदुओं के रूप में दर्शाते हैं। जब हम किसी वास्तविक संख्या (जैसे 3) को अधिकल्पित इकाई i से गुणा करते हैं तो हमें शुद्धतः अधिकल्पित संख्या (3i) प्राप्त होती है। संख्या 3 को क्षैतिज अक्ष (x-axis) पर एक बिंदु के रूप में दिखाया जाता है (चित्र 10क), पर i से गुणा करने के बाद 3i प्राप्त होता है जिसको कि ऊर्ध्वाधर अक्ष (y-axis) पर ही दिखाना पड़ेगा। अतः **ज्यामितीय दृष्टि से किसी संख्या को i से गुणा करना उसके अनुरूप बिंदु को घड़ी की उलटी (वामावर्त) दिशा में एक समकोण घुमा देने के समान है (चित्र 10 क)।**

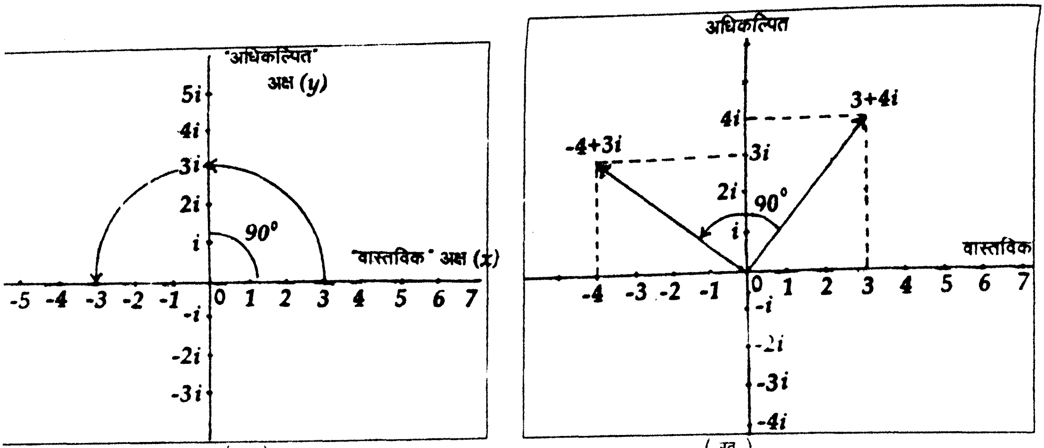


( क ) ( ख )

चित्र 10 : वास्तविक, अधिकल्पित और सम्मिश्र संख्याओं के ज्यामितीय रूप

अब यदि हम 3i को एक बार फिर i से गुणा कर दें, तो 3i वाले बिंदु को हमें $90^0$ और घुमाना पड़ेगा, जिससे वह बिंदु वापिस x अक्ष पर आ जायेगा, परंतु अब यह ऋण वाली तरफ़ होगा। अतः

$3i \times i = 3i^2 = -3$; या $i^2 = -1$

इस प्रकार यदि हमें यह कहना हो कि "दो बार बायीं ओर समकोण से घूमने पर आप का मुँह उलटी दिशा में हो जायेगा", तो हम इसे ऐसे कह सकते हैं कि "i का वर्ग –1 के बराबर है" (और यह बात अधिक आसानी से समझ में आयेगी)।* निश्चय ही सम्मिश्र (मिली–जुली) संख्याओं पर भी यही नियम लागू होता है। जैसे, 3+4i को i से गुणा करने पर हम पाते हैं :

$(3 + 4i)\, i = 3i + 4i^2 = 3i - 4 = -4 + 3i$

सचमुच चित्र 10 ख में आप देख सकते हैं कि -4 + 3i का जो बिंदु है, वह 3 + 4i वाले बिंदु को मूलबिंदु के गिर्द घड़ी की उलटी दिशा में $90^0$ घुमा देने पर प्राप्त होता है। अब (-i) से गुणा करने का अर्थ क्या है ? यदि हम (-4 + 3i) को ही (-i) से गुणा करके देखें तो :

$(-4 + 3i)(-i) = 4i - 3i^2 = 4i + 3 = 3 + 4i,$

अर्थात् -i से गुणा करने का अर्थ है बिंदु को घड़ी वाली दिशा में (दक्षिणावर्त) एक समकोण घुमा देना।

क्या अब भी अधिकल्पित संख्याएँ आपको रहस्य के पर्दे से ढकी हुई प्रतीत होती हैं ? चलिए, इन संख्याओं का व्यावहारिक प्रयोग करते हुए एक मज़ेदार समस्या को हल करें। तब शायद आप इस पर्दे को भेद कर देख पायेंगे।

एक युवा घुमक्कड़ को अपने परदादा के काग़ज़ों में एक चर्म–पत्र मिला जिस पर एक गुप्त ख़ज़ाने का पता दर्ज था। उस पर लिखे निर्देश इस प्रकार थे :

"जहाज़ में चढ़कर इतने डिग्री दक्षिण अक्षांश और उतने डिग्री पश्चिम देशान्तर प[6]

---

* वैसे भी, क्योंकि i को हम -1 का वर्गमूल मान कर चले हैं, अतः $i^2$ =-1. –अनु०

6 अक्षांश और देशांतर की वास्तविक संख्याएँ उस दस्तावेज़ में तो दी हुई थीं, पर इस पाठ में उन्हें ... गया है, ताकि उस रहस्य का खुलासा न हो जाये।

जहाँ तुम्हें एक निर्जन द्वीप मिलेगा। द्वीप के उत्तरी किनारे पर एक बड़ा–सा घास का मैदान है जो सब ओर से खुला है। वहाँ एक ओक वृक्ष और एक अकेला चीड़ वृक्ष है।[7] इन्हीं के आसपास तुम्हें एक पुराना फाँसी का तख़्ता भी दिखाई देगा, जिस पर हम एक समय ग़द्दारों को फाँसी दिया करते थे। अब तुम फाँसी के तख़्ते से ओक तक चलो और क़दम गिनते जाओ। ओक तक पहुँच कर एक समकोण बनाते हुए **दाहिनी ओर** मुड़ो और उतने ही क़दम चल कर भूमि में एक खूँटा गाड़ दो। अब फिर फाँसी के तख़्ते पर लौट आओ और वहाँ से क़दम गिनते हुए चीड़ तक चलो। चीड़ तक पहुँच कर समकोण पर **बायें** मुड़ो और उतने ही क़दम गिन कर चलो, और वहाँ भी एक खूँटा भूमि में गाड़ दो। अब दोनों खूँटों के मध्य में खोदो; वहीं पर ख़ज़ाना मिलेगा।"

निर्देश बिल्कुल स्पष्ट और निश्चित थे; इसलिए हमारे जवान ने एक जहाज़ तय किया और दक्षिणी समुद्र की ओर चल पड़ा। द्वीप तो उसे मिल गया, और वह मैदान, ओक और चीड़ भी, परंतु यह देख कर उसे बहुत निराशा हुई कि फाँसी का तख़्ता ग़ायब था। दिशा–निर्देश लिखे जाने के ज़माने से बहुत समय बीत चुका था ; आँधी–पानी और धूप के कारण वह तख़्ता गल–सड़ कर मिट्टी में मिल गया था ; यहाँ तक कि तख़्ते की जगह का भी कोई निशान शेष नहीं था।

हमारे पराक्रमी जवान को बड़ी निराशा हुई। फिर क्रोध के उफ़ान में वह पूरे मैदान में जहाँ–तहाँ खोदने लगा। पर उसका परिश्रम व्यर्थ ही था – द्वीप इतना बड़ा जो था ! सो बेचारा खाली हाथ लौट आया। और वह ख़ज़ाना शायद अब भी वहीं है।

कहानी दर्दनाक है, पर हमें इससे भी अधिक दुःख इस बात का है कि ख़ज़ाना खोजना वास्तव में कठिन नहीं था – यदि उस जवान को थोड़ा–सा गणित आता होता, ख़ास तौर पर अधिकल्पित संख्याओं का प्रयोग। आइए, हम उसकी जगह ख़ज़ाने की खोज कर देखें, हालाँकि इतनी देर हो चुकी है कि उस बेचारे का तो अब कोई भला नहीं होगा।

उस द्वीप को सम्मिश्र संख्याओं का समतल समझिए। दोनों पेड़ों के आधारों को जोड़ने वाली रेखा को वास्तविक संख्याओं वाली (x) अक्ष समझिए। दूसरी अक्ष (अधिकल्पित) को दोनों वृक्षों के मध्य बिंदु से, पहली रेखा के साथ समकोण बनाते हुए खींचिए। दोनों वृक्षों के बीच आधी दूरी को यदि लंबाई की इकाई मानें, तो कह सकते हैं कि ओक वास्तविक अक्ष पर बिंदु (-1) पर स्थित है, और चीड़ (+1) पर। हम नहीं जानते कि फाँसी का तख़्ता कहाँ था। सो चलिए, इसकी स्थिति को हम सांकेतिक रूप से ग्रीक अक्षर $\Upsilon$ (गामा) कहें (जो कि दीखने में भी फाँसी के तख़्ते जैसा ही है)। अब क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि वह तख़्ता दोनों में से किसी एक अक्ष पर ही रहा हो, इसलिए $\Upsilon$ को सम्मिश्र संख्या ही मानना पड़ेगा :

$\Upsilon = a + bi$, जहाँ a और b का अर्थ है तख़्ते की दोनों अक्षों से दूरियाँ (चित्र 11)।

अब हम कुछ सरल गणनाएँ करें : बस, हमें अधिकल्पित वाली गुणा के बारे में ऊपर बताये नियमों को याद रखना है। यदि तख़्ता $\Upsilon$ पर है और ओक -1 पर, तो तख़्ते से ओक तक अंतर होगा $(-1) - \Upsilon = -(1+\Upsilon)$ (इसमें दूरी तथा दिशा दोनों शामिल हैं)। इसी प्रकार तख़्ते से चीड़ तक अंतर है : $1 - \Upsilon$। निर्देश के अनुसार पहले हमें ओक तक आना है, जिसके स्थान को संख्या (-1) से दर्शाते

[7] उन वृक्षों के नाम भी बदल दिये गये हैं; कारण वही है। ज़ाहिर है कि किसी गर्म इलाके के ख़ज़ानी द्वीप पर दूसरी ही किस्मों के पेड़ होंगे।

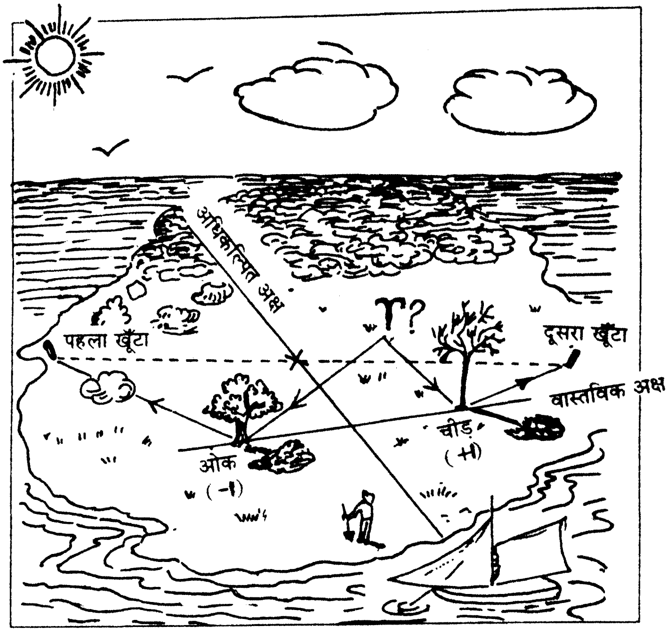


चित्र 11 : अधिकल्पित संख्याओं की मदद से ख़ज़ाने की खोज

हैं। यहाँ से पहले खूँटे के अंतर को प्राप्त करने के लिए तख़्ते से ओक के अंतर, - (1+ Υ), को दाहिनी ओर (दक्षिणावर्त) घुमाना होगा, अर्थात् उपर्लिखित नियम के अनुसार (-i) से गुणा करना होगा। इसी प्रकार दूसरे खूँटे का स्थान मालूम करने के लिए पहले चीड़ (+1) तक जाना होगा और फिर अंतर i (1-Υ) तय करना होगा। अतः हमें वे दो स्थान प्राप्त हो जायेंगे जहाँ दो खूँटे गाड़ने हैं :

पहला खूँटा : (-1) + (-i) (-1-Υ)

दूसरा खूँटा : 1+ i(1-Υ)

अब ख़ज़ाना इन दोनों खूँटों के बीचोंबीच स्थित है; अतः इन दोनों सम्मिश्र संख्याओं का मध्यमान (योग का आधा) ज्ञात करना है। ऐसा करने पर हम पाते हैं :

$$1/2\,[-1 + (-i)(-1-\Upsilon) + 1 + i\,(1-\Upsilon)] = 1/2\,[-1 + i + i\Upsilon + 1 + i - i\Upsilon]$$

$$= 1/2\,[2i] = i$$

तो देखिए, फाँसी के तख़्ते की अज्ञात स्थिति, जिसे Υ द्वारा चिह्नित किया गया था, हमारी गणनाओं में कहीं पर कट गयी। यानी वह तख़्ता चाहे जहाँ भी रहा हो उससे कोई मतलब नहीं ; ख़ज़ाना तो बिंदु i पर स्थित है। अतः यदि हमारा पराक्रमी जवान यह ज़रा–सा सरल ग... पाता, तो उसे पूरे द्वीप को खोदने की आवश्यकता न पड़ती, बल्कि वह चित्र 11 में द्वारा द... बिंदु पर ख़ज़ाने को खोजता, और वहाँ उसे ख़ज़ाना मिल भी जाता।

यदि आपको अब भी विश्वास नहीं है कि ख़ज़ाने को पाने के लिए फाँसी के तख़्ते क... जानना बिल्कुल अनावश्यक है, तो काग़ज़ के एक पन्ने पर दोनों वृक्षों की स्थिति के निश... दीजिए, और तख़्ते के लिए कई अलग–अलग स्थितियाँ मान कर चर्म–पत्र में दिये निर्देशों के

चलिए। आपको हर बार ख़ज़ाना उसी बिंदु पर मिलेगा, जो कि सम्मिश्र समतल पर संख्या i द्वारा दर्शाया गया है!

ख़ैर, यह तो रही कहानी की बात। परंतु संख्या -1 के अधिकल्पित वर्गमूल का उपयोग करके सचमुच कई छिपे हुए ख़ज़ाने पाये गये हैं। एक ख़ज़ाना है यह चौंकाने वाली खोज कि हमारे साधारण तीन–आयामी आकाश और समय को मिलाकर एक ही चार–आयामी चित्र में दर्शाया जा सकता है, जो कि चार–आयामी ज्यामिति के नियमों से नियमित होगा। परंतु इस अन्वेषण पर हम आगे वाले एक अध्याय में लौटकर आयेंगे, जहाँ हम अल्बर्ट आइंस्टाइन के विचारों और उनके आपेक्षिकता के सिद्धांत की चर्चा करेंगे।

# द्वितीय खण्ड

# आकाश, समय और आइंस्टाइन

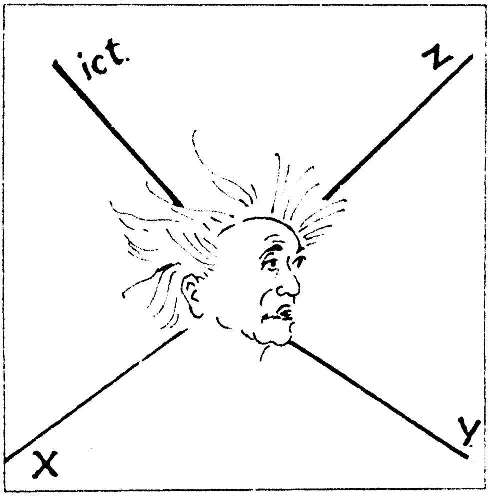

## तीन

# आकाश के अजीब गुण

### 1. आयाम और निर्देशांक

यूँ तो हम सब जानते है कि आकाश क्या है*, परंतु यदि हमें कहा जाये कि इसकी सही–सही शब्दों में परिभाषा दो, तो शायद हम कुछ असमंजस में पड़ जायेंगे। शायद हम कहें कि आकाश **बस वही** है, जो हमारे आसपास है और जिसमें हम "आगे ही नहीं पीछे भी, दायें ही नहीं बायें भी, ऊपर ही नहीं नीचे भी" चल–फिर सकते हैं। इससे हमारे आकाश का एक बहुत बुनियादी गुण प्रकट होता है : इसमें तीन स्वतंत्र, परस्पर अभिलंब (समकोण पर) दिशाएँ हैं। अतः जिस आकाश में हम रहते हैं, वह तीन दिशाओं वाला या तीन–आयामी (three-dimensional) है।** आकाश में किसी भी स्थान की स्थिति को बताने के लिए किसी एक मूलबिंदु (origin) से इन तीन दिशाओं में उस स्थान की दूरियाँ बतानी होंगी। जैसे, यदि हम किसी अनजान शहर में हों और अपने होटल के काउंटर पर पूछें कि फ़लाँ कार्यालय तक कैसे पहुँचें, तो वहाँ बैठा बाबू ऐसा कह सकता है, "आप पाँच ब्लॉक दक्षिण दिशा में चलें, फिर दाहिने मुड़ कर दो ब्लॉक चलें, और वहाँ जो भवन मिलेगा उसमें सातवीं मंज़िल पर चढ़ जायें।" ये जो तीन संख्याएँ या दूरियाँ बतायी गयीं (5,2,7), इन्हें तीन निर्देशांक (co-ordinates) कहते हैं। यहाँ ये निर्देशांक दर्शा रहे हैं कि होटल में स्थित मूलबिंदु से हमारा गंतव्य तीन विभिन्न दिशाओं में कितना–कितना दूर है।

स्पष्ट है कि किसी दूसरे मूलबिंदु से भी उसी स्थान तक पहुँचने के लिए निर्देशांक दिये जा सकते हैं। यही नहीं, किन्हीं अन्य तीन स्वतंत्र दिशाओं (जैसे दक्षिण–पूर्व, उत्तर–पूर्व और ऊपर) को भी चुना जा सकता है। इसके लिए निर्देशांकों के दूसरे समूह का उपयोग करना होगा। एक सरल गणितीय क्रिया द्वारा हम नये निर्देशांकों का पुराने वालों के साथ संबंध बता सकते हैं, बशर्ते कि हम जानते हों कि पुरानी पद्धति में नये मूलबिंदु के निर्देशांक क्या हैं। इस क्रिया को "निर्देशांकों का रूपांतरण" कहते हैं। यहाँ बता दिया जाये कि यह बिल्कुल भी ज़रूरी नहीं है कि तीनों निर्देशांक दूरियों को ही व्यक्त करें; ये कोण भी दर्शा सकते हैं। सचमुच, कुछ मामलों में तो कोण वाले निर्देशांकों के उपयोग में ही सबसे अधिक सुविधा रहती है।

अब जैसे न्यूयार्क शहर का उदाहरण लें। इस शहर में किसी भी मकान का पता बताने के लिए **समकोणीय** निर्देशांकों वाली पद्धति सबसे अधिक सहज होगी, क्योंकि यहाँ उत्तर–दक्षिण सड़कें और पूर्व–पश्चिम वीथियाँ बनी हैं। परंतु मॉस्को में कोई पता बताना हो तो **ध्रुवीय** निर्देशांकों में बताना ही अधिक सुविधाजनक रहेगा (चित्र 12)।+ यह पुराना शहर क्रेमलिन के केन्द्रीय किले के इर्द–गिर्द

---

* यहाँ आकाश (space) का अर्थ "आसमान" से नहीं, अपितु "स्थान" से है जो सर्वत्र व्याप्त है। –अनु०

** आम बोलचाल में मुख्य दिशाएँ छः कहलाती हैं– पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे। परंतु पश्चिम तो पूर्व का ही उल्टा है, जैसे "5 किलोमीटर पश्चिम" को गणित में "-5किलोमीटर पूर्व" कह सकते हैं। इसी प्रकार दक्षिण और नीचे की दिशाओं को भी क्रमशः उत्तर और ऊपर में शामिल किया जा सकता है। अतः परस्पर स्वतंत्र दिशाओं की संख्या तीन ही है। –अनु०

+ ध्रुवीय निर्देशांक–पद्धति (polar co-ordinate system) वह होती है जिसमें एक ध्रुव (मूलबिंदु) होता है और एक मूल दिशा होती है, जैसे पूर्व। धरती पर अन्य किसी भी बिंदु की स्थिति बताने के लिए ध्रुव से उस बिंदु की दूरी बतानी होगी, और बिंदु की दिशा तथा मूल दिशा के बीच का कोण बताना होगा। भूतल से ऊपर के बिंदुओं के लिए तीसरा निर्देशांक (ऊँचाई) भी बताना होगा। –अनु०

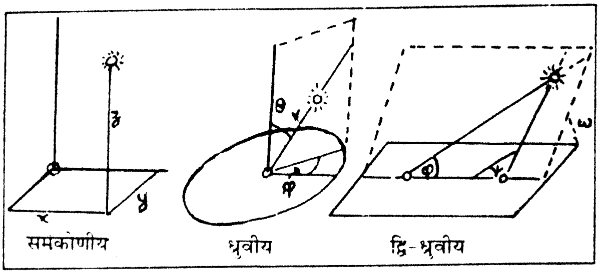


चित्र 12 : तीन प्रकार के निर्देशांक

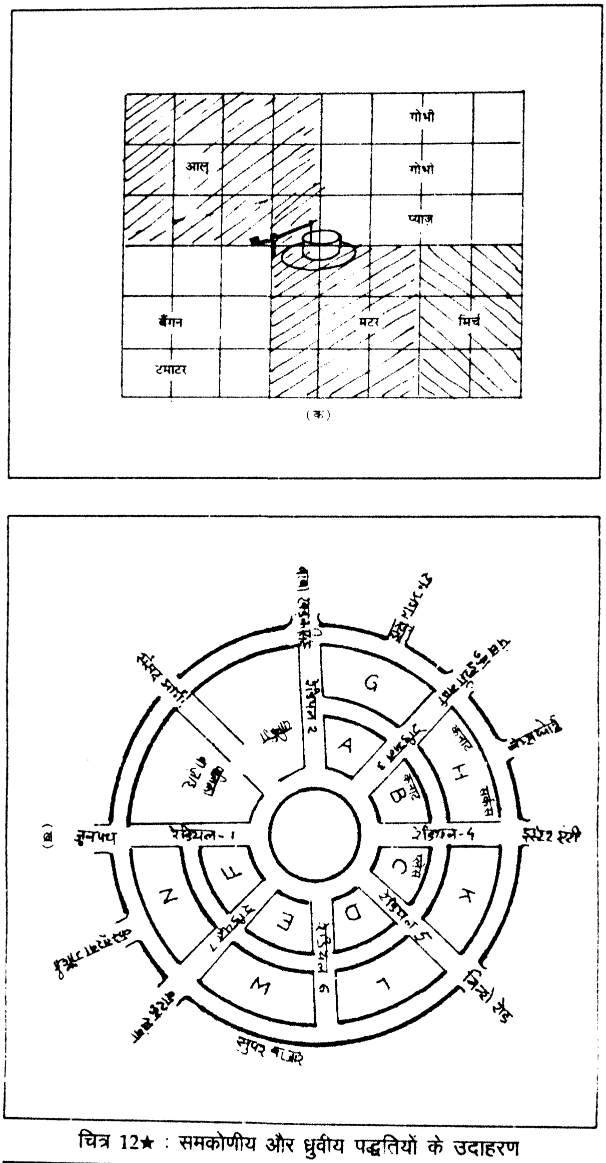


चित्र 12★ : समकोणीय और ध्रुवीय पद्धतियों के उदाहरण

बढ़ता गया है, जिसमें केन्द्र से त्रिज्याकार बाहर जाती हुई गलियाँ हैं और कई वृत्ताकार सड़कें हैं, जिन सबका केन्द्र क्रेमलिन है। उदाहरणतया, किसी घर का पता क्रेमलिन की दीवार से "उत्तर–पश्चिम दिशा में बीस ब्लॉक दूर" कह कर बताया जा सकता है।

समकोणीय पद्धति का एक अन्य अच्छा उदाहरण होगा खेत में किसी प्लाट की स्थिति बताना, यदि खेत में उत्तर–दक्षिण और पूर्व–पश्चिम मेंड़ें बनी हों। ध्रुवीय पद्धति का अच्छा उदाहरण है नयी दिल्ली में कनॉट प्लेस व कनॉट सर्कस, जहाँ की दूकानों की स्थिति को केन्द्र से दूरी और दिशा के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है (चित्र 12★)।++

चित्र 12 व 12★ के उदाहरणों में दिखाया गया है कि कैसे आकाश में किसी बिंदु की स्थिति को अलग–अलग प्रकार से तीन निर्देशांकों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, जिनमें से कुछ दूरियाँ हैं और कुछ कोण। पर हम कोई भी पद्धति हमें प्रत्येक में **तीन ही** संख्याओं की ज़रूरत क्योंकि हम तीन–आयामी का व्यवहार कर रहे हैं।

तीन–आयामी आ धारणा हमारे मन–मस्ति

++ भारतीय पाठकों की सुविधा के लिए इस अनुच्छेद में मूल पाठ से अलग उदाहरण दिये गये हैं। –अनु०

इतनी मज़बूती से बैठ गयी है कि हमारे लिए तीन से अधिक आयामों वाले महा–आकाशों की कल्पना करना ही कठिन हो जाता है। (जी हाँ, हम बाद में देखेंगे कि ऐसे आकाश भी होते हैं।) परंतु तीन से कम आयाम वाले उप–आकाश की कल्पना करना तो आसान है। कोई समतल, किसी गोले की सतह (जैसे हमारी पृथ्वी की सतह), या सच पूछिए तो कोई भी अन्य सतह, दो–आयामी उपाकाश है, क्योंकि इस सतह पर किसी भी बिंदु की स्थिति हमेशा दो संख्याओं द्वारा बतायी जा सकती है। इसी प्रकार कोई भी रेखा (सरल या वक्र) एक–आयामी उपाकाश है, और एक बिंदु तो शून्य आयाम वाला उपाकाश है, क्योंकि बिंदु के भीतर अलग–अलग स्थितियों का कोई प्रश्न ही नहीं है। ख़ैर छोड़िए, भला बिंदुओं की किसे चिन्ता है!

हम रेखाओं और सतहों को तो "बाहर से" देख सकते हैं, परंतु तीन–आयामी आकाश को बाहर से नहीं देख सकते, क्योंकि हम स्वयं उसका एक भाग हैं। हम रेखाओं और सतहों के ज्यामितीय गुणों को भले ही आसानी से समझ लें, परंतु तीन–आयामी आकाश के उसी प्रकार के गुणों को समझना उससे बहुत कठिन है, क्योंकि हम स्वयं तीन–आयामी प्राणी हैं। यही कारण है कि आपको वक्र रेखा या वक्र सतह का अर्थ समझने में तो कोई कठिनाई नहीं, पर यदि कोई कहे कि तीन–आयामी आकाश भी वक्र (टेढ़ा) हो सकता है, तो आप चकरा जायेंगे!

फिर भी, थोड़ा–सा अभ्यास और थोड़ी सी "वक्रता" के अर्थ की समझ – बस, इतना होने से वक्र तीन–आयामी आकाश आपको काफ़ी सरल लगने लगेगा। यहाँ तक कि अगले अध्याय के अंत तक (हमें आशा है) आप एक ऐसी चीज़ के बारे में भी मज़े से बात करने लगेंगे जो पहली दृष्टि में बड़ी दुरूह धारणा लगती है – वक्र, चार–आयामी आकाश। पर उसकी चर्चा करने से पहले आइए, हम साधारण तीन–आयामी आकाश, दो–आयामी सतहों और एक–आयामी रेखाओं संबंधी कुछ तथ्यों के साथ ही थोड़ी–सी दिमाग़ी कसरत कर लें।

## 2. बिना माप की ज्यामिति

स्कूल के दिनों में जो रेखागणित या ज्यामिति आपने पढ़ी, अर्थात् आकाश की माप का विज्ञान[1], उसे ज़रा याद करें। आपको याद आयेगा कि ज्यामिति का अधिकतर मुद्दा बहुत सारे प्रमेय (theorems) हैं जो विभिन्न दूरियों और कोणों के संबंध दर्शाते हैं। उदाहरणतया, पाइथागोरस के प्रसिद्ध प्रमेय का संबंध समकोण त्रिभुज की तीन भुजाओं की लंबाइयों से है। परंतु सच तो यह है कि आकाश के बहुतेरे मूलभूत गुण ऐसे हैं कि उनका दूरियों और कोणों की माप से ज़रा भी संबंध नहीं है। ऐसे मामलों से संबंधित ज्यामिति की शाखा को **स्थिति का विश्लेषण** (analysis situs) या **स्थिति-विज्ञान** (topology)[2] नाम से जाना जाता है, और यह गणित के सबसे अधिक विचारोत्तेजक और कठिन पक्षों में से एक है।

स्थिति–विज्ञान की समस्याएँ किस तरह की होती हैं, इसका एक सरल उदाहरण देखने के लिए आइए, एक बंद ज्यामितीय सतह की कल्पना करें, जैसे किसी गोले की सतह, जिस पर रेखाएँ

---

[1] ज्यामिति, यह नाम दो संस्कृत शब्दों से बना है – ज्या (भूमि) और मिति (मापना)। इसी प्रकार अंग्रेज़ी का शब्द geometry बना है दो ग्रीक पदों से – geo यानी भूमि और metry यानी मापना। ऐसा प्रतीत होता है कि जब इस शब्द की रचना की गयी, उस समय प्राचीन यूनानी लोगों की इस विषय में रुचि अधिकतर भू–संपत्ति को लेकर थी।

[2] ये अंग्रेज़ी शब्द क्रमशः लैटिन व ग्रीक भाषाओं से आये हैं जिनका अर्थ है स्थितियों का अध्ययन।

खींच कर इसे कई क्षेत्रों में बाँट दिया गया हो। ऐसी रचना करने के लिए हम गोले की सतह पर मन–मर्ज़ी से चाहे कितने भी बिंदु डाल देंगे और फिर उन्हें ऐसी रेखाओं के द्वारा एक–दूसरे के साथ मिला देंगे जो परस्पर काटती न हों (चित्र 13)। अब इस चित्र में कई बिंदु हैं, कई क्षेत्र हैं, और साथ–साथ लगने वाले क्षेत्रों के बीच कई सीमा–रेखाएँ हैं। क्या इन तीनों की संख्याएँ परस्पर स्वतंत्र हैं, या उनके बीच कोई संबंध है? क्या–क्या संबंध हो सकते हैं?

सबसे पहले तो यह स्पष्ट है कि गोले के बदले यदि हमने खरबूजे जैसा कोई दबा हुआ गोलाभ या खीरे जैसी लंबी–सी वस्तु ली होती तो भी बिंदु, क्षेत्र व रेखाएँ ठीक उतनी–उतनी संख्या में बनाये जा सकते थे जितनी कि पूर्ण गोले पर। सचमुच, यदि हम किसी रबर के गुब्बारे को फुला कर उस पर ऐसा चित्र बनायें, तो फिर चाहे हम उस गुब्बारे को विकृत करें, दबा दें, फैला लें – बस, उसे काटने या फाड़ने को छोड़कर कुछ भी कर सकते हैं – तो उससे बनने वाली किसी भी बंद सतह पर हमारा ऊपर कहा प्रश्न ठीक उसी प्रकार लागू होगा और उसके उत्तर में भी रत्ती–भर अंतर नहीं आयेगा। ज्यामिति के साधारण संबंधों की अपेक्षा इस स्थिति में कैसा ज़बरदस्त भेद है! ऐसे सभी साधारण संबंध (जैसे कि ज्यामितीय टुकड़ों की लंबाई–चौड़ाई, सतहों के क्षेत्रफल, आयतन आदि के बीच के संबंध) पूरी तरह गड्ड–मड्ड हो जायेंगे यदि किसी घन को खींच कर समांतर षट्फलक+ बना दें, या गोले को दबा कर रोटी में बदल दें।

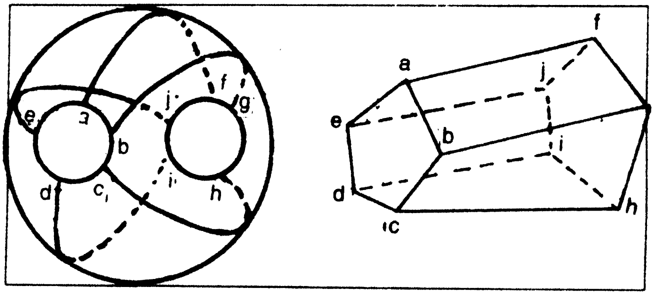


चित्र 13 : क्षेत्रों में बँटे हुए गोले को बहुफलक में रूपांतरित करना

कई क्षेत्रों में बँटे हुए हमारे गोले के साथ एक कारीगरी तो हम यह कर सकते हैं कि उसके हर क्षेत्र को चपटा (सपाट) कर दें जिससे वह गोला एक **बहुफलक** (polyhedron)** बन जायेगा। विभिन्न क्षेत्रों की सीमा–रेखाएँ अब बहुफलक के किनारे बन जायेंगे++, और गोले पर जितने भी बिंदु थे वे सब इसके शीर्ष (कोने) हो जायेंगे। गोले पर के बिंदुओं, रेखाओं और क्षेत्रों की जो समस्या हमने उठायी थी, उसके भाव को ज़रा भी बदले बिना नये रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है : मन–मर्ज़ी किस्म के बहुफलक के **कोनों, किनारों,** और **फलकों** की संख्याओं के बीच क्या संबंध है, या ये तीनों संख्याएँ बिल्कुल स्वतंत्र हैं?

---

+ समांतर षट्फलक/(parallelopiped) घन से मिलती–जुलती आकृति है जिसके कोण समकोण के बराब: होते। –अनु०

** बहुफलक वह ठोस आकृति है जिसके कई सपाट फलक (सतहें) होते हैं, जैसे घन के 6 फलक होते हैं। –अ

++ मूल सीमा–रेखाएँ यदि टेढ़ी–मेढ़ी हों तो उन्हें थोड़ा सीधा करना पड़ेगा, परंतु इससे हमारे मूल प्रश्न में कोई अ आयेगा। –अनु०

चित्र 14 में हम पाँच **नियमित बहुफलक** दिखा रहे हैं (अर्थात् वे बहुफलक, जिनमें सभी फलकों के किनारों और कोनों की संख्याएँ बराबर होती हैं और हर शीर्ष पर दिखाई देने वाली संपूर्ण ज्यामिति एक–सी होती है)। साथ ही मन–मर्ज़ी से बनाया हुआ एक अनियमित बहुफलक ("गड़बड़झाला") भी दिखाया है।

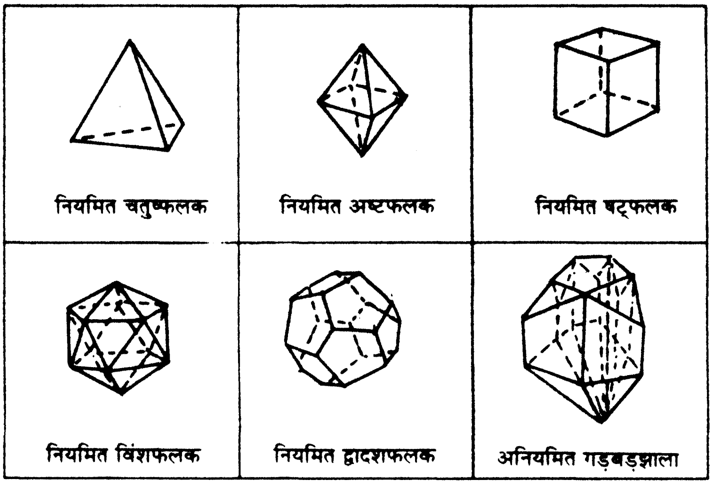


चित्र 14 : पाँच नियमित बहुफलक (इससे अधिक संभव नहीं हैं) और एक गड़बड़झाला

इन ज्यामितीय पिंडों में से प्रत्येक के कोनों, किनारों और फलकों की संख्याएँ हम गिन सकते हैं। इन तीनों संख्याओं के बीच यदि कोई संबंध है तो क्या है? सीधे–सीधे गिन कर हम नीचे की तालिका बना सकते हैं।

| नाम | श (शीर्षों/कोनों की संख्या) | क (किनारों की संख्या) | फ (फलकों की संख्या) | श+फ | क+2 |
|---|---|---|---|---|---|
| चतुष्फलक (पिरामिड) | 4 | 6 | 4 | 8 | 8 |
| षट्फलक (घन) | 8 | 12 | 6 | 14 | 14 |
| अष्टफलक | 6 | 12 | 8 | 14 | 14 |
| विंशफलक (20 फलक) | 12 | 30 | 20 | 32 | 32 |
| द्वादशफलक (पंचभुज वाला) | 20 | 30 | 12 | 32 | 32 |
| "गड़बड़झाला" | 20 | 42 | 24 | 44 | 44 |

पहली नज़र में तो लगता है कि पहले तीन स्तंभों में दी गयी संख्याओं (**श**,**क**, और **फ** के बीच कोई भी निश्चित अंतर्संबंध नहीं है, परंतु थोड़ा मनन करने पर आप पायेंगे कि **श** और **फ** का जोड़

हमेशा **क** से दो अधिक रहता है। अतः हम इस गणितीय संबंध को लिख सकते हैं :

**श** + **फ** = **क** + 2

क्या यह संबंध केवल चित्र 14 में दिखाये पांच–छः विशेष बहुफलकों पर ही लागू होता है, या यह किसी भी बहुफलक के लिए सत्य है? यदि आप चित्र 14 में दिखाये गये बहुफलकों के अतिरिक्त कई अन्य बनायें और उनके शीर्षों, किनारों तथा फलकों को गिनें, तो आप पायेंगे कि प्रत्येक मामले में यह संबंध लागू होता है। अतः ऐसा लगता है कि **श** + **फ** = **क** + 2, यह ख़ास स्थिति–विज्ञान का एक सामान्य गणितीय प्रमेय है : इसमें आने वाले पद किनारों की लंबाइयों या फलकों के क्षेत्रफलों की माप पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि सिर्फ़ इसमें शामिल ज्यामितीय इकाइयों (शीर्षों, किनारों, फलकों) की **संख्या** पर ही निर्भर हैं।

किसी बहुफलक के कोनों, किनारों और फलकों की संख्याओं के बीच उपर्युक्त संबंध पर सबसे पहले सत्रहवीं सदी के फ़्रांसीसी गणितज्ञ रेने डेकार्टे का ध्यान गया, और फिर बाद में एक अन्य गणितीय प्रतिभा, लियोनार्द आयलर, ने इसका कड़ा प्रमाण पेश किया। इसलिए इसे आयलर के नाम पर जाना जाता है।

लीजिए, यहाँ आयलर के प्रमेय का पूरा प्रमाण प्रस्तुत है, जैसा आर0 कूराँ और एच0 रॉबिन्स की पुस्तक **व्हाट इज़ मैथेमैटिक्स?**[3] में दिया गया है। इसे हम सिर्फ़ यह दिखाने के लिए यहाँ दे रहे हैं कि इस प्रकार की चीज़ें कैसी विधि से की जाती हैं।

"आयलर के प्रमेय को प्रमाणित करने के लिए ज़रा कल्पना करें कि हमारा बहुफलक खोखला है, और उसकी सतह पतले रबर की बनी है (चित्र 15क)। यदि हम इस खोखले बहुफलक का एक

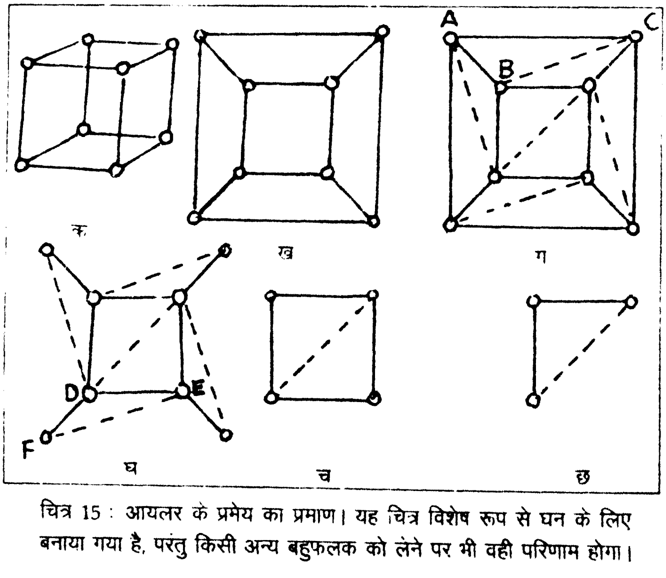


चित्र 15 : आयलर के प्रमेय का प्रमाण। यह चित्र विशेष रूप से घन के लिए बनाया गया है, परंतु किसी अन्य बहुफलक को लेने पर भी वही परिणाम होगा।

---

3 लेखक डॉ० कूराँ और डॉ० रॉबिन्स तथा ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस के प्रति आभारी हैं कि उन्होंने आगामी अनु- उतार कर छापने की अनुमति दी। यहाँ दिये गये कुछ उदाहरणों को पढ़ कर जो पाठक स्थिति–विज्ञान की में रुचि लेने लगें, उन्हें इस विषय की अधिक विस्तृत सामग्री उक्त पुस्तक में मिलेगी।

फलक काट कर निकाल लें, तो हम शेष रही सतह को फैला कर इतना विकृत कर सकते हैं (चित्र 15ख) कि यह बिल्कुल सपाट, समतल हो जाये। हाँ, यह ठीक है कि इस प्रक्रिया में फलकों के क्षेत्रफल और किनारों के बीच के कोण बदल जायेंगे। परंतु नयी सपाट आकृति में अब भी उतनी ही संख्या में कोने और किनारे हैं जितने कि मूल बहुफलक में थे, जबकि बहुभुजों (फलकों) की संख्या मूल बहुफलक से एक कम होगी, क्योंकि एक फलक निकाल लिया गया था। अब हम प्रमाणित करेंगे कि इस समतल तंत्र के लिए **श** – **क** + **फ** = 1, अर्थात् यदि बाहर निकाले गये फलक को भी गिन लिया जाये तो मूल बहुफलक के लिए **श** – **क** + **फ** = 2

"पहले हम इस समतल चित्र का 'त्रिभुजीकरण' इस प्रकार करते हैं : चित्र का जो भी बहुभुज पहले से त्रिभुज न हो उसमें हम एक विकर्ण (diagonal) खींचते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि **क** (किनारे) और फ (फलक) दोनों की संख्या एक–एक बढ़ जाती है, जिससे **श** – **क** + **फ** का मान पहले के जैसा ही रहता है। अब हम इसी प्रकार विकर्ण खींचते चले जाते हैं, बिंदु को बिंदु से मिलाते हुए, जब तक कि पूरे चित्र में केवल त्रिभुज न रह जायें। अंत में तो ऐसा होगा ही (चित्र 15ग)। याद रहे, त्रिभुजों से बने इस चित्र में **श** – **क** + **फ** का वही मान है जो त्रिभुजों में बाँटने से पहले था।

"त्रिभुजों में से कुछ तो ऐसे हैं जिनके किनारे चित्र की सीमा पर हैं। इनमें से कुछ, जैसे ABC, का केवल एक किनारा सीमा पर है, जबकि कुछ दूसरे त्रिभुजों के दो–दो किनारे भी सीमा पर हो सकते हैं। अब यदि हम सीमावर्ती किसी त्रिभुज को हटा देते हैं तो कुछ कोने, किनारे व फलक कम हो जाते हैं (चित्र 15घ)। उदाहरणतया, त्रिभुज ABC को हटाने से किनारा AC और फलक हट जाते हैं, जबकि कोने A,B,C, और दो किनारे AB और BC वहीं रह जाते हैं। त्रिभुज DEF को हटाने से फलक भी हट जाता है, दो किनारे DF और EF भी, और कोना F भी।

"ABC की किस्म के त्रिभुज को हटाने से **क** और **फ** दोनों एक–एक कम हो जाते हैं, जबकि **श** (शीर्ष) में कोई अंतर नहीं पड़ता, अर्थात् **श**–**क** + **फ** पहले जैसा ही रहता है। DEF की किस्म का त्रिभुज हटाने से **श** एक कम हो जाता है, **क** दो कम और **फ** एक कम, अतः **श–क+फ** फिर भी बराबर ही रहता है। अब यदि हम इन क्रियाओं को सोच–समझ कर उचित क्रम से करते चलें तो हम सीमा से लगते सब त्रिभुजों को हटा सकते हैं (और हर बार हटाने पर सीमा भी बदल जाती है), जब तक कि केवल एक त्रिभुज न रह जाये। इस एक त्रिभुज के तीन किनारे, तीन कोने और एक फलक हैं। अतः इस सरल चित्र के लिए **श–क+फ** = 3-3+1 = 1. पर हम देख चुके हैं कि त्रिभुज हटाये जाने से **श–क+फ** में कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः प्रारंभिक समतल चित्र में भी **श–क+फ** अवश्य 1 के बराबर ही होगा और यही बात एक फलक कटे हुए बहुफलक पर भी लागू होगी। अतः पूरे बहुफलक के लिए **श-क+फ** = 2. इस प्रकार आयलर के प्रमेय का प्रमाण पूरा हुआ।"

आयलर के सूत्र का एक रोचक पहलू यह है कि इससे प्रमाणित किया जा सकता है कि **केवल पाँच प्रकार के ही नियमित बहुफलक हो सकते हैं – वही जो चित्र 14 में दिखाये गये हैं।**

परंतु ऊपर दिये गये तर्क क्या सचमुच सभी बहुफलकों पर लागू होते हैं या सिर्फ़ किसी एक श्रेणी पर? आयलर के प्रमेय के प्रमाण तक पहुँचने में जो तर्क दिये गये, उनमें कहीं कोई छिपी हुई शर्त या पूर्व–मान्यता तो नहीं थी? यदि आप सावधानीपूर्वक पढ़ेंगे तो शायद आपके ध्यान में आ जाये कि चित्र 14 में, और आयलर के प्रमेय के प्रमाण में भी, हमने सभी संभव किस्मों के नहीं, बल्कि कुछ

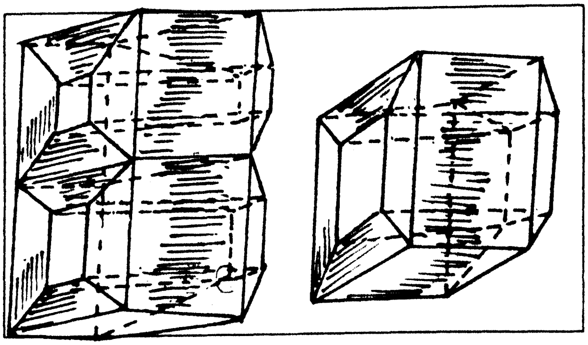

चित्र 16 : साधारण घन के दो प्रतिद्वन्द्वी, जिनमें एक या दो छेद हैं। इनके फलक पूरे आयताकार तो नहीं हैं,परंतु जैसा हम जान गये हैं, स्थिति–विज्ञान में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

सीमित किस्मों के ही बहुफलक लिये हैं। इस सीमा या शर्त को यूँ बताया जा सकता है कि हमारे किसी बहुफलक के आर–पार कोई छिद्र नहीं है। "छिद्र" कहने का अर्थ वैसा नहीं है जैसे गुब्बारे में कोई छेद कर दिया जाये, बल्कि जैसे कंगन या साइकिल की रबर–ट्यूब के घेरे के मध्य में खाली स्थान या छेद होता है।

चित्र 16 पर एक नज़र डालने से स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। यहाँ हम दो अलग ज्यामितीय पिंड देखते हैं, जिनमें से प्रत्येक बहुफलक कहलाने का उतना ही अधिकारी है जितने कि चित्र 14 में दिखाये गये पिंड। क्या आयलर का प्रमेय हमारे नये बहुफलकों पर भी लागू होता है? आइए, देखें। पहले (दाहिने) उदाहरण में हम गिन कर पाते हैं 16 शीर्ष, 32 किनारे और 16 फलक; अतः **श**+**फ** = 32, जबकि **क**+2 = 34। बायें पिंड में (जिसमें दो छिद्र हैं) हम पाते हैं 28 शीर्ष, 60 किनारे और 30 फलक, जिससे **श**+**फ** = 58, जबकि **क**+2 = 62 : फिर ग़लत निकला!

ऐसा क्यों है? और क्या कारण है कि आयलर के प्रमेय का ऊपर दिया सार्विक प्रमाण इस मामले में ग़लत हो गया?

निस्संदेह, कठिनाई यह है कि पहले हमने जितने बहुफलकों पर ध्यान दिया, उनको विकृत करके फुटबॉल ब्लैडर या गुब्बारे की तरह बनाया जा सकता है, जबकि ये नयी किस्म के खोखले बहुफलक साइकिल की ट्यूब से मिलते हैं। ऊपर दिया गया गणितीय प्रमाण इन दूसरी तरह के बहुफलकों पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रमाण लागू करने के लिए आवश्यक क्रियाएँ हम इन पर नहीं कर सकते। अब जैसे, प्रमाण में कहा गया है कि "खोखले बहुफलक का एक फलक काट कर निकालो, और शेष सतह को फैला कर, विकृत करके, समतल सतह बना दो।" यदि आप एक फुटबॉल का ब्लैडर लें, और कैंची से उसकी सतह का एक भाग काट कर निकाल दें, तो ऐसी पूरी करने में आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। परंतु साइकिल की ट्यूब के साथ आप ऐसा चाहें तो सफल नहीं हो सकते, चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें। यदि चित्र 16 को एक देखने से आपको इस बात का विश्वास न हो जाये तो एक पुरानी ट्यूब ले लीजिए और करके

फिर भी, आप ऐसा न सोचें कि अधिक जटिल प्रकार के बहुफलकों के लिए **श**, **फ** के बीच कोई संबंध ही नहीं है ; **संबंध तो ज़रूर है, मगर अलग है**। कंगन से मिलते–जुल

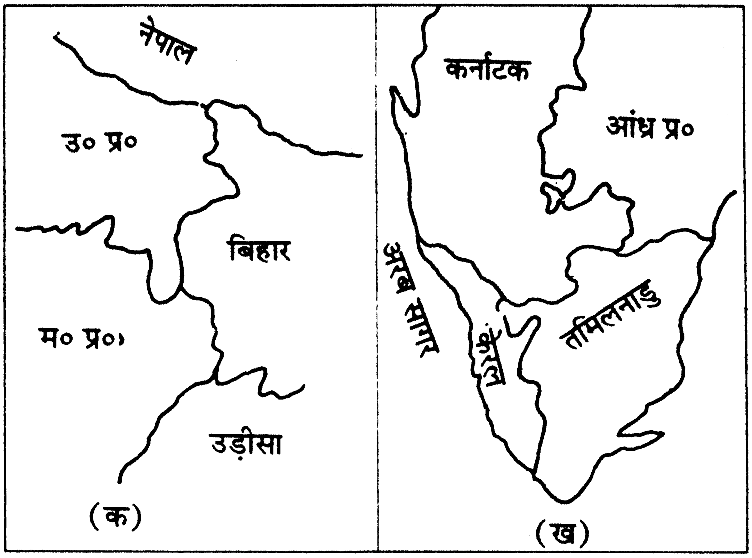


चित्र 17 : (क) कम से कम तीन रंग चाहिएँ। (ख) कम से कम चार रंग चाहिएँ।

वैज्ञानिक भाषा में कहना हो तो "टोरस" से मिलते–जुलते, बहुफलकों के लिए संबंध है : **श** + **फ** = **क**, जबकि "8" के आकार के लिए, जहाँ दो छिद्र हों, वह संबंध है : **श** + **फ** = **क** - 2. सामान्य तौर पर, **श** + **फ** = **क** + 2 - 2N, जहाँ N बहुफलक के आर–पार जाने वाले छेदों की संख्या है।

ठेठ स्थिति–विज्ञान की एक अन्य विशिष्ट समस्या है जो आयलर के प्रमेय के साथ निकटता से जुड़ी हुई है। इसे कहते हैं "चार रंगों की समस्या"। मान लीजिए, हमारे पास एक गोले की सतह है जो कई अलग–अलग क्षेत्रों में विभक्त है, जैसे विभिन्न देशों और समुद्रों में बँटी पृथ्वी की सतह। हमें इन क्षेत्रों में इस प्रकार रंग भरने हैं कि साथ लगने वाले कोई भी दो क्षेत्र (वे क्षेत्र जिनकी कोई साँझी सीमा–रेखा हो) एक ही रंग में न रँगे जायें। प्रश्न यह है कि इस कार्य को करने में कम से कम कितने अलग–अलग रंगों का प्रयोग करना होगा ? इतना तो स्पष्ट है कि दो रंग हर जगह पर्याप्त नहीं होंगे, क्योंकि यदि तीन क्षेत्रों की सीमाएँ एक बिंदु पर मिलती हैं तो तीनों में अलग–अलग रंग ही भरने होंगे। उदाहरण के लिए, भारत के नक्शे में उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश की सीमाएँ एक बिंदु पर मिल जाती हैं (चित्र 17क)।** ऐसा उदाहरण खोजना भी कठिन नहीं है जहाँ चार रंग आवश्यक हों, जैसे केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और समुद्र (चित्र 17ख)।[4]

परंतु आप चाहे जितना प्रयास कर लें, आपको कोई ऐसा नक्शा नहीं मिलेगा, और न आप कल्पना से ही ग्लोब पर या सपाट कागज़ पर[5] ऐसा कोई नक्शा बना पायेंगे, जिसके लिए **चार से अधिक** रंग अनिवार्य हों। अनुभव कहता है कि कितना ही जटिल नक्शा क्यों न बना लिया जाये,

---

**भारतीय पाठकों की सुविधा के लिए हमने मूल पुस्तक में उदाहरण के तौर पर दिये नक्शों को बदल दिया है। –अनु०

[4] यदि समुद्र कई भागों में बँटा होता तो शायद तीन रंगों से भी काम चल सकता था।

[5] सपाट नक्शा हो या ग्लोब पर नक्शा, रंग भरने की दृष्टि से दोनों एक–से हैं, क्योंकि एक बार जब हम ग्लोब पर इस समस्या को हल कर लेंगे (रंग भर लेंगे) तो उसके बाद किसी भी एक रंग वाले क्षेत्र में से छोटा–सा भाग हटा कर बाकी सतह को "खोल कर" और खींच–तान कर सपाट बना सकते हैं। यह भी स्थिति–विज्ञान का एक प्रतिनिधि रूपांतरण होगा।

उसको चार रंगों से हम सदा इस प्रकार रंग पायेंगे कि दो राज्यों की सीमा के बारे में कहीं भी कोई भ्रम पैदा न हो।

अच्छा, यदि यह बात सही है तो इसका कोई गणितीय प्रमाण होना चाहिए। परंतु पीढ़ी–दर–पीढ़ी गणितज्ञों के प्रयासों के बावजूद ऐसा प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। यह एक ऐसा गणितीय कथन है जिसकी सत्यता में व्यावहारिक रूप से कहीं कोई संदेह नहीं है, परंतु जिसे कोई प्रमाणित नहीं कर पाया है।* अधिक से अधिक इतनी बात का ही प्रमाण मिल पाया है कि पाँच रंग पर्याप्त हैं। इसे प्रमाणित करने के लिए आयलर के संबंध को इन संख्याओं पर लागू किया गया है – देशों की संख्या, उनकी सीमाओं की संख्या, और उन बिंदुओं की संख्या जिन पर तीन या चार या अधिक देश मिलते हैं।

यहाँ हम ऊपर कहे प्रमाण को प्रस्तुत नहीं करेंगे, क्योंकि वह काफ़ी जटिल है और उससे हम अपने मुख्य विषय से भटक जायेंगे। परंतु पाठक चाहें तो स्थिति–विज्ञान की विभिन्न पुस्तकों में इसे पढ़ें और इसके बारे में सोचते हुए एक शाम मज़े से बितायें (और शायद रात भर जागे भी रहें)। पाठक या तो यह प्रमाणित करने का प्रयास कर सकते हैं कि पाँच ही नहीं, चार रंग भी सभी प्रकार के नक्शों को रँगने के लिए पर्याप्त हैं या, यदि उन्हें इस कथन की सत्यता में शंका हो, तो ऐसा नक्शा दिखायें जिसमें चार रंग पर्याप्त न हों। इन दोनों में से एक भी प्रयास में सफल हो जाने वाले का नाम शुद्ध गणित के इतिहास में कई शताब्दियों तक जगमगाता रहेगा।

विडंबना देखिए कि रंग भरने की इस समस्या को समतल या ग्लोब पर सुलझाना ऐसी टेढ़ी खीर बना हुआ है, जबकि डोनट (एक छिद्र वाली) या प्रैत्सल (दो छिद्र वाली) जैसी अधिक जटिल आकृतियों पर यह अपेक्षाकृत सरलता से सुलझायी जा सकती है। उदाहरण के लिए, इस बात का पक्का प्रमाण दिया जा चुका है कि डोनट की सतह को चाहे जिस ढंग से विभाजित कर लिया जाये, सात अलग–अलग रंग लेकर उसे हमेशा इस प्रकार रँगा जा सकता है कि दो साथ–साथ लगे हुए भागों में कभी समान रंग न हो। साथ ही ऐसे उदाहरण भी दिये जा चुके हैं जिनमें वास्तव में सात रंग अनिवार्य हैं।

एक और सिरदर्द मोल लेना हो तो आप एक टायर की ट्यूब में हवा भर कर फुला लें और सात रंगों की रंगदानी ले लें,, और ट्यूब की सतह पर इस प्रकार रंग भरने की कोशिश करें कि किसी भी एक रंग का क्षेत्र छः अलग–अलग रंगों वाले क्षेत्रों को छुए। यह कर लेने पर आप कह सकेंगे कि आप "सचमुच डोनट का आगा–पीछा समझते हैं"।

**3. आकाश को अंदर-बाहर उलटा करना**

अभी तक हमने केवल सतहों अर्थात् दो–आयामी उप–आकाशों के ही स्थिति–विज्ञान ... गुणों की चर्चा की है। परंतु यह स्पष्ट है कि जिस तीन–आयामी आकाश में हम स्वयं रहते हैं, ... संबंध में भी ऐसे ही प्रश्न पूछे जा सकते हैं। जैसे, नक्शे में रंग भरने वाले प्रश्न को व्यापक ब... तीन–आयामी रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है : हमें विभिन्न पदार्थों से बने विभिन्न आ... के टुकड़ों से आकाश में रचना बनानी है। शर्त यह है कि एक ही पदार्थ के बने दो टुकड़े कि...

* यूँ कंप्यूटर पर हर तरह के नक्शे उत्पादित करके इसे एक तरह से प्रमाणित किया जा चुका है, परंतु इसका ... पद्धति से अभी (1995) तक कोई प्रमाण नहीं खोजा जा सका है। –अनु०

सतह पर एक–दूसरे को न छुएँ। अब कोई भी मनचाहा डिज़ाइन बनाने के लिए कम से कम कितने प्रकार के पदार्थ आवश्यक हैं?

नक्शा तो समतल होता है, पर कुछ सतहें वक्र और अपने आप पर बंद भी होती हैं, जैसे गोला या टोरस। ऐसी वक्र सतह पर रंग भरने की समस्या का तीन–आयामी समरूप क्या होगा? क्या किसी अजीबोग़रीब तीन–आयामी आकाश की हम कल्पना कर सकते हैं जिसका हमारे साधारण आकाश के साथ वही संबंध होगा, जो गोले या टोरस की सतह का साधारण समतल सतह के साथ होता है ? पहली दृष्टि में तो लगता है कि इस प्रश्न का कोई अर्थ ही नहीं है। बात यह है कि दो आयामों में तो हम कई आकृतियों की विभिन्न सतहों (गोला, टोरस, समतल आदि) की सोच सकते हैं, परंतु जब तीन आयामों की बात आती है तो हमें लगता है कि शायद एक ही प्रकार का आकाश संभव है, यानी वही चिर–परिचित प्राकृतिक आकाश जिसमें हम रहते हैं। परंतु यह मत बहुत भ्रमपूर्ण है। यदि हम अपनी कल्पना को ज़रा जगायें तो हम अवश्य ऐसे वक्र तीन–आयामी आकाशों की सोच पायेंगे जो कि आम (यूक्लिडीय) ज्यामिति की पाठ्य–पुस्तकों में पाये जाने वाले आकाशों से कुछ अलग हैं।

ऐसे टेढ़े–मेढ़े आकाशों की कल्पना करने में मुख्य कठिनाई यही है कि हम स्वयं तीन–आयामी जंतु हैं, अतः हमें ऐसे आकाश को "भीतर रहते हुए" ही देखना पड़ता है, जबकि सब प्रकार की टेढ़ी–मेढ़ी दो–आयामी सतहों को हम "बाहर से" देख सकते हैं। परंतु नीचे दी गई छोटी–सी दिमाग़ी कसरत के बाद हम इन विभिन्न आकाशों के साथ आसानी से व्यवहार कर पायेंगे।

आइए, पहले हम एक ऐसे तीन–आयामी आकाश का (कल्पना में) निर्माण करें जिसमें गोले की सतह के समरूप गुण होंगे। ध्यान रहे, गोले की सतह का मुख्य गुण यह है कि **इसका क्षेत्रफल अनंत न होने के बावजूद इसकी कोई सीमा नहीं है,** क्योंकि यह धीरे–धीरे मुड़ती हुई अपने ही ऊपर आकर बंद हो जाती है। हमारी कल्पना का तीन–आयामी आकाश भी इसी प्रकार मुड़ता हुआ स्वयं अपने आप से मिल जायेगा, बंद हो जायेगा : अतः उसका आयतन अनंत न होते हुए भी उसकी सीमा–रूपी बाहरी सतह कहीं नहीं होगी।

इसे बनाने से पहले ज़रा यह देख लें कि समतल सतह से शुरू करके गोलाकार सतह कैसे बना सकते हैं। हम दो बराबर वृत्त लेते हैं और दोनों के किनारे आपस में सी देते हैं, जैसे किसी गोल तकिये का गिलाफ़ बनाना हो। अब इस दोहरे वृत्त के बीच के स्थान को फुला कर और कुछ खींच–तान कर गोला बनाया जा सकता है। ध्यान दीजिए कि यह दोहरा वृत्त बिना फुलाये अपने आप में भी ऐसी सतह है जिसकी कोई सीमा नहीं है।*

इसके समरूप तीन–आयामी आकाश बनाने के लिए दो गोलों की कल्पना कीजिए। प्रत्येक की गोलाकार सतह है, जैसे सेब की छिलके वाली सतह होती है। अब कल्पना कीजिए कि दोनों गोलाकार वस्तुओं को "एक–दूसरे में अंतर्युक्त" कर दिया जाये, इस प्रकार कि दोनों की बाहरी सतहें आपस में जुड़ी रहें। नहीं जी, हम यह तो नहीं कह रहे कि आप सचमुच दो सेब लेकर उन्हें ज़बरदस्ती एक–दूसरे के अंदर घुसाने और दोनों के छिलकों को आपस में चिपका देने का प्रयास करें। ऐसे में तो दोनों सेबों का भुरता बन जायेगा, पर वे एक–दूसरे में घुसेंगे नहीं।

बल्कि हम यूँ सोचें, मानो एक सेब को कीड़ों ने कुतर–कुतर कर उसके अंदर सुरंगों का एक जटिल–सा जाल बिछा दिया। अब इसमें दो प्रकार के कीड़ों की कल्पना करनी होगी, जैसे एक

* यह अनुच्छेद मूल पाठ में नहीं है। –अनु०

चित्र 18 : दो प्रकार के कीड़ों द्वारा खाया हुआ दुहरा सेब

सफ़ेद, एक काला। दोनों एक–दूसरे से डरते हैं; अतः सेब के अंदर कहीं भी सफ़ेद कीड़े का रास्ता काले के रास्ते से मिलता नहीं, यद्यपि सेब की सतह पर दोनों की सुरंगों के मुँह अगल–बगल ही हैं। इस प्रकार दो तरह के कीड़ों द्वारा खाया हुआ सेब कुछ–कुछ चित्र 18 जैसा दिखाई देगा, जिसमें सुरंगों के दो अलग–अलग जाल बिछे हैं। प्रत्येक जाल की सुरंगें आपस में गुत्थम–गुत्था होती हुई सेब के भीतर के पूरे स्थान को घेर रही हैं। अब ज़रा कल्पना कीजिए कि सभी सुरंगें महीन से महीन होती जायें, उनकी संख्या और लंबाई बढ़ती जाये, तो अंत में आप देखेंगे कि सेब के भीतर दो स्वतंत्र आकाश एक साथ मौजूद हैं जो आपस में केवल सेब की सतह पर ही मिलते हैं। सेब की सतह का हर बिंदु दोनों प्रकार की सुरंगों का मिलन–बिंदु है। अब यदि दोनों प्रकार की सुरंगों के अगल–बगल स्थित मुँहों को आपस में जोड़ कर बंद कर दिया जाये तो इस दुहरे आकाश की कोई बाहरी सीमा नहीं रहेगी!

यदि आपको कीड़े पसंद न हों तो आप कल्पना करिए कि पिछले वर्ष न्यूयार्क के विश्व मेले में जैसा भीमकाय गोला बना था, वैसे गोले के अंदर रास्तों और सीढ़ियों का दुहरा जाल बिछा है। दोनों में से प्रत्येक जाल गोले के पूरे आयतन में फैला हुआ है, परंतु गोले के भीतर कहीं भी दोनों जाल एक–दूसरे से मिलते नहीं हैं। अब यदि एक जाल के एक बिंदु से दूसरे जाल के किसी बिंदु तक जाना हो, और दोनों बिंदु वास्तव में अगल–बगल ही हों, तो भी आपको पहले गोले की सतह पर आना होगा, जहाँ दोनों जाल मिलते हैं, और फिर वहाँ से दूसरे जाल में घुस कर सारा रास्ता वापिस तय करना होगा। यदि आपका कोई मित्र आपके बिल्कुल निकट लेकिन दूसरे जाल में खड़ा हो, तो उससे हाथ मिलाने के लिए आपको काफ़ी रास्ता गोल–मोल चलना पड़ेगा। हम ऐसा कह सकते हैं कि ये दो गोले हैं जो एक ही स्थान में स्थित होते हुए भी एक–दूसरे से अलग हैं। यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि सतह पर जो दोनों प्रकार की सीढ़ियों के मिलने का बिंदु है, वह गोले के भीतर के किसी भी बिंदु से अलग प्रकृति का नहीं है, क्योंकि पूरे तंत्र को आप अपनी इच्छानुसार मोड़ सकते हैं, विकृत कर सकते हैं, जिससे सतह पर का मिलन–बिंदु भीतर चला जाये और भीतर वाले कुछ बिंदु सतह पर आ जायें। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात इस मॉडल के बारे में यह है कि किसी भी रास्ते की लंबाई भले ही सीमित है, परंतु कहीं पर भी रास्ते का अंत नहीं है। आप रास्तों और सीढ़ियों पर बराबर आ... जा सकते हैं, कोई दीवार या बाड़ आपका रास्ता नहीं रोकेगी, और यदि आप सीधे चलते ह... तो निश्चय ही उसी बिंदु पर पहुँच जायेंगे जहाँ से आपने यात्रा शुरू की थी।

अब यदि कोई इस ढाँचे को **बाहर से** देख रहा हो तो वह सहज ही कहेगा कि ... भूल–भुलैया में चलते–चलते वापिस उसी शुरू वाले बिंदु पर इसलिए पहुँच गये क्योंकि आप... कुछ घुमावदार हैं। पर जो कोई गोले के **भीतर** होंगे, और "बाहर" नाम की दुनिया को जा...

न होंगे, उन्हें तो यही लगेगा कि इस स्थान (आकाश) की **कोई निश्चित सीमाएँ नहीं हैं यद्यपि यह आकार में अनंत नहीं है।** जैसा कि हम आगे आने वाले एक अध्याय में देखेंगे, ऐसा "तीन आयामों वाला अपने आप में बंद आकाश", जिसकी कोई सीमाएँ मालूम नहीं होतीं, और जो फिर भी अनंत नहीं है, हमारे पूरे ब्रह्मांड के गुणों की चर्चा करने में बहुत उपयोगी पाया गया है। सचमुच, हमारे दूरदर्शक यंत्र दूर से दूर जहाँ देख पाते हैं, वहाँ के प्रेक्षणों से पाया गया है कि इतनी विशाल दूरियों पर आकाश वास्तव में मुड़ने लगता है, और ऐसे निश्चित संकेत मिलते हैं कि यह वापिस मुड़ कर अपने में जा मिलेगा, ठीक उसी प्रकार जैसा हमने अभी कीड़ों द्वारा खाये गये सेब के भीतर के रास्तों के बारे में कहा। परंतु ब्रह्मांड संबंधी उन रोमांचकारी बातों से पहले हमें आकाश के गुणों के बारे में थोड़ा और जानना होगा।

सेब और कीड़ों वाली हमारी चर्चा अभी पूरी नहीं हुई है। इस संदर्भ में अगला प्रश्न है कि क्या कीड़ों द्वारा खाये सेब को एक डोनट+ में बदला जा सकता है? नहीं जी, स्वाद में नहीं। हम तो सिर्फ़ आकृति में इसे डोनट जैसा बनाने की पूछ रहे हैं। यहाँ हमारा विषय पाकशास्त्र नहीं, ज्यामिति है। तो आइए, पीछे की चर्चा के अनुरूप हम एक दुहरा सेब लें। वास्तव में ये "एक–दूसरे के भीतर समाये हुए" दो सेब हैं जो केवल सतह पर "एक–दूसरे से चिपके हुए" हैं। अब मान लीजिए कि एक कीड़े ने दोनों में से एक सेब में कुतर–कुतर कर एक वृत्ताकार रास्ता (कंगन जैसा) बना लिया है (चित्र 19क)। अतः इस रास्ते के अलावा तो हर बिंदु दुहरा बिंदु है, अर्थात दोनों सेबों का भाग है, जबकि इस रास्ते के अंदर केवल एक ही सेब का पदार्थ है, जो कीड़े ने नहीं खाया। हमारे "दूसरे सेब" की एक खुली सतह है जो कि उस रास्ते की भीतरी दीवार है। (बाहरी सतह को "खुली सतह" नहीं कह सकते, क्योंकि वहाँ तो दोनों सेब एक–दूसरे के साथ जुड़े हैं।)

क्या इस कुतरे हुए सेब की आकृति बदल कर इसे डोनट बनाया जा सकता है? इस प्रक्रिया में हम यह तो मान ही रहे हैं कि सेब का पदार्थ पूरी तरह लचीला है, जिससे इसे मनचाहे ढंग से गढ़ा, फैलाया या सिकोड़ा जा सकता है। शर्त केवल इतनी है कि कहीं भी पदार्थ टूटना नहीं चाहिए। इस सेब का ऑपरेशन करने के लिए हम इसे काट भी सकते हैं, बशर्ते कि मनचाहे ढंग से दबाने/फैलाने/उलटने के बाद जहाँ से काटा था, वहीं फिर से चिपका दें।

लीजिए, अब ऑपरेशन शुरू होता है। पहले चरण में दुहरे सेब के छिलकों को अलग–अलग करके दोनों सेबों को अलग कर दीजिए (चित्र 19ख)। दोनों सेबों की सतहों पर हम I और I' निशान लगा देते हैं, ताकि पूरे ऑपरेशन के बाद इन दोनों को पहचान सकें और वापिस चिपका सकें। दूसरा काम, कीड़े द्वारा खाये गये सेब को लेकर इस प्रकार आधा–आधा काटिए कि कीड़े का रास्ता भी कट कर खुल जाये (चित्र 19ग)। इस ऑपरेशन से वृत्ताकार रास्ते वाली "खुली सतह" तो दो भागों में बँट ही गयी, जिससे अंत में हमारे डोनट की बाहरी सतह बनेगी। साथ ही दो कटी हुई समतल सतहें भी बन गयीं जो कि दो–दो भागों में बँटी हैं। रास्ते के बाहर वाले भागों पर II और II' चिह्न लगाये गये हैं और भीतर वाले भागों पर III, III'; इन्हें भी बाद में चिपकाना होगा। अब तीसरे चरण में दोनों आधे सेबों में से प्रत्येक को इस प्रकार दबा कर उलटा करिए कि कीड़े के रास्ते वाली "खुली सतह" फैल कर बाहरी सतह बन जाये। याद रखिए, सेब के पदार्थ को चाहे कितना भी फैलाया या सिकोड़ा जा सकता है। इससे कटी हुई सतहें I, II, III सिकुड़ कर काफ़ी छोटी हो जाती हैं (चित्र 19घ)। साथ ही दूसरे साबुत सेब को दबा कर अंगूर के बराबर छोटे आकार में ला दीजिए। अब चौथे चरण में आप

+ डोनट एक अमेरिकन मिठाई है जिसकी आकृति कंगन जैसी होती है। –अनु०

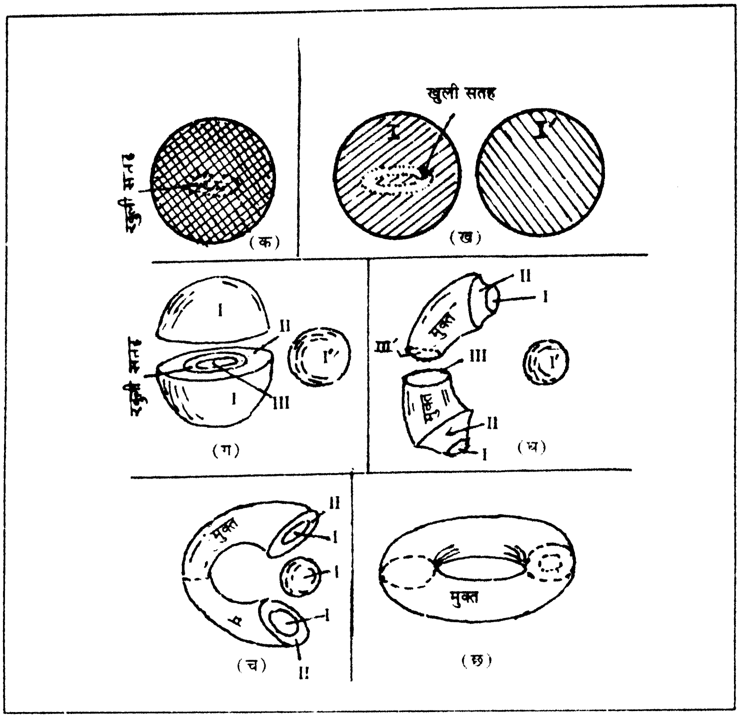


चित्र 19 : कीड़े के खाये हुए दुहरे सेब को बढ़िया डोनट में बदलने का तरीका। जादू नहीं, बस, स्थिति – विज्ञान का कमाल है!

विभिन्न सतहों को वापिस चिपका दीजिए, जहाँ–जहाँ काटा था। पहले सबसे आसान काम, अर्थात् III और III' को चिपका दीजिए, जिससे कि चित्र 19च वाली संडासी जैसी आकृति प्राप्त हो जाये। अब सतह I को I' से और II को II' से चिपकाना है। जिस सेब को दबा कर छोटा किया गया था, उसे चित्र 19च की संडासी के दो छोरों के बीच रख कर दोनों छोरों को पास–पास ले आइए। इससे सेब की सतह I' दोनो अर्द्धगोलाकार सतहों (I) के साथ मिलकर चिपक जायेगी और सतहें II और II' भी एक–दूसरे के ऊपर आकर बंद हो जायेंगी। इस प्रकार बिल्कुल सुंदर, सलोना डोनट प्राप्त हो जायेगा (चित्र 19छ)।*

यह सब करने का प्रयोजन क्या है? बस, इतना ही कि आपको कल्पनात्मक ज्यामिति का एक अभ्यास कराया जाये। वक्र आकाश और अपने ही ऊपर बंद होता हुआ आकाश, इस प्रकार की अजीबो–ग़रीब बातें समझने में यह कसरत आपके काम आयेगी।

यदि आप अपनी कल्पना को और आगे तक खींचना चाहें, तो लीजिए, ऊपर की गर... का एक "व्यावहारिक प्रयोग" हाज़िर है। आपका शरीर भी एक डोनट की तरह है, यद्यपि आ...

* ध्यान दीजिए कि यदि हम दुहरे सेब की बजाय केवल एक ही सेब लेते जिसमें कीड़े ने रास्ता बनाया है, तो ... ऊपर दी गई प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार चलती, सिवाय इसके कि अंत में "संडासी" के छोरों के बीच में र... गोला नहीं होता। अर्थात् हमें एक ऐसा डोनट प्राप्त होता, जिसमें एक गोलाकार स्थान खाली (खोखला) ... डोनटाकार रास्ता बनाए हुए गोले को उलटने से हमें डोनट प्राप्त हुआ जिसमें गोलाकार स्थान खाली है। डोन... की भीतरी सतह डोनट की बाहरी सतह बन गयी और सेब की बाहरी सतह डोनट के भीतर के खोखले की ... बन गयी। –अनु०

ऐसा सोचा नहीं होगा।[+] वास्तव में हर प्राणी अपने विकास के क्रम के शुरुआती चरणों में (भ्रूण की स्थिति में) एक ऐसी अवस्था से गुज़रता है जिसे "गैस्ट्रुला" कहा जाता है। इसमें भ्रूण गोलाकार होता है जिसमें से एक चौड़ा-सा रास्ता आर-पार जाता है। रास्ते की एक ओर से भोजन अंदर जाता है और दूसरी ओर से व्यर्थ पदार्थ बाहर आता है। जब प्राणी का शरीर पूरा विकसित हो चुकता है तो वह रास्ता काफ़ी संकरा और जटिल हो जाता है, पर सिद्धांततः वैसा ही रहता है, अर्थात् ज्यामितीय गुणों की दृष्टि से प्राणी डोनट का डोनट ही रहता है।

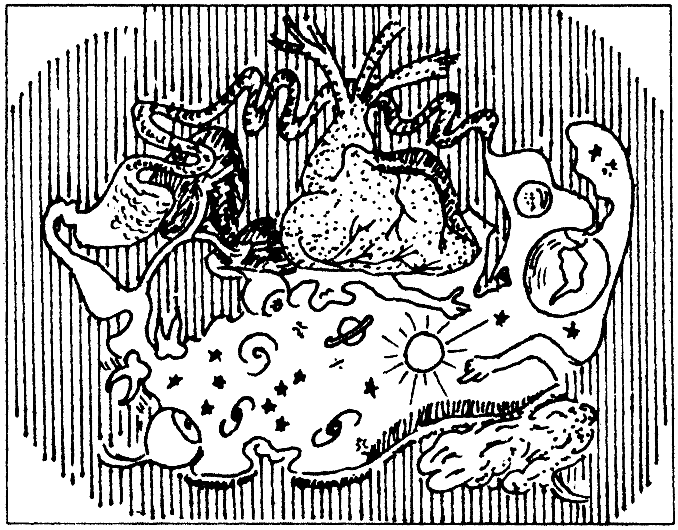

चित्र 20 : उलटा ब्रह्मांड : भीतर का बाहर। यह अतियथार्थवादी रेखाचित्र एक आदमी को पृथ्वी पर चलते हुए तारों की ओर ताकते हुए दिखाता है। इस स्थिति को स्थिति-विज्ञान के अनुसार चित्र 19 में दर्शाये तरीके से उलट दिया गया है। इस प्रकार पृथ्वी, सूर्य और तारे आदमी के शरीर के आर-पार जाती हुई एक अपेक्षाकृत तंग नाली में ठूँस दिये गये हैं, और उनके आसपास आदमी के भीतरी अंग हैं।

हाँ, तो आपका शरीर क्योंकि एक डोनट है, तो क्यों न आप चित्र 19 में दिखाये गये ऑपरेशन का उलटा करें – अर्थात् अपने शरीर को (कल्पना में) वृत्ताकार रास्ते वाले दुहरे गोले में परिवर्तित करने का प्रयास करें। जानते हैं, क्या होगा? आपके शरीर के विभिन्न भाग, अंशतः एक-दूसरे में समाये हुए, "दुहरे सेब का शरीर" बन जायेंगे, जबकि शरीर के बाहर का पूरा ब्रह्मांड, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा और तारों सहित, पिचक कर उसके भीतर के वृत्ताकार रास्ते में रह जायेगा!

ज़रा इसका चित्र बनाने की कोशिश करिए, और यदि आपने बढ़िया बना लिया तो स्वयं सल्वादोर दाली को भी आपकी अतियथार्थवादी चित्रकला का लोहा मानना पड़ेगा (चित्र 20)!

यह प्रकरण कुछ लंबा अवश्य हो गया है, परंतु इसे समाप्त करने से पहले दाहिने हाथ जैसी और बायें हाथ जैसी चीज़ों और आकाश के गुणों से उनके संबंध की चर्चा करना आवश्यक है। इसमें क्या रहस्य छिपा है? शायद इसे सबसे अधिक आसानी से दस्तानों के जोड़े की मदद से बताया जा

---

[+] साधारण व्यक्ति को तो मानव-शरीर कभी भी डोनट की तरह दिखाई नहीं देगा। पर स्थिति-विज्ञानी की बात और है। उसके लिए सिर, भुजाओं और टाँगों का कोई अलग महत्त्व नहीं है। अब रह गया धड़। इसमें मुँह से लेकर भोजन-नली, पेट, आँतों से होता हुआ गुदा तक एक लंबा 'छिद्र' है। डोनट भी एक ऐसा पिंड है जिसके बीच में आर-पार जाने वाला छिद्र होता है। –अनु०

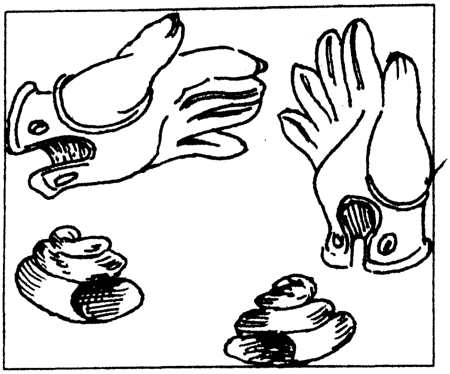

चित्र 21 : दाहिने हाथ और बायें हाथ जैसी वस्तुएँ भले ही बिल्कुल एक–सी लगें फिर भी अलग–अलग ही हैं।

सकता है। यदि आप एक जोड़े के दो दस्तानों की तुलना करें (चित्र 21) तो आपको उनकी प्रत्येक नाप हू–ब–हू एक–सी मिलेगी। फिर भी दोनों में बड़ा भारी अंतर है : आप जानते हैं कि दाहिने हाथ का दस्ताना बायें में नहीं पहना जा सकता और न बायें हाथ का दाहिने में ही। आप चाहे किसी भी प्रकार दस्ताने को घुमा या मरोड़ लें, दाहिना दस्ताना दाहिना ही रहेगा और बायाँ बायाँ ही रहेगा।** इसी प्रकार का दाहिने–बायें का भेद जूतों की बनावट में, भारत और अमरीका की मोटरकारों के स्टियरिंग–तंत्र में (जहाँ कारें सड़क की क्रमशः बायीं व दायीं ओर चलती हैं), गोल्फ़ के डंडे में और अन्य बहुत–सी चीज़ों में पाया जाता है।

दूसरी ओर, पुरुषों की टोपी, टैनिस रैकिट, आदि बहुत–सी चीज़ों में ऐसा भेद नहीं होता। कोई भी इतना मूर्ख नहीं होगा कि किसी दूकान में जाकर एक दर्जन "बायें हाथ जैसे" चाय के प्याले माँगे या पड़ोसी से "बायें हाथ का" पेचकस उधार देने को कहे। इन दोनों प्रकार की चीज़ों की बनावट में क्या अंतर है? यदि आप थोड़ा सोचें तो ध्यान में आयेगा कि टोपी या चाय का प्याला जैसी चीज़ों को एक ऐसी सतह पर काटा जा सकता है जिससे वस्तु दो बिल्कुल समान भागों में बँट जाये। इस सतह को हम सममिति (symmetry) की सतह कहते हैं। दस्तानों या जूतों में इस प्रकार की कोई सममिति की सतह नहीं होती। आप चाहे हज़ार बार प्रयास कर लें, एक दस्ताने को दो सर्वसम (बिल्कुल समान) भागों में नहीं काट सकते। यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसमें कोई भी सममिति की सतह नहीं है, अर्थात् वह असममित है, तो निश्चय ही इसके दो भेद हो सकते हैं – एक दाहिने हाथ जैसा और एक बायें जैसा। यह भेद सिर्फ़ दस्ताने आदि मानव की बनायी चीज़ों में ही नहीं है, बल्कि बहुत बार प्रकृति में भी दिखाई देता है। उदाहरणतया, केंचुओं के दो भेद होते हैं, जो हर तरह से एक समान होते हैं, सिवाय अपना शंखनुमा घर बनाने के तरीके में : एक प्रकार के केंचुए के शंख का घु के अनुरूप होता है तो दूसरे का घड़ी के विपरीत (चित्र 21)। यहाँ तक कि अणुओं (mole भी कई बार दाहिने और बायें जैसे दो रूप होते हैं, उसी प्रकार जैसे कि दाहिने और बा दस्ताने या घड़ी जैसे और घड़ी के विपरीत घुमाव वाले केंचुए के शंख। अणुओं को ऐसे देख जा सकता। हाँ, उनका असममित गुण उनके क्रिस्टलों की आकृति में या उनके कुछ

**यहाँ आपको दस्ताने के किसी भाग को फैलाने या सिकोड़ने की स्वतंत्रता नहीं है। और हाँ, आप इसे उलटा भी एक शर्त है। –अनु०

संबंधी गुणों में दिखाई देता है। उदाहरणतया, चीनी के अणुओं के दो भेद हैं– एक दाहिने हाथ जैसा, एक बायें जैसा। आप मानें या न मानें, चीनी को खाने वाले जीवाणु भी दो प्रकार के होते हैं – एक जीवाणु सिर्फ़ दाहिने वाली चीनी को ही खा सकता है और दूसरा सिर्फ़ बायें वाली को।

जैसा हमने ऊपर कहा, किसी दाहिने हाथ के दस्ताने को बायें में नहीं बदला जा सकता, और यही बात इस प्रकार के सभी (असममित) पदार्थों पर लागू होती है। परंतु क्या यह हर तरह असंभव है? या किसी ऐसे पेंचदार आकाश की कल्पना की जा सकती है जिसमें ऐसा किया जा सके? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हम पहले इसके दो–आयामी समरूप पर विचार करें, क्योंकि दो–आयामी सतह से ऊपर उठ कर हम उसे अपनी तीन–आयामी दृष्टि से देख सकते हैं। मान लीजिए कि एक समतल सतह पर सपाट जंतु रहते हैं। ज़रा चित्र 22 को देखिए, जिसमें सपाट–देश के कुछ वासी उदाहरणार्थ दर्शाये गये हैं। ध्यान दीजिए कि दो–आयामी आकाश के प्राणी तीसरे आयाम में उठ कर

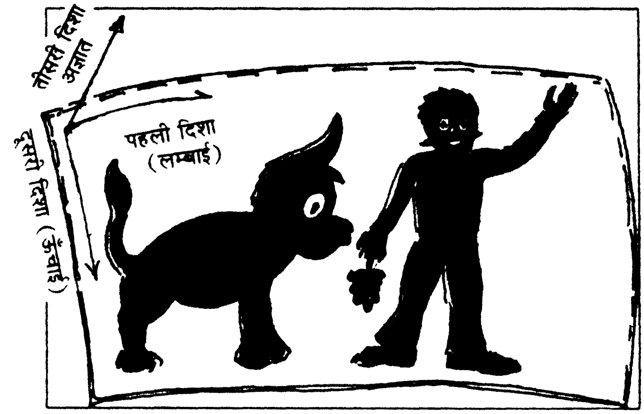


चित्र 22 : दो–आयामी "छाया–जंतुओं" की एक झलक जो एक समतल पर रहते है। इस प्रकार का दो–आयामी जंतु कुछ "व्यावहारिक" नहीं है। आदमी का चेहरा तो है पर पार्श्व नहीं, और वह अपने हाथ में पकड़े अंगूरों को अपने मुँह में नहीं डाल सकता। गधा अंगूरों को तो खा सकता है, पर केवल दाहिनी ओर चल सकता है; यदि बायीं ओर जाना हो तो उलटा चलना होगा। यह गधों के लिए तो कोई अजीब बात नहीं है, पर वैसे अटपटा लगता है।

पलट नहीं सकते। जैसे, चित्र में जो आदमी अंगूर लिये हुए है उसका चेहरा तो पूरा दिखाई देता है, पर पार्श्व दिखाई नहीं दे सकता। अतः इसे हम "चेहरे वाला आदमी" कहेंगे। जानवर का पार्श्व (साइड) ही दिखाई दे रहा है और वह "पार्श्व वाला गधा" कहलायेगा, बल्कि "दाहिनी ओर देखने वाला पार्श्व–गधा"। अब हम एक "बायीं ओर देखने वाला पार्श्व–गधा" भी बना सकते हैं। इस दो–आयामी आकाश में दाहिनी और बायीं ओर देखने वाले गधे भी उतने ही भिन्न हैं जितने हमारे साधारण आकाश में दाहिने और बायें दस्ताने, क्योंकि इन दोनों गधों को उस सतह पर कितना ही चला लीजिए या घुमा लीजिए, वे दोनों एक–दूसरे को पूरी तरह ढक नहीं सकते। दाहिने वाले गधे की नाक पर बायें वाले गधे की नाक और पूँछ पर पूँछ रखने की कोशिश करिए तो आपको दोनों में से एक को उलटा घुमाना होगा। परंतु इस प्रकार घुमाने पर उस बेचारे गधे की टाँगें ऊपर हवा में तैरने लगेंगी, जबकि दूसरे गधे के पाँव ज़मीन पर स्थिर हैं।

पर यदि आपको एक गधे को उस समतल सतह से उठा लेने की अनुमति दी जाती, तो आप उसे उठा कर पलट पर फिर समतल पर रख देते, और वह दूसरे गधे के समरूप हो जाता। इसी तर्ज़ पर हम यह कह सकते हैं कि दाहिने दस्ताने को बायें में बदला जा सकता है यदि उसे हमारे तीन–आयामी आकाश से बाहर "चौथी दिशा में उठाया जाये" और समुचित ढंग से "पलट कर" फिर वापिस रख दिया जाये। पर यदि हमारे वास्तविक आकाश में चौथा आयाम हो ही नहीं, तो ऊपर दिया हुआ तरीका असंभव होगा। क्या कोई अन्य तरीका नहीं है?

इसे खोजने के लिए हम ज़रा दो–आयामी दुनिया में लौट कर देखें, लेकिन चित्र 22 जैसी साधारण समतल सतह पर नहीं, बल्कि तथाकथित "मोबियस की सतह" के गुणों का परीक्षण करें। (मोबियस एक जर्मन गणितज्ञ का नाम है, जिन्होंने एक शताब्दी पूर्व ऐसी सतह का अध्ययन किया।) आप इसे आसानी से बना सकते हैं : साधारण कागज़ की एक लंबी पट्टी लेकर इसके दोनों सिरों को गोंद से जोड़ कर मुद्रिका बना दीजिए, परंतु जोड़ने से पहले एक बार ऐंठ दीजिए। चित्र 23 को

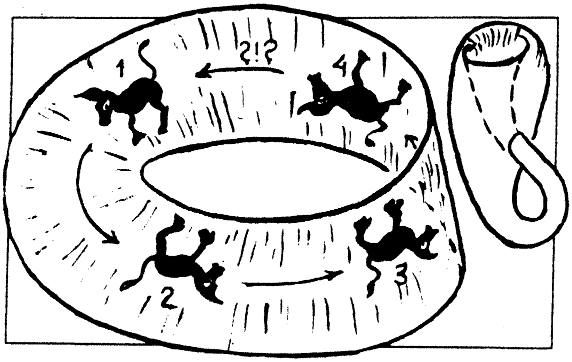


चित्र 23 : मोबियस की सतह और क्लाइन की बोतल

देखने से आप जान जायेंगे कि यह कैसे करना है। ऐसी सतह के कई विचित्र गुण होते हैं। इनमें से एक को आप आसानी से देख सकते हैं : एक कैंची लेकर पट्टी के बीचोंबीच किनारों के समांतर पूरा चक्कर काट दीजिए (जैसा चित्र 23 में तीरों से दर्शाया गया है)। स्वाभाविक ही, आप सोचते होंगे कि इस प्रकार काटने से दो अलग–अलग मुद्रिकाएँ बन जायेंगी। परंतु जब आप करेंगे तो आपका अनुमान ग़लत निकलेगा : दो मुद्रिकाओं की बजाय आपको एक ही मिलेगी, पहली मुद्रिका की अपेक्षा लंबाई में दुगुनी और चौड़ाई में आधी!

आइए, अब हम देखें कि जब हमारा दो–आयामी "छाया–गधा" इस मोबियस–सतह पर च... तो क्या होगा? मान लीजिए, वह चित्र 23 में दिखायी स्थिति 1 से चलना शुरू करता है, जहाँ "बायें पार्श्व वाला" दिखाई देता है। अब वह चलता जाता है, स्थिति 2 और स्थिति 3 से गुज़रता... जैसा कि चित्र में स्पष्ट दिखाई दे रहा है, और अंततः उसी ओर आता दीखता है जहाँ से वह ... था। पर आप हैरान होंगे (और वह भी हैरान है) कि उसकी स्थिति बड़ी अजीब हो गयी है (स्थिति... जिसमें उसकी टाँगें ऊपर हवा में झूल रही हैं। हाँ, वह उसी सतह पर रहते हुए घूम कर अपनी... नीचे तो ला सकता है, परंतु इससे उसका मुँह उलटी ओर हो जायेगा!

संक्षेप में, मोबियस की सतह पर एक चक्कर लगाने से "बायें पार्श्व वाला" गधा "दाहिने ... वाले" में परिवर्तित हो गया है। और ध्यान दीजिए, ऐसा करने के लिए उसे सतह से ऊपर उठा...

तीन–आयामी आकाश में पलटा नहीं गया है बल्कि उसी सतह पर रखा गया है।* अतः हम पाते हैं कि **किसी दाहिने हाथ वाली वस्तु को ऐंठन वाली सतह पर एक बार ऐंठन के गिर्द घुमा कर लाने से उसे बायें हाथ वाली वस्तु में बदला जा सकता है, और बायें हाथ वाली को दाहिने वाली में।** चित्र 23 में दिखायी मोबियस–पट्टी एक अधिक व्यापक सतह का एक भाग है, जिसे क्लाइन बोतल कहते हैं, जिसे चित्र 23 में दाहिनी ओर दिखाया गया है। इस सतह की दो तरफ़ (भीतर–बाहर) नहीं बल्कि एक ही तरफ़ होती है, जो उलट कर स्वयं पर ही बंद हो जाती है, और उसकी कोई पैनी सीमा नहीं होती। यदि दो–आयामी सतह पर ऐसा संभव है तो हमारे तीन–आयामी आकाश में भी ऐसा हो सकना चाहिए, बशर्ते कि यह समुचित ढंग से ऐंठा गया हो। स्वाभाविक ही, तीन–आयामी आकाश में मोबियस वाली ऐंठ की कल्पना करना आसान नहीं है। हम अपने आकाश को बाहर से नहीं देख सकते, जैसा कि हम गधे वाली सतह को देख सकते थे। जब हम चीज़ों के बीच में स्वयं उपस्थित रहते हैं तो उन चीज़ों को स्पष्ट देख पाना हमेशा कठिन होता है। जो भी हो, यह एकदम असंभव तो नहीं है कि खगोलीय आकाश अपने आप पर लौट कर बंद हो, और साथ ही इसमें मोबियस वाली ऐंठ भी हो।

यदि वास्तव में ऐसा ही हो तो ब्रह्मांड का चक्कर लगाने वाले यात्री वापिस आने तक "खब्बू" हो जायेंगे, जिनके सीने में हृदय दाहिनी ओर रहेगा। यही नहीं, दस्ताने और जूते बनाने वालों को यह "सुविधा" रहेगी कि ये सिर्फ़ एक ही प्रकार के दस्ताने और जूते बनायें और उनमें से आधों को ब्रह्मांड का चक्कर लगाने भेज दें, ताकि वे संसार के दूसरे हाथ–पाँव में पहनने के योग्य बन जायें।**

इस विलक्षण ख़्याल के साथ हम आकाशों के अजीब गुणों की चर्चा को विराम देते हैं।

---

* जो "मोबियस पट्टी" आप कागज़ से बनायेंगे, उसकी दो सतहें होंगी। एक बार पूरा चक्कर लगा कर जब गधा वापिस स्थिति 1 में आयेगा तो वह दूसरी सतह पर होगा, और आपको लग सकता है कि लेखक की ऊपर कही बात ठीक नहीं है : बायें पार्श्व वाला गधा दाहिने पार्श्व वाला तो हो गया है, परंतु वह पहले वाली सतह पर नहीं है। यहाँ लेखक कागज़ या दूसरे पदार्थ से बनी पट्टी की बात नहीं कर रहा जिसकी दो सतहें होती हैं। मोबियस–सतह तो एक गणितीय धारणा है : इसमें सिर्फ़ एक सतह है, दो नहीं। –अनु०

** यहाँ भी यदि आप दुहरे आकाश की कल्पना करेंगे तो पायेंगे कि ब्रह्मांड का चक्कर लगाने के बाद जब दाहिने पैर वाला जूता "बायाँ" हो कर आयेगा तो आप उसे बायें पैर में पहन नहीं पायेंगे, बल्कि छू या देख भी नहीं पायेंगे, क्योंकि वह दूसरे आकाश में होगा। यह परिस्थिति वैसी ही होगी जैसी इस अध्याय के शुरू में सीढ़ियों व सुरंगों के दुहरे जाल की थी, जहाँ दो मित्र पास–पास होते हुए भी हाथ नहीं मिला सकते थे। परंतु लेखक ने माना है कि आकाश दुहरा हुए बिना भी उसमें ऊपर बताये गये गुण आ सकते हैं। –अनु०

चार

# चार आयामों वाला संसार

## 1. समय चौथा आयाम है

चौथा आयाम क्या है, यह आम तौर पर रहस्य व शंका के घेरे में रहता है। लंबाई–चौड़ाई–ऊँचाई वाले हम जीव किस बल पर चार–आयामी आकाश की बात कर सकते हैं? हम अपनी सारी तीन–आयामी बुद्धि ख़र्च कर डालें तो भी क्या चार आयामों वाले किसी महा–आकाश की कल्पना करना संभव है? ज़रा सोचिए कि चार–आयामी घन (cube) या गोला (sphere) कैसा दीखेगा? जब हम कहते हैं कि एक विशाल दैत्य की "कल्पना" करिए, जिसकी लंबी खुरदरी पूँछ हो और आग उगलते हुए नथुने, या एक बड़े–से वायुयान की "कल्पना" करिए जिसके पंखों में तरण–कुंड और एक–दो टैनिस के मैदान हों, तो इसका क्या अर्थ है? यही कि यदि ऐसी चीज़ अचानक आपके सामने आ जाती तो वह जैसी दिखाई देती, उसका मन में एक चित्र बनाना। और इस तरह का चित्र आप अपने चिर–परिचित तीन–आयामी आकाश की पृष्ठभूमि लेकर ही बनाते जिसमें स्वयं आपके सहित सारे साधारण पदार्थ स्थित हैं। यदि "कल्पना" शब्द का यही अर्थ हो, तो अपने साधारण तीन–आयामी आकाश की पृष्ठभूमि लेकर उसमें किसी चार–आयामी आकृति की कल्पना करना वैसा ही असंभव है जैसा किसी तीन–आयामी वस्तु को पिचका कर एक समतल में समा लेना। पर हाँ, ज़रा रुकिए। एक अर्थ में तो हम तीन–आयामी वस्तुओं को दबा कर अवश्य समतल में ले जाते हैं : काग़ज़ पर उनका चित्र बना कर। यानी तीन–आयामी वस्तु को दो आयामों में उतारने के काम के लिए हम पिचकाने वाली मशीन (प्रैस) या किसी अन्य प्रकार के बल का प्रयोग नहीं करते, बल्कि ज्यामितीय

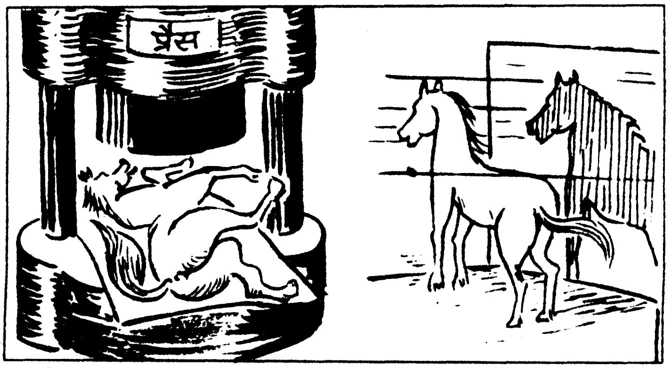


चित्र 24 : तीन–आयामी वस्तु को पिचका कर दो–आयामी सतह बनाने का एक ग़लत तरीका (बायाँ) और सही तरीका (दायाँ)

"प्रक्षेपण" (projection) या छाया बनाने का तरीका अपनाते हैं। चित्र 24 को देख कर आसा समझा जा सकता है कि किसी वस्तु (जैसे घोड़े) को समतल में उतारने के इन दो तरीकों के क्या अंतर है।

इसी तर्ज़ पर अब हम कह सकते हैं कि किसी चार–आयामी आकृति को "पिचका क का पूरा तीन–आयामी आकाश में उतारना भले ही संभव न हो, तो भी तीन–आयामी आकाश में

"प्रक्षेपण" की बात तो की ही जा सकती है। परंतु यह याद रखना ही होगा कि जैसे समतल पर तीन–आयामी पिंडों के प्रक्षेप दो–आयामी या समतल आकृतियाँ ही होती हैं (जैसे गोले का प्रक्षेप वृत्त होगा), ठीक उसी प्रकार साधारण आकाश में चार–आयामी महा–पिंडों के प्रक्षेप भी तीन–आयामी आकृतियों में दिखाई देंगे।

इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए पहले हम यह सोचें कि किसी सतह पर रहने वाले दो–आयामी छाया–जंतु, तीन–आयामी घन का विचार कैसे करेंगे। इसकी कल्पना हम आसानी से कर सकते हैं क्योंकि हम तो श्रेष्ठतर तीन–आयामी जीव हैं ; सो हम ऊपर से, अर्थात् तीसरी दिशा से, दो–आयामी संसार को देख सकते हैं। हाँ, तो किसी घन को "पिचका कर" समतल में उतारने का तरीका यह है कि घन को उस समतल पर "प्रक्षेपित" किया जाये, जैसा चित्र 25 में दिखाया गया है।

चित्र 25 : दो–आयामी जंतु आश्चर्य से देखते हैं जब तीन–आयामी घन का प्रक्षेप उनके सतही संसार पर बनता है।

मूल घनाकार आकृति को विभिन्न कोणों से देख कर अन्य प्रक्षेप भी बनाये जा सकते हैं। चित्र 25 के प्रक्षेप को तथा अन्य सभी प्रक्षेपों को देख कर हमारे दो–आयामी मित्र "तीन–आयामी घन" नामक रहस्यमय आकृति के गुणों का कुछ अंदाज़ अवश्य कर पायेंगे। वे अपनी सतह से "बाहर कूद कर" उस प्रकार तो घन को मन में चित्रित नहीं ही कर पायेंगे जैसे हम करते हैं। हाँ, प्रक्षेप को देखने से वे कम–से–कम कुछ बातें तो कह ही पायेंगे, जैसे यह कि घन के आठ शीर्ष (कोने) और बारह किनारे होते हैं।

अब ज़रा चित्र 26 को देखिए, और आप स्वयं को ठीक उसी स्थिति में पायेंगे जिसमें बेचारे दो–आयामी छाया–जंतु होते हैं, जो अपनी सतह पर साधारण घन का प्रक्षेप देखते हैं। इस चित्र में परिवार के लोग जिस अजीब और जटिल–से ढाँचे को इतने आश्चर्य के साथ देख रहे हैं, वह वास्तव में एक चार–आयामी महा–घन का साधारण तीन–आयामी आकाश में प्रक्षेप है।[1]

[1] और भी सही कहना हो, तो चित्र 26 में चार–आयामी महाघन के तीन–आयामी आकाश में प्रक्षेप का कागज़ के समतल में प्रक्षेप दिखाया गया है।

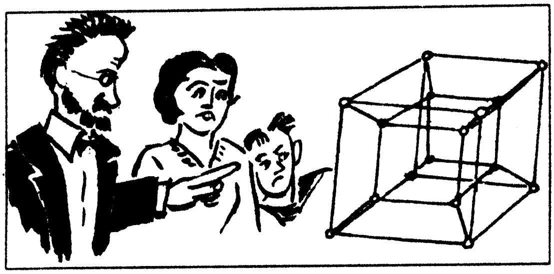

चित्र 26 : चौथे आयाम से आया मेहमान! चार–आयामी महा–घन का सीधा प्रक्षेप।

इस चित्र को ध्यानपूर्वक जाँचिए और आप आसानी से उन्हीं गुणों को पहचान लेंगे जिनसे चित्र 25 के छाया–जंतु परेशान हैं : साधारण घन का प्रक्षेप यदि दो वर्गों के द्वारा दर्शाया जाता है, जिनमें से एक वर्ग दूसरे के भीतर है, और एक के कोने दूसरे के कोनों के साथ मिला दिये गये हैं, तो महाघन का साधारण आकाश में प्रक्षेप भी दो घनों से बना है, जिनमें से एक घन दूसरे के भीतर है, और कोनों के साथ कोने उसी प्रकार मिलाये गये हैं। और आप गिनती करके आसानी से देख सकते हैं कि महाघन में कुल मिला कर 16 शीर्ष, 32 किनारे तथा 24 फलक (समतल) हैं। क्या ज़बरदस्त घन है!

अब ज़रा देखें कि चार–आयामी गोला कैसा दीखेगा। यह करने के लिए भी पहले इस पर ध्यान देना बेहतर रहेगा कि साधारण गोले का समतल सतह पर प्रक्षेप कैसा होता है, जो कि हमारे लिए अधिक जाना–बूझा है। ज़रा सोचिए, एक पारदर्शक ग्लोब हो, जिस पर महाद्वीप, महासागर आदि बने हुए हों। अब यदि सफ़ेद दीवार पर इस गोले को प्रक्षेपित करें (चित्र 27) तो प्रक्षेप में दो गोलार्ध (आधे गोले) वृत्त बन कर एक–दूसरे पर चढ़े रहेंगे। इस प्रक्षेप को देखकर तो ऐसा लगेगा कि जैसे जबलपुर (भारत) व हवाना (क्यूबा) के बीच कोई ख़ास दूरी नहीं है। पर यह तो सिर्फ़ प्रतीत होने की बात है। वास्तव में प्रक्षेप पर हर एक बिंदु सचमुच की गोलाकार सतह के दो परस्पर विपरीत

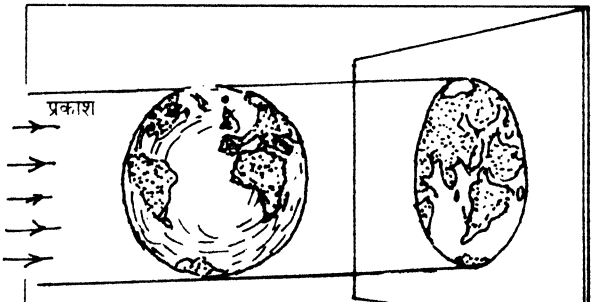


चित्र 27 : भू–मंडल का समतल प्रक्षेपण

बिंदुओं को दर्शाता है। यदि ग्लोब पर एक वायुयान जबलपुर से हवाना तक उड़ान भरे, तो प्रक्षेप पर इस यान की छाया पहले पूरी पृथ्वी का वृत्त लाँघती हुई उसके किनारे तक और फिर सारा रास्ता वापिस तय करेगी। यदि दो वायुयान ग्लोब की विपरीत सतहों पर हों, समतल प्रक्षेप हमारी दीवार पर भले ही एक–दूसरे से मिल रहे हों, फिर भी वे सचमुच आपस नहीं रहे होंगे।

तो साधारण गोले के समतल प्रक्षेप के ऐसे गुण हैं। अब ज़रा अपनी कल्पना–शक्ति पर ज़ोर दें तो हमें यह महसूस करने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि किसी चार–आयामी महा–गोले का साधारण आकाश में प्रक्षेप कैसा होगा। जैसे साधारण गोले के दो–आयामी प्रक्षेप में दो चपटे वृत्त एक ही स्थान पर होते हैं, जो कि सिर्फ़ अपने बाहरी किनारे पर आपस में जुड़े हुए रहते हैं, ठीक उसी प्रकार साधारण आकाश में महागोले के प्रक्षेप में भी दो गोलाकार पिंड होंगे जो एक–दूसरे में समाये रहेंगे परंतु जो सिर्फ़ बाहरी सतह पर एक–दूसरे के साथ जुड़े होंगे। आपको याद होगा कि पिछले अध्याय में ऐसे ही एक अजीबो–ग़रीब ढाँचे की चर्चा की गयी थी। हमने कहा था कि यह ढाँचा बंद तीन–आयामी आकाश का उदाहरण है, जैसे गोलाकार सतह बंद दो–आयामी सतह होती है। अतः अब उस चर्चा में इतनी–सी बात जोड़ना ही रह गया है कि चार–आयामी गोले का तीन–आयामी प्रक्षेप और कुछ नहीं, बस पिछले अध्याय वाले हमारे जुड़वाँ–जैसे सेब हैं जो एक ही सतह के भीतर एक साथ उगे हैं।

इसी तरह, समरूपता के तरीके को अपनाते हुए, हम चार–आयामी आकृतियों के बारे में बहुत–से अन्य प्रश्नों के उत्तर भी पा सकते हैं, भले ही लाख हाथ–पैर मारने पर भी हम अपने भौतिक आकाश में किसी चौथे आयाम की "कल्पना" करने में कभी भी समर्थ न हों।

ज़रा और सोचने पर आप पायेंगे कि चौथे आयाम की अवधारणा को उतना रहस्यमय बनाना कोई ज़रूरी नहीं है। वास्तव में हम सब के दैनिक उपयोग का ही एक शब्द एक मात्रा को बताता है जो भौतिक संसार में चौथी स्वतंत्र दिशा समझी जा सकती है, बल्कि समझी जानी चाहिए। जी हाँ, हम समय की बात कर रहे हैं। हमारे आस–पास घटने वाली सभी घटनाओं का वर्णन करने के लिए हम बराबर आकाश (में वस्तुओं की स्थिति) के साथ–साथ समय का भी उल्लेख करते हैं। जब हम ब्रह्मांड में घटने वाली किसी भी घटना की बात करते हैं, चाहे वह सड़क पर चलते–चलते किसी मित्र के साथ साधारण–सी भेंट हो, या किसी दूर के तारे में विस्फोट हो, हम आम तौर पर न केवल यह बताते हैं कि कहाँ हुई, बल्कि यह भी कि वह कब हुई। इस प्रकार तीन दिशाओं में किसी बिंदु की स्थिति दर्शाने वाली संख्याओं में अब एक और जुड़ गयी : समय या दिनांक।

अब यदि आप इस मामले पर और ग़ौर करें, तो आप सहज ही यह अनुभूति भी करेंगे कि हरएक भौतिक पदार्थ चार आयामों में फैला है : तीन आयाम आकाश में हैं और एक समय में। जैसे, जिस मकान में आप रहते हैं वह लंबाई में इतना फैला हुआ है, चौड़ाई में उतना, ऊँचाई में उतना। साथ ही उसका समय में भी फैलाव है जिसकी माप है वह अवधि, जो मकान के बनने के दिनांक से उसके जल जाने या पुनर्निर्माण के लिए तोड़े जाने या पुराना होकर ढह जाने के दिनांक तक है।

हाँ, यह कठिनाई तो होगी कि समय को मापने की इकाई वही नहीं है जो आकाश की तीन दिशाओं में दूरियाँ मापने की है। समय की अवधियाँ घड़ी द्वारा मापी जाती हैं, जो सैकंड बताने के लिए टिक–टिक बोलती है और घंटों को डन्–डन् करके बजाती है, जबकि आकाशीय दूरियाँ मीटर की छड़ी से मापी जाती हैं। आप लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई को एक ही मीटर की छड़ी से माप सकते हैं, पर समय मापने के लिए इस छड़ी को घड़ी में नहीं बदला जा सकता। दूसरी कठिनाई भी है : आकाश में आप न केवल आगे या दाहिने या ऊपर की ओर चल सकते हैं, बल्कि उलट कर वापिस भी आ सकते हैं, परंतु समय में वापिस नहीं लौट सकते। समय तो आपको जबरन भूत से भविष्य में

लिये चला जाता है। जो भी हो, आकाश की तीन दिशाओं और समय की दिशा में ये भेद होने पर भी समय को भौतिक घटनाओं की चौथी दिशा माना जा सकता है; बस इतना याद रखना होगा कि यह दिशा हू–ब–हू आकाशी दिशाओं जैसी नहीं है।

जिस तरह की चार–आयामी आकृतियों की चर्चा हमने इस अध्याय के शुरू में की थी, हम पायेंगे कि समय को चौथा आयाम चुनने पर उन आकृतियों का स्वरूप मन में बनाना काफ़ी आसान हो जायेगा। उदाहरणतया, चार–आयामी घन के प्रक्षेप से बनने वाली वह अजीब–सी आकृति याद है? सोलह कोने, बत्तीस किनारे, और चौबीस फलक! कोई आश्चर्य नहीं कि चित्र 26 में लोग उस ज्यामितीय दैत्य को इतनी हैरत से घूर रहे हैं। लेकिन हमारी नयी दृष्टि के अनुसार तो चार–आयामी घन एक साधारण घन ही है जो एक निश्चित अवधि के दौरान मौजूद रहता है। मान लीजिए कि आपने मई माह के सातवें दिन सीधी तार के बारह टुकड़ों से एक घन बनाया, और एक माह बाद उसे तोड़ दिया। अब हमें घन के हर कोने को ऐसे समझना होगा कि यह वास्तव में एक रेखा है जो कि समय की दिशा में एक माह तक फैली हुई है। आप हरएक कोने पर एक छोटा–सा कैलेंडर टाँग सकते हैं और समय की प्रगति दर्शाने के लिए हर दिन दिनांक का पन्ना पलटते जा सकते हैं।

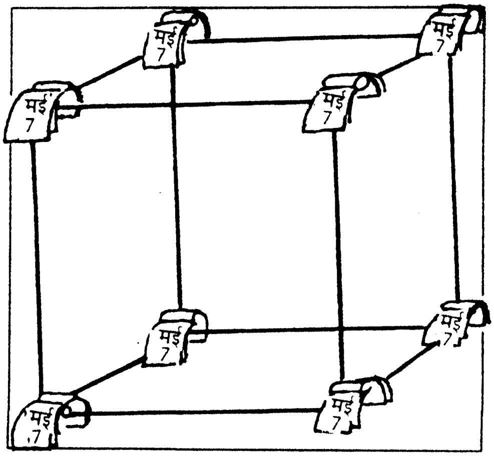


चित्र 28 : आकाश–समय का महा–घन

अब हमारी इस चार–आयामी आकृति में पसलियों (किनारों) की संख्या गिनना आसान है। आकाशी दिशाओं में बारह पसलियाँ तो इसके जन्म से ही हैं; फिर आठ "समय वाली पसलियाँ" हैं जो हर शीर्ष के अस्तित्व की अवधि बताती हैं; और इसके अस्तित्व के अंत में फिर बारह आकाशी पसलियाँ हैं[2] : कुल मिला कर 32 पसलियाँ। इसी प्रकार हम गिनते हैं कि कुल सोलह कोने हैं : आठ आकाशी कोने 7 मई को, और फिर वही आठ आकाशी कोने 7 जून को। अब इस चार–आयामी आकृति में कितने फलक हैं, यह गिनती हम पाठक के लिए इसी प्रकार के अभ्यास के तौर पर छोड़ देते हैं। ऐसा गिनने में याद रखना होगा कि कुछ फलक तो मूल घन के साधारण वर्गाकार फलक होंगे, कुछ एक माह बाद की स्थिति में वैसे ही फलक होंगे, जबकि कुछ और फलक मू... पसलियों को समय की दिशा में 7 मई से 7 जून तक खींचने से बने "आधे–आकाश–... –वाले" होंगे।

[2] यदि इसे समझने में दिक्कत हो तो पहले इसके दो–आयामी समरूप को सोच कर देखिए, अर्थात् चार ... भुजाओं वाला वर्ग, जिसे सतह की अभिलंब दिशा में इसकी भुजाओं के बराबर दूरी तक उठा दिया जाए।

यहाँ हमने घन के चार–आयामी–करण के बारे में जो कुछ कहा, स्वाभाविक ही वही किसी भी ज्यामितीय आकृति या किसी भी सजीव या निर्जीव भौतिक वस्तु पर लागू किया जा सकता है। ख़ास तौर पर, आप स्वयं को ही एक चार–आयामी आकृति के तौर पर देखिए : यह एक तरह की लंबी रबड़ की छड़ी है जो जन्म के क्षण से लेकर जीवन के अंत तक समय में फैली हुई है। दुर्भाग्यवश हम चार–आयामी चीज़ों का चित्र काग़ज़ पर नहीं खींच सकते : अतः चित्र 29 में हमने इस विचार को दर्शाने के लिए एक दो–आयामी छाया–मानव का उदाहरण लिया है जिसमें उसके रहने के दो–आयामी धरातल के अभिलंब जाने वाली दिशा को समय की दिशा मान लिया गया है। चित्र में हमारे छाया–मानव की पूरी जीवन–अवधि का एक छोटा खंड ही दिखाया गया है। पूरी जीवन–अवधि प्रदर्शित करने के लिए तो काफ़ी अधिक लंबी रबड़ की छड़ी की ज़रूरत होगी, जो शुरू में काफी पतली होगी (जबकि मानव अभी शिशु ही है), फिर जीवन के अनेक वर्षों की अवधि में इधर–उधर नाचती हुई मृत्यु के समय अचल आकृति धारण कर लेगी (क्योंकि मुर्दे चलते नहीं हैं), और फिर सड़ कर बिखरने लग जायेगी।

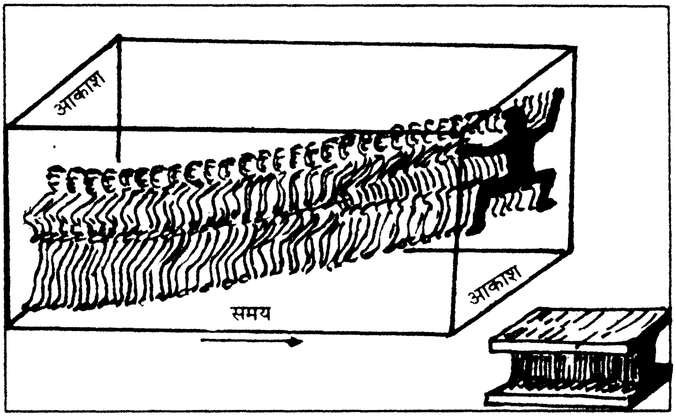


चित्र 29 : एक मानव–शरीर का आकाश व समय में फैलाव

अधिक परिशुद्ध रूप में कहना हो तो यह चार–आयामी छड़ी बहुत बड़ी संख्या में अलग–अलग रेशों से बनी है, जिनमें से प्रत्येक एक परमाणु की यात्रा दर्शाता है। जीवन की अवधि के दौरान तो इनमें से अधिकतर रेशे समूह में ही रहते हैं, सिर्फ़ थोड़े–से ही इधर–उधर गिरते हैं, जैसे कटे हुए नाखून या बाल। क्योंकि परमाणु अविनाशी हैं, अतः मृत्यु के बाद मानव–शरीर के सड़ने या जलने को ऐसा समझना चाहिए कि ये विभिन्न रेशे अलग–अलग दिशाओं में फैल गये (सिवाय शायद हड्डी वाले रेशों के, जो मृत्यु के बाद भी जुड़े रह सकते हैं)।

चार–आयामी आकाश–समय की ज्यामिति की भाषा में हरएक भौतिक कण का इतिहास दर्शाने वाली रेखा को उसकी "संसार–रेखा" कहा जाता है। इसी प्रकार बहुत–से कणों की संसार–रेखाओं का एक पूरा समूह मिल कर एक "संसार–पट्टी" बन जाता है।

*चित्र 30 में हम एक खगोलीय उदाहरण दे रहे हैं जिसमें सूर्य, पृथ्वी व एक धूमकेतु की* संसार–रेखाएँ दर्शायी गयी हैं।[3] जैसा कि कूदते हुए आदमी वाले पिछले उदाहरण में हमनें किया था,

[3] सही रूप में तो हमें संसार–पट्टियों की बात कहनी चाहिए, परंतु खगोलीय दूरियों की तुलना में तारों, ग्रहों आदि को बिंदु माना जा सकता है।

वैसे ही यहाँ भी हमने आकाश को दो–आयामी रूप में लिया है (पृथ्वी के परिक्रमा–पथ के समतल में) और समय की अक्ष को इसके अभिलंब माना है। इस चित्र में सूर्य की संसार–रेखा को समय–अक्ष के समांतर सरल रेखा के रूप में दिखाया गया है, क्योंकि सूर्य को हम अचल मान रहे हैं।[4] पृथ्वी का परिक्रमा–पथ वृत्ताकार के बहुत क़रीब है। अतः इसकी संसार–रेखा को सूर्य–रेखा के गिर्द चक्कर लगाती हुई सर्पिल रेखा के रूप में दिखाया गया है, जबकि धूमकेतु की संसार–रेखा सूर्य वाली रेखा के पास आती है और फिर से बहुत दूर चली जाती है।

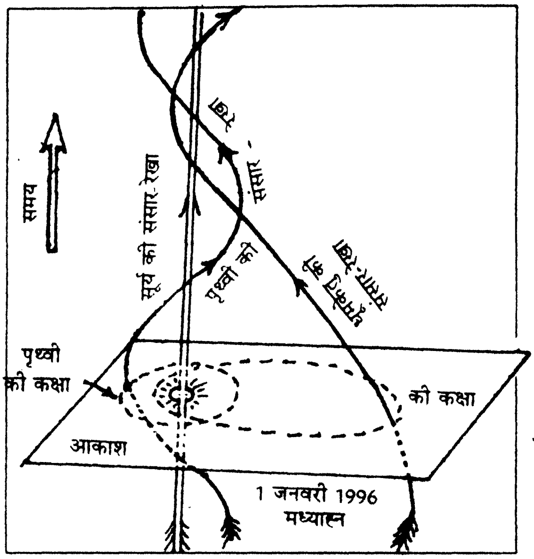


चित्र 30 : सूर्य, पृथ्वी और धूमकेतु की संसार–रेखाएँ

हम देखते हैं कि चार–आयामी आकाश–समय की ज्यामिति में ब्रह्मांड की स्थानिक रचना तथा इतिहास, दोनों मिल–घुल कर एक समरस चित्र बना देते हैं, और हमें पृथक परमाणुओं, जानवरों या तारों को दर्शाने वाली संसार–रेखाओं का उलझा हुआ–सा एक गुच्छा ही प्राप्त होता है।

## 2. समय और दूरी की समरूपता

जब हम समय को चौथा आयाम मानते हैं, जो कमोबेश तीनों आकाशी आयामों के समरूप है, तो हमारे सामने एक बड़ा कठिन प्रश्न आ खड़ा होता है। जब हम लंबाई, चौड़ाई या ऊँचाई मापते हैं, तो तीनों मामलों में एक ही इकाई का उपयोग कर सकते हैं, जैसे 1 फुट या 1 मीटर। परंतु समय वाला आयाम न तो फुटों में मापा जा सकता है और न मीटरों में ही, और हमें बिल्कुल अल… की इकाई लेनी पड़ती है, जैसे मिनट या घंटे। अब इन दोनों तरह की इकाइयों की तुलना कै… यदि हम एक चार–आयामी घन की कल्पना करें जिसकी आकाशी माप 1 फुट x 1 फुट x … हो, तो समय की दिशा में इसे कितना फैलाया जाये कि चारों आयाम बराबर हो जायें ? एक… एक घंटा या एक महीना, जैसा कि हमने पिछले उदाहरण में माना था ? क्या एक घंटा एक… अधिक लंबा है या छोटा है ?

[4] वास्तव में हमारा सूर्य भी तारों के सापेक्ष चल रहा है। अतः तारा–समूह के संदर्भ में तो सूर्य–रेखा तनिक–सी … में झुकी हुई होनी चाहिए।

पहली बार में तो यह प्रश्न निरर्थक लगता है, परंतु यदि आप इसके बारे में ज़रा और सोचें तो आपको लंबाई और समय–अवधि की तुलना करने का तर्कसम्मत तरीका मिल जायेगा। आप कई बार सुनते होंगे कि फ़लाँ व्यक्ति शहर से "बस द्वारा बीस मिनट की दूरी पर" रहता है, या कोई स्थान आपके घर से "सिर्फ़ पंद्रह मिनट के पैदल फ़ासले पर" है। यहाँ हम दूरी की मात्रा उस समय द्वारा बताते हैं जो किसी निश्चित वाहन आदि द्वारा उस दूरी को तय करने में लगेगा।

इस प्रकार, यदि हम कोई मानक वेग (standard velocity) तय कर पायें, तो उसके आलोक में हम समय की अवधियों को लबाई की इकाई में बता पायेंगे, और इससे उलटा भी। हाँ, इतना तो स्पष्ट है कि जिस वेग को दूरी व समय का रिश्ता तय करने वाला मूलभूत गुणक चुना जाये, वह स्वयं भी उतना ही बुनियादी एवं सर्वसामान्य किस्म का होना चाहिए। उसे मानव–निर्मित चीज़ों या भौतिक परिस्थितियों पर निर्भर नहीं बल्कि सदा एक समान होना चाहिए। भौतिक विज्ञान में एक ही ऐसा वेग ज्ञात है जो इस हद तक सर्वसामान्य है : खाली आकाश में फैलते हुए प्रकाश का वेग। हालाँकि इसे आम तौर पर "प्रकाश का वेग" कहते हैं, पर इसका बेहतर वर्णन होगा: "भौतिक अंतः क्रियाओं के पहुँचने का वेग", क्योंकि भौतिक वस्तुओं के बीच लगने वाले किसी भी तरह के बल, चाहे वे विद्युत–आकर्षण के बल हों या गुरुत्व–बल, खाली आकाश में उसी वेग से फैलते हैं। साथ ही, जैसा हम बाद में देखेंगे, प्रकाश का वेग किसी भी भौतिक पदार्थ के वेग की ऊपरी सीमा भी है, और कोई भी पदार्थ आकाश में प्रकाश के वेग से अधिक तेज़ यात्रा नहीं कर सकता।

प्रकाश का वेग मापने का पहला प्रयास प्रसिद्ध इतालवी विज्ञानी गैलीलियो ने सत्रहवीं सदी में किया था। एक अँधेरी रात में गैलीलियो अपने एक सहायक को साथ लेकर फ़्लोरेंस के निकट खुले खेतों में निकले। उनके पास यांत्रिक कपाट लगी हुई दो लालटेनें थी। दोनों जन एक–दूसरे से कुछ मील दूर ज़रा ऊँचाई पर खड़े हो गये। एक निश्चित समय पर गैलीलियो ने अपनी लालटेन का कपाट खोला, जिससे प्रकाश की एक किरण उनके सहायक की दिशा में चमकी (चित्र 31 क)। सहायक को निर्देश था कि गैलीलियो से प्रकाश–संकेत के आते ही अपनी लालटेन खोल दे। क्योंकि प्रकाश को गैलीलियो से सहायक तक और फिर वापिस सहायक से गैलीलियो तक पहुँचने में कुछ समय अवश्य लगना था, अतः यह आशा थी कि गैलीलियो द्वारा अपनी लालटेन खोलने तथा जवाब में सहायक का भेजा हुआ संकेत देखने के बीच कुछ देरी होगी। ज़रा–सी देरी सचमुच पायी गयी, परंतु जब गैलीलियो ने अपने सहायक को एक अन्य स्थान पर भेज दिया जो कि पहले की अपेक्षा दुगुनी दूरी पर था, और उसी प्रयोग को दुहराया, तो देरी में कोई बढ़ोत्तरी नहीं देखी गयी। ऐसा लगता था कि प्रकाश इतना अधिक तेज़ चलता है कि चंद मील की दूरी तय करने में उसे लगभग कुछ भी समय नहीं लगता। जो देरी देखी गयी थी, वह तो सिर्फ़ इस कारण से हुई होगी कि गैलीलियो का सहायक प्रकाश को देखते ही ठीक उसी क्षण अपनी लालटेन को नहीं खोल पाया होगा : इस देरी को अब हम "प्रतिक्रिया की देरी" कहते हैं।

गैलीलियो के उक्त प्रयोग से तो कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। पर हाँ, उनकी एक अन्य खोज बाद में प्रकाश के वेग की पहली वास्तविक माप का आधार बनी। वर्ष 1675 में डैनिश खगोलविद रोयमर ने बृहस्पति के चंद्रमाओं के ग्रहणों का प्रेक्षण (observation) करते हुए पाया कि कोई चंद्रमा जब बृहस्पति की छाया में ग़ायब हो जाता है, ऐसी दो घटनाओं के बीच की समय–अवधि सदा एक समान नहीं रहती, बल्कि कभी कम, कभी अधिक मालूम होती है। यह अवधि इस

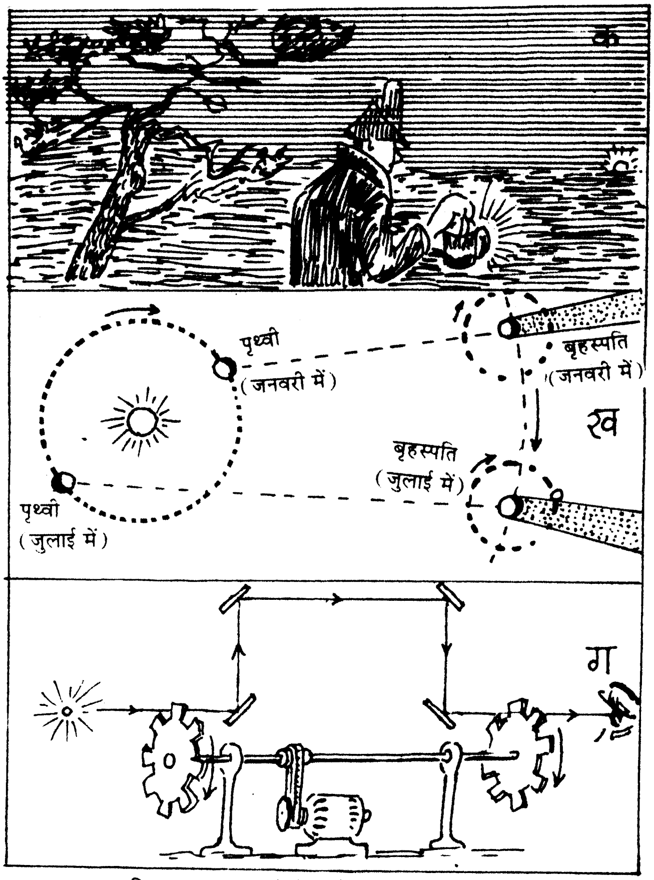


चित्र 31 : प्रकाश के वेग को मापने के तीन प्रयास

पर निर्भर है कि ग्रहण के समय पृथ्वी व बृहस्पति के बीच दूरी कितनी है। रोयमर ने तुरंत पहचान लिया (चित्र 31 ख को देखने के बाद आप भी पहचान जायेंगे) कि यह प्रभाव बृहस्पति के चंद्रमाओं की गति की किसी अनियमितता से पैदा नहीं होता। यह तो सिर्फ़ इसलिए होता है कि बृहस्पति व पृथ्वी के बीच बदलती हुई दूरी के कारण हमें ये ग्रहण विभिन्न देरियों से दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने प्रेक्षणों से पता लगा लिया कि प्रकाश का वेग कोई 185,000 मील प्रति सैकंड है। कोई आश्चर्य नहीं कि गैलीलियो अपनी लालटेन वाली विधि से प्रकाश के वेग को नहीं माप पाये, क्योंकि उनकी लालटेन से निकले प्रकाश को उनके सहयोगी तक जाने और वापिस आने में एक सैकंड के कुछ ही लाखवें भागों के बराबर समय लगा होगा!

गैलीलियो अपने अविकसित यंत्र (कपाट वाली लालटेन) से जो काम नहीं कर पाये, में अधिक परिष्कृत भौतिक उपकरणों के उपयोग से कर दिखाया गया। चित्र 31 ग में हम वह दिखा रहे हैं जिसके उपयोग से फ़्रांसीसी भौतिकीविद फ़िज़ू ने प्रकाश के वेग की माप कर भी अपेक्षाकृत कम दूरी के भीतर ही। इस व्यवस्था का मुख्य भाग है एक ही अक्ष पर जु दाँतेदार चक्के, जो इस प्रकार बैठाये गये हैं कि यदि आप अक्ष के समांतर दूरी से दोनों देखें तो आप पहले चक्के के दाँतों के बीच के स्थानों को दूसरे चक्के के दाँतों द्वारा ढका हुआ अतः प्रकाश की एक पतली किरण यदि अक्ष के समांतर चलती हुई चक्के के बाहरी किनारे

तो दोनों चक्कों के पार नहीं निकल सकती, भले ही चक्कों को अक्ष पर घुमा कर किसी भी स्थिति में क्यों न ले आया जाये।

अब ज़रा सोचिए क्या होगा यदि इन दोनों दाँतेदार चक्कों के जोड़े को तेज़ गति से घुमाना शुरू कर दिया जाये। निश्चय ही पहले चक्के के दाँतों के बीच के छिद्र से निकलने वाले प्रकाश को दूसरे चक्के तक पहुँचने में कुछ समय लगेगा, और यदि इतने समय में दूसरा चक्का दाँतों के बीच के कोण का आधा कोण घूम गया हो तो प्रकाश छिद्र में से दूसरी ओर निकल पायेगा। यह बात काफ़ी हद तक वैसी ही है जैसे यदि किसी सड़क पर जगह–जगह लगी यातायात–बत्तियों के जलने–बुझने का बँधा हुआ समय–संबंध हो, तो समुचित वेग से चलने वाली कार उन सबमें से बिना रुके निकल जायेगी। हाँ, तो फ़िज़ू के उपकरण में यदि चक्कों को घुमाने की गति दुगुनी कर दी जाये तो जब तक प्रकाश दूसरे चक्के तक पहुँचेगा, तब तक पहले दाँते के स्थान पर दूसरा आ चुका होगा, और प्रकाश फिर रुक जायेगा। परंतु घुमाने की गति इससे भी अधिक बढ़ाने पर प्रकाश फिर पार हो जायेगा, क्योंकि दूसरा दाँता प्रकाश के रास्ते से हट चुका होगा, और उसके बाद वाला छिद्र बिल्कुल सही समय पर प्रकाश के रास्ते में आ जायेगा और उसे निकल जाने देगा। इस प्रकार प्रकाश के क्रमशः रुकने व पार होने के लिए चक्कों को जिन–जिन वेगों से घुमाना आवश्यक है, उनकी माप करके प्रकाश का वेग मालूम किया जा सकता है। प्रयोग को अच्छी तरह करने के लिए पहले और दूसरे दाँतेदार चक्कों के बीच चलते प्रकाश को अधिक लंबी दूरी तय करायी जा सकती है। चित्र 31 ग में दिखाये गये दर्पणों की सहायता से ऐसा करना संभव है। इससे घुमाने की गति को अत्यधिक बढ़ाये बिना ही काम हो जाता है।

फ़िज़ू ने इस प्रयोग में पाया कि पहली बार प्रकाश तब पार निकल गया जबकि उपकरण 1000 चक्कर प्रति सैकंड घूम रहा था। इससे प्रमाणित हुआ कि प्रकाश के एक चक्के से दूसरे तक पहुँचने के लिए आवश्यक समय में दो दाँतों के बीच के कोण का आधा तय किया जा चुका था। क्योंकि प्रत्येक चक्के में एक जैसे 50 दाँते थे, अतः यह आधा कोण स्पष्ट ही पूरे चक्कर का 1/100 भाग था। इन गणनाओं का संबंध उस दूरी के साथ जोड़ने पर, जो प्रकाश ने एक चक्के से दूसरे तक पहुँचने में तय की थी, फ़िज़ू ने प्रकाश का वेग मालूम कर लिया। यह 300,000 कि०मी० या 186,000 मील प्रति सैकंड था – लगभग उतना ही जितना रोयमर ने बृहस्पति के उपग्रहों के प्रेक्षण से प्राप्त किया था।

इन अग्रणियों के बाद तो बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने स्वतंत्र रूप से मापें की हैं, खगोल–विज्ञान और भौतिकी दोनों के तरीकों द्वारा। वर्तमान में खाली आकाश में प्रकाश के वेग का सर्वोत्तम आकलन (जिसे आम तौर पर "c" द्वारा दर्शाया जाता है) है c = 299,776 कि. मी. प्रति सैकंड या 186,300 मील प्रति सैकंड। प्रकाश का यह प्रचंड वेग विशाल खगोलीय दूरियों को व्यक्त करने के लिए एक सुविधाजनक मानक बन गया है। ये दूरियाँ इतनी विशाल हैं कि इन्हें मीलों या किलोमीटरों में बताना होता तो इतनी बड़ी संख्याएँ लिखनी पड़तीं कि पन्ने–के–पन्ने भर जाते। अतः खगोलविद कहते हैं कि अमुक तारा "5 प्रकाश–वर्ष" दूर है – उसी अर्थ में जिसमें हम किसी स्थान को "रेलगाड़ी द्वारा 5 घंटे" की दूरी पर बताते हैं। अब क्योंकि एक वर्ष में 31,558,000 सैकंड होते हैं, अतः एक प्रकाश–वर्ष का अर्थ है $31,558,000 \times 299,776 = 9.46 \times 10^{12}$ कि०मी० या $5.879 \times 10^{12}$ मील। ध्यान दीजिए कि दूरी की माप के अर्थ में इस नाम "प्रकाश–वर्ष" का प्रयोग करके हमने समय के आयाम को व्यावहरिक रूप में स्वीकार किया है और दूरी की माप के लिए समय की इकाई को

मान्यता दे दी है। इस प्रक्रिया को हम उलटा भी कर सकते हैं और "प्रकाश–मील" की बात कर सकते हैं, जिसका अर्थ है प्रकाश द्वारा एक मील की दूरी तय करने के लिए आवश्यक समय। प्रकाश के वेग के ऊपर लिखित मान का प्रयोग करके हम पाते हैं कि एक प्रकाश–मील $5.4 \times 10^{-6}$ सैकंड होता है। इसी प्रकार एक प्रकाश–फुट $1.1 \times 10^{-9}$ सैकंड है। पिछले अनुच्छेद में जो प्रश्न हमने चार–आयामी घन के बारे में पूछा था, उसका यहाँ उत्तर मिल गया। यदि घन के आकाशी आयाम 1 फुट, 1 फुट, 1 फुट हैं तो बराबरी के लिए समय–अवधि को केवल लगभग $10^{-9}$ सै० होना पड़ेगा। यदि यह घन फुट पूरे एक महीने तक मौजूद रह जाये, तो इसे चार–आयामी घन नहीं बल्कि चार–आयामी छड़ मानना होगा जो कि समय वाली अक्ष के समांतर बहुत ही लंबी खींची हुई है।

### 3. चार-आयामी दूरी

जब हमने आकाशी और समय वाली अक्षों के साथ उपयोग करने के लिए एक जैसी इकाइयों का मामला सुलझा लिया है, तो अब हम पूछ सकते हैं कि चार–आयामी आकाश–समय के संसार में "दो बिंदुओं के बीच दूरी" का क्या अर्थ है? यह याद रखना होगा कि यहाँ हर एक बिंदु का अर्थ वही है जिसे आम तौर पर "एक घटना" कहते हैं, यानी एक स्थिति और एक समय (या दिनांक) का जोड़ा। इसे स्पष्ट करने के लिए आइए, निम्न दो घटनाओं पर विचार करें :

**घटना 1 :** 28 जुलाई, 1945 को प्रातः 9.21 पर न्यूयार्क शहर में पाँचवीं सड़क और 50 वीं वीथी के कोने पर पहली मंज़िल पर स्थित बैंक में डकैती हो गयी।[5]

**घटना 2 :** उसी दिन प्रातः 9.36 पर सेना का एक जहाज़ कुहरे में भटक कर न्यूयार्क में 34वीं वीथी पर पाँचवीं और छठी सड़कों के बीच स्थित एंपायर स्टेट भवन की 79 वीं मंज़िल की दीवार में टकरा गया (चित्र 32)।

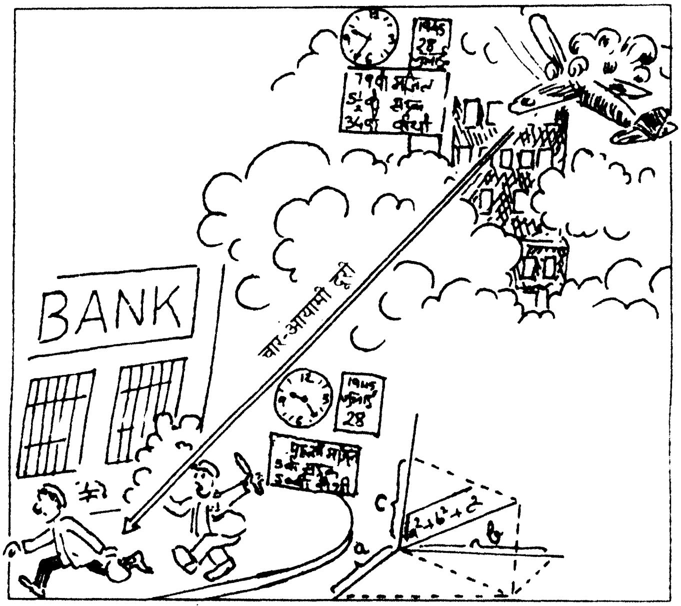


चित्र 32 : दो घटनाओं के बीच चार–आयामी दूरी

[5] यदि इस कोने पर वास्तव में कोई बैंक हो तो यह समानता एक संयोग मात्र है।

इन दो घटनाओं की आकाशी दूरी है दक्षिण दिशा में 16 ब्लॉक, पश्चिम में आधा ब्लॉक और ऊपर की ओर 78 मंज़िलें, और समय का अंतर है 15 मिनट। अब स्पष्ट है कि तीनों दिशाओं में दी गयी आकाशी दूरियों को प्रसिद्ध पाइथागोरस के प्रमेय द्वारा मिला कर दोनों घटनाओं के बीच सीधी दूरी ज्ञात की जा सकती है। इस प्रमेय के अनुसार आकाश के दो बिंदुओं के बीच दूरी, अलग–अलग दिशाओं में दूरियों के वर्गों के जोड़ के वर्गमूल के बराबर होती है (देखिए, चित्र 32 का कोना)। हाँ, इस प्रमेय को लागू करने से पहले हमें सभी संबंधित दूरियों को एक जैसी इकाइयों में बदलना होगा, जैसे फुट में। यदि उत्तर–दक्षिण दिशा में एक ब्लॉक की लंबाई 200 फुट हो, पूर्व–पश्चिम दिशा में एक ब्लॉक की लंबाई 800 फुट हो, और एंपायर स्टेट भवन की एक मंज़िल की औसत ऊँचाई 12 फुट हो, तो तीनों दिशाओं में दूरियाँ हो जाती हैं क्रमशः 3200 फुट, 400 फुट और 936 फुट। अतः अब पाइथागोरस के प्रमेय के प्रयोग से हम दोनों स्थानों के बीच की सीधी दूरी निकालते हैं :

$$\sqrt{(3200)^2 + (400)^2 + (936)^2} = \sqrt{11,280,000} = 3,360 \text{ फुट।}$$

अब यदि समय को चौथा आयाम कहने का कोई व्यावहारिक अर्थ हो, तो आकाशी दूरी (3,360 फुट) को समय की दूरी (15 मिनट) के साथ मिला कर दोनों घटनाओं के बीच **चार-आयामी दूरी** बताने वाली एक ही संख्या प्राप्त हो सकनी चाहिए।

आइंस्टाइन ने यह मौलिक विचार दिया कि **पाइथागोरस के प्रमेय के सरल-से सामान्यीकरण के द्वारा ऐसी चार-आयामी दूरी वास्तव में प्राप्त की जा सकती है, और यह चार-आयामी दूरी दो घटनाओं के बीच का भौतिक संबंध बताने में आकाश और समय की अलग-अलग दूरियों की अपेक्षा अधिक आधारभूत भूमिका निभाती है।** इसे नीचे समझाया जायेगा।

यदि हमें आकाश और समय के आँकड़ों को एक साथ मिलाना है, तो पहले हमें दोनों को समान इकाइयों में व्यक्त करना होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे ब्लॉकों की लंबाई व मंज़िलों की ऊँचाई को फुट में व्यक्त किया गया। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, प्रकाश के वेग को गुणक के रूप में उपयोग करके हम आसानी से ऐसा रूपांतरण कर सकते हैं, जिससे हमारी 15 मिनट की समय–अवधि $8 \times 10^{11}$ "प्रकाश–फुट" हो जाती है। अब आपका ख़्याल होगा कि पाइथागोरस के प्रमेय का सरल सामान्यीकरण करते हुए क्यों न चार–आयामी दूरी को ऐसे परिभाषित कर डालें कि यह चारों निर्देशांकों के वर्गों के जोड़ का वर्गमूल है : इनमें तीन निर्देशांक आकाशी दूरियों के हैं और एक समय–अवधि का। परंतु ऐसा करने से तो आकाश और समय के बीच का फ़र्क पूरी तरह मिट जायेगा, जिसका प्रभाव होगा किसी आकाशी माप को समय की माप में बदल देने की संभावना को मान लेना और इसकी उलटी प्रक्रिया को भी।

परंतु ऐसा तो कोई कर ही नहीं सकता। यहाँ तक कि महान आइंस्टाइन भी ऐसा नहीं कर सकते थे कि एक मीटर की छड़ को कपड़े से ढक कर, जादू की छड़ी हिला कर, कोई जादू–जंतर पढ़ कर, जैसे : "पी–गुणा–को–वेरिएंट–क्यू–गुणा–कंट्रा–वेरिएंट–टैंसर", उसे नयी–नवेली चमचमाती हुई घड़ी में बदल दें (चित्र 33)। अतः यदि हमें समय को आकाश के साथ मिलाना ही है तो पाइथगोरस की लकीर से हट कर कुछ ऐसा करना होगा जिससे दोनों प्रकार की मात्राओं के सहज अंतर को बनाये रखा जा सके।

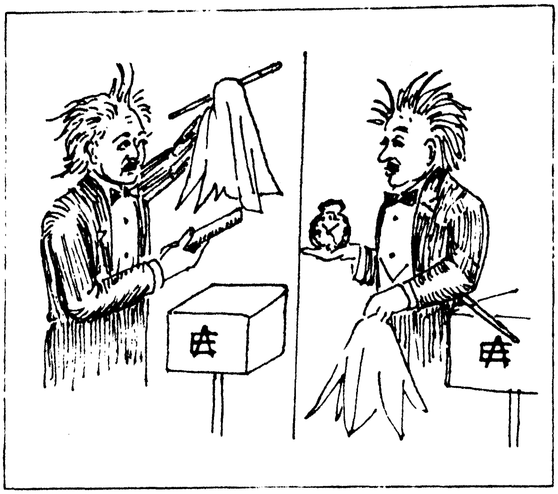

चित्र 33 : मीटर की छड़ी को घड़ी बनाना – ऐसा जादू तो प्रो० आइंस्टाइन भी कभी नहीं कर पाये। पर उन्होंने जो किया वह इससे काफ़ी बेहतर था।

आइंस्टाइन के अनुसार, सामान्यीकृत पाइथागोरीय सूत्र की गणितीय रचना में आकाशी दूरियों व समय–अवधियों के बीच भौतिक अंतर पर ज़ोर देने के लिए समय वाली दूरी के वर्ग पर **ऋण-चिह्न** लगाना चाहिए। इस प्रकार हम दो घटनाओं के बीच चार–आयामी दूरी को ऐसे व्यक्त कर सकते हैं : **यह तीनों आकाशी दूरियों के वर्गों को जोड़ कर, समय-अवधि के वर्ग को घटा कर, वर्गमूल लेने से प्राप्त होता है।** स्वाभाविक ही, समय–अवधि को आकाशी इकाइयों में लेना है।

अतः उस बैंक–डकैती और उस वायुयान–दुर्घटना के बीच चार–आयामी दूरी की गणना इस प्रकार करेंगे :

$$\sqrt{(3200)^2 + (400)^2 + (936)^2 - (8\times10^{11})^2}$$

चौथे पद का मान शेष तीनों पदों की अपेक्षा अत्यधिक विशाल है। इसका कारण यह है कि हमने यहाँ "आम जीवन" से उदाहरण लिया है, जबकि समय की तर्कसम्मत इकाई ("प्रकाश–फुट") आम जीवन के समय के मानदंडों के हिसाब से बहुत ही छोटी पड़ती है। यदि हम न्यूयार्क नगर की सीमाओं के भीतर की घटनाएँ न लेकर खगोल से कोई उदाहरण लेते तो आकाश व समय वाली दूरियाँ कुछ अधिक तुलनीय होतीं। जैसे, यदि 1 जुलाई 1946 को सुबह के ठीक 9 बजे बिकिनी द्वीप में परमाणु–बम के विस्फोट को पहली घटना माना जाये, और उसी दिन प्रातः 9 बज... पर मंगल ग्रह पर किसी उलका के गिरने को दूसरी, तो समय–अवधि $5.5\times10^{11}$ प्रक... होगी और इसके मुकाबले में आकाशी दूरी लगभग $6.5\times10^{11}$ फुट होगी।

इस बार दोनों घटनाओं के बीच चार–आयामी दूरी प्राप्त होगी :

$$\sqrt{(6.5\times10^{11})^2 - (5.5\times10^{11})^2} = 3.5 \times 10^{11} \text{ फुट},$$

जो कि शुद्ध आकाश की और शुद्ध समय की दूरियों से काफ़ी अलग है।

इस तर्क–विरुद्ध लगने वाली ज्यामिति पर अवश्य ऐतराज़ किया जा सकता है, कि इसमें एक निर्देशांक के साथ बाकी तीन की अपेक्षा अलग ढंग से व्यवहार किया जाता है। परंतु यह बिल्कुल नहीं भूलना चाहिए कि भौतिक संसार का वर्णन करने के लिए जो भी गणित ईजाद किया जाता है, उसकी रचना भौतिक चीज़ों के चरित्र के अनुरूप होनी चाहिए। यदि आकाश तथा समय अपने चार–आयामी एकीकरण में वास्तव में अलग–अलग ढंग से ही व्यवहार करते हैं, तो चार–आयामी ज्यामिति के नियम भी उसी के अनुरूप बनाने होंगे। इसके अलावा, एक सरल–सा गणितीय इलाज है जिससे आकाश व समय की आइंस्टीनी ज्यामिति हू–ब–हू अपनी पुरानी, स्कूल में पढ़ी हुई, यूक्लिडीय ज्यामिति के समान लगने लगे। यह तरीका जर्मन गणितज्ञ मिन्कोव्स्की ने प्रस्तावित किया था और इसमें चौथे निर्देशांक को शुद्धतः अधिकल्पित (imaginary) मात्रा माना जाता है। आपको इस पुस्तक के दूसरे अध्याय से याद होगा किसी भी साधारण संख्या को $\sqrt{-1}$ से गुणा करके इसे अधिकल्पित बनाया जा सकता है, और कई प्रकार की ज्यामितीय समस्याओं का हल करने के लिए ऐसी अधिकल्पित संख्याओं का सुविधापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। बस, तो मिन्कोव्स्की के अनुसार, समय को चौथा निर्देशांक मानने के लिए इसे न केवल आकाशी इकाई में व्यक्त करना पड़ेगा, बल्कि $\sqrt{-1}$ से गुणा भी करना होगा। अतः हमारे पहले उदाहरण में आयीं चार दूरियाँ इस प्रकार हैं :

| | | |
|---|---|---|
| पहला निर्देशांक | : | 3200 फुट |
| दूसरा निर्देशांक | : | 400 फुट |
| तीसरा निर्देशांक | : | 936 फुट |
| चौथा निर्देशांक | : | $8 \times 10^{11} \times i$ प्रकाश–फुट |

अब हम चार–आयामी दूरी की परिभाषा यह दे सकते हैं कि यह **चारों** निर्देशांक–दूरियों के वर्गों के जोड़ का वर्गमूल है। क्योंकि किसी भी अधिकल्पित संख्या का वर्ग सदा ऋणात्मक होता है, अतः मिन्कोव्स्की के निर्देशांकों को लेकर हम पाइथागोरस के सूत्र को ज्यों–का–त्यों प्रयोग में ला सकते हैं जिसमें सभी वर्गों को जोड़ दिया जाता है। इससे वही परिणाम प्राप्त होगा जो आइंस्टीनी निर्देशांकों में समय के वर्ग को घटाने से प्राप्त हुआ था और इस प्रकार अटपटा प्रतीत होने वाले ऋण–चिह्न से छुटकारा मिलेगा।

यहाँ एक किस्सा याद आता है कि एक बूढ़े को वात–रोग था। उसने अपने एक स्वस्थ मित्र से पूछा कि भाई, तुम इस रोग से कैसे बचे रहे हो?

उत्तर मिला, "मैं जीवन–भर हर रोज़ सुबह ठंडे–ठंडे पानी से स्नान करता रहा हूँ।"

"ओह!", पहले वाले ने आह भरी, "तो तुम्हें **वात का नहीं, ठंडे पानी के स्नान का** कष्ट लगा रहा।"

तो बस, आपको भी अगर वात–रोग–सा लगने वाला (ऋण चिह्न वाला) आइंस्टीनी सूत्र पसंद नहीं है, तो आप इसके स्थान पर समय के अधिकल्पित निर्देशांक–रूपी ठंडे पानी का स्नान कर सकते हैं।

आकाश और समय के संसार में चौथे निर्देशांक की प्रकृति अधिकल्पित है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि **दो तरह की** चार–आयामी दूरियाँ मानी जायें जो भौतिक रूप से अलग–अलग हैं। देखिए, ऊपर चर्चित न्यूयार्क की घटनाओं जैसे मामलों में, जहाँ घटनाओं के बीच

तीन–आयामी दूरी, लंबाई की इकाई में बतायी गयी समय–अवधि से कम है, पाइथागोरीय सूत्र के वर्गमूल चिह्न के नीचे ऋणात्मक संख्या प्राप्त होती है, जिससे कि **चार-आयामी दूरी का मान अधिकल्पित संख्या में ही आता है।** परंतु मंगल ग्रह वाले उदाहरण में समय–अवधि आकाशी दूरी की अपेक्षा कम है, जिससे कि वर्गमूल चिह्न के नीचे हमें धनात्मक संख्या प्राप्त होगी। स्वाभाविक ही, इसका यही अर्थ है कि ऐसे मामलों में **दो घटनाओं के बीच चार-आयामी दूरी वास्तविक है।**

जैसी ऊपर चर्चा की जा चुकी है, आकाशी दूरियों को यहाँ वास्तविक तथा समय–अवधियों को पूरी तरह अधिकल्पित माना जायेगा। अतः हम कह सकते हैं कि वास्तविक चार–आयामी दूरियाँ साधारण आकाशी दूरियों से अधिक निकट का संबंध रखती हैं, जबकि अधिकल्पित दूरियाँ समय–अवधियों से मिलती–जुलती हैं, यद्यपि प्रत्येक में दोनों प्रकार की दूरियाँ शामिल हैं। मिन्कोव्स्की की शब्दावली के अनुसार वास्तविक चार–आयामी दूरियाँ **आकाशीय** (space-like) कहलाती हैं और अधिकल्पित दूरियाँ **सामयिक** (time-like)।

अगले अध्याय में हम देखेंगे कि आकाशीय दूरी को शुद्धतः आकाश की दूरी में बदला जा सकता है, जबकि सामयिक दूरी को शुद्ध समय–अवधि में। परंतु एक प्रकार की दूरी को दूसरी प्रकार की दूरी में नहीं बदला जा सकता। ऐसे किसी भी प्रयास के बीच में अलंघ्य बाधा आ जाती है, क्योंकि एक का वर्णन वास्तविक संख्या से और दूसरी का अधिकल्पित संख्या से किया जाता है। अतः मीटर की छड़ को घड़ी में या घड़ी को मीटर में बदलना असंभव हो जाता है।

पाँच

# आकाश व समय की आपेक्षिकता*

## 1. आकाश और समय को एक-दूसरे में बदलना

चार–आयामी संसार में आकाश व समय का एकीकरण दिखाने के जो गणितीय प्रयास हुए हैं, उनसे दूरियों व अवधियों के बीच भेद पूरी तरह समाप्त तो नहीं हो पाया है; तो भी इन प्रयासों से निश्चय ही दोनों अवधारणाओं के बीच इतनी अधिक समानता उजागर हुई है जितनी आइंस्टाइन से पहले कभी नहीं हुई थी। सच तो यह है (हमारी आज की समझ के अनुसार) कि **दो घटनाओं के बीच आकाशी दूरी और समय के अंतर को अलग-अलग मात्राएँ नहीं मानना चाहिए। वास्तव में दो घटनाओं के बीच एक मूलभूत चार-आयामी अंतर है। इस अंतर का आकाशी अक्ष पर प्रक्षेप (projection) ही आकाशी दूरी है और समय वाली अक्ष पर प्रक्षेप ही समय-अवधि है। अतः चार-आयामी अक्षों के काटे को घुमाने⁺ के परिणाम-स्वरूप दूरियाँ आंशिक रूप से समय-अवधियों में बदल सकती हैं और इससे उलटा भी हो सकता है।** परंतु चार–आयामी आकाश–समय के अक्ष–काटे को घुमाने का भौतिक अर्थ क्या है?

आइए, पहले दो आकाशी निर्देशांकों (x,y) द्वारा बनाये गये अक्षों के काटे पर ही विचार करें, जैसे चित्र 34क में दिखाया गया है। किन्हीं दो स्थिर बिंदुओं पर ध्यान दें जिनके बीच दूरी L है। इस दूरी को दोनों निर्देशांक–अक्षों पर अलग–अलग प्रक्षेपित करके हम देखते हैं कि हमारे दो बिंदुओं के बीच पहली अक्ष की दिशा में दूरी a है और दूसरी अक्ष की दिशा में b है।

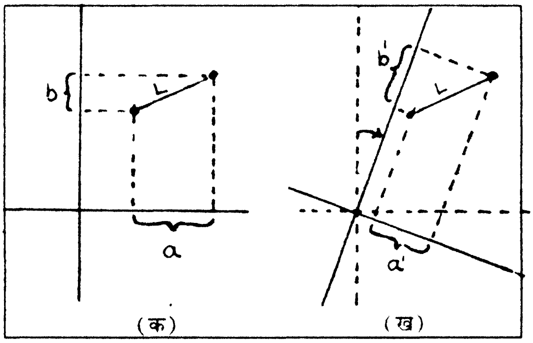


चित्र 34 : दो–आयामी आकाश में अक्षों को घुमाना

अब यदि हम इस अक्ष–समूह को एक निश्चित कोण से घुमा दें (चित्र 34ख), तो दोनों नयी अक्षों पर उसी दूरी L के प्रक्षेप पहले वाले प्रक्षेपों की अपेक्षा अलग होंगे – इन नये प्रक्षेपों को हम a' और b'

* आपेक्षिकता (relativity) का यह अर्थ है कि किसी भी भौतिक घटना के स्थान व समय के निर्देशांक अचल नहीं हैं, बल्कि जिस गति से देखने वाला चल रहा है, उस पर निर्भर हैं, उसके सापेक्ष हैं। –अनु०

⁺ अक्ष–काटे (axis-cross) का अर्थ है काटे (x) जैसा दीखने वाला तंत्र जिसमें आकाश व समय की अक्षें एक–दूसरे को काटती हुई दिखायी जाती हैं। (आकाश की एक ही अक्ष दिखायी जाये तो यह तंत्र सरल–सा काटा दीखता है।) इस काटे को मूलबिंदु (origin) के गिर्द घुमाया जा सकता है, जिससे किसी घटना के निर्देशांक बदल जाते हैं। –अनु०

कहेंगे। हाँ, यह अवश्य है कि पाइथागोरस के प्रमेय के अनुसार दोनों प्रक्षेपों के वर्गों के जोड़ का वर्गमूल पहले के समान (L) ही रहेगा क्योंकि यह तो दोनों बिंदुओं के बीच वास्तविक दूरी बतलाता है, जो कि अक्षों को घुमाने से बदलती नहीं है। अतः

$$\sqrt{a^2 + b^2} = \sqrt{a'^2 + b'^2} = L$$

हम कहते हैं कि प्रक्षेपों के वर्गों के जोड़ का वर्गमूल अक्षों को घुमाने पर बदलता नहीं है, जबकि प्रक्षेपों के मान (a, b) आपेक्षिक हैं, अर्थात् निर्देशांक–समूह पर निर्भर हैं।

अब हम ऐसे अक्ष–समूह पर विचार करें जिसमें एक अक्ष दूरी को और दूसरी समय को बतलाती है। पहले वाले उदाहरण के दो स्थिर बिंदु इस बार दो निश्चित घटनाएँ बन जाते हैं, और दोनों अक्षों पर प्रक्षेपों का अर्थ हो जाता है दोनों घटनाओं के बीच आकाश और समय की दूरी। मान लीजिए, वे दो घटनाएँ हैं पिछले अध्याय में चर्चित बैंक–डकैती और वायुयान–दुर्घटना। इन्हें दर्शाने के लिए हम दूरी व समय की अक्षों वाला चित्र बना सकते हैं (चित्र 35क), जो कि दो आकाशी निर्देशांक बताने वाले चित्र 34क से काफ़ी मिलता–जुलता है। तो अब हम इस अक्ष–काटे को घुमाने के लिए क्या करें? उत्तर ज़रा अनपेक्षित है और चकराने वाला भी : आकाश–समय वाले अक्ष–काटे को घुमाना चाहते हैं तो बस पर चढ़ जाइए!

अच्छा, तो मान लीजिए कि हम सचमुच 28 जुलाई के दुर्दिन की सुबह पाँचवीं सड़क पर चलती हुई एक बस के ऊपरी तल्ले में बैठे हैं। अब हम तो अपने को केन्द्र मानकर ही हर चीज़ को देखते–सोचते हैं। सो हमें मुख्यतः इस प्रश्न में रुचि है कि बैंक–डकैती और वायुयान–दुर्घटना **हमारी बस से** कितनी–कितनी दूर हुई – अरे भाई, इस दूरी पर ही यह निर्भर है कि हम घटना को ठीक से देख पायें या नहीं।

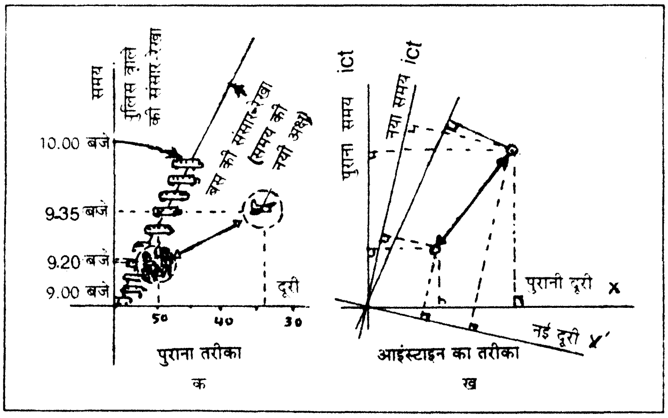


चित्र 35 : आकाश–समय के अक्ष–काटे को घुमाना

यदि आप चित्र 35क को देखें, जिसमें बस की संसार–रेखा की क्रमिक स्थितियाँ दि
हैं, और साथ ही डकैती और टक्कर की घटनाएँ भी, तो आपके ध्यान में तुरंत आ जाये
में से मापी गयी दूरियाँ वे नहीं हैं जो चौराहे पर खड़ा हुआ पुलिस का सिपाही मापेगा।
सड़क पर चलती जा रही थी – मान लीजिए, हर तीन मिनट में एक ब्लाक की गति से
(जो कि न्यूयार्क की भारी भीड़ में कोई अजीब बात नहीं है)। अतः बस पर से मापी गयी दो

के बीच आकाशी दूरी अपेक्षाकृत कम होगी। देखिए, प्रातः 9.21 बजे बस 52 वीं वीथी पार कर रही थी। अतः बैंक डकैती, जो उसी समय हो रही थी, 2 ब्लॉक दूर थी। जब तक वायुयान–टक्कर का समय आया (9.36 बजे), बस 47 वीं वीथी पर पहुँच चुकी थी, अर्थात् टक्कर के स्थान से 13 ब्लॉक दूर। अतः बस से दूरियाँ मापते हुए हम निष्कर्ष निकालेंगे कि डकैती व टक्कर के बीच आकाशी दूरी केवल 13-2 = 11 ब्लॉक थी, जबकि यही दूरी शहर के भवनों से या पुलिस के चौराहे से मापी जाती तो 50-34 = 16 ब्लॉक निकलती। चित्र 35क को फिर से देखें, तो हम पाते हैं कि बस से मापी दूरियों को खड़ी अक्ष से नहीं गिनना चाहिए (जो कि स्थिर पुलिस वाले की संसार–रेखा है), बल्कि उस तिरछी रेखा से गिनना चाहिए जो बस की संसार–रेखा है, अर्थात् वह तिरछी रेखा ही अब समय की नयी अक्ष की भूमिका में है।

ऊपर कही गयी "ऊल–फ़िज़ूल" बातों का सारांश इस प्रकार कहा जा सकता है : चलते हुए वाहन से देखी गयी घटनाओं का आकाश–समय का चित्र अंकित करने के लिए हमें पहले समय वाली अक्ष को एक निश्चित कोण पर घुमाना होगा (जो कि वाहन के वेग पर निर्भर है), जबकि आकाश वाली अक्ष को पहले के समान ही रखना होगा।

यह कथन परंपरागत भौतिकी और तथाकथित "सहजबुद्धि" के दृष्टिकोण से तो अकाट्य सत्य लगता है, परंतु चार–आयामी आकाश–समय–संबंधी हमारे नये विचारों का सीधा–सीधा विरोध करता है। वास्तव में, यदि समय को स्वतंत्र चौथा निर्देशांक माना जाये, तो **समय की अक्ष को सदा तीनों आकाशी अक्षों के अभिलंब (समकोण पर) रहना पड़ेगा***, चाहे हम बस में बैठे हों या ट्राम में या सड़क पर!

इस मोड़ पर आकर हमें दो में से एक रास्ते को चुनना होगा। या तो हम आकाश व समय के अपने पुराने ख़्यालों को बनाये रखें, और आकाश–समय की एकीकृत ज्यामिति की बात छोड़ दें, या फिर "सहजबुद्धि" से पनपे पुराने ख्यालों का बंधन तोड़ कर मान लें कि हमारे आकाश–समय के चित्र में **आकाश वाली अक्ष को भी समय की अक्ष की तरह घुमाना होगा,** ताकि दोनों परस्पर समकोण पर बनी रहें (चित्र 35ख)।

परंतु, जैसे समय की अक्ष को घुमाने का भौतिक अर्थ यह है कि **स्थिर प्रेक्षक द्वारा और चलते हुए प्रेक्षक द्वारा दो घटनाओं के बीच आकाशी दूरी अलग-अलग मापी जायेगी** (पिछले उदाहरण में 16 और 11 ब्लॉक), ठीक उसी प्रकार आकाशी अक्ष को घुमाने का अर्थ होगा कि **दो घटनाओं के बीच समय के अंतर के लिए भी स्थिर बिंदु से देखने पर एक मान प्राप्त होगा और चलते हुए वाहन से देखने पर कुछ और।** जैसे, यदि नगर–भवन की घड़ी के अनुसार बैंक डकैती और विमान–दुर्घटना के बीच 15 मिनट का अंतर था, तो किसी भी बस–यात्री के हाथ की घड़ी कुछ और ही अवधि बतायेगी – इसलिए नहीं कि दोनों घड़ियाँ किसी पुर्ज़े के दोष के कारण अलग–अलग गति से चलती हैं, बल्कि इसलिए कि **अलग-अलग वेगों से चलने वाले वाहनों में स्वयं समय ही भिन्न गतियों से बहता है, और घड़ी का यंत्र समय को उसी (धीमी) गति से दर्ज करता है।** हाँ, यह ज़रूर है कि बस इतने कम वेग से चलती है कि समय का धीमा होना बिल्कुल नगण्य है और इसे अनुभव नहीं किया जा सकता। (समय के धीमे होने की अधिक चर्चा इसी अध्याय में आगे की जायेगी।)

---

* सही–सही कहना हो तो समय की अक्ष नहीं, बल्कि (i x समय) की अक्ष आकाशी अक्ष के साथ 90° का कोण बनायेगी। याद रहे, आकाशी दूरी के समतुल्य समय नहीं, बल्कि (i x समय) है। –अनु०

एक और उदाहरण के तौर पर, ज़रा सोचिए कि एक यात्री चलती हुई रेलगाड़ी के भोजन–यान में भोजन कर रहा है। भोजन–यान के सेवक के नज़रिये से तो वह भोजन के शुरू में सलाद और बाद में मिठाई, सब एक ही स्थान (खिड़की के पास की तीसरी मेज़) पर खाता है। परंतु रेल की लाइन पर काम कर रहे दो कर्मचारी भी नीचे अलग–अलग स्थानों पर स्थिर खड़े हुए खिड़की में से उस यात्री को देखते हैं – एक तब देखता है जब वह सलाद खा रहा है और दूसरा तब जबकि वह मिठाई खा रहा है – ये दोनों घटनाएँ कई किलोमीटर के अंतर पर घटती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि : **एक प्रेक्षक के अनुसार यदि दो घटनाएँ एक ही स्थान पर परंतु दो अलग-अलग क्षणों में घटें, तो दूसरे प्रेक्षकों के दृष्टिकोण से, जो कि भिन्न वेगों से चल रहे हों, वे घटनाएँ अलग-अलग स्थानों पर घटती मानी जायेंगी।**

अब क्योंकि हम आकाश और समय को समतुल्य (एक जैसा) देखना चाहते हैं, अतः हम ऊपर के वाक्य में "स्थान" और "क्षण" की अदला–बदली कर देते हैं। अब यह वाक्य हो जाता है : **एक प्रेक्षक के अनुसार यदि दो घटनाएँ एक ही क्षण में अलग-अलग स्थानों पर घटें, तो दूसरे प्रेक्षकों के दृष्टिकोण से, जो कि भिन्न वेगों से चल रहे हों, वे घटनाएँ अलग-अलग क्षणों में घटती मानी जायेंगी।**

भोजन–यान वाले हमारे उदाहरण में हम अपेक्षा करेंगे कि वहाँ का सेवक भले ही क़सम खाकर कहेगा कि यान के दो छोरों पर बैठे दो यात्रियों ने भोजन के बाद बिल्कुल एक साथ ही पान खाये, तो भी बाहर स्थिर खड़ा हुआ कर्मचारी, जो कि गुज़रती हुई गाड़ी की खिड़की में से देखता है, निश्चयपूर्वक कहेगा कि एक सज्जन ने पहले पान मुँह में डाला और दूसरे ने बाद में। **अतः एक प्रेक्षक के दृष्टिकोण से एक ही समय पर घटने वाली दो घटनाएँ दूसरे प्रेक्षक के दृष्टिकोण से एक-दूसरी से कुछ समय के अंतर पर घटेंगी।**

ये सब उस चार–आयामी ज्यामिति के अनिवार्य परिणाम हैं जिसमें **स्थान और समय एक ही अचल चार-आयामी दूरी के स्थान-अक्ष और समय-अक्ष पर प्रक्षेप मात्र हैं।**

## 2. ईथर-पवन और "व्याध" तारे की यात्रा

अब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि आकाश व समय के बारे में हमारी पुरानी और सुविधाजनक धारणाओं में ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन लाने को क्या सिर्फ़ इसलिए उचित ठहराया जा सकता है कि हमें चार–आयामी ज्यामिति की "फ़ैशनेबल" भाषा इस्तेमाल करने का चाव है?

इस प्रश्न का उत्तर "हाँ" में देने से पहले हमें ध्यान में रखना होगा कि ऐसा कर[illegible] चिर–प्रतिष्ठित (classical) भौतिकी की पूरी व्यवस्था को चुनौती दे रहे हैं। यह व्यवस्था [illegible] समय की उन परिभाषाओं पर आधारित है जो महान आइज़ाक न्यूटन द्वारा अढ़ाई शता[illegible] बनायी गयीं : "निरपेक्ष (absolute) आकाश की यह अपनी प्रकृति है कि किसी भी चीज़ [illegible] हुए बिना यह सदा एक–सा और अचल रहता है", तथा "निरपेक्ष, सच्चा और गणितीय [illegible] आप, और अपनी प्रकृति के कारण ही, किसी भी बाहरी चीज़ से प्रभावित हुए बिना समान ढं[illegible] है।" इन पंक्तियों को लिखते हुए न्यूटन ने निश्चय ही यह नहीं सोचा होगा कि इसमें को[illegible] है या ऐसी बात है जिसे लेकर तर्क–वितर्क किया जा सके। ये आकाश व समय की वे [illegible] थीं जो किसी भी सहजबुद्धि वाले व्यक्ति के लिए स्पष्ट थीं; न्यूटन तो बस इन्हें सही–स[illegible]

व्यक्त ही कर रहे थे। सचमुच, आकाश व समय के बारे में इन चिर–प्रतिष्ठित धारणाओं के सही होने का विश्वास इतना पक्का था कि दार्शनिक अक्सर इन्हें **पहले से ही सही** मान कर तर्क करते थे और किसी भी वैज्ञानिक ने कभी सोचा तक न था (ग़ैर–विशेषज्ञ की तो बिसात ही क्या?) कि ये ग़लत भी हो सकती हैं या इनकी फिर से जाँच करने या अन्य शब्दों में कहने की ज़रूरत है। तो फिर अब इस प्रश्न पर पुनर्विचार की आवश्यकता कहाँ है?

उत्तर यह है कि आकाश व समय की चिर–प्रतिष्ठित धारणाओं को छोड़ कर एक ही चार–आयामी व्यवस्था में दोनों का एकीकरण करने के पीछे कारण आइंस्टाइन का सुंदरता का चाव मात्र नहीं था, और न ही उनकी गणितीय प्रतिभा की बेचैनी मात्र था। इसका कारण वे अड़ियल तथ्य थे जो बार–बार प्रायोगिक अनुसंधानों में से निकलते थे, और जो आकाश व समय की स्वतंत्र धारणाओं वाली बनी–बनायी व्याख्या में फ़िट बैठते ही नहीं थे।

चिर–प्रतिष्ठित भौतिक विज्ञान की सुंदर और शाश्वत लगने वाली इमारत की नींव को हिला देने वाला पहला धक्का अमरीकी भौतिकीविद ए० ए० माइकेलसन द्वारा 1887 में किये एक ऐसे प्रयोग से लगा जो इतना महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता था। इस धक्के ने बहुत मेहनत व करीने से बनी उस इमारत के लगभग हरएक पत्थर को हिला कर रख दिया और उसकी दीवारों को ध्वस्त कर दिया, जैसे हनुमान जी की गर्जना ने लंका शहर की दीवारों को कँपा दिया था। माइकेलसन के प्रयोग के पीछे जो विचार था, वह बहुत सरल है। यह उस भौतिक व्याख्या पर आधारित है जिसके अनुसार प्रकाश एक तरह की तरंग–गति है : जिस माध्यम में यह चलती है उसे "प्रकाश वहन करने वाला ईथर" कहते हैं। "ईथर" एक काल्पनिक पदार्थ है जो अंतर–तारकीय आकाश में और सभी भौतिक पदार्थों के परमाणुओं के बीच के खाली स्थान में भी एक समान समाया हुआ है।

किसी तालाब में एक पत्थर फेंकिए, और तरंगें लहराती हुई सभी दिशाओं में निकल पड़ेंगी। इसी तरह चमकीले पिंड से निकलने वाला प्रकाश भी तरंगों में प्रकट होता है, और कंपन करती हुई धातु की पत्ती में से निकलती ध्वनि भी। पानी की सतह की तरंगें तो स्पष्ट ही जल–कणों की गतियों से बनती हैं, और हमें यह भी मालूम है कि ध्वनि–तरंगें हवा या दूसरे पदार्थ, जिसमें से ध्वनि गुज़र रही हो, उसके कणों के कंपन से बनती हैं। परंतु हमें कोई भी ऐसा भौतिक माध्यम नज़र नहीं आता जो प्रकाश–तरंगों को वहन करने के लिए ज़िम्मेदार हो। वास्तव में जिस आकाश में से प्रकाश गुज़रता है, वह बिल्कुल खाली प्रतीत होता है – उदाहरण के लिए, सूर्य की रोशनी खाली अंतरिक्ष में से गुज़रती हुई कैसे मज़े से हम तक पहुँच जाती है!

अब यदि कंपन करने वाला कोई पदार्थ हो ही नहीं, तो कंपन और तरंग के बारे में बात करना कितना बेतुका लगेगा ! अतः भौतिक–वैज्ञानिकों को एक नयी धारणा, "प्रकाश–वाहक ईथर", शुरू करनी पड़ी, ताकि प्रकाश के चलने की व्याख्या में "कंपन" की क्रिया करने वाला कोई कर्ता तो हो। शुद्धतः व्याकरण की दृष्टि से देखें, जिसमें कि किसी भी क्रिया का कर्ता होना अनिवार्य है, तो "प्रकाश–वाहक ईथर" के अस्तित्व से इन्कार करना संभव नहीं है। परंतु – और यह बहुत बड़ी "परंतु" है – व्याकरण के नियम हमें यह तो नहीं बताते, और बता सकते भी नहीं हैं, कि वाक्य की रचना शुद्ध करने के लिए उसमें कर्ता के तौर पर जो भी पदार्थ रखा जाये, उसके भौतिक गुण क्या होंगे !

यदि हम कहें कि प्रकाश का अर्थ है प्रकाश–ईथर में चलने वाली तरंगें, और "प्रकाश–ईथर" की परिभाषा में कहें कि यह **वही** है जिसमें प्रकाश की तरंगें प्रवाहित होती हैं, तो यह सत्य अवश्य

होगा, परंतु इस गोल–चक्कर में कोई काम की बात नहीं मिलेगी। वास्तव में प्रकाश ईथर **क्या** है, इसके भौतिक गुण क्या हैं, यह मालूम करना बिल्कुल अलग बात है। यहाँ कोई व्याकरण काम नहीं आयेगी (संस्कृत व्याकरण भी नहीं), और इसका उत्तर भौतिक विज्ञान में ही ढूँढ़ना पड़ेगा।

जैसा कि आने वाली चर्चा के दौरान स्पष्ट हो जायेगा, उन्नीसवीं सदी की भौतिकी की सबसे बड़ी ग़लती यह मान लेने में थी कि इस प्रकाश–ईथर के गुण हमारे परिचित साधारण भौतिक पदार्थों के गुणों से बहुत मिलते–जुलते हैं। प्रकाश–ईथर की तरलता, कठोरता, लचीलेपन के गुण और यहाँ तक कि इसके भीतरी घर्षण तक की बातें कही जाती थीं। उदाहरण के लिए, प्रकाश–ईथर के बारे में इस तथ्य को लीजिए कि जब यह प्रकाश–तरंगों का वाहक बनता है तो यह कंपन करते हुए ठोस की तरह व्यवहार करता है[1], परंतु दूसरी ओर जब आकाश के ग्रह–उपग्रह इसमें चलते हैं तो यह ज़रा भी प्रतिरोध नहीं करता और पूरी तरह तरल लगता है। इन तथ्यों के साथ मेल बैठाने के लिए प्रकाश–ईथर की तुलना लाख (लाह) जैसे पदार्थ से की जाती थी। लाख और इस प्रकार के अन्य पदार्थों के बारे में ज्ञात है कि तेज़ी से बदलने वाले बलों (जैसे ठोकर लगना) के प्रति ये पदार्थ काफ़ी कठोर और भंगुर (फूटने वाले) होते हैं, परंतु लंबे समय के लिए मुक्त छोड़ देने पर अपने ही भार के मारे शहद की तरह बहने लगते हैं। पुरानी भौतिकी में यह मान लिया गया कि पूरे अंतर–तारकीय आकाश में व्याप्त प्रकाश–ईथर भी इसी के सदृश है : प्रकाश के गुज़रने से जो द्रुत विकृतियाँ होती हैं*, उनके प्रति यह कठोर ठोस जैसा रहता है, परंतु जब ग्रह व तारे प्रकाश की अपेक्षा हज़ारों गुणा धीमे चलते हुए इसमें से रास्ता बनाते जाते हैं तो यह बिल्कुल पतले द्रव की भाँति व्यवहार करता है।

स्पष्ट है कि ऊपर कही थ्योरी में एक बिल्कुल अज्ञात चीज़ पर, जिसका उस समय सिर्फ़ नाम ही था, साधारण परिचित सामग्रियों के गुण थोपने की बात थी। ऐसा गुण–आरोपी दृष्टिकोण बिल्कुल शुरू से ही पूरी तरह असफल रहा। प्रकाश–किरणों के इस रहस्यमय वाहक के गुणों की कोई भी तर्कसंगत यांत्रिक व्याख्या नहीं की जा सकी, हालाँकि प्रयास तो कई किये गये।

वर्तमान ज्ञान के आलोक में हम आसानी से देख सकते हैं कि उस प्रकार की कोशिशों में ग़लती कहाँ थी। अब हम जानते हैं कि साधारण पदार्थों के सारे यांत्रिक गुण कहाँ से पैदा होते हैं : जिन अणु–परमाणुओं से वे पदार्थ बने हैं, उनकी आपसी अंतर–क्रियाओं से। उदाहरण के तौर पर, पानी की अतिशय तरलता, रबर का लचीलापन और हीरे की कठोरता इस तथ्य पर निर्भर हैं कि पानी के अणु घर्षण के बिना एक–दूसरे के पास से निकल सकते हैं, रबर के अणु आसानी से मोड़े या खींचे जा सकते हैं, और हीरे के क्रिस्टल को बनाने वाले कार्बन के परमाणु एक कठोर ढाँचे में मज़बूती से बँधे हुए हैं। इस प्रकार विविध पदार्थों के सभी सामान्य यांत्रिक गुण उनकी परमाणविक ... परिणाम हैं, परंतु इस ईथर जैसे पूरी तरह एक–समान (परमाणुहीन) पदार्थ पर इस नियम ... करने में कोई तुक ही नहीं बनती।

अतः प्रकाश–ईथर एक अजीब किस्म का पदार्थ है; "पदार्थ" कहलाने वाले हमारे परमाणुओं के जाल के साथ इसकी कोई समानता नहीं है। कहने को हम प्रकाश–ईथर क...

---

[1] यह प्रमाणित किया जा चुका था कि कंपन, प्रकाश के चलने की दिशा के आड़े (लंबवत) होते हैं। साधारण ... सिर्फ़ ठोसों में ही ऐसे आड़े कंपन हो सकते हैं, जबकि द्रवों व गैसों में कंपन करने वाले कण सिर्फ़ उसी दि... कर सकते हैं जिस दिशा में तरंग चल रही हो।

* यहाँ याद रखना होगा कि प्रकाश के गुज़रने से 1 सैकंड में लगभग $10^{15}$ बार कंपन होता है। –अनु०

कह सकते हैं (कम से कम इसलिए कि यह व्याकरण में "कंपन" क्रिया के कर्ता की भूमिका में है), परंतु हम इसे "खाली आकाश" भी कह सकते हैं। ध्यान में रखिए कि **आकाश के भी कुछ रूपात्मक या ढाँचागत गुण हो सकते हैं,** जैसा कि हम पहले देख चुके हैं और आगे भी देखेंगे। इन गुणों से आधुनिक आकाश यूक्लिडीय ज्यामिति वाले आकाश की अपेक्षा बहुत अधिक जटिल चीज़ हो गया है। वास्तव में, आधुनिक भौतिकी में "प्रकाश–ईथर" (पहले के थोपे हुए यांत्रिक गुणों को छोड़ कर) और "भौतिक आकाश", ये दोनों शब्द समानार्थक समझे जाते हैं।

ज़रा रुकिए, हम "प्रकाश–ईथर" के दार्शनिक और ज्ञानमूलक विश्लेषण में बहुत दूर जाकर अपने मुख्य मार्ग से भटक गये हैं, और अब हमें माइकेलसन के प्रयोग के विषय पर लौट आना चाहिए। जैसा हम पहले कह चुके हैं, इस प्रयोग के पीछे विचार बहुत ही सरल है। प्रकाश यदि ईथर में से गुज़रती हुई तरंगों से बना है, तो जब हम पृथ्वी की सतह पर स्थित उपकरणों द्वारा प्रकाश के वेग को मापने का प्रयास करेंगे, तो यह माप पृथ्वी की गति के कारण ज़रूर गड़बड़ा जायेगी। क्योंकि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा के क्रम में तेज़ी से चल रही है, अतः हमें पृथ्वी पर खड़े होने पर "ईथर का झोंका" लगना चाहिए, उसी तरह जैसे तेज़ चलने वाले जहाज़ की छत पर खड़ा हुआ आदमी बिल्कुल शांत मौसम के बावजूद अपने चेहरे पर हवा का झोंका अनुभव करता है। अच्छा, ठीक है, **हम** ईथर का झोंका इसलिए महसूस नहीं करते कि ऐसा माना जाता है कि ईथर किसी प्रतिरोध के बिना हमारे शरीर के परमाणुओं के बीच पैठ जाता है। परंतु प्रकाश के वेग पर तो इस झोंके का प्रभाव पड़ना ही चाहिए : अतः पृथ्वी की गति की दिशा की तुलना में विभिन्न दिशाओं में चलते हुए प्रकाश के वेग को मापने से हमें ईथर के झोंके की उपस्थिति का पता लगा सकना चाहिए। यह तो हर कोई जानता है कि पवन की गति की दिशा में चलने वाली ध्वनि का वेग, पवन की उलटी दिशा में चलने वाली ध्वनि की अपेक्षा अधिक होता है। अतः स्वाभाविक ही लगता है कि ईथर के झोंके के साथ और इसके विरुद्ध चलने वाले प्रकाश के बारे में भी ऐसा ही अंतर होना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके प्रोफ़ेसर माइकेलसन एक ऐसा उपकरण बनाने में जुट गये जो अलग–अलग दिशाओं में चलने वाले प्रकाश के वेगों में सूक्ष्म अंतर को दर्ज कर सके। कोई सोच सकता है कि इसका सबसे सरल तरीका यह होगा कि ऊपर बताया गया फ़िज़ू का उपकरण (चित्र 31ग) लिया जाये, और इसे कई दिशाओं में घुमा–घुमा कर अनेक प्रेक्षण किये जायें। परंतु यह बहुत तर्क–संगत तरीका नहीं होगा, क्योंकि इसमें बहुत उच्च स्तर की परिशुद्धता प्राप्त नहीं हो सकती। याद रहे, विभिन्न दिशाओं में प्रकाश के वेगों का अंतर (जो कि पृथ्वी के वेग के जैसा होगा) प्रकाश के वेग के एक प्रतिशत के भी सिर्फ़ सौवें भाग के समान है; अतः हमें हरएक माप को बहुत ही अधिक परिशुद्धता के साथ करना होगा।

यदि आपके पास लगभग बराबर लंबाई वाली दो छड़ें हों, और आप इन दोनों की लंबाई का अंतर मालूम करना चाहें, तो सबसे आसान तरीका यह होगा कि दोनों के एक–एक सिरे को एक साथ रख दिया जाये और दूसरे सिरे पर अंतर माप लिया जाये। इसे "ज़ीरो–पाइंट" की विधि कहते हैं। माइकेलसन के उपकरण में भी, जिसे चित्र 36 में रूपरेखा के तौर पर दिखाया गया है, इस ज़ीरो–पाइंट विधि का प्रयोग करके दो परस्पर अभिलंब दिशाओं में प्रकाश के वेगों की तुलना की जाती है।

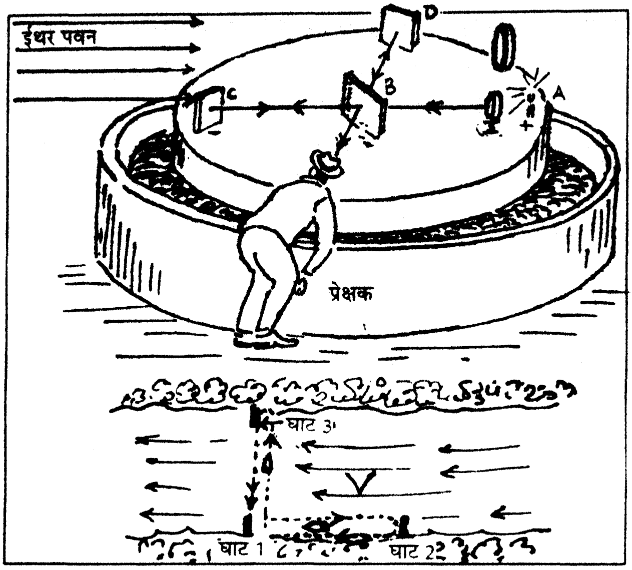


चित्र 36 : माइकेलसन का प्रसिद्ध प्रयोग

इस उपकरण का केंद्रीय भाग एक काँच की प्लेट B होती है जिसकी एक सतह चाँदी की पतली अर्द्ध–पारदर्शक परत से ढकी हुई होती है, जिससे यह अपने पर पड़ने वाले 50 प्रतिशत प्रकाश को परावर्तित (reflect) कर देती है और शेष 50 प्रतिशत को गुज़र जाने देती है। अतः स्रोत से आने वाली प्रकाश की किरण दो बराबर भागों में बँट जाती है, जो एक–दूसरे से 90° के कोण पर चले जाते हैं। ये दो किरणें केंद्रीय प्लेट से बराबर दूरियों पर रखे हुए दो दर्पणों C व D से परावर्तित होती हैं। परावर्तित किरणें वापिस केंद्रीय प्लेट की ओर आती हैं। दर्पण D से वापिस आती हुई किरण चाँदी की पतली परत में से अंशतः गुज़र जाती है, और दर्पण C से आती हुई किरण का एक भाग उसी चाँदी की परत के द्वारा परावर्तित हो जाता है; ये दोनों आधी किरणें मिल कर एक हो जाती हैं। इस प्रकार जो दो किरणें उपकरण में प्रवेश के बिंदु पर अलग–अलग हो गयी थीं, वे (या उनके अंश) प्रेक्षक की आँख में प्रवेश करते समय एक हो जाती हैं। प्रकाशिकी के चिर–परिचित नियमों के अनुसार दोनों किरणें परस्पर व्यतिकरण (interference) करेंगी, जिससे आँख को काली व उजली धारियों की शृंखला दिखाई देगी।[2] यदि BD और BC दूरियाँ बिल्कुल बराबर हों, जिससे कि दोनों किरणें एक ही समय पर केंद्रीय भाग पर आकर मिलें, तो दृश्य के केंद्र में उजली धारी होगी।* यदि दूरियों को ज़रा–सा बदल दिया जाये, ताकि एक किरण दूसरी की अपेक्षा देरी से पहुँचे, तो ये धारियाँ दाहिनी या बायीं ओर विस्थापित हो जायेंगी।

अब क्योंकि हमारा उपकरण पृथ्वी की सतह पर रखा हुआ है, और क्योंकि पृथ्वी अंतरिक्ष में तेज़ी से चल रही है, अतः हमें यह उम्मीद करनी ही चाहिए कि ईथर उतने ही वेग से उपकरण पर झोंका मारेगा जितने वेग से पृथ्वी चल रही है। मान लीजिए कि यह झोंका C से B की दिशा में आता है (जैसा चित्र 36 में दिखाया गया है), और सोचिए कि मिलन–बिंदु की ओर दौड़ती दोनों किरणों की

---

[2] पृष्ठ 99 पर भी देखें।

* वास्तव में केंद्र में काली धारी होगी, क्योंकि केंद्रीय प्लेट पर होने वाले दोनों परावर्तनों में से एक के साथ 180° का कलांतर (phase change) होता है। –अनु०

गतियों में इससे क्या फ़र्क पड़ेगा। ध्यान दीजिए कि एक किरण पहले ईथर के बहाव के विपरीत जाती है और फिर उस बहाव के साथ लौटती है, जबकि दूसरी किरण दोनों बार बहाव को समकोण पर काटती हुई चलती है। दोनों में से कौन–सी किरण पहले लौटेगी?

एक नदी की कल्पना करिए, जिसमें एक नाव पहले ऊपर की ओर (बहाव के विपरीत) घाट 1 से घाट 2 तक जाती है और फिर नीचे की ओर वापिस आती है। इस यात्रा के पहले भाग में नदी का बहाव नाव को रोकता है और दूसरे भाग में सहायता करता है। शायद आपका अंदाज़ हो कि दोनों प्रभाव एक–दूसरे को निरस्त कर देंगे, परंतु ऐसा नहीं है। इसको समझने का एक सरल तरीका यह है कि ज़रा कल्पना कीजिए कि स्थिर पानी में नाव की गति नदी के बहाव की गति के बराबर है। ऐसे में घाट 1 से रवाना हुई नाव कभी घाट 2 तक पहुँचेगी ही नहीं! यह समझना कठिन नहीं कि आने–जाने में लगा कुल समय बहाव के कारण निम्नलिखित गुणक से गुणा होकर बढ़ जायेगा :

$$\frac{1}{1-(V/\upsilon)^2},$$

जहाँ $\upsilon$ स्थिर पानी में नाव का वेग है, और V नदी के बहाव का वेग[3] उदाहरणार्थ, यदि नाव का वेग बहाव की अपेक्षा दस गुणा है तो आने–जाने में लगने वाला समय इस गुणक से गुणा हो जायेगा :

$$\frac{1}{1-(1/10)^2} = \frac{1}{1-0.01} = \frac{1}{0.99} = 1.01,$$

अर्थात् स्थिर पानी में चलने की अपेक्षा 1 प्रतिशत अधिक समय लगेगा।

इससे मिलती–जुलती विधि से हम यह भी गणना कर सकते हैं कि नदी के आर–पार आने–जाने में बहाव के कारण कितनी अधिक देरी होगी। इस मामले में देरी होने का कारण यह है कि घाट 1 से घाट 3 की ओर जाने के लिए नाव को बिल्कुल सीधे न चल कर थोड़ा–सा दाहिने या बायें काटते हुए चलना होगा जिससे कि धारा में नीचे की ओर बहने की क्षतिपूर्ति की जा सके। इस मामले में अतिरिक्त देरी कुछ कम होगी। संबंधित गुणक आयेगा :

$$\sqrt{\frac{1}{1-(V/\upsilon)^2}},$$

अर्थात् हमारे उदाहरण में $\sqrt{1.01} = 1.005$। यहाँ सिर्फ़ ½ प्रतिशत अधिक समय लगेगा। इस फ़ार्मूला का प्रमाण बहुत सरल है और हम इसे जिज्ञासु पाठक पर छोड़ देते हैं। अब आप नदी की जगह ईथर के बहाव को ले आइए, नाव की जगह उस बहाव में चलती हुई प्रकाश–तरंग को, और घाटों के स्थान पर दोनों दर्पणों को, और आपको माइकेलसन की प्रायोगिक व्यवस्था प्राप्त हो जायेगी। जो किरण B से C तक जाकर फिर B तक वापिस आती है, उसे होने वाली देरी अब निम्नलिखित गुणक से प्राप्त होगी :

---

[3] यदि दोनों घाटों के बीच की दूरी के लिए L लिखा जाये, और यह याद रखा जाये कि नीचे की ओर जाने में नाव का वेग कुल मिला कर $\upsilon$+V और ऊपर की ओर आने में $\upsilon$-V होगा, तो हमें आने–जाने के लिए कुल समय प्राप्त होता है :

$$t = \frac{L}{\upsilon+V} + \frac{L}{\upsilon-V} = \frac{2\upsilon L}{(\upsilon+V)(\upsilon-V)} = \frac{2L}{\upsilon} \cdot \frac{1}{1-(V/\upsilon)^2}$$

$$\frac{1}{1-(V/c)^2},$$

जहाँ c ईथर में चलती हुई प्रकाश–तरंगों का वेग है। दूसरी ओर, B से D तक और वापिस B तक चलती हुई प्रकाश–किरण को होने वाली देरी दर्शाने वाला गुणक है :

$$\sqrt{\frac{1}{1-(V/c)^2}}$$

क्योंकि ईथर के झोंके का वेग, जो कि पृथ्वी के वेग के बराबर है, 30 कि0मी0 प्रति सैकंड है, और प्रकाश का वेग $3\times10^5$ कि०मी० प्रति सैकंड है, अतः इन दो किरणों को क्रमशः .01 और .005 प्रतिशत देरी हो जायेगी। क्योंकि दोनों देरियों में थोड़ा–सा अंतर है, अतः माइकेलसन के उपकरण में व्यतिकरण की धारियाँ ज़रा–सी एक ओर को हट जानी चाहिएँ।

तो आप समझ सकते हैं कि माइकेलसन को कितना आश्चर्य हुआ होगा जब इस प्रयोग को करने पर उनको व्यतिकरण की धारियाँ ज़रा भी हटती नज़र नहीं आयीं। **ऐसा लगता था कि प्रकाश के वेग पर ईथर के बहाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, चाहे प्रकाश ईथर के बहाव के साथ चल रहा हो या उसे काटते हुए।** यह तथ्य इतना चौंकाने वाला था कि खुद माइकेलसन को ही पहले–पहल इस पर विश्वास नहीं हुआ। परंतु बार–बार सावधानीपूर्वक प्रयोग को दुहराने पर इस बात में कोई संदेह नहीं रह गया कि जो परिणाम पहली बार प्राप्त हुआ वह सही था, चाहे वह कितना ही हैरान करने वाला हो।

इस अनपेक्षित परिणाम की व्याख्या करने का एक ही तरीका था कि हिम्मत करके यह मान लिया जाये कि भारी पत्थर की जिस मेज़ पर माइकेलसन के दर्पण लगे हुए थे वह पृथ्वी की गति की दिशा में सिकुड़ कर ज़रा–सी छोटी हो गयी। (इसे फित्सजेराल्ड संकुचन[4] कहते हैं।) सचमुच, यदि B और C की दूरी $\sqrt{1-(V/c)^2}$ गुणा छोटी हो जाती है, जबकि दूरी BD उतनी ही रहती है, तो दोनों किरणों को होने वाली अतिरिक्त देरी बराबर हो जाती है और व्यतिकरण–धारियों के विस्थापन की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती।

हाँ, माइकेलसन की मेज़ के सिकुड़ जाने की संभावना सुझा देना तो एक बात थी, पर इसका औचित्य समझाना उतना आसान नहीं था।[+] वैसे तो यह सच है कि किसी भी स्थिर माध्यम में से गुज़र रहे भौतिक पिंड में कुछ सिकुड़न की उम्मीद होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, झील के जल पर दौड़ती हुई नौका थोड़ी–सी सिकुड़ जाती है क्योंकि इसके पीछे के भाग में लगा इंजिन इसे आगे धकेलता है, जबकि अगले भाग पर पानी की प्रतिरोध–शक्ति लगती है। परंतु यांत्रिक (mechanical) संकुचन कितना होगा, यह नौका की धातु की मज़बूती पर निर्भर है। स्टील की बनी हुई नौका कम

---

[4] इसका नामकरण उन भौतिकीविद के नाम पर किया गया है जिन्होंने सबसे पहले इस संकुचन की बात चलायी, हालाँकि उन्होंने इसे गति के कारण उत्पन्न हुआ सिर्फ़ यांत्रिक प्रभाव माना था।

[+] आइंस्टाइन की आपेक्षिकता की थ्योरी का एक मूलभूत सिद्धांत है कि चाहे "सड़क पर खड़े होकर" देखिए या "किसी बस पर चढ़ कर", **खाली आकाश में प्रकाश का वेग सदा बराबर (c) ही नज़र आयेगा।** इससे प्रमाणित किया जा सकता है कि कोई भी वस्तु जो आपकी अपेक्षा चल रही है, उसकी लंबाई को आप कम पायेंगे। अतः माइकेलसन के प्रयोग के परिणाम को दो प्रकार से समझा जा सकता है। (क) पृथ्वी पर से देखने पर सभी दिशाओं में प्रकाश का वेग समान है; अतः दोनों किरणें प्रेक्षक तक एक साथ पहुँचती हैं। (ख) बाहरी अंतरिक्ष से देखें तो पृथ्वी और उस पर रखा उपकरण 30 कि०मी० प्रति सैकंड के वेग से चल रहे हैं। अतः दर्पणों की अपेक्षा प्रकाश का वेग दिशा के अनुसार कम या अधिक होगा, जिसकी गणना हम ऊपर कर चुके हैं। परंतु यहाँ लंबाई BC सिकुड़ कर छोटी हो जायेगी; अतः दोनों किरणें प्रेक्षक तक एक साथ पहुँचेंगी। –अनु०

सिकुड़ेगी, लकड़ी की नौका अधिक। परंतु माइकेलसन के प्रयोग में जो "कोई परिवर्तन नहीं" परिणाम आया, उसके लिए जिम्मेदार संकुचन की मात्रा सिर्फ़ वेग पर निर्भर थी, उपकरण में लगी धातुओं की मज़बूती पर बिल्कुल नहीं। जिस मेज़ पर दर्पण लगे हुए थे, वह यदि पत्थर से नहीं, बल्कि लोहे, लकड़ी या किसी दूसरी सामग्री से बनी होती, तो भी संकुचन की मात्रा ठीक उतनी ही होती। अतः स्पष्ट है कि यहाँ हम जिस परिघटना को देख रहे हैं वह एक **सार्वत्रिक प्रभाव** है, जिसके कारण सभी गतिमान चीज़ें बिल्कुल समान मात्रा में सिकुड़ जाती हैं। या, इस परिघटना का वैसा वर्णन करना हो जैसा प्रोफ़ेसर आइंस्टाइन ने 1904 में किया, तो कहेंगे कि **यह स्वयं आकाश का संकुचन है। समान गति से चलने वाली सभी चीज़ें समान रूप से सिकुड़ती हैं क्योंकि वे उस सिकुड़े हुए आकाश में ही आकार लिये हुए हैं।**

पिछले दो अध्यायों में हमने आकाश के गुणों के बारे में जो कुछ कहा है, उसके आलोक में ऊपर का कथन तर्कसंगत लगेगा। स्थिति को और भी स्पष्ट करने के लिए हम कल्पना कर सकते हैं कि आकाश एक लचीली जैली की तरह है जिसमें विभिन्न वस्तुओं की सीमाएँ अंकित हैं। जब इस आकाश (जैली) को दबा कर, फैला कर या मरोड़ कर विकृत किया जाता है, तो इसमें अंकित सभी वस्तुओं के आकार व आकृतियाँ भी अपने आप उसी तरह बदल जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में इस प्रकार आने वाली विकृतियों को, जिनका कारण आकाश की विकृति है, उन विकृतियों से अलग पहचानना होगा जिनका कारण अलग–अलग वस्तुओं पर लगने वाले बाहरी बल हैं जो कि वस्तुओं के भीतर तनाव व विकार पैदा करते हैं। चित्र 37 में दर्शाये गये दो–आयामी उदाहरण से शायद इस महत्त्वपूर्ण अंतर को समझने में सहायता मिलेगी।

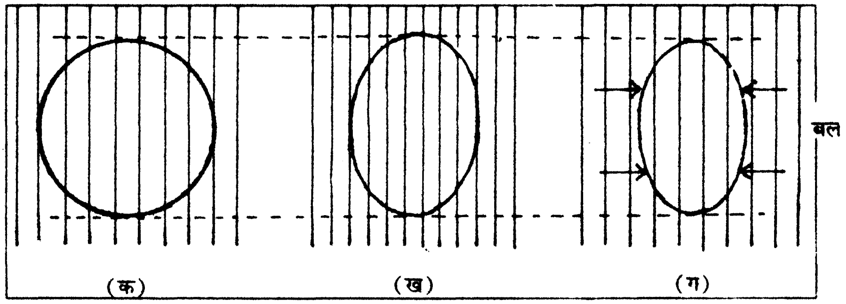


चित्र 37 : किसी भौतिक पदार्थ में दो तरह की विकृतियाँ :
आकाश के सिकुड़ने से और बलों के लगने से

हाँ, आकाश के सिकुड़ने का यह प्रभाव भले ही भौतिक विज्ञान के मूल सिद्धांतों को समझने के लिए आधारभूत महत्त्व का हो, साधारण जीवन में तो इस प्रभाव का कोई निशान नहीं मिलता, क्योंकि हमारे दैनिक अनुभव में आने वाले अधिक से अधिक वेग भी प्रकाश के वेग की तुलना में नगण्य ही होते हैं। जैसे, यदि एक कार 110 कि0मी0 प्रति घंटा की गति से दौड़ रही हो तो उसकी लंबाई को कम करने वाला गुणक होगा $\sqrt{1-(10^{-7})^2} = 0.99999999999995$, जिसका अर्थ है कि बंपर से बंपर तक कार की लंबाई में सिर्फ़ एक परमाणु के **नाभिक के व्यास के बराबर** ही कमी आयेगी। लगभग 2000 कि0मी0 प्रति घंटा की गति से उड़ने वाले कंकॉर्ड विमान की लंबाई में एक परमाणु से

भी कम संकुचन आयेगा, और 40,000 कि0मी0 प्रति घंटा के वेग से दौड़ने वाले 150 मीटर लंबे अंतरिक्षी रॉकेट की लंबाई में बस 0.0001 मिलीमीटर की ही कमी आयेगी।

परंतु यदि हम कल्पना करें कि कोई वस्तुएँ प्रकाश के वेग के 50, 90 या 99 प्रतिशत वेग से चल रही हों, तो उनकी लंबाई कम होकर मूल (स्थिर अवस्था वाली) लंबाई की क्रमशः 86, 44 या 14 प्रतिशत ही रह जायेगी।

उच्च वेग से चलने वाली सभी वस्तुओं के इस आपेक्षिकीय संकुचन को किसी अज्ञात लेखक ने निम्नलिखित छंद में पिरो कर स्मरणीय बना दिया है :

"रणवीर सूरमा था सरजू सरदार,
अति तेज़ चलाया करता था तलवार।
इस गति से खड्ग घुमाता रे,
फ़ित्सजैरल्ड संकुचन के मारे,
तलवार बिचारी बन जाती थी तार!"

यह सरजू सरदार सचमुच बिजली के वेग से तलवार भाँजता होगा।

सभी गतिमान चीज़ों में जो एक समान संकुचन देखने में आता है, उसकी व्याख्या चार–आयामी ज्यामिति के दृष्टिकोण से आसानी से की जा सकती है : यह तो अचल चार–आयामी लंबाई के आकाशी प्रक्षेप में परिवर्तन है जो आकाश–समय के अक्ष–काँटे को घुमाने के कारण हो जाता है। पिछले परिच्छेद की चर्चा से आपको याद ही होगा कि चलते हुए वाहन से किये गये प्रेक्षणों का वर्णन करने के कारण हमें निर्देशांकों की दोनों (आकाश व समय की) अक्षों को एक निश्चित कोण पर घुमाना होगा जो कि वाहन के वेग पर निर्भर है। अतः यदि स्थिर प्रयोगशाला में हमारे पास कोई चार–आयामी दूरी हो जो आकाशी अक्ष पर 100 प्रतिशत प्रक्षेप दे (चित्र 38क), तो नयी आकाशी अक्ष पर इसका प्रक्षेप (चित्र 38ख) हमेशा अपेक्षाकृत छोटा होगा।

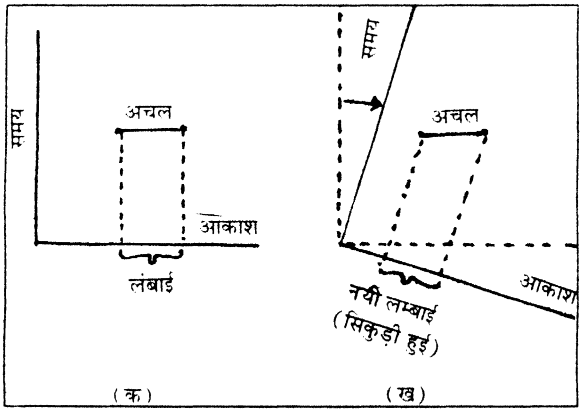


चित्र 38 : सभी गतिमान चीज़ों में संकुचन

एक महत्त्व की बात याद रखनी चाहिए कि जो दो तंत्र एक–दूसरे की तुलना में उनमें लंबाई का जो संकुचन होगा, वह पूरी तरह एक–दूसरे के आपेक्षिक होगा, अर्थात् में स्थिर वस्तु तंत्र 2 से देखने पर छोटी दीखती है तो तंत्र 2 में स्थिर वस्तु तंत्र 1 से देख ... उसी

अनुपात में छोटी दीखेगी। यदि हम ऐसी वस्तु का विचार करें जो दूसरे तंत्र में स्थिर है, अर्थात् इसको नयी आकाशी अक्ष के समांतर एक अचल रेखा के द्वारा दर्शाया जा सकता है, तो स्पष्ट है कि पुरानी वाली आकाशी अक्ष पर इसका प्रक्षेप उतने ही गुणा छोटा हो जायेगा।

अतः यह बताने की कोई ज़रूरत नहीं है कि दोनों में से **कौन-सा** तंत्र "वास्तव में" चल रहा है, और न ही ऐसा कहने का कोई अर्थ है। मतलब की बात सिर्फ़ इतनी है कि दोनों एक–दूसरे के आपेक्षिक या एक–दूसरे की तुलना में गतिमान हैं। अतः यदि भविष्य की किसी "अंतर–ग्रहीय संचार कंपनी लि0" के दो एक–से यात्री–रॉकेट–यान परस्पर उलटी दिशाओं में प्रचंड गति से चलते हुए पृथ्वी और शनि के बीच अंतरिक्ष में कहीं एक–दूसरे को पार करें, तो हर एक यान के यात्री बगल की खिड़कियों से दूसरे यान को देखकर कहेंगे कि वह तो काफ़ी सिकुड़ गया है, जबकि वे अपने–अपने यान को सिकुड़ा हुआ नहीं पायेंगे। और इस बहस से कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि कौन–सा यान "वास्तव में" सिकुड़ा है, क्योंकि हरएक यान दूसरे यान के यात्रियों के दृष्टिकोण से सिकुड़ा हुआ है, परंतु कोई भी यान अपने यात्रियों की दृष्टि में सिकुड़ा नहीं है।[5]

चार–आयामी तर्कों से हमें यह समझने में भी सहायता मिलती है कि चलती हुई वस्तुओं का आपेक्षिकीय संकुचन क्यों उल्लेखनीय तभी होता है जब उनका वेग प्रकाश के वेग के आस–पास पहुँचता है। बात यह है कि जब एक निर्देशांक–तंत्र चलता है (उदाहरणतया हमारी बस, चित्र 35) तो चार–आयामी ज्यामिति में आकाश–समय का अक्ष–काटा एक निश्चित कोण से घूम जाता है। यह कोण कितना बड़ा होगा, यह चलते हुए तंत्र के द्वारा तय की गयी दूरी और उस दूरी को तय करने में लगे समय के अनुपात पर ही निर्भर है। यदि हम दूरी को मीटरों में और समय को सैकंडों में मापें, तो यह अनुपात और कुछ नहीं, उस तंत्र (बस) का वेग ही है। परंतु चार–आयामी संसार में क्योंकि समय–अवधियों को प्रकाश के वेग से गुणा करके मीटरों में बताया जाता है, अतः घुमाव का कोण बताने वाला अनुपात वास्तव में तंत्र के वेग (मीटर प्रति सैकंड) को प्रकाश के वेग (मीटर प्रति सैकंड) से भाग करने पर प्राप्त होता है। इसलिए घुमाव का कोण, और लंबाइयों की माप पर इसका प्रभाव, दोनों तभी नगण्य से अधिक होते हैं जब दोनों तंत्रों का एक–दूसरे की अपेक्षा वेग प्रकाश के वेग के निकट पहुँचता है।

अक्ष–काटे को घुमाने पर जैसे लंबाई की माप पर प्रभाव पड़ता है, वैसे ही समय–अवधियों की माप पर भी प्रभाव पड़ता है। परंतु यह दर्शाया जा सकता है कि चौथे निर्देशांक की अजीब काल्पनिक प्रकृति के कारण समय–अवधियाँ फैल कर बड़ी हो जाती हैं जबकि दूरियाँ सिकुड़ती हैं।[6] यदि एक बहुत तेज़ चलने वाली रॉकेट–कार में घड़ी लगी हुई हो तो वह ज़मीन पर स्थिर रखी हुई वैसी ही घड़ी की अपेक्षा ज़रा धीमी चलेगी। ज़मीन पर खड़ा प्रेक्षक पायेगा कि कार की घड़ी के दो बार टिक–टिक होने के बीच की समय–अवधि 1 सैकंड से अधिक लंबी हो गयी है। जैसे लंबाइयों का सिकुड़ना सार्वत्रिक प्रभाव है, ठीक वैसे ही गतिमान घड़ी का धीमा हो जाना भी सार्वत्रिक है, जो केवल

---

[5] हाँ, यह सारा वर्णन सिर्फ़ सैद्धांतिक है। वास्तव में यदि दो राकेट–यान इतने ज़बरदस्त वेग से उड़ते हुए एक–दूसरे के पास से गुज़रें, तो एक यान के यात्री दूसरे यान को बिल्कुल देख ही नहीं पायेंगे – क्या आप राइफ़ल से दागी हुई गोली को देख पाते हैं, जिसमें कि उक्त वेग का एक छोटा–सा अंश ही होता है?

[6] या आप इसे यूँ भी कह सकते हैं कि चार–आयामी आकाश में पाइथागोरस के फ़ार्मूले में समय वाले पद में ऋण चिह्न आ जाने के कारण ऐसा होता है।

उसके चलने के वेग पर ही निर्भर है। आधुनिक इलैक्ट्रॉनिक कलाई–घड़ी, बूढ़े बाबा का पुराने फ़ैशन का पैंडुलम वाला घड़ियाल, और रेत–घड़ी – सभी समान रूप से धीमी होंगी, बशर्ते कि वे समान वेग से चल रही हों। स्वाभाविक ही, यह प्रभाव सिर्फ़ "घड़ी" या "घड़ियाल" कहलाने वाले विशेष तरह के यांत्रिक पुर्ज़ों तक सीमित नहीं है : वास्तव में सभी भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाएँ उतने ही अंश में धीमी हो जायेंगी। अतः जब आप तेज़ी से उड़ते हुए रॉकेट में नाश्ते के लिए अंडे उबालने लगेंगे तो इसका कोई ख़तरा नहीं है कि घड़ी के धीमे चलने के कारण उनको ज़रूरत से अधिक पका देंगे : अंडे के भीतर उसे पकाने वाली प्रक्रियाएँ भी तो उतनी ही धीमी हो जायेंगी न! यानी, अपनी घड़ी के अनुसार यदि आप उन्हें पाँच मिनट तक खौलते रखेंगे तो आपको वही चीज़ मिलेगी जिसे आप हमेशा "पाँच मिनट उबले हुए अंडे" मानते आये हैं। यहाँ हम उदाहरण के तौर पर रॉकेट–यान की बात कर रहे हैं, न कि रेलगाड़ी के भोजनयान की, क्योंकि जैसा लंबाई सिकुड़ने के मामले में हमने देखा था, वैसा ही समय का फैलना भी तभी ध्यान में आने योग्य होता है जब किसी वस्तु का वेग प्रकाश के वेग के आस–पास हो। समय के फैलाव में भी वही गुणक काम आता है जो कि आकाश के संकुचन में था : $\sqrt{1-V^2/c^2}$; बस, अंतर यही है कि यहाँ इससे गुणा नहीं बल्कि भाग करना है; यदि कोई यान इतना तेज़ चलता है कि लंबाइयाँ सिकुड़ कर आधी रह जाती हैं, तो समय–अवधियाँ फैल कर दुगुनी हो जायेंगी।

गतिमान तंत्र में समय की गति धीमी हो जाने का एक रोचक परिणाम है जो अंतर–तारकीय यात्रा में प्रकट होगा। मान लीजिए आप व्याध (Sirius)* के एक ग्रह की यात्रा करने का इरादा करें, जो कि हमारे सौर परिवार से नौ प्रकाश–वर्ष दूर है। इस यात्रा के लिए, मान लीजिए, आप एक रॉकेट–यान का उपयोग करें जो लगभग प्रकाश के वेग से चल सकता है। स्वाभाविक ही आप सोचेंगे कि व्याध तक जाने–आने में आपको कम से कम अठारह वर्ष लगेंगे और इसलिए आप खाद्य सामानों का बहुत बड़ा भंडार अपने साथ ले जाने की सोचेंगे। परंतु यह परेशानी बिल्कुल अनावश्यक होगी यदि आपके रॉकेट–यान के यंत्र इतने तगड़े हों कि आप लगभग प्रकाश के वेग से यात्रा कर सकें। उदाहरणतया, यदि आप प्रकाश के वेग के 99.99999999 प्रतिशत वेग से चलें, तो आपकी कलाई की घड़ी, आपका हृदय व फेंफड़े, आपकी पाचन–क्रियाएँ और दिमाग़ी क्रियाएँ, सभी 70,000 गुणा धीमी हो जायेंगी, और पृथ्वी से व्याध तक और फिर वापिस पृथ्वी तक आने में लगने वाले 18 वर्ष (हाँ, पृथ्वी पर छूट गये लोग इतने ही वर्ष गिनेंगे) आपको बस चंद घंटे ही मालूम होंगे। सचमुच, यदि आप नाश्ता करने के बाद पृथ्वी से चलें, तो जब आपका यान व्याध के किसी ग्रह पर उतरेगा तो आप थोड़ी देर वहाँ के नज़ारे देखने के बाद दोपहर के भोजन के लिए तैयार होंगे। अगर आप जल्दी में हों, और भोजन के बाद कुछ काम–काज निपटा कर तुरंत ही वापिस चल दें, तो पूरी संभावना है कि शाम की चाय के समय तक पृथ्वी पर लौट आयेंगे। पर हाँ, यदि आप आपेक्षिकता के नियमों को भूल गये होंगे तो आपको ज़बरदस्त हैरानी होगी : घर पहुँचने पर आप पायेंगे कि आपके मि[illegible] आपको अंतर–तारकीय अंतरिक्ष में कहीं खो गया मान कर आशा छोड़ बैठे हैं और आप[illegible] हज़ार बार खाना खा चुके हैं। क्योंकि आप लगभग प्रकाश के वेग से यात्रा कर रहे थे, [illegible] वालों के 18-20 वर्ष का समय आपको एक दिन से भी कम प्रतीत होगा।**

* रात के आसमान में सबसे अधिक चमकने वाला तारा। –अनु०

**आप शंका कर सकते हैं कि जब आपकी घड़ी के अनुसार पृथ्वी से व्याध तक पहुँचने में चंद [illegible] आपका वेग लगभग प्रकाश के वेग के बराबर था, अतः आपके द्वारा तय की गयी दूरी चंद प्रक[illegible] चाहिए, न कि 9 प्रकाश–वर्ष। ख़ैर, इसमें हैरान होने की कोई बात नहीं है। आपके यान से [illegible] का यह ग्रह, दोनों ही प्रकाश के वेग के 99.99999999 प्रतिशत वेग से दौड़ते दीखते हैं; अतः [illegible] सिकुड़ कर सचमुच चंद प्रकाश–घंटे ही रह जाती है। –अनु०

अच्छा, अब प्रकाश से भी तेज़ चलने की कोशिश करें तो कैसा रहे? इस प्रश्न का उत्तर अंशतः एक और आपेक्षिकीय छंद में मिलेगा :

"कन्या थी एक ग़ज़ब की, मिस बरसात,
चलने में करती थी प्रकाश को मात।
निकली वह इक दिन घर से,
औ' आइंस्टीनी वर से,
लो, वापिस आ पहुँची पिछली ही रात!"

हाँ, निश्चय ही, जब गतिमान तंत्र का वेग प्रकाश–वेग के पास पहुँचने से समय धीमा बीतने लगता है, तब प्रकाश से भी पेशतर महावेग हो जाने पर तो समय उलटी ओर बहने लगेगा। इसके अलावा, समय के भाजक के वर्गमूल के भीतर चिह्न बदल जाने के कारण समय अधिकल्पित मात्रा हो जायेगा, अर्थात् समय का निर्देशांक वास्तविक बन जायेगा और इस प्रकार एक आकाशी दूरी को व्यक्त करेगा। ठीक उसी तरह प्रकाश से अधिक तेज़ चलते हुए तंत्र में लंबाइयाँ भी सिकुड़ कर शून्य हो जाने के बाद अधिकल्पित हो जायेंगी, और इस प्रकार समय–अवधियों में बदल जायेंगी।

यदि यह सब संभव होता, तो चित्र 33, जिसमें आइंस्टाइन को (कल्पना में) एक मीटर की छड़ को अलार्म घड़ी में बदलते हुए दिखाया गया है, हक़ीक़त बन जाता, बशर्ते कि इस प्रदर्शन के दौरान वे प्रकाश से अधिक तीव्र वेग प्राप्त कर सकते!

हाँ, यह भौतिक संसार कुछ ऊटपटाँग तो है, पर **उतना** उलटा भी नहीं है, और इस तरह के काले जादू के स्पष्टतः असंभव होने की बात को संक्षेप में यूँ कह सकते हैं कि **कोई भी भौतिक वस्तु प्रकाश के वेग के बराबर या उससे अधिक वेग से नहीं चल सकती।**

प्रकृति के इस मूलभूत नियम का भौतिक आधार इस तथ्य में है कि जब किसी **चलती हुई वस्तु का वेग प्रकाश के वेग तक पहुँचता है तो उस वस्तु का द्रव्यमान (भार) बढ़ता हुआ हर सीमा को लाँघ जाता है।** द्रव्यमान तो वस्तु की जड़ता की माप है; इसके बढ़ने का अर्थ है कि वस्तु को और अधिक तेज़ (त्वरित) करने के प्रति प्रतिरोध बढ़ जायेगा। यह तथ्य ढेरों प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुका है। जैसे, यदि एक पिस्तौल की गोली प्रकाश के वेग के 99.99999999 प्रतिशत वेग से चलती है, तो और अधिक तेज़ चलाने (त्वरण) के लिए इस पर उतना अधिक बल लगाना होगा, जितना 12 इंची तोप के गोले पर लगाना पड़ता। और प्रकाश के वेग के 99.99999999999999 प्रतिशत वेग पर हमारी छोटी–सी गोली में जड़ता–रूपी प्रतिरोध उतना ही होगा जितना कि मालगाड़ी के लदे हुए डिब्बे का। इस गोली पर कितना भी अधिक बल क्यों न लगा लें, हम कभी भी उस आख़िरी दशमलव से ऊपर उठ कर इसके वेग को प्रकाश के वेग के बिल्कुल बराबर नहीं कर पायेंगे, जो कि ब्रह्मांड के हर वेग की अंतिम सीमा है!

## 3. वक्र आकाश और गुरुत्व की पहेली

बेचारे पाठक पिछले पंद्रह पृष्ठों के दौरान ज़रूर ऐसा महसूस कर रहे होंगे मानो चारों निर्देशांकों की अक्षों पर जहाँ–तहाँ गिरते–पड़ते भटक रहे हों। इसके लिए समुचित खेद व क्षमा–याचना व्यक्त करते हुए अब हम उन्हें **वक्र (मुड़े हुए) आकाश** की सैर पर आमंत्रित करते हैं।

वक्र रेखा और वक्र सतह क्या होती है, यह तो हर कोई जानता है, पर "वक्र आकाश" का क्या अर्थ हो सकता है? इस तरह की बात सोचने में काफ़ी दिक्कत आती है। इस अवधारणा के अजीब होने से उतनी दिक्कत नहीं आती, जितनी इस बात से कि वक्र रेखाओं और वक्र सतहों को तो हम बाहर से देख सकते हैं, जबकि तीन–आयामी आकाश की गोलाई को **भीतर से ही** देखना होगा, क्योंकि हम स्वयं इस आकाश में हैं। कोई तीन–आयामी मानव जिस आकाश में रहता है उसी की गोलाई या वक्रता की कैसे कल्पना कर सकता है? यह समझने के लिए, आइए, पहले एक सतह पर रहने वाले दो–आयामी छाया–जंतुओं के काल्पनिक संसार को ही लें। चित्र 39क और 39ख में हम सपाट और वक्र (गोलाकार) "सतही संसारों" के सतही विज्ञानियों को देखते हैं जो अपने–अपने दो–आयामी आकाशों की ज्यामिति का अध्ययन कर रहे हैं। निश्चय ही, ज्यामिति की सरल से सरल दो–आयामी आकृति त्रिभुज ही है, अर्थात् वह आकृति जो तीन ज्यामितीय बिंदुओं को आपस में मिलाने वाली तीन सीधी रेखाओं से बनती है। जैसा कि हर किसी को उच्च विद्यालय की ज्यामिति के पाठ से याद ही होगा, समतल पर खींचे त्रिभुज के तीन कोणों का जोड़ 180° के बराबर होता है। परंतु यह आसानी से दर्शाया जा सकता है कि यह सूत्र गोले की सतह पर बनाये गये त्रिभुजों पर लागू नहीं होता। सचमुच, यदि ग्लोब पर ऐसा त्रिभुज बनाया जाये जिसकी दो भुजाएँ उत्तरी ध्रुव से दो अलग–अलग देशांतर–रेखाओं के साथ–साथ फैलती जायें और तीसरी भुजा इन दोनों द्वारा काटा गया किसी समांतर (अक्षांश) रेखा का भाग हो, तो इस त्रिभुज के आधार के दोनों कोण समकोण होंगे, और शीर्ष पर 0° और 360° के बीच कोई भी कोण हो सकता है।* चित्र 39ख में दो छाया–रूपी विज्ञानी जिस उदाहरण का अध्ययन कर रहे हैं, उसमें तीनों कोणों का जोड़ 210° है। अतः हम देखते हैं कि अपने दो–आयामी संसार में ज्यामितीय आकृतियों का अध्ययन करके ये छाया–रूपी विज्ञानी अपने संसार की गोलाई की खोज कर सकते हैं, वह भी इसे बाहर से देखे बिना ही।

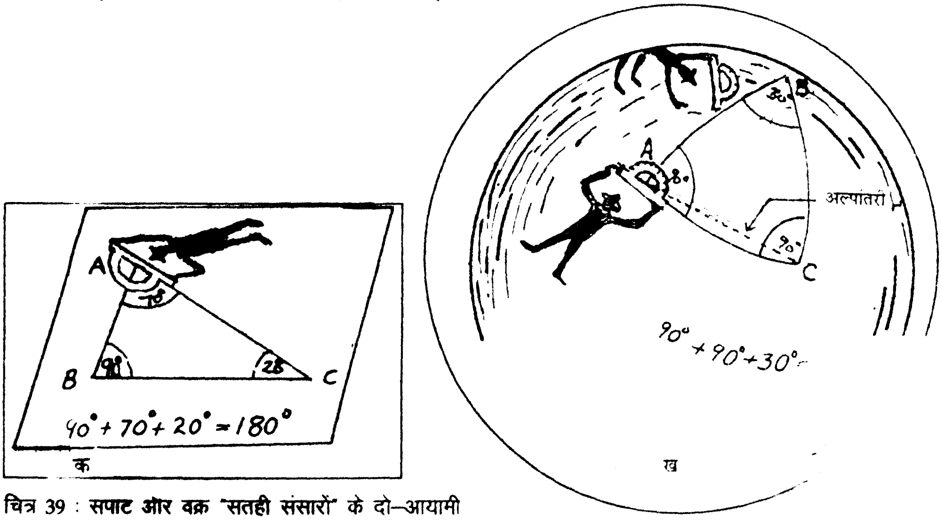


चित्र 39 : **सपाट और वक्र "सतही संसारों"** के दो–आयामी
विज्ञानी त्रिभुज के कोणों **का जोड़ करके** यूक्लिड के प्रमेय की सत्यता को जाँच रहे हैं

ऊपर बताये तरीके को तीन–आयामी संसार पर लागू करते हुए हम स्वाभाविक
पर पहुँचते हैं कि **तीन-आयामी आकाश में रहने वाले मानव-रूपी विज्ञानी बाहर किर**

* वास्तव में अधिकतम कोण 360° नहीं, बल्कि 180° होगा, क्योंकि त्रिभुज का आधार एक सरल रेखा
के बीच सबसे छोटा रास्ता है। –अनु०

**में कूदे बिना भी इस आकाश की गोलाई के बारे में मालूम कर सकते हैं – बस, उन्हें अपने आकाश के किन्हीं तीन बिंदुओं को मिलाने वाली तीन सरल रेखाओं के बीच के कोण मापने होंगे।** यदि तीनों कोणों का जोड़ 180° के बराबर है तो यह आकाश सीधा है; अन्यथा आकाश ज़रूर वक्र होगा।

परंतु इस तर्क को आगे बढ़ाने से पहले हमें कुछ विस्तार से चर्चा करनी होगी कि "सरल रेखा" का सही–सही अर्थ क्या है। चित्र 39 क और 39 ख में दिखाये गये दो त्रिभुजों को देख कर पाठक संभवतः कहेंगे कि समतल पर बने हुए त्रिभुज की भुजाएँ (चित्र 39 क) तो सचमुच सरल रेखाएँ हैं, परंतु गोले पर बने त्रिभुज की भुजाएँ (चित्र 39 ख) वास्तव में वक्र हैं – इनमें दो तो गोले की सतह पर बनने वाले दो महावृत्तों[7] की चापें हैं, जबकि तीसरी भुजा (आधार) एक अन्य वृत्त का भाग है।

ऐसा कहना हमारे सहजबुद्धि वाले ज्यामितीय विचारों पर आधारित है। परंतु इसका अर्थ तो यह होगा कि छाया–रूपी विज्ञानियों के पास अपने दो–आयामी आकाश की ज्यामिति विकसित करने की कोई संभावना ही नहीं है। नहीं, हमें सरल रेखा की अवधारणा को एक सर्व–सामान्य परिभाषा देनी होगी जो यूक्लिडीय ज्यामिति (अर्थात समतल की ज्यामिति) को तो बरकरार रखेगी ही, साथ ही इससे आगे बढ़ कर अधिक जटिल किस्म की सतहों व आकाशों पर खींची रेखाओं को भी शामिल करेगी। ऐसा सामान्यीकरण किया जा सकता है यदि **"सरल रेखा" की परिभाषा होः वह रेखा जो अपने आकाश या सतह पर ही चलती हुई दो बिंदुओं के बीच छोटी-से-छोटी दूरी व्यक्त करे।** समतल ज्यामिति में तो यह परिभाषा निश्चय ही सरल रेखा की साधारण परिभाषा से मेल खाती है; गोलाई वाली जटिल सतहों पर इस परिभाषा से ऐसे रेखा–परिवार मिलते हैं जो यहाँ वही भूमिका निभाते हैं जो कि साधारण "सरल रेखाएँ" यूक्लिड की ज्यामिति में निभाती हैं। समझने में भ्रम न हो, इसलिए वक्र सतहों पर न्यूनतम दूरी बताने वाली रेखाओं को अक्सर भूगणितीय या **अल्पांतरी रेखाएँ** (geodesics) कहा जाता है, क्योंकि पहले–पहल यह धारणा भू–गणित में लायी गयी थी – भू–गणित यानी पृथ्वी की सतह पर माप करने का विज्ञान। सचमुच, जब हम मुंबई और कलकत्ता के बीच "सीधी दूरी" की बात करते हैं, तो हमारा मतलब होता है "उसी प्रकार सीधी जैसी कौवे की उड़ान होती है", जो कि पृथ्वी की सतह की गोलाई के साथ–साथ उड़ता है; वैसी सीधी नहीं जैसे कोई काल्पनिक खदान का बरमा पृथ्वी की चट्टानों को छेदते हुए सीधा चलेगा।

ऊपर "सामान्यीकृत सरल रेखा" की परिभाषा दी गयी : कि यह दो बिंदुओं के बीच की न्यूनतम दूरी बताती है। इससे हमें ऐसी रेखा की रचना की आसान भौतिक विधि मिल जाती है : **उन दो बिंदुओं के बीच एक धागे को तान दिया जाये।** यदि आप समतल सतह पर ऐसा करें तो साधारण सरल रेखा ही बनेगी। यदि आप यही काम किसी गोले पर करें तो आप पायेंगे कि वह धागा तन कर किसी महावृत्त की चाप बनाता है, जो कि गोलाकार सतह पर भूगणितीय रेखा है।[+]

---

[7] महावृत्त (great circle) यह वृत्त है जो गोले के केंद्र से गुज़रने वाले किसी समतल के काटने पर गोले (ग्लोब) की सतह पर बनता है। सभी देशांतर–रेखाएँ इसी प्रकार के महावृत्त हैं और भूमध्य–रेखा भी। (परंतु अक्षांश बताने वाले अन्य वृत्त महावृत्त नहीं हैं। –अनु०)

[+] इससे स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर ग्लोब पर जो त्रिभुज बनाया गया (चित्र 39ख), उसमें गलती हुई है। उत्तरी ध्रुव से निकलती हुई दो देशांतर–रेखाएँ तो महावृत्तों के भाग होने के कारण ठीक हैं, परंतु तीसरी रेखा समांतर या अक्षांश–रेखा है; इसे सरल रेखा या भूगणितीय रेखा नहीं माना जा सकता। अतः त्रिभुज केवल एक स्थिति में सही बनेगा : जब त्रिभुज की तीसरी भुजा भूमध्य–रेखा का भाग हो। यदि आप इस बात को भूल जायेंगे तो शायद सोच सकते हैं कि पृथ्वी की सतह पर बने छोटे–से त्रिभुज के कोणों का जोड़ भी 180° से काफ़ी अधिक होना चाहिए, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। –अनु०

संसार में हम रहते हैं, वह सपाट है या वक्र। बस, इतना ही करना ज़रूरी होगा कि आकाश के तीन बिंदुओं के बीच धागे तान दिये जायें, और देख लिया जाये कि उनके बीच बने तीनों कोणों का जोड़ 180° है या नहीं। परंतु ऐसे प्रयोग की योजना बनाने में हमें दो महत्त्वपूर्ण बातें याद रखनी होंगी। पहली, प्रयोग को अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर ही किया जाये, क्योंकि किसी भी वक्र सतह या आकाश का बहुत छोटा भाग लेने पर तो वह बिल्कुल सपाट लगेगा : आख़िर, पृथ्वी की सतह की गोलाई के बारे में भी तो हम अपने घर के पिछवाड़े में माप करके निश्चय नहीं कर सकते। दूसरी बात, यह भी हो सकता है कि वह सतह या आकाश कुछ जगहों पर सपाट और कुछ अन्य जगहों पर वक्र हो; अतः पूरा सर्वेक्षण करना पड़ेगा।

आइंस्टाइन ने वक्र आकाश की अपनी सामान्य थ्योरी के आधार में जो महान विचार शामिल किया, वह यह मान्यता है कि **भौतिक आकाश भारी-भारी पदार्थों के आसपास मुड़ कर वक्र हो जाता है** : जितना बड़ा भार होगा उतनी ही अधिक वक्रता होगी। इस पूर्व–कल्पना को जाँचने के लिए हम क्या करें ? किसी सुंदर–सी, बड़ी–सी पहाड़ी को घेरते हुए ज़मीन में तीन खूँटे गाड़ें और उनके बीच में रस्सी तान दें (चित्र 40 क), और तीनों रस्सियों के मिलने के बिंदुओं पर बनने वाले कोणों को माप

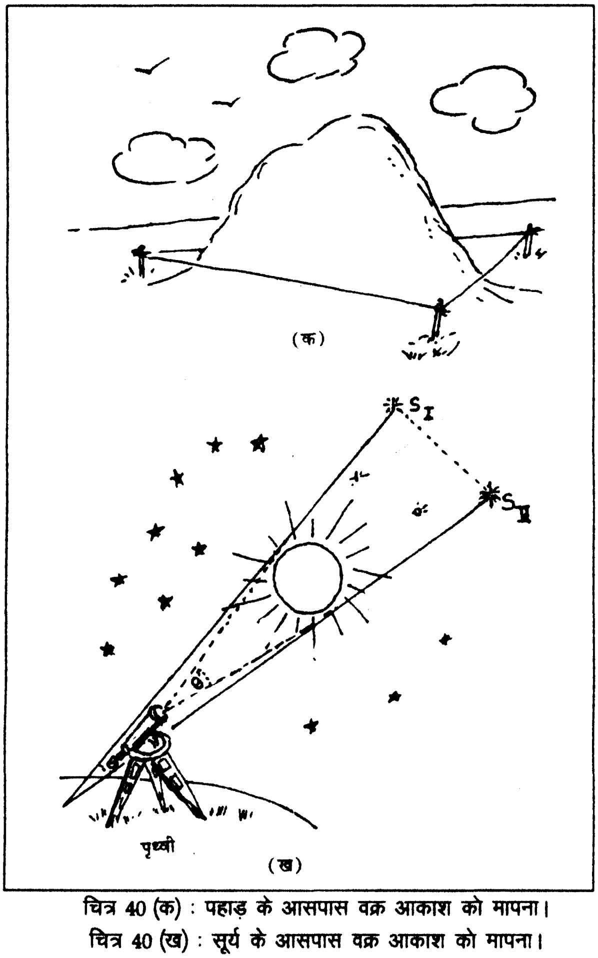


चित्र 40 (क) : पहाड़ के आसपास वक्र आकाश को मापना।
चित्र 40 (ख) : सूर्य के आसपास वक्र आकाश को मापना।

लें ? आप बड़े से बड़ा पहाड़ भी चुन लें – यहां तक कि हिमालय पर्वत की किसी चोटी को भी, तो आप पायेंगे कि (माप में संभव छोटी–मोटी त्रुटियों के अलावा) रस्सियों के मिलने के बिंदुओं पर बनने वाले तीनों कोणों का जोड़ पूरा–पूरा 180° ही होगा। फिर भी इस परिणाम का अर्थ ज़रूरी यह नहीं है कि आइंस्टाइन की बात ग़लत थी और बड़े–बड़े भारों की मौजूदगी से उनके आसपास का आकाश मुड़ता नहीं हैं। शायद हिमालय पर्वत भी आसपास के आकाश को इतना अधिक न मोड़ पाता हो कि यह विकृति हमारे सूक्ष्मतम माप के यंत्रों द्वारा दर्ज की जा सके : याद रखिए कि आख़िर गैलीलियो ने जो लालटेन के कपाट के द्वारा प्रकाश का वेग मापने का प्रयास किया था (चित्र 31), उसमें कैसी असफलता हाथ लगी थी। सो आप निराश न हों, बल्कि और भी बड़े भार, जैसे सूर्य, को लेकर फिर से प्रयास करें।

और लीजिए, सफलता मिल गयी! आप पायेंगे कि यदि आप एक धागा लेकर उसे अपनी पृथ्वी के किसी बिंदु से किसी तारे तक तान दें, और फिर वहाँ से एक अन्य तारे तक, और वहाँ से वापिस पृथ्वी वाले बिंदु तक, तारों को इस प्रकार चुनते हुए कि धागों से बने हुए त्रिभुज के बीच में सूर्य जड़ा हुआ हो, तो तीनों कोणों का जोड़ 180° से अलग होगा, और यह अतंर **मापने योग्य** होगा। यदि आपके पास ऐसा प्रयोग करने लायक लंबा धागा न हो, तो धागे की जगह प्रकाश की किरण को रख दीजिए, जो कि हर तरह से उतना ही अच्छा काम करेगी, क्योंकि प्रकाश–विज्ञान हमें सिखाता है कि प्रकाश हमेशा **छोटे-से-छोटे संभव रास्ते** पर ही चलता है।

ऐसा प्रयोग, जिसमें प्रकाश की किरणों के बीच बने कोण को मापना है, रूपरेखा के तौर पर चित्र 40 ख में दिखाया गया है। (सुदूर तारों पर बनने वाले कोणों को मापना तो ज़रा कठिन रहेगा; नीचे दिखाया गया है कि सिर्फ़ पृथ्वी पर बनने वाले एक कोण को मापने से कैसे काम चल सकता है।) प्रयोग के समय पर सूर्य की दाहिनी–बायीं ओर अवस्थित दो तारों $S_I$ व $S_{II}$ से आती हुई प्रकाश–किरणें थियोडोलाइट में प्रवेश करती हैं, जो उन दोनों के बीच का कोण मापता है। बाद में यह प्रयोग फिर दुहराया जाता है, जब सूर्य दोनों तारों के बीच में न हो।* इन दोनों कोणों की तुलना की जाती है। यदि ये कोण अलग–अलग हों, तो यह इस बात का प्रमाण होगा कि सूर्य के भार के कारण इसके आसपास के आकाश की गोलाई प्रभावित होती है, जिससे प्रकाश की किरणें अपने पहले वाले रास्ते से विचलित हो जाती हैं। सबसे पहले आइंस्टाइन ने ही ऐसे प्रयोग का सुझाव दिया था

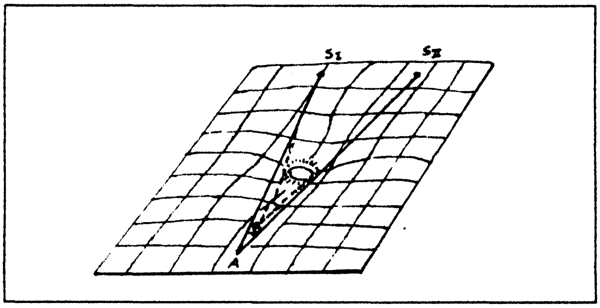


चित्र 41 : वक्र आकाश की थ्योरी का दो–आयामी प्रतिरूप

* सूर्य और तारे तो चलते नहीं हैं, परंतु छः मास के बाद जब पृथ्वी सूर्य की दूसरी ओर पहुँच जायेगी, तो सूर्य $S_I$ व $S_{II}$ के बीच नहीं, बल्कि उलटी ओर दिखाई पड़ेगा। –अनु०

जिससे उनके सिद्धांत की परीक्षा की जा सके। पाठक इस स्थिति को बेहतर समझने के लिए चित्र 41 ख को देखें, जिसमें इस स्थिति के दो–आयामी प्रतिरूप (सतह के वक्र होने) को दर्शाया गया है।

ज़ाहिर है कि साधारण परिस्थितियों में आइंस्टाइन के इस सुझाव के अनुसार प्रयोग करने में एक व्यावहारिक अड़चन थी : सूर्य की प्रचंड चमक के कारण उसके आसपास के सितारों को देखा ही नहीं जा सकता। परंतु पूर्ण सूर्य–ग्रहण के दौरान दिन में भी तारे स्पष्ट दिखाई देते हैं। इस तथ्य का लाभ उठाते हुए 1919 में एक बर्तानी खगोल–वैज्ञानिक अभियान–दल ने प्रिंसिप द्वीपों (पश्चिम अफ़्रीका) में जाकर यह परीक्षण किया, जहाँ से उस वर्ष का पूर्ण सूर्य–ग्रहण सबसे अच्छी तरह देखा जा सकता था। दोनों तारों के बीच में सूर्य के होने या न होने से दोनों तारों की कोणीय दूरी में 1.61" ± 0.30" का अंतर पाया गया,* जो कि आइंस्टाइन की थ्योरी द्वारा पूर्व--निर्धारित 1.75" से मेल खाता है। बाद के अभियानों में भी इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए।

निश्चय ही डेढ़ सैकंड का कोण कोई ख़ास बड़ा कोण नहीं है, परंतु यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि सूर्य का भार अपने आसपास के आकाश को मोड़ कर वक्र **बनाता ही है।** अब यदि हम सूर्य के स्थान पर किसी अन्य, बहुत बड़े तारे का उपयोग कर पाते, तो त्रिभुज के तीन कोणों के जोड़ के बारे में यूक्लिड की थ्योरम में कई मिनटों की या डिग्रियों की ग़लती भी पायी जा सकती थी।

तीन–आयामी आकाश में वक्रता है, जो इस आकाश के भीतर के प्रेक्षक को भी दिखायी दे सकती है, यह धारणा दिमाग़ में जमाने के लिए कुछ समय भी चाहिए और बहुत अच्छी कल्पना–शक्ति भी। परंतु एक बार इसे ठीक से पचाने भर की देर है; फिर यह उतने ही स्पष्ट और निश्चित रूप से नज़र आयेगी जितनी कि पुरानी ज्यामिति की कोई भी परिचित अवधारणा।

आइंस्टाइन की वक्र आकाश की थ्योरी क्या है, और सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण (universal gravitation) की समस्या के साथ इस थ्योरी का संबंध क्या है, इसे पूरी तरह समझने के लिए अब हमें सिर्फ़ एक और महत्त्वपूर्ण सीढ़ी चढ़नी होगी। इसके लिए हमें याद रखना होगा कि सभी भौतिक परिघटनाओं की पृष्ठभूमि चार–आयामी आकाश–समय है, और जिस तीन–आयामी आकाश की हम चर्चा करते आये हैं, वह तो इस चार–आयामी आकाश–समय के संसार का एक भाग (या एक प्रक्षेप) ही है। अतः स्थान–रूपी आकाश की गोलाई को बृहत्तर आकाश–समय के संसार की चार–आयामी गोलाई का एक आयाम ही मानना होगा, और **संसार में प्रकाश-किरणों तथा भौतिक वस्तुओं की गति को दर्शाने वाली चार-आयामी संसार-रेखाओं को इस महा-आकाश में वक्र रेखाएँ ही समझना होगा।**

इस मुद्दे (गुरुत्वाकर्षण) को ऊपर कहे दृष्टिकोण से विश्लेषित करते हुए आइंस्टाइन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि **गुरुत्व की परिघटना और कुछ नहीं, बस चार-आयामी आका[illegible] संसार की गोलाई या वक्रता का ही प्रभाव है।** वास्तव में, यह पुरानी मान्यता अब अपय[illegible] है कि सूर्य ग्रहों पर एक बल लगाता है जो प्रत्यक्ष रूप से खींच कर उन्हें सूर्य के आसप[illegible] कक्षाओं में चलाता है। इसके स्थान पर यह कहना अधिक सही होगा कि सूर्य का भार [illegible] आकाश–समय के संसार को वक्र बना देता है, और **ग्रहों की संसार-रेखाएँ, जैसी चित्र 3[illegible] गयी हैं, वक्र सिर्फ़ इसलिए दीखती हैं कि वे उस वक्र आकाश में से गुज़रती हुई भूगणि[illegible] से छोटी) रेखाएँ हैं।**

* कोण की माप में एक मिनट (1') एक अंश (डिग्री) का साठवाँ भाग है; इसी प्रकार एक मिनट का साठवाँ [illegible] (1") कहलाता है। –अनु०

अतः गुरुत्वाकर्षण एक स्वतंत्र बल है, ऐसी अवधारणा हमारे विज्ञान की चर्चाओं से पूरी तरह ग़ायब हो जाती है, और इसके स्थान पर शुद्ध ज्यामिति व आकाश की अवधारणाएँ आ जाती है, जिनमें सभी भौतिक वस्तुएँ "सीधी रेखाओं" (भूगणितीय रेखाओं) पर चलती हैं, जिसका अर्थ है कि वे बड़े–बड़े भारों की मौजूदगी से पैदा हुई गोलाई के साथ–साथ मुड़ती चलती हैं।**

## 4. बंद और खुले आकाश

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले आइंस्टाइन की आकाश–समय की ज्यामिति की एक अन्य महत्त्वपूर्ण समस्या की भी संक्षेप में चर्चा करनी ही पड़ेगी। वह समस्या है ब्रह्मांड के ससीम (finite) या असीम (infinite) होने की दुविधा।

अभी तक तो हम बड़े–बड़े भारों के निकट आकाश की स्थानीय वक्रताओं की ही चर्चा करते आये हैं, जो कि ब्रह्मांड के विशाल चेहरे पर बिखरी हुई छोटी–बड़ी फुंसियों के समान हैं। परंतु इन स्थानीय विकृतियों को छोड़कर ब्रह्मांड का चेहरा क्या सपाट है या वक्र है ? और यदि वक्र है तो किस तरह का ? (वक्रता दो तरह की होती है, जैसा नीचे समझाया गया है।)

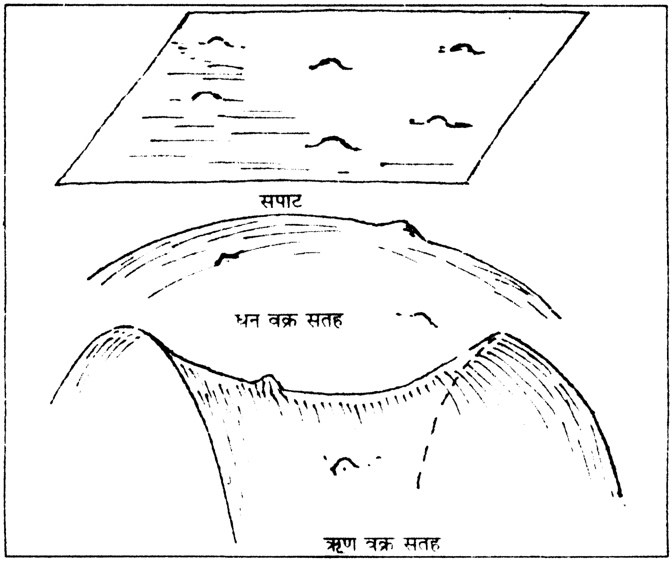


चित्र 42 : सपाट और दो प्रकार की वक्र सतहें

चित्र 42 में हम "फुंसियों" वाले समतल आकाश का दो–आयामी प्रतिरूप दिखा रहे हैं, और इसी प्रकार दो संभव किस्मों के वक्र आकाशों के प्रतिरूप भी। जिसे हम "धन–वक्र" वाला आकाश कहते हैं वह गोले या किसी भी अन्य बंद ज्यामितीय आकृति के जैसा है; यह हमेशा "एक ही तरफ़" मुड़ता जाता है, चाहे किसी भी दिशा में देखा जाये। इससे उलटा, "ऋण–वक्र" वाला आकाश एक दिशा में ऊपर की ओर मुड़ता है परंतु दूसरी दिशा में नीचे की ओर : यह पश्चिमी प्रांतों की घोड़े की काठी के जैसा है। इन दोनों प्रकार की वक्रताओं के बीच अंतर को स्पष्ट महसूस करने के लिए आप

** इस प्रकार सोचने से यह गुत्थी भी अपने आप सुलझ जाती है कि गुरुत्व का बल सदा, हर कण के लिए, आकर्षण ही क्यों होता है, विकर्षण क्यों नहीं, जबकि विद्युत का बल तो दोनों तरह का हो सकता है। –अनु०

चमड़े के दो टुकड़े काटिए – एक फुटबाल से और दूसरा घोड़े की काठी से। प्रत्येक को मेज़ पर रख कर सपाट फैलाने की कोशिश करिए। आप देखेंगे कि दोनों में से कोई भी टुकड़ा फैलाये या सिकोड़े बिना सपाट नहीं किया जा सकता, परंतु दोनों की वक्रता एक–सी नहीं है। सीधा करने लिए फुटबाल वाले टुकड़े की परिधि को फैलाना पड़ेगा, जबकि काठी वाले टुकड़े की परिधि को सिकोड़ना होगा। फुटबाल वाले टुकड़े में केंद्र के आसपास इतना चमड़ा नहीं है कि उसे समतल में रखा जा सके, जबकि काठी वाले टुकड़े में इतना अधिक है कि जब हम इसको सपाट रखने की कोशिश करते हैं तो इसमें बल पड़ जाते हैं।

इसी बात को एक अन्य प्रकार से भी बताया जा सकता है। मान लीजिए कि किसी एक बिंदु से एक इंच, दो इंच, तीन इंच आदि दूरियों के भीतर पड़ने वाली फुंसियों की संख्या गिनते हैं। (दूरी को सतह के साथ–साथ ही मापना है।) मान लीजिए कि ये फुंसियाँ पूरी सतह पर एक समान वितरित हैं। यदि सतह समतल है तो जैसे–जैसे दूरी (त्रिज्या) बढ़ेगी, उसके वर्ग के अनुपात में फुंसियों की संख्या बढ़ेगी, अर्थात् 1, 4, 9, आदि के अनुपात में बढ़ेगी। गोलाकार सतह पर फुंसियों की संख्या इसकी अपेक्षा कुछ धीमी बढ़ेगी, जबकि "काठी जैसी" सतह पर इससे अधिक तेज़ी से बढ़ेगी। अतः किसी भी सतह पर रहने वाले छाया–रूपी विज्ञानी विभिन्न त्रिज्याओं के वृत्त बना कर, उनमें पड़ने वाली फुंसियों की संख्याओं को गिन कर, अपने सतही संसार की वक्रता जान सकेंगे, यद्यपि वे इसे बाहर से नहीं देख सकते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि त्रिभुजों के कोणों के योग में भी धनात्मक व ऋणात्मक वक्रताओं के बीच अंतर दिखाई दे जाता है। जैसा कि हमने पिछले अनुच्छेद में देखा, **गोले की सतह** पर त्रिभुज के कोणों का जोड़ सदा **$180^0$ से अधिक** होता है। यदि आप **काठी वाली सतह** पर त्रिभुज खींचने की कोशिश करेंगे, तो पायेंगे कि इसके कोणों का जोड़ सदा **$180^0$ से कम** होता है।

ऊपर बताये गये परिणामों को, जो खास तौर पर वक्र दो–आयामी सतहों के लिए ज्ञात किये गये हैं, अधिक सामान्य बना कर तीन–आयामी आकाशों पर भी लागू किया जा सकता है, जैसा कि नीचे की तालिका में दिया गया है।

| **आकाश की किस्म** | **बहुत अधिक दूरी पर प्रवृत्ति** | **त्रिभुज के कोणों का योग** | **गोले का आयतन कैसे बढ़ता है** |
|---|---|---|---|
| धन–वक्रता वाला (गोले के तुल्य) | अपने आप पर बंद होता है | $>180^0$ | त्रिज्या के घन की अपेक्षा धीमे |
| सपाट (समतल के तुल्य) | अनंत दूरी तक फैला रहता है | $=180^0$ | त्रिज्या के घन के |
| ऋण–वक्रता वाला (काठी के तुल्य) | अनंत दूरी तक फैला रहता है | $<180^0$ | त्रिज्या के घन की तेज़ी से |

ऊपर की तालिका का उपयोग इस प्रश्न का व्यावहारिक उत्तर खोजने के लिए कि सकता है : जिस आकाश में हम रहते हैं, वह सीमाओं वाला है या अनंत ? इस प्रश्न क दसवें अध्याय में करेंगे, जिसमें ब्रह्मांड के विस्तार पर विचार किया जायेगा।

## तृतीय खण्ड

# लघु जगत्

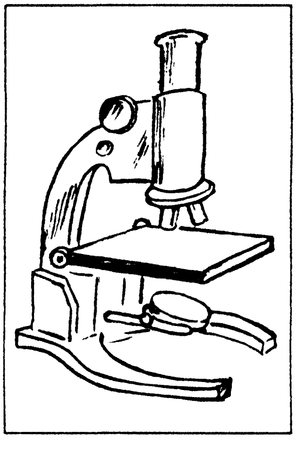

छः

# सीढ़ी-दर-सीढ़ी उतरना

## 1. यूनानी लोगों का विचार

अब हम भौतिक पदार्थों के सबसे मूलभूत गुणों की खोज करते हैं। इस विश्लेषण के लिए अच्छा होगा कि हम "आम आकार" वाली किसी परिचित वस्तु से शुरू करें और फिर सीढ़ी–दर–सीढ़ी उसकी भीतरी रचना में उतरते जायें, जहाँ मानव आँखों से छिपे हुए सभी भौतिक गुणों के सूक्ष्मतम स्रोत मौजूद हैं। तो आइए, अपनी चर्चा शुरू करें आपके भोजन में परोसे गये कढ़ी के कटोरे से*। हमने कढ़ी को इसलिए चुना कि यह स्वादिष्ट और पौष्टिक तो है ही, पर इससे भी अधिक, यह **विषम** (heterogeneous) कहलाने वाले पदार्थों का अच्छा उदाहरण है, अर्थात् इसमें हर स्थान पर एक ही प्रकार का पदार्थ नहीं मिलेगा। सूक्ष्मदर्शी यंत्र के बिना भी आप देख सकते हैं कि यह अनेकों भिन्न–भिन्न प्रकार के भागों का मिश्रण है : छोटे–छोटे टुकड़ों में आलू, करेले, प्याज़, टमाटर, धनिया, हरी मिर्च, पिसे हुए चने (बिसन) के महीन कण, दही के कण और उससे निकले घी की महीन बूँदें – ये सब नमकीन पानी में मिले हुए हैं।

दैनिक जीवन में जिन पदार्थों से हमारा सामना होता है वे अधिकतर विषम ही हैं, विशेषतः वे पदार्थ जो जीवों से प्राप्त हुए हैं। हाँ, हो सकता है कि ऐसे बहुत–से पदार्थों की विषमता को पहचानने के लिए हमें सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग करना पड़े। उदाहरणार्थ, दूध को लें। थोड़े–से आवर्धन (बड़ा करके देखने) से ही आपको दिखाई देगा कि यह पतला–सा पायस है जिसमें एक समान सफ़ेद द्रव में मक्खन की महीन बूँदें तैर रही हैं।

साधारण बग़ीचे की मिट्टी भी एक महीन मिश्रण है : इसमें चूने, चीनी मिट्टी, स्फटिक, लोहे के ज़ंग और दूसरे पदार्थों और लवणों के सूक्ष्म कण, पत्तों, कीड़ों आदि के सड़े हुए अंगों से प्राप्त विविध कार्बनिक पदार्थों के साथ विद्यमान हैं। साधारण ग्रेनाइट के पत्थर की सतह को ज़रा रगड़ कर साफ़ करें तो दिखाई देगा कि यह पत्थर तीन अलग पदार्थों के रवों से बना है (स्फटिक, फ़ैल्डस्पार और अभ्रक), जो कि दृढ़ता से जुड़ कर एक हो गये हैं।

पदार्थों की भीतरी रचना के इस अध्ययन में विषम पदार्थों की संरचना तो पहला ही कदम है, या यूँ कहिए कि हमारी नीचे उतरने वाली सीढ़ी का ऊपरी मंच है। अब आगे बढ़ते हुए हम ऐसे हर पदार्थ (मिश्रण) के एक–एक **सम** अवयव की खोज–बीन कर सकते हैं। जो पदार्थ सचमुच सम अर्थात् एक जैसे होते हैं, जैसे ताँबे की तार, या गिलास–भर पानी, उनमें तो आप सूक्ष्मदर्शी यंत्रों को लेकर कितना ही खोज लें, आपको विविधता नाम–मात्र को भी दिखाई नहीं देगी, अर्थात् ऐसा पदार्थ हर जगह एक–सा दिखाई देगा। हाँ, यह तो सच है कि बहुत अधिक आवर्धन से ताँबे की तार में रवों (क्रिस्टलों) का सूक्ष्म ढाँचा प्रकट हो जायेगा : यह हर ठोस पदार्थ के बारे में सत्य है (सिवाय उन काँच–समान पदार्थों के, जिनके रवे नहीं बनते), परंतु किसी सम पदार्थ में हम जो अलग–अलग रवे देखते हैं वे सब एक ही प्रकार के होते हैं – ताँबे की तार में ताँबे के रवे, ऐलुमिनियम के बर्तन में ऐलुमिनियम के रवे, आदि – ठीक वैसे ही जैसे साधारण नमक को मुट्ठी में दबा कर बनायी डली में

* मूल पाठ में लेखक ने "क्लैम चाउडर" नामक झोल का उदाहरण लिया है, पर हिन्दी–भाषी पाठक दही और बेसन से बनी कढ़ी से अधिक परिचित होंगे। –अनु०

केवल सोडियम क्लोराइड के रवे ही पाये जायेंगे। एक विशेष तकनीक (धीमी गति से रवे बनाना) के द्वारा हम ताँबे, ऐलुमिनियम, नमक या अन्य सम पदार्थ के रवों का आकार जितना चाहें बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार का "एक रवे वाला" पदार्थ वैसा ही सम दिखाई देगा जैसा पानी या काँच।

ऊपर वर्णित प्रेक्षण कुछ तो आँखों से किये गये, और कुछ अच्छे से अच्छे सूक्ष्मदर्शियों की मदद से भी। इनके आधार पर क्या यह मान लेना उचित होगा कि जिन पदार्थों को हम सम कहते हैं वे **कितना भी आवर्धन करने पर** सम ही दिखाई देंगे? दूसरे शब्दों में, क्या हम विश्वास कर सकते हैं कि ताँबे, नमक, पानी आदि पदार्थ का चाहे कितना ही छोटा टुकड़ा लिया जाये, उसके वही गुण होंगे जो बड़े आकार में होते हैं? क्या यह सच है कि इन छोटे टुकड़ों को सदा और भी छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है?

सबसे पहले इस प्रश्न को पूछा और इसका उत्तर देने का प्रयास किया एक यूनानी दार्शनिक डैमोक्रिटस ने, जो 23 शताब्दियाँ पूर्व एथेन्स में रहते थे। उनका उत्तर था – नहीं। उन्हें यह अधिक संगत जान पड़ता था कि कोई भी पदार्थ, चाहे वह कितना ही सम या एक–सा दिखाई क्यों न पड़े, वह बहुत सारे, अति छोटे–छोटे कणों से बना है, जिनको उसने नाम दिया "ऐटम" (परमाणु) या "अविभाज्य"। यह और बात है कि डेमोक्रिटस को मालूम नहीं था कि ये कण **कितने** छोटे हैं, और एक साधारण माप के पदार्थ में इनकी संख्या कितनी बड़ी होगी। उन्होंने कहा कि विभिन्न पदार्थों में इन परमाणुओं की मात्राएँ तो अलग–अलग अवश्य हैं, परंतु इन परमाणुओं के गुणों में जो अंतर दिखाई देता है, वह वास्तविक नहीं है। जैसे, अग्नि और जल के परमाणु वास्तव में एक ही प्रकार के हैं; बस, वे रूप में अलग–अलग हैं। वास्तव में सभी पदार्थ एक ही प्रकार के शाश्वत परमाणुओं से बने हैं।

डैमोक्रिटस के एक सम–सामयिक दार्शनिक एंपीडोक्लीस का मत इससे कुछ अलग था। वे मानते थे कि संसार में जितने भी प्रकार के पदार्थ हैं, वे सभी कई अलग–अलग प्रकार के परमाणुओं के विभिन्न अनुपातों में मिश्रण से बने हैं।

उस समय रसायन–शास्त्र की जो प्रारंभिक बातें ज्ञात थीं, उनके आधार पर तर्क करते हुए एंपीडोक्लीस ने चार भिन्न प्रकार के परमाणुओं को स्वीकार किया। ये चारों परमाणु उन पदार्थों के परमाणु थे जिनको उस समय मूल तत्त्व माना जाता था। ये थे : पत्थर, जल, वायु और अग्नि।* इस विचार के अनुसार खेत की मिट्टी पत्थर व जल के परमाणुओं को सूक्ष्मता से मिलाने से बनी है; जितना महीन मिश्रण होगा, उतनी ही बढ़िया मिट्टी होगी। इस मिट्टी में उगने वाला पौधा एक नया निर्माण करता है। वह पत्थर और जल के परमाणुओं के साथ सूर्य की किरणों के अग्नि–परमाणुओं का संयोग करके लकड़ी के मिले–जुले अणु बनाता है। जब लकड़ी सूख जाती है, अर्थात् जल का [illegible] नहीं रहता, तो उसे जलाने से लकड़ी के अणुओं का विघटन हो जाता है। इस प्रकार ह[illegible] वाले अग्नि और पत्थर के परमाणु प्राप्त होते हैं – एक आग की लपटों में उड़ जाते हैं औ[illegible] के रूप में बच जाते हैं।

पौधे के बढ़ने और लकड़ी के जलने की यह व्याख्या प्राचीन काल में बिल्कुल तर्क[illegible] होगी जब विज्ञान अपने शैशव में था। परंतु अब हम जानते हैं कि यह सही नहीं है। प्रा[illegible]

* प्राचीन भारत में भी कणाद, गौतम आदि कई दार्शनिकों ने परमाणुओं की कल्पना की। उन्होंने पाँच मूल [illegible] बताये : पृथ्वी (मिट्टी), जल, वायु, अग्नि और आकाश। परंतु इन भौतिक तत्त्वों के अलावा मन, बुद्धि और [illegible] स्थान दिया। –अनु०

लोग सोचते थे कि पौधे के बढ़ने के लिए जो सामग्री चाहिए, वह अधिकतर मिट्टी से ही आती है, और आप भी ऐसा सोचेंगे यदि आपको किसी ने बताया न हो। परंतु हम जानते हैं कि वह सामग्री मिट्टी से नहीं, बल्कि अधिकतर हवा से प्राप्त होती है। मिट्टी की भूमिका पौधे को थामे रखने और पानी को रोके रखने के अतिरिक्त बहुत कम है : केवल पौधे की बढ़त के लिए आवश्यक कुछ लवण ज़रा सी मात्रा में मिट्टी से मिलते हैं। आप चाहें तो चम्मच–भर मिट्टी में खूब बड़ा–सा मकई का पौधा उगा सकते हैं।

सच तो यह है कि वातावरण की हवा भी एक सरल तत्त्व नहीं है, जैसा कि प्राचीन लोग सोचते थे, बल्कि नाइट्रोजन और ऑक्सीजन का मिश्रण है, जिसमें कार्बन–डाई–ऑक्साइड की भी कुछ मात्रा है। कार्बन–डाई–ऑक्साइड का हर अणु ऑक्सीजन एवं कार्बन के परमाणुओं से बना है। सूर्य की धूप के प्रभाव से हरी पत्तियाँ हवा में मौजूद कार्बन–डाई–ऑक्साइड सोख लेती हैं, जो जड़ों द्वारा भेजे गये जल के साथ प्रतिक्रिया करके उन विभिन्न कार्बनिक पदार्थों की रचना करती है जिनसे पौधे का शरीर बना है। पौधा दिन में कार्बन–डाई–ऑक्साइड में शामिल जो ऑक्सीजन सोखता है, उसमें से एक अंश शुद्ध रूप में वातावरण को वापिस लौटा देता है : इसी कारण कहते हैं कि "कमरे में रखे पौधे हवा को ताज़ा कर देते हैं"।

जब लकड़ी जलती है तो लकड़ी के शरीर के विभिन्न प्रकार के अणु फिर से हवा की ऑक्सीजन के साथ संयोग करते हैं, और वापिस कार्बन–डाई–ऑक्साइड और जल (वाष्प–रूप में) बनाते हैं; ये दोनों पदार्थ गर्म–गर्म लपटों में उड़ जाते हैं।

जहाँ तक "अग्नि के परमाणुओं" का प्रश्न है, जो प्राचीन काल के लोगों के विश्वास के अनुसार पौधे के भौतिक शरीर को बनाने में योगदान देते थे, ऐसे परमाणु होते ही नहीं हैं। सूर्य की धूप तो केवल **ऊर्जा** (शक्ति) ही देती है, जो हवा की कार्बन–डाई–ऑक्साइड के अणुओं को तोड़ कर इस हवाई भोजन को पौधे के लिए सुपाच्य बनाने के लिए आवश्यक है। अब क्योंकि अग्नि के परमाणु होते ही नहीं, अतः स्पष्ट ही उनका "उड़ना" आग की लपटों की सही व्याख्या नहीं है। लपटें तो बस, तेज़ी से बहती हुई गर्म हवा की धाराएँ हैं, जो जलने की क्रिया में निकलने वाली ऊर्जा के कारण चमकती हैं।*

आइए, अब एक अन्य उदाहरण लें जिससे रासायनिक परिवर्तनों की प्राचीन और आधुनिक धारणाओं के बीच अंतर स्पष्ट होंगे। आप यह तो जानते हैं कि किसी धातु को प्राप्त करने के लिए उसकी अयस्क (ore) को भट्टियों में बहुत उच्च तापमान पर तपाना पड़ता है। अधिकतर अयस्कें पहली दृष्टि में साधारण चट्टानों से अलग नहीं दीखतीं। कोई आश्चर्य नहीं कि प्राचीन विज्ञानियों का विश्वास था कि अयस्कें भी उसी पत्थर–सी सामग्री से बनी हैं जिससे कोई भी चट्टानें बनी हैं। परंतु उन्होंने देखा कि जब लौह–अयस्क को तेज़ आग में गलाया जाता है, तो उसमें से एक वस्तु निकलती है जो साधारण चट्टान में से नहीं निकलती – एक मज़बूत चमकीला पदार्थ जिससे चाकू और भाले बनाये जा सकते हैं, अर्थात् लोहा। इस घटना की व्याख्या करने का सबसे सरल तरीका यह था कि

* वास्तव में सूर्य के प्रकाश में जो ऊर्जा है, वह भी छोटी–छोटी इकाइयों में आती है, जिन्हें फ़ोटोन कहते हैं। लकड़ी के जलने से जो आग की लपटें चमकती हुई दिखाई देती हैं, उनमें भी फ़ोटोन ही निकलते हैं। इस दृष्टि से आप शायद फ़ोटोन को ही 'अग्नि–परमाणु' कहना चाहें, और इस प्रकार प्राचीन लोगों के विचार को सही ठहरायें। परंतु फ़ोटोन और परमाणुओं में अंतर यह है कि विभिन्न प्रक्रियाओं में ऑक्सीजन, कार्बन, लौह आदि तत्त्वों के परमाणु अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं, जबकि फ़ोटोन कभी किसी पदार्थ द्वारा सोख लिये जाते हैं (ऊर्जा के दूसरे रूपों में बदल जाते हैं) और कभी किसी पदार्थ में से पैदा हो जाते हैं। फ़ोटोनों की कुल संख्या एक समान नहीं रहती। इस प्रकार ये परमाणुओं से अलग हैं। –अनु०

पत्थर और अग्नि के संयोग से धातु बन जाती है — दूसरे शब्दों में, धातु के अणु अपने शरीर में पत्थर और अग्नि के परमाणुओं को लिये रहते हैं।

इस प्रकार सभी धातुओं को कुल मिलाकर समझने के बाद उन्होंने लोहा, ताँबा, सोना आदि विभिन्न धातुओं के भिन्न–भिन्न गुणों की यह कह कर व्याख्या की कि इनमें पत्थर व अग्नि के परमाणु अलग–अलग अनुपात में हैं। क्या यह बिल्कुल साफ़ नहीं लगता कि चमचमाते सोने में अग्नि का अंश अधिक है जबकि निस्तेज और काले लोहे में कम है?

परंतु यदि सचमुच ऐसा हो तो लोहे में, या चलिए ताँबे में ही, क्यों न अग्नि का अंश बढ़ा कर उसे बहुमूल्य सोने में बदल डाला जाये? ऐसा विचार कर फ़ायदे की बात सोचने वाले मध्ययुगीन कीमियागरों ने सस्ती धातुओं से "कृत्रिम स्वर्ण" बनाने के लिए अपनी भट्टियों के धुएँ में काम करते हुए ज़िंदगियाँ बिता दीं।

उनके दृष्टिकोण से देखा जाये तो उनका यह प्रयास बिल्कुल तर्कसंगत था : आख़िर आधुनिक विज्ञानी भी तो कृत्रिम रूप से रबर जैसा पदार्थ बनाने की विधि विकसित करते हैं! उन कीमियागरों के सिद्धांत और कार्य में दोष इतना ही था कि वे स्वर्ण और दूसरी धातुओं को मिश्रण मानते थे, न कि तत्त्व। पर आज़माये बिना उन्हें मालूम भी कैसे होता कि कौन पदार्थ तत्त्व–रूप है और कौन मिश्रण? इन पूर्ववर्ती रसायन–शास्त्रियों ने ये असफल प्रयास न किये होते तो शायद हमें कभी मालूम न होता कि धातुएँ तत्त्व–रूप रासायनिक पदार्थ हैं, जबकि धातु वाले अयस्क धातु तथा ऑक्सीजन के परमाणुओं के संयोग से बने संयुक्त पदार्थ हैं (जिन्हें आधुनिक रसायन–विज्ञानी धातु की ऑक्साइड कहते हैं)।

धौंकनी वाली भट्टी की तपती गर्मी के प्रभाव से लौह अयस्क जो लोहे (धातु) में परिवर्तित हो जाती है, वह पत्थर और अग्नि के या किसी अन्य प्रकार के परमाणुओं के **संयोग** से नहीं जैसा कि कीमियागरों ने समझा था। बल्कि, इससे ठीक उलटा, यह तो परमाणुओं के पृथक होने से होता है, अर्थात् लौह–ऑक्साइड के संयुक्त अणुओं से ऑक्सीजन परमाणुओं के अलग हो जाने से। नमी में रहने से लोहे की सतह पर जो ज़ंग प्रकट हो जाता है, वह अग्नि के परमाणुओं के उड़ जाने के बाद शेष बचे पत्थर के परमाणुओं का बना हुआ नहीं है, बल्कि लोहे और ऑक्सीजन के परमाणुओं के **संयोग** से बने लौह–ऑक्साइड अणुओं से बना है (ऑक्सीजन परमाणु हवा या जल में से प्राप्त होते हैं)।[1]

इस चर्चा से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि पदार्थों की भीतरी रचना और रासायनिक परिवर्तनों की प्रकृति के बारे में प्राचीन विज्ञानियों की धारणाएँ मोटे तौर पर सही थीं। कमी बस इतनी ही थी कि मूलभूत तत्त्व क्या हैं, इस बारे में उन्हें ग़लतफ़हमी थी। एंपीडोक्लीस ने जिन चार प्रकार के पदार्थों को तत्त्वरूप बताया, वास्तव में उनमें से कोई भी तत्त्वरूप नहीं है : वायु कई अलग–अल... मिश्रण है, जल के अणु हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन से बने हैं, चट्टानों की बनावट तो काफ़... और उनमें कई तत्त्व शामिल हैं, और रही बात अग्नि की, सो उसके परमाणु होते ही ...

1 उदाहरणार्थ, कोई कीमियागर अयस्क से धातु बनाने की क्रिया को इस प्रकार के सूत्र द्वारा दर्शाता :

पत्थर परमाणु (अयस्क) + अग्नि परमाणु → लौह अणु,

और लोहे पर ज़ंग लगने को इस प्रकार :

लौह अणु → पत्थर परमाणु (ज़ंग) + अग्नि परमाणु।

परंतु हम इन प्रक्रियाओं को इस प्रकार लिखते हैं :

लौह–ऑक्साइड अणु (लौह अयस्क) → लौह परमाणु + ऑक्सीजन परमाणु

और

लौह परमाणु + ऑक्सीजन परमाणु → लौह–ऑक्साइड अणु (ज़ंग)।

2 जैसा हम इस अध्याय में बाद में देखेंगे, अग्नि परमाणुओं वाला विचार फिर से अंशतः अपना लिया गया ... (फ़ोटोनों) की थ्योरी आयी।

वास्तव में प्रकृति में चार नहीं, 92 रासायनिक तत्त्व मौजूद हैं, अर्थात् 92 अलग–अलग प्रकार के परमाणु हैं। इन 92 में से कुछ तत्त्व, जैसे ऑक्सीजन, कार्बन, लोहा व सिलिकॉन (अधिकतर चट्टानों के मुख्य अवयव) पृथ्वी पर काफ़ी मात्रा में मिलते हैं और हर कोई इनसे परिचित है, जबकि कुछ अन्य बहुत दुर्लभ हैं। शायद आपने ऐसे तत्त्वों के नाम तक कभी सुने न होंगे, जैसे प्रेज़ियोडिनियम, डिस्प्रोज़ियम या लैंथेनम। प्राकृतिक तत्त्वों के अलावा आधुनिक विज्ञान कई बिल्कुल नये रासायनिक तत्त्वों को कृत्रिम रूप से बनाने में सफल रहा है – इनकी चर्चा हम इस पुस्तक में ही ज़रा बाद में करेंगे। इनमें से एक, जिसका नाम प्लूटोनियम है, परमाणु ऊर्जा की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाला है जिसका युद्ध और विकास दोनों में उपयोग होगा। विभिन्न अनुपातों में आपस में संयोग करके ये 92 मूल तत्त्व असीम संख्या में विविध जटिल रासायनिक पदार्थ बनाते हैं, जैसे पानी और मिट्टी, घी और तेल, चट्टानें और हड्डियाँ, चाय और टी0 एन0 टी0 (बारूद), और बहुत–से ऐसे पदार्थ जो होशियार रसायनविदों को भले ही याद होंगे, पर अधिकतर आम लोग तो एक साँस में उनके नामों का उच्चारण भी नहीं कर पायेंगे, जैसे ट्राइफ़िनाइलपिरिलियमक्लोराइड या मिथाइलआइसोप्रोपाइलसाइक्लोहैक्सेन। और परमाणविक संयोगों के इन असीम अजूबों के गुणों, निर्माण–विधियों आदि को सूचीबद्ध करने के लिए जिल्द–दर–जिल्द रासायनिक कोष लिखे जा रहे हैं।

## 2. परमाणु कितने बड़े होते हैं?

जब डेमोक्रिटस और एंपीडोक्लीस परमाणु की बात कर रहे थे तो उनके तर्क कुछ धुँधले–से दार्शनिक विचारों पर आधारित थे, कुछ इस प्रकार के कि यदि किसी पदार्थ को छोटे और अधिक छोटे भागों में तोड़ते जायें तो यह कल्पना करना असंभव है कि कभी भी आख़िरी अविभाज्य इकाई तक न पहुँचें।

जब कोई आधुनिक रसायन–विज्ञानी परमाणुओं की बात करता है, तो उसकी बात का अर्थ काफ़ी अधिक निश्चित है, क्योंकि तत्त्वों के परमाणुओं और उनके संयोग से जटिल अणुओं की रचना की सही–सही जानकारी रसायन–विज्ञान के एक मूलभूत सिद्धांत को समझने के लिए नितांत आवश्यक है। इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न रासायनिक तत्त्व केवल नपे–तुले भारिक अनुपात में ही संयोग कर सकते हैं।* स्पष्ट ही यह अनुपात इन तत्त्वों के विभिन्न परमाणुओं के भारों के अनुपात से मिलता–जुलता ही होगा। इस प्रकार रसायन–विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि, उदाहरणतया, ऑक्सीजन, एलुमिनियम और लोहे के परमाणु हाइड्रोजन के परमाणु की अपेक्षा क्रमशः सोलह, सत्ताईस और छप्पन गुणा भारी होंगे। ध्यान दीजिए कि रसायन–विज्ञान के लिए विभिन्न तत्त्वों के **आपेक्षिक आणविक भार** तो अतीव महत्त्वपूर्ण मूलभूत जानकारी हैं, जबकि परमाणुओं के **वास्तविक भार** (इतने ग्राम) की यहाँ बिल्कुल कोई भूमिका नहीं है। इन भारों के सही–सही मान का न तो अन्य रासायनिक तथ्यों पर कोई प्रभाव पड़ेगा, और न ही रसायन–विज्ञान के सिद्धांतों के अनुप्रयोग या प्रायोगिक विधियों पर।

परंतु जब भौतिक विज्ञानी परमाणु पर विचार करेगा तो निश्चय ही उसका पहला प्रश्न यही होगा : परमाणुओं की **वास्तविक** माप कितने सेंटीमीटर है, उनका भार कितने–कितने ग्राम है, और

---

* उदाहरणतया, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन भार के अनुसार 1:8 अनुपात में ही संयोग करके जल बना सकती हैं। –अनु०

किसी भी पदार्थ की अमुक मात्रा में कितने अणु या परमाणु हैं? क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे परमाणुओं और अणुओं को अलग–अलग एक–एक करके परखा, गिना और व्यवहार किया जा सके?

अणुओं और परमाणुओं के आकार (माप) का अनुमान करने के लिए कई प्रकार की विधियाँ हैं। सबसे सरल विधि तो इतनी सरल है कि डेमोक्रिटस और एंपीडोक्लीस को भी यदि किसी तरह सूझ जाती तो वे आधुनिक प्रयोगशाला के यंत्रों के बिना ही इसे काम में ला सकते थे। कोई भी वस्तु लीजिए, जैसे ताँबे की तार। यदि इसे पीट–पीट कर ताँबे की चादर बनाने लगें तो कितनी पतली चादर बना सकते हैं ? अब क्योंकि इसकी रचना की छोटी से छोटी इकाई एक परमाणु है, अतः स्पष्ट है कि ऐसे एक परमाणु के व्यास से अधिक पतली चादर तो नहीं ही बना सकते। इसी प्रकार हम ताँबे की तार को खींच कर कहाँ तक पतला करते जा सकते हैं ? अधिक से अधिक तभी तक जब यह एक–एक परमाणु की कड़ी बन जाये। वैसे ताँबे जैसे ठोस पदार्थ को लेकर इतनी कम मोटाई तक पहुँचना असंभव–सा है क्योंकि हर हालत में इतना पतला होने से पहले वह टूट जायेगा। पर हाँ, यदि कोई द्रव लें, जैसे पानी के ऊपर तेल की पतली–सी तह, तो इसे आसानी से इतना फैलाया जा सकता है कि इसके अणुओं की इकहरी चादर बन जाए, अर्थात् एक पतली–सी परत, जिसमें अकेले–अकेले अणु समतल में एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए हों पर एक–दूसरे के ऊपर जमा नहीं हों। थोड़ी सावधानी और धैर्य के साथ पाठक स्वयं इस प्रयोग को कर सकते हैं, और बड़े सरल ढंग से तेल के अणुओं की माप ज्ञात कर सकते हैं।

एक उथला–सा चौकोन बर्तन लीजिए (चित्र 43)। इसे फ़र्श पर या मेज़ पर बिल्कुल समतल रखिए, लबालब पानी से भर दीजिए और इसकी चौड़ाई के आर–पार एक सीधी मोटी तार रखिए जो पानी की सतह को छूती रहे। यदि आप तार के एक ओर पानी पर किसी शुद्ध तेल की छोटी–सी बूँद डाल दें तो तेल उस ओर के पानी की पूरी सतह पर फैल जायेगा। अब यदि आप तार को धीरे–धीरे खींच कर बर्तन के किनारे–किनारे बढ़ायें, तो तेल की परत भी तार के पीछे–पीछे फैलती

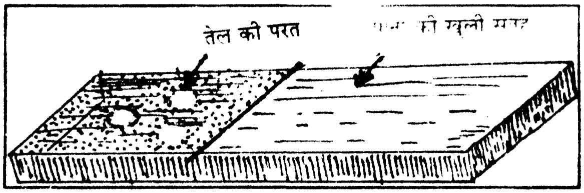


चित्र 43 : पानी की सतह पर पतली–सी तेल की परत एक हद से अधिक फैलाने पर टूट जाती है।

जायेगी, लगातार पतली होती जायेगी, और अंत में तेल के एक अणु के व्यास के बराब
जानी चाहिए। उसके बाद यदि आप और खींचेंगे तो यह तेल की परत टूट जायेगी, अर्था
हो जायेंगे जिनमें से पानी झाँकेगा। जो तेल डाला गया, उसकी मात्रा आप पहले ही जा
टूटने से पहले तेल की परत का अधिकतम क्षेत्रफल माप लेंगे; अतः आप आसानी से अ
मोटाई की गणना कर सकेंगे।

इस प्रयोग को करते समय आप एक और रोचक घटना भी देख सकते हैं। जब आप पानी की खुली सतह पर कुछ तेल डालेंगे तो पहले आपका ध्यान तेल की सतह के जाने–पहचाने इन्द्रधनुषी रंगों की ओर जायेगा – ऐसे रंग शायद आपने ऐसी बंदरगाह के पानी पर भी कई बार देखे होंगे जहाँ जहाज़ आते–जाते रहते हों। इन रंगों का कारण तो अच्छी तरह मालूम है : यह तेल की परत की ऊपरी तथा निचली सतहों से परावर्तित प्रकाश की किरणों के व्यतिकरण (interference) का खेल है। और विभिन्न स्थानों पर रंगों में अंतर इसलिए है कि जब तेल की बूँद किसी बिंदु पर गिरती है और वहाँ से फैलती है तो तेल की परत की मोटाई विभिन्न बिंदुओं पर अलग–अलग रहती है। आप यदि ज़रा–सी प्रतीक्षा करें और इस परत को एक समान पतली हो जाने दें, तो तेल की पूरी परत एक समान रंग की हो जायेगी। अब जैसे–जैसे तार को खींचने से तेल की परत पतली से और पतली होती जायेगी, इसका रंग भी धीरे–धीरे लाल से पीला, पीले से हरा, हरे से नीला और नीले से बैंगनी हो जायेगा, क्योंकि रंगों का यह क्रम प्रकाश की घटती हुई तरंग–लंबाई के अनुरूप है।* यदि हम तेल की सतह को फैलाते ही जायेंगे तो रंग पूरी तरह ग़ायब हो जायेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि तेल की परत अब रही ही नहीं, बल्कि इतना ही कि इसकी मोटाई छोटी–से–छोटी दिखाई देने वाली तरंग–लंबाई से भी कम हो गयी है ; अतः अब जो "रंग" उभर कर आ रहा है, वह हमारी दृष्टि की पहुँच से बाहर है। परंतु आप फिर भी तेल वाली सतह को पानी की खुली सतह से अलग पहचान पायेंगे, क्योंकि तेल की ऊपरी तथा निचली सतहों से परावर्तित होने वाली प्रकाश की किरणों के व्यतिकरण से प्रकाश की तीव्रता में कमी आ जायेगी। इस प्रकार जब तेल की सतह से रंग ग़ायब हो जायेंगे तो, तो यह (तेल की परत) परावर्तित प्रकाश में कुछ "धुँधली" दिखाई देगी।

जब आप वास्तव में इस प्रयोग को करेंगे, तो पायेंगे कि 1 घन मि०मी० तेल लगभग 1 वर्गमीटर पानी की सतह को ढक सकता है, परंतु तेल की फ़िल्म को और अधिक बढ़ाने के किसी भी प्रयास से साफ़ पानी वाले छिद्र बन जायेंगे।[3]

## 3. आणविक किरणें

जब कोई गैस या वाष्प छोटे–से–छिद्र से निकल कर आसपास के खाली स्थान में प्रवाहित होती है तो उसके अध्ययन में हमें पदार्थ की आणविक रचना को प्रदर्शित करने का एक और रोचक तरीका मिलता है।

मान लीजिए कि हम एक बड़ा–सा काँच का बल्ब लेकर उसको अच्छी तरह हवा से खाली कर दें (चित्र 44) और उसके अंदर एक छोटी–सी बिजली की भट्टी रख दें। यह भट्टी एक चीनी मिट्टी

---

* प्रकाश के व्यतिकरण के नियम के अनुसार हमें वही रंग दिखाई देगा, जिसकी तरंग–लंबाई तेल की परत की मोटाई की दुगुनी होगी। –अनु०

[3] तो टूटने से ज़रा पहले हमारी तेल की परत कितनी पतली है ? इसकी गणना करने के लिए यूँ समझिए कि 1 मि०मी० तेल की बूँद घन की आकृति में है, अर्थात् उसका प्रत्येक किनारा 1 मि० मी० है। अब हमें इस 1 घन मि० मी० तेल को पूरे 1 वर्ग मी० क्षेत्र पर फैलाने के लिए इसकी लंबाई और चौड़ाई दोनों को एक हज़ार गुणा फैलाना होगा (1 मि० मी० से 1 मी०)। इसलिए इसकी मोटाई को $1000 \times 1000$ = दस लाख गुणा कम करना होगा जिससे इसका आयतन पहले के समान बना रहे। इस प्रकार हमें परत की न्यूनतम मोटाई का मान, और परिणामस्वरूप तेल के अणुओं की वास्तविक मोटाई का मान, .1 सें०मी० $\times 10^{-6} = 10^{-7}$ सें०मी० प्राप्त होता है। क्योंकि तेल के अणु में कई परमाणु होते हैं, अतः परमाणु का आकार इससे कुछ और छोटा है।

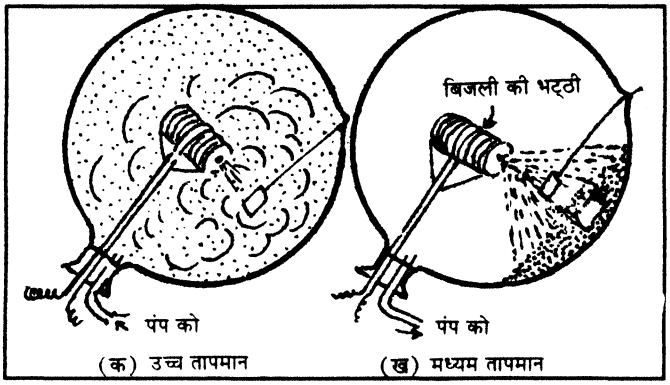


चित्र 44 : छिद्र से निकलती धातु की वाष्प

के बेलन के रूप में हो जिसको गर्म करने के लिए इसके ऊपर बिजली की प्रतिरोधी (resistant) तार लपेटी हुई हो। बेलन की दीवार में छोटा–सा छिद्र हो। यदि इस भट्टी में हम जल्दी पिघलने वाली किसी धातु का टुकड़ा रख दें, जैसे सोडियम या पोटाशियम का, तो गर्म करने पर बेलन के अंदर इस धातु की वाष्प भर जायेगी, जो दीवार के छोटे छिद्र में से चू कर आसपास के स्थान में आने लगेगी। काँच के बल्ब की ठंडी दीवारों के संपर्क में आने पर यह उन दीवारों से चिपक जायेगी। अतः दीवार के विभिन्न भागों पर जमा हुए पतले दर्पण जैसे जमाव देखने से हमें स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि भट्टी से निकलता हुआ पदार्थ किधर–किधर जाता है।

यही नहीं, हम देखेंगे कि भट्टी के अलग–अलग तापमानों पर काँच की दीवार पर बनने वाली फ़िल्म का वितरण भी अलग–अलग प्रकार का होगा। जब भट्टी बहुत गर्म हो, जिससे इसके अंदर धातु–वाष्प का घनत्व काफ़ी अधिक हो, तो वैसा ही दृश्य दिखाई देगा जैसा चाय की केतली या भाप के इंजिन से निकलती भाप का होता है : छिद्र में से निकलती वाष्प सभी दिशाओं में फैल जायेगी (चित्र 44क) और बल्ब के समूचे आयतन को भर देगी, जिससे उसकी समूची सतह पर लगभग एक समान धातु की फ़िल्म बन जायेगी।

परंतु इससे कम तापमानों पर, जबकि भट्टी के अंदर वाष्प का घनत्व कम हो, यह घटना बिल्कुल अलग तरह घटित होती है। छिद्र में से निकलता हुआ पदार्थ सब दिशाओं में फैलने की बजाय सीधी रेखा में चलता प्रतीत होता है, और इसमें से अधिकतर काँच की दीवार के उस भाग पर जमा हो जाता है जो भट्टी के छिद्र के सामने है। इस बात को और भी अधिक अच्छी तरह देखा जा सकता है यदि छिद्र और दीवार के बीच में कोई छोटी–सी वस्तु रख दी जाये (चित्र 44ख)। ... के पीछे दीवार पर कोई जमाव नहीं होगा, और यह जमाव–हीन क्षेत्र ठीक उसी आकृ... जैसी बीच में आने वाली वस्तु की छाया।

अधिक और कम घनत्व वाली गैसों के छिद्र से निकलने के व्यवहारों में अंत... समझ में आ जाता है यदि यह याद रखा जाये कि यह गैस या वाष्प बहुत बड़ी संख्या में ... अणुओं से बनी है जो भट्टी में सब दिशाओं में दौड़ते हुए लगातार एक–दूसरे से टकरा... वाष्प का घनत्व काफ़ी अधिक हो, तो छिद्र से बाहर निकलती हुई वाष्प की धारा की ... जलते हुए थियेटर के दरवाज़ों से बाहर भागती हुई उन्मत्त भीड़ से की जा सकती है...

निकलने के बाद भी लोग एक–दूसरे से टकराते रहते हैं और टकराते–टकराते बाहर सड़क पर सभी दिशाओं में बिखर जाते हैं। दूसरी ओर, घनत्व कम होने पर कुछ ऐसा दृश्य होता है मानो एक समय पर सिर्फ़ एक ही व्यक्ति दरवाज़े से निकल रहा हो। ऐसे में टक्कर का कोई प्रश्न नहीं है; अतः हर अणु बिल्कुल विचलित हुए बिना सीधा चला जायेगा।

भट्टी के छिद्र से बाहर आती हुई वाष्प की धारा, जिसका घनत्व थोड़ा हो, "आणविक किरण" (atomic beam) नाम से जानी जाती है। यह आकाश में साथ–साथ उड़ते बहुत–से अलग–अलग अणुओं से बनती है। घनत्व कम होने के कारण ऐसी आणविक किरणें अकेले अणुओं के गुणों के अध्ययन में बहुत उपयोगी हैं। उदाहरणतया, तापीय गति (thermal motion)* का वेग मापने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।

ऐसी आणविक किरणों के वेग के अध्ययन के लिए सबसे पहले ऑटो स्टर्न ने एक उपकरण बनाया था, और यह लगभग वैसा ही है जैसा प्रकाश का वेग मापने के लिए फ़िज़ू ने प्रयोग किया था (देखिए चित्र 31ग)। इसमें एक ही अक्ष पर बैठाये गये दो दाँतेदार चक्के होते हैं। इस अक्ष पर दोनों को तेज़ी से एक साथ घुमाया जाता है। इनके दाँतों के बीच से आणविक किरण तभी निकल कर जा

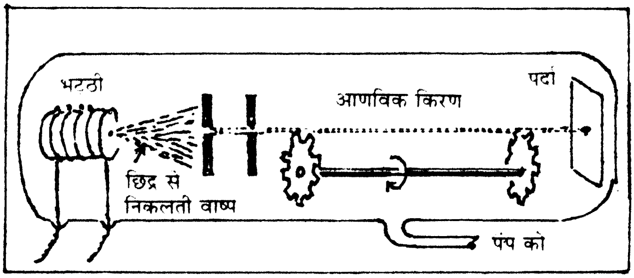


चित्र 45 : गर्म अणुओं के वेग को मापना

सकती है यदि घुमाने की कोणीय गति बिल्कुल सही हो (चित्र 45)। स्टर्न ने ऐसे उपकरण से निकलती हुई एक पतली–सी आणविक किरण को एक पर्दे पर देखा और इस प्रकार वे प्रदर्शित कर पाये कि आणविक गति का वेग आम तौर पर बहुत अधिक होता है (200° से0 पर सोडियम परमाणुओं के लिए औसतन 1.5 कि- मी- प्रति सैकंड), और जैसे–जैसे गैस का तापमान बढ़ता है, यह गति भी बढ़ती जाती है। इससे ऊष्मा के गतिक सिद्धांत (kinetic theory of heat) का सीधा प्रमाण मिल जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार किसी भी चीज़ के अधिक गर्म होने का अर्थ इतना ही है कि इसके कणों की इधर–उधर तापीय गति का औसत वेग बढ़ गया है।

## 4. परमाणुओं के फ़ोटो उतारना

वैसे तो ऊपर दिये उदाहरणों के बाद परमाणु वाली परिकल्पना के सही होने में कोई संदेह नहीं रह जाता है। फिर भी, क्योंकि "आँखों देखा सच" ही पूरा सत्य माना जाता है, अतः मानव आँखों

* किसी भी गैस के अणु बराबर इधर–उधर चलते और एक–दूसरे से टकराते रहते हैं। ये कितनी तेज़ या कितनी धीरे चलेंगे, यह तापमान पर निर्भर है। इस गति को "तापीय गति" कहते हैं। –अनु०

द्वारा अणुओं और परमाणुओं को देख लिया जाना ही इन सूक्ष्म इकाइयों के अस्तित्व का सबसे प्रभावशाली प्रमाण होगा। ऐसा प्रदर्शन अपेक्षाकृत हाल में ही बर्तानी भौतिकीविद डब्लू0 एल0 ब्रैग के द्वारा किया गया है। उन्होंने क्रिस्टलीय पिंडों में अलग–अलग परमाणुओं या अणुओं के फ़ोटो उतारने की एक विधि विकसित की है।

किसी को ऐसा नहीं समझना चाहिए कि परमाणुओं का फ़ोटो उतारना आसान है। इतनी छोटी वस्तुओं का चित्र खींचने में इस तथ्य का सामना करना ही होगा कि जब तक किसी वस्तु को आलोकित करने वाले प्रकाश की तरंग–लंबाई उस छोटी वस्तु के आकार से कम न होगी, तब तक फ़ोटो इतना धुँधला होगा कि किसी काम का न रहेगा। आप यूँ समझिए कि किसी फ़ारसी सूक्ष्म–चित्र में रंग भरना हो तो दीवार पर पेंट करने वाले ब्रश से काम नहीं चलेगा। लघु आकार के जीवाणुओं पर कार्य करने वाले जीव–विज्ञानी इस कठिनाई से भली भाँति परिचित हैं क्योंकि बैक्टीरिया का आकार (कोई $10^{-4}$ सें0 मी0) दिखाई देने वाले (दृश्य) प्रकाश की तरंग–लंबाई के समतुल्य है। चित्रों का पैनापन बढ़ाने के लिए वे बैक्टीरिया के सूक्ष्म फ़ोटो पराबैंगनी (ultra-violet) प्रकाश में खींचते हैं; इस प्रकार उन्हें दृश्य प्रकाश में खिंचे फ़ोटो की अपेक्षा कुछ बेहतर परिणाम मिल जाते हैं। परंतु अणुओं का आकार और क्रिस्टल में उनकी आपसी दूरी इतनी कम होती है ($10^{-8}$ सें0मी0) कि जब इन अणुओं को फ़ोटो खिंचाने के लिए सजा–सँवार कर बैठा दिया जाता है तो न दृश्य प्रकाश किसी काम आता है और न पराबैंगनी ही। अणुओं को अलग–अलग देखना हो तो अनिवार्य शर्त है कि ऐसी विकिरण (radiation) का उपयोग किया जाये जिसकी तरंग–लंबाई दृश्य प्रकाश से हज़ारों गुणा कम हो – दूसरे शब्दों में, हमें एक्स–रे नामक विकिरण का उपयोग करना होगा। परंतु यहाँ एक और दुर्लंघ्य कठिनाई से पाला पड़ता है : एक्स किरणें तो लगभग बिना मुड़े किसी भी पदार्थ से गुज़र जायेंगी, जिसका अर्थ यह है कि एक्स किरणों के साथ न आपके कोई लैंस काम आयेंगे और न कोई सूक्ष्मदर्शी यंत्र ही। एक्स किरणों का यह गुण, और साथ ही पदार्थों में गहरे पैठने की अत्यधिक क्षमता, चिकित्सा–विज्ञान में तो बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि मानव–शरीर में से गुज़रती हुई एक्स किरणें यदि अपवर्तन करतीं (मुड़तीं) तो इससे सभी एक्स–रे चित्र पूरी तरह धुँधला जाते। परंतु इसी गुण के कारण एक्स–रे द्वारा आवर्धित चित्र बनाने की सब संभावनाएँ मिट जाती प्रतीत होती हैं!

पहली नज़र में तो इस स्थिति में कोई आशा दिखाई नहीं देती, पर डब्लू0 एल0 ब्रैग ने इस कठिनाई से पार पाने का एक चतुर तरीका खोज निकाला। उन्होंने ऐब्बे द्वारा विकसित सूक्ष्मदर्शी यंत्र की गणितीय थ्योरी के आधार पर विचार किया। इस थ्योरी के अनुसार, सूक्ष्मदर्शी द्वारा बनाये प्रतिबिंब को हम ऐसा समझ सकते हैं, मानो बहुत–से अलग–अलग डिज़ाइनों को एक–दूसरे पर रखा हुआ है। प्रत्येक डिज़ाइन में समांतर काली पट्टियाँ हैं जो एक निश्चित कोण बनाती हुई क्षेत्र ... इस बात को एक सरल उदाहरण द्वारा चित्र 46 में समझाया गया है। इसमें दिखाया ग... फ़ोटो, जिसमें अँधेरी पृष्ठभूमि के मध्य में एक उजला अंडाकार क्षेत्र है, कैसे चार अलग-... वाले डिज़ाइनों को एक–दूसरे पर रख कर प्राप्त किया जा सकता है।

ऐब्बे की थ्योरी के अनुसार सूक्ष्मदर्शी यंत्र इस प्रकार कार्य करता है: (1) पहले ... बहुत–से अलग–अलग पट्टीदार डिज़ाइनों में बाँट देता है, (2) हरएक डिज़ाइन को ... आवर्धित करता है, और (3) डिज़ाइनों को फिर एक–दूसरे पर चढ़ा देता है जिससे ... प्रतिबिंब प्राप्त हो जाता है।

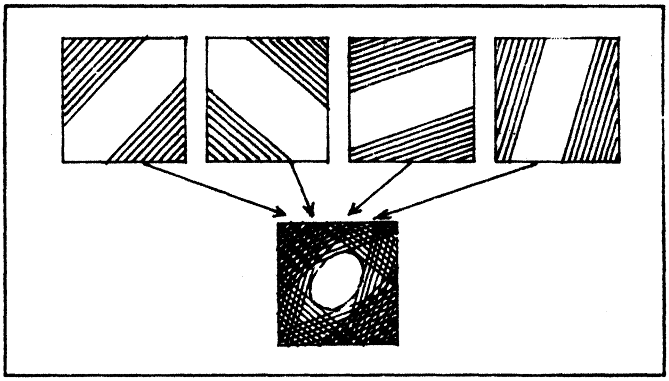

चित्र 46 : चार डिज़ाइनों को एक–दूसरे के ऊपर रखने से प्राप्त हुआ फ़ोटो

इस विधि की तुलना रंगीन चित्रों को छापने के उस तरीके के साथ की जा सकती है जिसमें कई एकरंगी प्लेटों का प्रयोग किया जाता है। एक–एक रंग की छपाई को अकेला देख कर आप शायद बता नहीं पायेंगे कि चित्र किस चीज़ का है, परंतु जब सभी को सही ढंग से एक–दूसरे पर चढ़ा दिया जाता है तो पूरा चित्र साफ़ और पैना निकल आता है।

सूक्ष्मदर्शी में जो लैंस लगा रहता है, वह ऊपर लिखी सभी क्रियाओं को अपने आप कर देता है। अब चूँकि एक्स–रे के लिए लैंस बनाना असंभव है, अतः मजबूरन हमें एक–एक क़दम करके चलना होगा: सभी तरह के कोणों से क्रिस्टल के बहुत–से समांतर डिज़ाइन एक्स–रे किरणों द्वारा बनाना, और फिर एक ही फ़ोटो की प्लेट पर सबको सही ढंग से समारोपित कर देना। इस प्रकार हम ठीक वही कार्य कर सकते हैं जो एक एक्स–रे–लैंस करता। हाँ, लैंस तो पूरे कार्य को लगभग पल भर में कर डालता, जबकि इस कार्य को करने में एक कुशल प्रयोगधर्मी को कई घंटे लगेंगे। यही कारण है कि ब्रैग का तरीका इस्तेमाल करके हम क्रिस्टल का तो चित्र बना सकते हैं, जिसमें अणु अपने–अपने स्थानों पर शांत बैठे रहते हैं, पर द्रव या गैस के अणुओं के फ़ोटो नहीं उतार सकते, क्योंकि वहाँ ये अणु अस्त–व्यस्त–से नाचते–कूदते रहते हैं।

यद्यपि ब्रैग के तरीके से बनाये गये चित्र कैमरे का बटन एक ही बार दबा कर नहीं बने होते हैं, तथापि वे उतने ही अच्छे और शुद्ध होते हैं जितना कोई भी जोड़ कर बनाया गया चित्र हो सकता है। एक विशाल मंदिर का फ़ोटो यदि कई अलग–अलग चित्रों को जोड़ कर बना हो, क्योंकि तकनीकी कारणों से पूरे ढाँचे को एक ही प्लेट पर उतारना संभव न हो, तो इस पर भला कौन आपत्ति करेगा ?

## 5. परमाणु को काटना

जब डैमोक्रिटस ने परमाणु को "ऐटम" नाम दिया, जिसका यूनानी भाषा में अर्थ है "अभाज्य", तो उसका अर्थ था कि ये कण वह अंतिम संभव सीमा हैं जहाँ तक किसी पदार्थ को तोड़ कर छोटे भागों में बाँटा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, ऐटम वे लघुतम और सरलतम पुर्ज़े हैं जिनसे मिलकर भौतिक वस्तुएँ बनी हैं। हज़ारों वर्ष बाद जब पदार्थ के परिशुद्ध विज्ञान का जन्म हुआ, और इसमें परमाणु के उस मूल दार्शनिक विचार को प्रतिष्ठित किया गया, और इसे व्यापक प्रयोगजन्य जानकारी के आधार पर हाड़–माँस दिया गया, तो इसके साथ ही यह विश्वास भी प्रतिष्ठित हो गया कि परमाणु

अभाज्य है। अब प्रश्न उठा कि विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के गुण अलग–अलग क्यों हैं ? इसके उत्तर में परिकल्पना की गयी कि उनकी ज्यामितीय आकृतियाँ अलग–अलग हैं। उदाहरणार्थ, हाइड्रोजन के परमाणुओं को लगभग गोलाकार समझा गया, जबकि सोडियम व पोटाशियम के परमाणुओं के बारे में धारणा बनी कि इनका आकार लंबे खींचे गये दीर्घवृत्तों जैसा है।

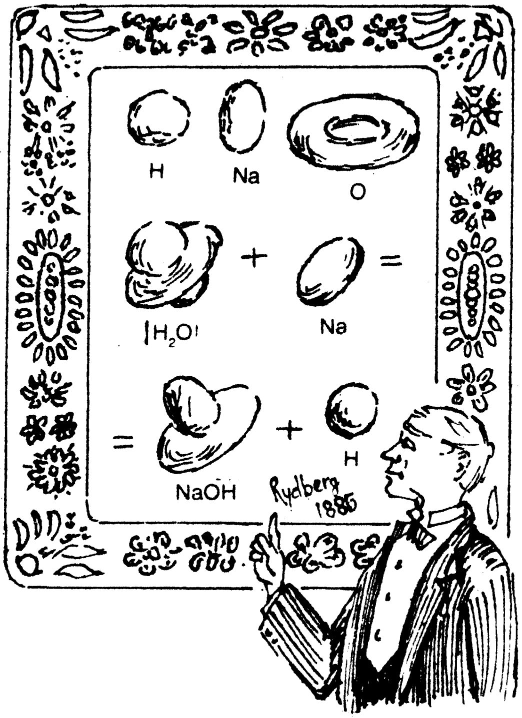


चित्र 47 : विभिन्न परमाणुओं की कल्पित आकृतिया

दूसरी ओर, ऑक्सीजन के परमाणु को डोनट के आकार का विचारा गया, जिसमें मध्य का छिद्र लगभग पूरा बंद था, जिससे दो गोलाकार हाइड्रोजन परमाणुओं को ऑक्सीजन के डोनट के दोनों ओर के गड्ढों में रख कर जल का एक अणु (molecule) बनाया जा सकता था (चित्र 47)। पानी सोडियम या पोटाशियम के साथ प्रतिक्रिया करता है, जिसमें पानी के अणु में एक हाइड्रोजन का स्थान इन तत्त्वों का परमाणु ले लेता है – इस तथ्य की तब इस प्रकार व्याख्या की जाती थी कि सोडियम या पोटाशियम के परमाणु लंबाई में होने के कारण ऑक्सीजन के दोनों ओर के गड्ढों में हाइड्रोजन के गोलाकार परमाणुओं की अपेक्षा बेहतर फ़िट हो जाते हैं।

अब विभिन्न परमाणुओं द्वारा उत्पादित प्रकाश के वर्णक्रम (spectrum) में अंतर क्या है ? उपर्युक्त दृष्टिकोण में माना गया कि विभिन्न आकृतियों वाले परमाणुओं के आवृत्तियां (frequencies) भिन्न–भिन्न हैं। इस प्रकार तर्क करते हुए भौतिकीविदों ने तर तत्त्वों के प्रकाश की आवृत्तियों को माप कर उस के आधार पर उनके परमाणुओं की आकृ में निष्कर्ष निकालने की असफल कोशिशें की हैं। ये कोशिशें ठीक उसी प्रकार ध्वनि–विज्ञान में हम वायलिन, मंदिर के घंटे, सैक्सोफ़ोन आदि के द्वारा पैदा की हुई ध्वनि की व्याख्या करते हैं।

अलबत्ता, सिर्फ़ ज्यामितीय आकृति के आधार पर विभिन्न परमाणुओं के रासायनिक एवं भौतिक गुणों की व्याख्या करने के ऐसे किसी प्रयास से कोई ख़ास प्रगति नहीं हुई। परमाणुओं के गुणों को समझने की दिशा में वास्तव में पहला कदम आगे तब बढ़ा, जब यह पहचाना गया कि परमाणु विभिन्न ज्यामितीय आकारों वाले लघुतम पिंड नहीं हैं, बल्कि ये काफ़ी जटिल यंत्र हैं जिनमें अपने–अपने ढंग से चलने वाले बहुत–से भाग हैं।

परमाणु के नाज़ुक शरीर को काटने के जटिल ऑपरेशन में पहला चीर लगाने का सम्मान बर्तानी भौतिकीविद जे0 जे0 थॉमसन को प्राप्त हुआ, जो दर्शा पाये कि विभिन्न रासायनिक तत्त्वों के परमाणुओं में धनात्मक और ऋणात्मक आवेश वाले भाग होते हैं, जो स्थिर–विद्युत–आकर्षण के बलों द्वारा एक साथ बँधे रहते हैं। थॉमसन ने परमाणु की ऐसी कल्पना की कि इसमें मोटे तौर पर समान रूप से फैला धन–आवेश है जिसके बीच में बहुत–से ऋण–आवेश वाले कण तैर रहे हैं (चित्र 48)।

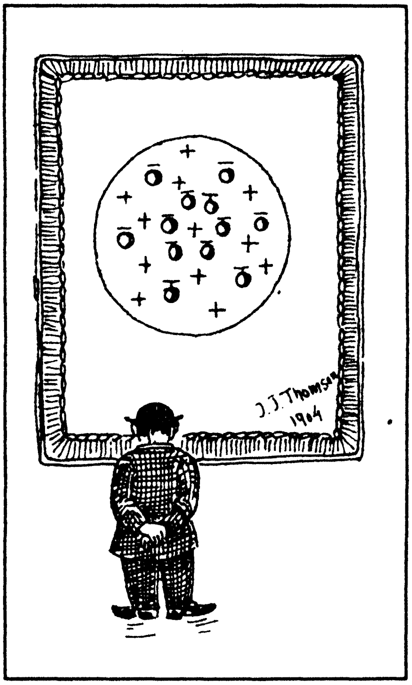

चित्र 48 : थॉमसन का परमाणु

ऋणात्मक कणों को थॉमसन ने **इलैक्ट्रोन** नाम दिया। इन सभी कणों का कुल विद्युत–आवेश कुल धनात्मक आवेश के बराबर है; अतः सब मिला कर परमाणु आवेशहीन है। हाँ, इलैक्ट्रोन परमाणु के शरीर के साथ ढीले–से ही बँधे हुए माने गये, अर्थात् एक या कई इलैक्ट्रोन परमाणु से हटाये भी जा सकते थे। इलैक्ट्रोन हटाने के बाद बाकी बचे हुए धन–आवेश वाले परमाणु को **धनात्मक आयन** कहा गया। दूसरी ओर, यदि कोई परमाणु बाहर से एक या कई अतिरिक्त इलैक्ट्रोन खींच कर अपने ढाँचे में शामिल कर ले तो उसके पास अतिरिक्त ऋण–आवेश हो जायेगा, जिससे वह **ऋणात्मक आयन** कहलायेगा। परमाणु को इस तरह अतिरिक्त धनात्मक या ऋणात्मक आवेश देने की क्रिया को **आयनीकरण** कहा जाता है। थॉमसन ने माइकेल फ़ैराडे के चिर–प्रतिष्ठित कार्य के आधार पर यह मत बनाया, जिन्होंने प्रमाणित किया था कि जब भी किसी परमाणु पर कोई विद्युत–आवेश होता है,

तो यह सदा एक मूलभूत विद्युतीय मात्रा के गुणक के बराबर होता है। इस मूलभूत मात्रा को संख्या–रूप में कहेंगे $5.77 \times 10^{-10}$ ई0 एस0 यू0 या $1.6 \times 10^{-19}$ कूलंब। परंतु थॉमसन फ़ैराडे की अपेक्षा बहुत आगे चले गये जब उन्होंने इस मूलभूत आवेश को एक स्वतंत्र कण की हैसियत दी, परमाणु के शरीर से उसे बाहर निकालने का तरीका विकसित कर दिया, और खाली आकाश में द्रुत गति से उड़ते हुए इलैक्ट्रोनों की धाराओं का अध्ययन किया।

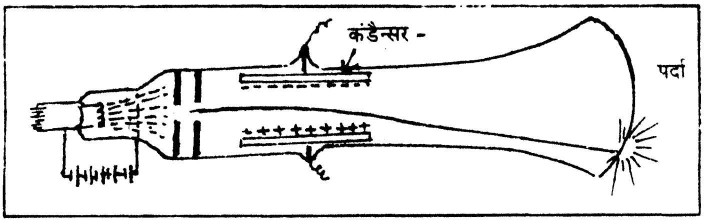


चित्र 49 : थॉमसन का उपकरण

थॉमसन ने मुक्त इलैक्ट्रोनों की धाराओं पर जो अध्ययन किये, उनका एक विशेष महत्त्वपूर्ण परिणाम था इलैक्ट्रोन के भार का आकलन। एक आवेशित कंडैंसर की दो प्लेटों के बीच के स्थान में उन्होंने इलैक्ट्रोनों की एक धारा भेजी (चित्र 49)। (इस धारा को प्राप्त करने के लिए एक पतली तार को विद्युत द्वारा गर्म करके इलैक्ट्रोन निकाले गये थे और उनको एक शक्तिशाली विद्युत–क्षेत्र के द्वारा गति दी गयी थी।) क्योंकि ये इलैक्ट्रोन ऋणात्मक रूप से आवेशित थे, या अधिक सही कहना हो तो ये स्वयं मुक्त ऋण–आवेश थे, अतः ये धनात्मक प्लेट की ओर आकर्षित और ऋणात्मक से विकर्षित हुए। परिणाम–स्वरूप इलैक्ट्रोन–किरण में जो विचलन (deflection) हुआ उसे आसानी से देखा जा सकता था क्योंकि कंडैंसर के पीछे एक पर्दा रखा था जो उस किरण के पड़ने से चमकता था। इलैक्ट्रोन के आवेश तथा ज्ञात विद्युत–क्षेत्र में इसके विचलन की जानकारी से इसके भार का आकलन किया जा सकता था, जो कि वास्तव में बहुत ही थोड़ा निकला।* सही–सही कहें तो थॉमसन ने पाया कि एक इलैक्ट्रोन का भार हाइड्रोजन के एक परमाणु के भार का 1840 वाँ भाग है। इस प्रकार संकेत मिला कि परमाणु के भार का मुख्य भाग उसके धनात्मक आवेश वाले अंग में ही है।

ऋणात्मक इलैक्ट्रोनों के झुंड के बारे में तो थॉमसन की दृष्टि बिल्कुल सही निकली, कि ये परमाणु के भीतर इधर–उधर घूमते रहते हैं। परंतु धनात्मक आवेश परमाणु के शरीर में समान रूप से वितरित होने की बात सत्य से बहुत दूर थी। सन् 1911 में रदरफ़ोर्ड ने दिखा दिया कि परमाणु का धनात्मक आवेश और साथ ही इसके भार का अधिकतम भाग परमाणु के केंद्र में अ...
आकार के **नाभिक** (nucleus) में केंद्रित है। यह निष्कर्ष उन विख्यात प्रयोगों के परिणाम–...
हुआ जिनमें "अल्फ़ा ($\alpha$) कणों" के पदार्थ से गुज़रने पर होने वाले प्रकीर्णन (बिखरने) को ...
ये अल्फ़ा–कण तीव्र गति वाले नन्हे–नन्हे प्रक्षेपक (projectiles) होते हैं जो कुछ भारी अ...
(जैसे यूरेनियम या रेडियम) के परमाणुओं के अपने आप टूटने पर निकलते हैं। क्योंकि ...
हो चुका था कि इन अल्फ़ा कणों का भार परमाणुओं के भार के समतुल्य होता है और ...

* वास्तव में थॉमसन द्वारा किये गये प्रयोगों से इलैक्ट्रोन के **भार और आवेश का अनुपात** ही मालूम हुआ था; इ...
तो बाद में मिलिकैन के प्रयोगों से ही मालूम हुआ, और तभी उसके भार की सही–सही गणना भी हो पा...

धनात्मक होता है, अतः इन्हें परमाणु के धनात्मक पिंड का टूटा हुआ भाग ही मानना पड़ेगा। जब ऐसा अल्फ़ा कण किसी पदार्थ के बीच से गुज़रता है, तो यह इलैक्ट्रोनों के आकर्षण तथा परमाणु के धनात्मक भागों के विकर्षण के बलों से प्रभावित होता है। अब इलैक्ट्रोन तो इतने हल्के होते हैं कि वे आते हुए अल्फ़ा–कण की गति को प्रभावित करने में उतने ही असफल होते हैं जितने कि एक पागल हाथी की दौड़ को प्रभावित करने में मच्छरों का झुंड। दूसरी ओर, परमाणु के भारी धनात्मक भागों और अल्फ़ा कणों के धनात्मक आवेश के बीच विकर्षण तो अवश्य अल्फ़ा कणों को अपने मूल पथ से विचलित करके उन्हें सभी दिशाओं में बिखेर सकेंगे, बशर्ते कि अल्फ़ा कण उन आवेशों के पर्याप्त पास से गुज़रें।

ऐलुमिनियम की पतली पत्ती में से गुज़रते अल्फ़ा कणों की किरणों के बिखरने के अध्ययनों में पाया गया कि अधिकतर अल्फ़ा कण बिना विचलित हुए सीधे पत्ती में से निकल गये और बहुत थोड़े कणों के मार्ग में परिवर्तन हुआ। इन प्रेक्षणों की व्याख्या करने के लिए रदरफ़ोर्ड को यह मानना पड़ा कि इन (मुड़ जाने वाले) कणों की धन–आवेश से दूरी परमाणु के व्यास के एक हज़ारवें भाग से भी

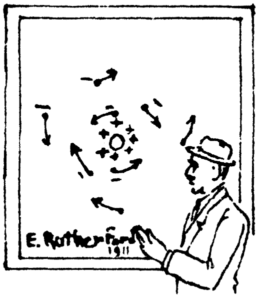


चित्र 50 : रदरफ़ोर्ड का परमाणु

कम रह गयी होगी। निश्चय ही, यह तो तभी संभव है जब **अल्फ़ा कण और परमाणु का धनात्मक भाग, दोनों ही परमाणु से हज़ारों गुणा छोटे हों।** यह एक आश्चर्यजनक निष्कर्ष था। इस प्रकार, रदरफ़ोर्ड की खोज का परिणाम यह हुआ कि थॉमसन के मॉडल में जो धनात्मक आवेश परमाणु में समान रूप से फैला हुआ था, वह सिकुड़ कर परमाणु के केंद्र में अतिलघु **परमाणविक नाभिक** बन गया, और ऋणात्मक इैल्क्ट्रोनों का झुंड उसके बाहर ही रह गया। अतः परमाणु की शक्ल एक तरबूज़ की तरह (जिसमें लाल भाग धनात्मक आवेश है और बीज इलैक्ट्रोन हैं) न होकर एक सूक्ष्म सौर परिवार की तरह लगने लगी, जिसमें परमाणविक नाभिक सूर्य के स्थान पर है और इलैक्ट्रोन ग्रहों के स्थानों पर (चित्र 50)।

ग्रह–परिवार के साथ परमाणु की समानता निम्नलिखित तथ्यों से और भी सुदृढ़ हो जाती है: परमाणु के नाभिक में परमाणु के कुल भार का 99.97 प्रतिशत मौजूद है; इसकी तुलना में सौर परिवार के भार का 99.87 प्रतिशत सूर्य में केंद्रित है। यही नहीं, इलैक्ट्रोनों की नाभिक से दूरियाँ उनके व्यास से लगभग उतने ही गुणा अधिक हैं (एकाध लाख गुणा)+, जितने गुणा विभिन्न ग्रहों की सूर्य से दूरियाँ ग्रहीय व्यासों की तुलना में हैं।

+ यूँ तो इलैक्ट्रोन को एक ज्यामितीय बिंदु जैसा आकारहीन माना जाता है, परंतु इसकी भार–रूप ऊर्जा के आधार पर कुछ लेखकों ने इसकी त्रिज्या लगभग $10^{-15}$ मी० बतायी है। –अनु०

परंतु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण समानता तो इस तथ्य से झलकती है कि परमाणु के नाभिक और इलैक्ट्रोनों के बीच जो आकर्षण–बल है यह वर्ग के उलटे अनुपात वाले उसी गणितीय नियम पर टिका है[4], जिस पर सूर्य और ग्रहों के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल टिका है। इसके कारण इलैक्ट्रोन नाभिक के इर्द–गिर्द वृत्ताकार और दीर्घवृत्ताकार पथों पर चलते हैं; ये पथ वैसे ही हैं जैसे सौर परिवार में ग्रहों और धूमकेतुओं के होते हैं।

ऊपर बतायी गयी दृष्टि से अब हम परमाणु की अंदरूनी रचना को देख सकते हैं। इसके अनुसार विभिन्न रासायनिक तत्त्वों के बीच अंतर का कारण यह है कि परमाणुओं के नाभिकों के इर्द–गिर्द घूमने वाले इलैक्ट्रोनों की संख्याएँ अलग–अलग हैं। क्योंकि कुल मिला कर परमाणु विद्युत–आवेश के बिना है, अतः इसके नाभिक के इर्द–गिर्द घूमने वाले इलैक्ट्रोनों की संख्या उतनी ही होगी जितने धनात्मक आवेश नाभिक में हैं। इस संख्या का आकलन अल्फ़ा कणों के बिखराव के प्रेक्षण से प्रत्यक्षतः किया जा सकता है, अर्थात् यह देखकर कि नाभिक की विद्युतीय क्रिया के कारण अल्फ़ा कण अपने पथों से कितने विचलित होते हैं। रदरफ़ोर्ड ने पाया कि **यदि रासायनिक तत्त्वों को परमाणविक भार के क्रम में सजाया जाये तो हर तत्त्व के परमाणु में इलैक्ट्रोनों की संख्या एक-एक बढ़ती जाती है**। इस प्रकार हाइड्रोजन के परमाणु में 1 इलैक्ट्रोन है, हीलियम में 2 हैं, लिथियम में 3, बेरिलियम में 4, और इसी तरह हम भारी से भारी प्राकृतिक तत्त्व यूरेनियम तक पहुँचते हैं, जिसमें कुल 92 इलैक्ट्रोन हैं।[5]

इस प्रकार एक परमाणु या तत्त्व को पहचानने के लिए एक संख्या बतायी जा सकती है (केन्द्रीय नाभिक के इर्द–गिर्द घूमने वाले इलैक्ट्रोनों की संख्या या नाभिक में धन–आवेशों की संख्या) जिसे **परमाणु-संख्या** (atomic number) कहते हैं। तत्त्वों को उनके रासायनिक गुणों के अनुसार रसायन–विज्ञानियों ने जिस तालिका में सजाया है, उसमें भी तत्त्वों के स्थान परमाणु–संख्या के क्रम में ही आते हैं। अतः केवल एक संख्या को जानने से किसी भी तत्त्व के सभी भौतिक तथा रासायनिक गुणों की जानकारी हो जाती है।

पिछली शताब्दी के अंत के आसपास रूसी रसायन–विज्ञानी डी० मेंडलीफ़ के ध्यान में यह आया कि सभी तत्त्वों को अपनी परमाणु–संख्या के क्रम में सजाया जाये तो उनके रासायनिक गुण अद्‌भुत आवर्ती ढंग से दुहराये जाते हैं। उन्होंने पाया कि कुछ निश्चित संख्याओं के अंतर पर तत्त्वों के गुण दुहराये जाने लगते हैं। इस आवर्तिता का चित्रांकण चित्र 51 में किया गया है, जिसमें अब तक ज्ञात सभी तत्त्वों को एक पट्टी पर सजाया गया है जो एक बेलन की सतह पर सर्पिल घूमती हुई नीचे की ओर बढ़ती है। इस प्रकार समान गुणों वाले तत्त्व एक–दूसरे के ऊपर–नीचे कतारों में आ जाते हैं। हम देखते हैं कि पहले ग्रुप (फेरे) में केवल दो तत्त्व हैं : हाइड्रोजन व हीलियम बाद आठ–आठ तत्त्वों के दो ग्रुप हैं, और अंत में हर 18 तत्त्वों के बाद गुण दुहराने लगते हम याद रखें कि तत्त्वों के इस क्रम में हर एक क़दम बढ़ने का अर्थ परमाणु में एक और बढ़ाना है, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि तत्त्वों के रासायनिक गुणों में जो दिखाई देती है, उसका कारण यही होगा कि कुछ निश्चित संख्याओं में मिल कर इलैक्ट्रोन या "इलैक्ट्रोन चक्र" बनाते होंगे। पहले चक्र को पूरा करने के लिए अवश्य दो ही इलैक्ट्रो

---

[4] अर्थात् दो पिंडों के बीच लगने वाला बल दोनों के बीच दूरी के वर्ग के उलटे अनुपात में होगा।

[5] अब तो हम कीमियागिरी की विद्या सीख चुके हैं (जैसा आप आगे देखेंगे), और कृत्रिम रूप से इन सबसे तत्त्व भी बना सकते हैं। जैसे, परमाणु–बम में काम आने वाले कृत्रिम तत्त्व प्लूटोनियम में 94 इलैक्ट्रोन है

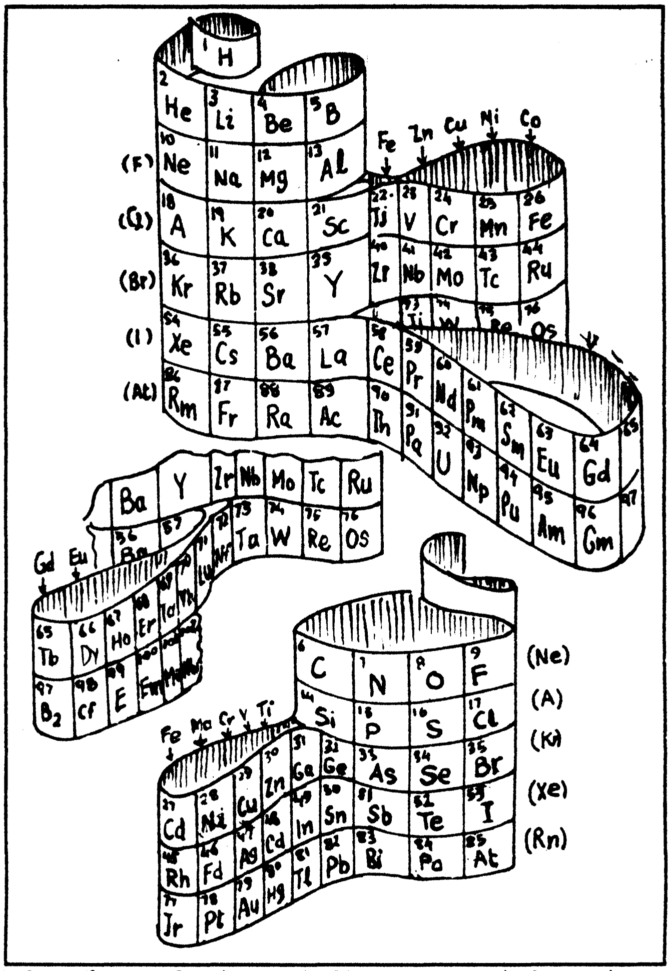


चित्र 51 : तत्त्वों की आवर्ती व्यवस्था जिसको बल खाते फीते पर सजाया गया है जो 2, 8 और 18 तत्त्वों का चक्र दिखाती है। नीचे का चित्र तत्त्वों के गोल घेरे को दूसरी ओर से दर्शाता है; साथ ही उन तत्त्वों को भी (दुर्लभ मिट्टियाँ और एक्टिनाइडें) जो नियमित आवर्तन से बाहर हैं।

होंगे, अगले दो चक्रों में आठ–आठ इलैक्ट्रोनों की जगह होगी, और उसके बाद प्रत्येक में 18 की। चित्र 51 से यह बात भी ध्यान में आती है कि छठे और सातवें चक्रों में पहले वाली गुणों की आवर्तिता थोड़ी–सी गड़बड़ा जाती है, और तत्त्वों के दो समूहों को (जिन्हें दुर्लभ मिट्टियाँ और एक्टिनाइडें कहते हैं) नियमित बेलन की सतह से बाहर निकली हुई पट्टियों पर रखना पड़ता है। इस विसंगति का कारण यह है कि यहाँ इलैक्ट्रोनों के चक्रों की कुछ विशेष ढंग से पुनर्रचना होती है, जिससे इसकी लपेट में आये परमाणुओ के रासायनिक गुणों का नियमित क्रम तितर–बितर हो जाता है।

परमाणु कैसा होता है, इसका तो एक अच्छा–ख़ासा चित्र हमारे सामने आ चुका है। अतः अब हम उन बलों के बारे में प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास कर सकते हैं, जो तत्त्वों के परमाणुओं को बाँध कर असंख्य रासायनिक यौगिकों के जटिल अणु बना देते हैं।* उदाहरणार्थ, सोडियम और

* विभिन्न तत्त्वों की रासायनिक क्रिया से बना पदार्थ "यौगिक" (compound) कहलाता है और इसका छोटे से छोटा भाग "अणु" (molecule) कहलाता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक अणु कई परमाणुओं के संयोग से बना है। –अनु०

क्लोरीन के परमाणु क्यों एक साथ बँधे रहते हैं जिससे कि साधारण नमक का एक अणु बन जाता है? चित्र 52 में दिये गये दोनों प्रकार के परमाणुओं के चक्रों के ढाँचे को देखते हुए हम पाते हैं कि क्लोरीन के परमाणु में तीसरा चक्र पूरा करने के लिए एक इलैक्ट्रोन की कमी है (8 के स्थान पर केवल 7 ही मौजूद हैं), जबकि सोडियम के परमाणु में दूसरा चक्र पूर्ण करने के बाद एक इलैक्ट्रोन अतिरिक्त बचता है। इसलिए सोडियम के अंतिम इलैक्ट्रोन की अवश्य क्लोरीन में चले जाने की प्रवृत्ति होगी, जिससे कि दोनों अपूर्ण चक्र पूर्ण हो जायें। एक इलैक्ट्रोन के इस प्रकार स्थान–परिवर्तन करने से सोडियम परमाणु पर धनात्मक आवेश आ जाता है (ऋणात्मक इलैक्ट्रोन खो देने से), जबकि क्लोरीन के परमाणु को ऋणात्मक आवेश प्राप्त हो जाता है। अब दोनों आवेशित परमाणु विद्युत के

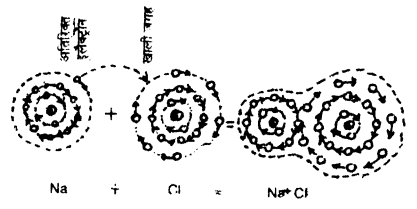


चित्र 52 : रेखा–चित्र जिसमें सोडियम क्लोराइड अणु में सोडियम एवं क्लोरीन परमाणुओं का संयोजन दर्शाया गया

आकर्षण–बल के प्रभाव से एक साथ जुड़ जाते हैं जिससे सोडियम क्लोराइड (NaCl) (या सादे शब्दों में कहें तो साधारण नमक) का अणु बनता है। इसी प्रकार ऑक्सीजन का एक परमाणु, जिसके बाहरी चक्र में दो इलैक्ट्रोनों की कमी है, दो हाइड्रोजन परमाणुओं से उनके अकेले–अकेले इलैक्ट्रोन का "अपहरण" कर लेगा, और इस प्रकार जल का एक अणु ($H_2O$) बन जायेगा। दूसरी ओर, ऑक्सीजन और क्लोरीन के परमाणुओं में आपस में जुड़ने की कोई प्रवृत्ति नहीं होगी, और न ही हाइड्रोजन और सोडियम के परमाणुओं में होगी, क्योंकि पहले जोड़े में दोनों परमाणु इलैक्ट्रोन लेना चाहते हैं, देना कोई नहीं चाहता, जबकि दूसरे जोड़े में कोई भी परमाणु इलैक्ट्रोन लेना नहीं चाहता।**

जिन परमाणुओं के इलैक्ट्रोनीय आवरण पूरे भरे हैं, जैसे हीलियम, आर्गोन, नियोन और ज़ीनोन, वे पूरी तरह अपने में ही तृप्त हैं और उन्हें अतिरिक्त इलैक्ट्रोनों का लेन–देन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें शान से अकेले रहना ही पसंद है। अतः ऐसे तत्त्व (जिन्हें "दुर्लभ गैसें" कहा जाता है) रासायनिक रूप से अक्रिय होते हैं, यानी किसी अन्य तत्त्व के साथ कोई क्रिया नहीं करते।+

परमाणुओं और उनके इलैक्ट्रोनीय आवरणों से संबंधित इस परिच्छेद को पूरा करने ... उन पदार्थों में, जिन्हें आम तौर पर सामूहिक रूप में "धातु" कहा जाता है, इलैक्ट्रोनों ... भूमिका की चर्चा करेंगे। धातु पदार्थ अन्य सभी पदार्थों से इस माने में विशिष्ट हैं कि उन... के बाहरी आवरण के इलैक्ट्रोन ज़रा ढीले–से ही बँधे होते हैं, और परमाणु उन इलैक्ट्रो...

---

** वैसे कुछ परिस्थितियों में हाइड्रोजन का परमाणु कहीं से एक इलैक्ट्रोन लेकर दो इलैक्ट्रोन का चक्र पूरा ... भी कर सकता है। जैसे, सोडियम और हाइड्रोजन के परमाणु इस प्रकार मिल कर सोडियम हाइड्राइड ... –अनु०

+ ऐसे एक ही तत्त्व के परमाणु भी एक–दूसरे के साथ क्रिया नहीं करते, जिससे ये आम तौर पर निम्न... गैस ही रहते हैं। –अनु०

मुक्त भी होने देते हैं। इस प्रकार किसी भी धातु के भीतर बड़ी संख्या में ऐसे इलैक्ट्रोन भरे रहते हैं, जो किसी भी परमाणु से जुड़े नहीं हैं और बेघर लोगों की भीड़ की भाँति आवारा फिरते रहते हैं। जब किसी धातु की तार के सिरों को बिजली के ध्रुवों से जोड़ कर तार में विद्युत–क्षेत्र पैदा किया जाता है, तो ये मुक्त इलैक्ट्रोन विद्युतीय बल की दिशा में दौड़ पड़ते हैं। इस प्रकार एक धारा बह पड़ती है जिसे हम विद्युत–धारा या करंट कहते हैं।

मुक्त इलैक्ट्रोनों की मौजूदगी ही धातुओं की ताप–चालकता के लिए भी ज़िम्मेवार है – आगे आने वाले एक अध्याय में हम लौट कर इस विषय पर आयेंगे।

## 6. सूक्ष्म-यांत्रिकी और अनिश्चितता का सिद्धांत

जैसा कि हमने पिछले परिच्छेद में देखा है, परमाणु में एक केंद्रीय नाभिक होता है जिसके इर्द–गिर्द इलैक्ट्रोनों का समूह चक्कर लगाता रहता है। क्योंकि यह चित्र सौर–परिवार से काफ़ी मिलता–जुलता है, अतः यह उम्मीद करना स्वाभाविक है कि इस पर भी वही जाने–माने खगोलीय नियम लागू होंगे जिनसे सूर्य के गिर्द ग्रहों की गति नियमित होती है। विशेष रूप से हम विद्युतीय आकर्षण और गुरुत्वाकर्षण के बीच की समानता पर ध्यान दें – दोनों ही मामलों में आकर्षण का बल दूरी के वर्ग के उलटे अनुपात में रहता है। इस समानता को देखते हुए लगेगा कि परमाणु के इलैक्ट्रोनों को भी दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में चलना होगा, जिनके फ़ोकस की जगह नाभिक होगा (चित्र 53क)।

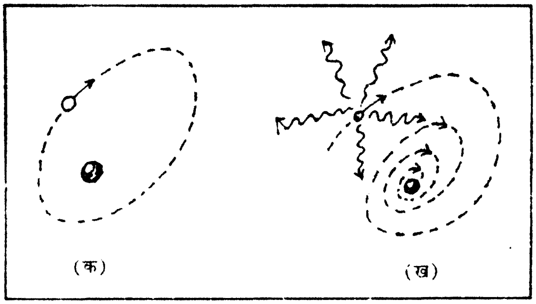


चित्र 53 : क्या इलैक्ट्रोन नाभिक मे गिर जायेगा?

अतः हमारे ग्रह–परिवार की गतियों को जिन सूत्रों द्वारा बताया जाता है, उन्हीं के आधार पर परमाणु के इलैक्ट्रोनों की गतियों का एक सुसंगत चित्र बनाने के हाल तक कई प्रयास हुए, परंतु उन सभी परिणामों में अनपेक्षित ढंग से बहुत बडी विसंगति (गड़बड़) मिली – इतनी बड़ी कि कुछ समय तक ऐसा लगता था कि या तो भौतिक विज्ञानी पागल हो गये हैं या फिर भौतिक विज्ञान ही पागलपन है। कठिनाई की जड़ यह तथ्य है कि परमाणु के इलैक्ट्रोनों पर विद्युत आवेश रहता है (जबकि सौर परिवार के ग्रहों पर नहीं रहता), और नाभिक के गिर्द उनके घूमने से अवश्य घनी विद्युत–चुंबकीय तरंगें निकलेंगी, जैसा कि किसी भी काँपने या घूमने वाले विद्युत–आवेश के बारे में नियम है। ये तरंगें या विकिरण अपने साथ ऊर्जा ले जाती हैं, अर्थात् उतनी मात्रा में इलैक्ट्रोन की ऊर्जा कम होती जायेगी। परिमाणतः यह मानना तर्कसंगत होगा कि इलैक्ट्रोन सर्पिल रास्तों पर चलते हुए नाभिक के पास पहुँचते जायेंगे (चित्र 53ख), और अंत में कक्षा में घूमने की गतिक ऊर्जा पूरी समाप्त हो जाने पर नाभिक में गिर जायेंगे। इस प्रक्रिया में कितना समय लगेगा, इसकी गणना करना काफ़ी आसान

था। इलैक्ट्रोन के आवेश और घूमने की आवृत्ति का उपयोग करते हुए गणना की गयी और पाया गया कि इलैक्ट्रोनों को अपनी सारी ऊर्जा खो कर नाभिक में गिर जाने में एक माइक्रोसैकंड के सौवें भाग से अधिक नहीं लगना चाहिए।

इस प्रकार, हाल तक की भौतिक विज्ञान की श्रेष्ठतम जानकारी और विश्वास के अनुसार, ग्रह–परिवार जैसे परमाणविक ढाँचे को एक सैकंड के नगण्य भाग से अधिक समय तक मौजूद नहीं रह सकना चाहिए; कोई भी परमाणु अपने निर्माण के साथ ही लगभग तुरंत ध्वस्त हो जाने को विवश है।

फिर भी, भौतिक थ्योरी की इन घोर भविष्यवाणियों के बावजूद, प्रयोगों ने दिखा दिया कि परमाणु वास्तव में बहुत स्थिर निकाय है, और इसके इलैक्ट्रोन अपने केंद्रीय नाभिक के गिर्द बराबर चक्कर लगाते जाते हैं। न तो ये तिल–भर ऊर्जा खोने का नाम लेते हैं, और न ही इनमें ध्वस्त हो जाने की प्रवृत्ति नज़र आती है।

भला यह कैसे हो गया! यांत्रिकी के पुराने और जमे हुए नियमों को परमाणु के इलैक्ट्रोनों पर लागू करने से ऐसे परिणाम क्यों निकाले जो देखे हुए तथ्यों के इतने विरोधी हैं?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें विज्ञान की सबसे मूलभूत समस्या की ओर मुख़ातिब होना होगा : विज्ञान की अपनी प्रकृति की पहेली। "विज्ञान" क्या है? और प्रकृति के तथ्यों की "वैज्ञानिक व्याख्या" से हमारा क्या तात्पर्य है?

एक छोटा–सा उदाहरण लें। याद करिए कि कई प्राचीन संस्कृतियों के लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी चपटी है। अब इस विश्वास के लिए उनको दोष देना कठिन है, क्योंकि यदि आप किसी खुले मैदान में आ जायें, या नाव में समुद्र को पार करें, तो आप स्वयं **आँखों से देख लेंगे** कि यह बात बिल्कुल सही है : कहीं–कहीं कोई पहाड़ी या पहाड़ हो सकते हैं, पर उनके अतिरिक्त पृथ्वी की सतह पूरी **चपटी** ही दीखती है। प्राचीन लोगों ने यदि यह कहा कि "किसी भी स्थान से देखने पर जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक धरती सपाट है", तो इस कथन में कोई ग़लती नहीं है। पर जहाँ दृष्टि नहीं जा सकती, वहाँ की बात कैसे कही जा सकती है? ग़लती हुई तो इस कथन को वास्तविक प्रेक्षण की सीमाओं के **बाहर खींच कर बढ़ाने** में हुई। वास्तव में, आम जीवन की सीमाओं के बहुत परे जब प्रेक्षण किये गये, जैसे चंद्र–ग्रहण के दौरान चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया की आकृति का अध्ययन, या मैजेलान की धरती के गिर्द प्रसिद्ध समुद्री यात्रा, तो इनसे तुरंत वह ग़लती प्रकट हो गयी जो एक सीमित निष्कर्ष को खींच कर बढ़ाने में हुई। हम अब कहते हैं कि पृथ्वी जो चपटी **दीखती** है, वह सिर्फ़ इसलिए कि हमें पृथ्वी की कुल सतह का बहुत थोड़ा ही भाग दीखता है। इसी प्रकार, जै... पाँच में चर्चा की गयी, ब्रह्मांड का आकाश भी वक्र और सीमित आकार वाला हो सकता है... के बावजूद कि हमारे सीमित प्रेक्षणों में यह सीधा और अनंत जैसा दीखता है।

हाँ, तो इस सब से हमें उस विरोधाभास के बारे में क्या मिला, जो हम परमाणु... इलैक्ट्रोनों के यांत्रिक व्यवहार में पाते हैं? उत्तर यह है कि परमाणु के अध्ययन में हमने बि... मान लिया था कि परमाणु की यंत्र–रचना में ठीक वही नियम लागू होते हैं जो विशाल आ... को नियंत्रित करते हैं, या जो नियम "साधारण आकार" के पिंडों पर लागू होते हैं (जिन ... दैनिक जीवन में व्यवहार करते हैं); इसलिए उन्हीं पिंडों की भाँति परमाणुओं की भी व्या... सकती है। वास्तव में, हमारे परिचित यांत्रिकी (mechanics) के नियमों और धारणा...

रोज़मर्रा की चीज़ों के साथ प्रयोगों के आधार पर इन्हीं के समान आकार वाली चीज़ों के लिए बनाया गया था। बाद में उन्हीं नियमों का इस्तेमाल बहुत अधिक बड़े पिंडों की गति की व्याख्या करने के लिए किया गया, जैसे ग्रह और तारे। आकाशीय यांत्रिकी में हमें जो सफलता प्राप्त हुई है, जिससे लाखों–करोड़ों वर्ष बाद की और इतने ही वर्ष पहले की खगोलीय घटनाओं की गणनाएँ भी हम बिल्कुल सही–सही कर पाते हैं, उससे इस बारे में कोई संदेह नहीं रह गया कि आम व्यवहार के यांत्रिक नियमों को अपनी सीमाओं के बाहर बढ़ा कर विशाल आकाशीय वस्तुओं की गति की व्याख्या में लागू करना सही है।

परंतु इस बात की क्या गारंटी है कि यांत्रिकी के वही नियम, जो विशाल आकाशीय पिंडों की गति की व्याख्या करते हैं, और उतनी ही अच्छी तरह से तोप के गोलों, घड़ियों के पैंडुलमों और खिलौने के लट्टुओं की भी, वे उन इलैक्ट्रोनों की गति पर भी लागू होंगे जो कि हमारे उपयोग के छोटे–से–छोटे यांत्रिक पुर्ज़े से भी अरबों–अरब गुणा छोटे व हल्के हैं?

हाँ, **पहले से ऐसा मान लेने का तो कोई कारण नहीं है कि साधारण यांत्रिकी के नियम परमाणु के सूक्ष्म भागों की गति को बताने में असफल ही होंगे। परंतु दूसरी ओर, यदि वास्तव में परमाणु में इन नियमों की अक्षमता प्रकट हो ही जाये तो किसी को बहुत आश्चर्य नहीं होना चाहिए।***

खगोल–विज्ञानी सौर परिवार के ग्रहों की गति की व्याख्या जिन नियमों के आधार पर करता है, उन्हीं के आधार पर परमाणु के इलैक्ट्रोनों की गति को समझने का प्रयास करने पर गड़बड़ परिणाम प्राप्त हुए। इस बात को सबसे पहले इस कोण से देखना चाहिए कि परंपरागत यांत्रिकी को जब इतने छोटे आकार के कणों पर लागू किया जाता है तो इसकी मूलभूत अवधारणाओं और नियमों में क्या परिवर्तन करने पड़ेंगे?

परंपरागत यांत्रिकी (classical mechanics) की दो आधारभूत अवधारणाएँ हैं – गतिमान कण के चलने से बनने वाला **पथ,** और उस रास्ते पर कण के बढ़ने का **वेग**। पहले यह कथन स्वयं–स्पष्ट माना जाता था कि **कोई भी चलता हुआ भौतिक कण किसी भी एक क्षण में आकाश में एक निश्चित स्थान पर होगा और इसकी क्रमिक स्थितियों (बिंदुओं) से एक अटूट रेखा बनेगी जिसे कण का पथ कह सकते हैं।** यह किसी भी भौतिक वस्तु की गति को दर्शाने का मूलभूत आधार बनता था। समय के दो भिन्न बिंदुओं पर कण की स्थितियों के बीच की दूरी को समय–अवधि से भाग करने पर **वेग** की परिभाषा प्राप्त होती थी, और पूरी परंपरागत यांत्रिकी "स्थिति" व "वेग" की इन अवधारणाओं पर ही खड़ी की गयी थी। हाल तक शायद किसी विज्ञानी को यह विचार न आया होगा कि कण के चलने की व्याख्या में प्रयुक्त होने वाली ये मूलभूत अवधारणाएँ किसी हद तक ग़लत भी हो सकती हैं, और इन्हें "पहले से" दिया हुआ मान लेना दार्शनिकों के लिए रोज़मर्रा की बात थी।

परंपरागत यांत्रिकी के नियमों को अतिलघु ऐटमों के भीतर की गति पर लागू करने की कोशिशों से जो गड़बड़ परिणाम मिले, उनसे मालूम हो गया कि इस मामले की जड़ में ही कुछ ग़लती है। इससे यह विश्वास बना, और बढ़ता गया, कि यह "ग़लती" उन मूलभूत–से–मूलभूत विचारों तक

* जैसे हमने पिछले अध्याय में देखा, खगोलीय दूरियों और प्रकाश के समान वेगों वाली घटनाओं की व्याख्या करने में दैनिक जीवन के अनुभव से उपजी आकाश व समय की मूलभूत अवधारणाएँ भी असफल हो जाती है। –अनु०

में मौजूद है जिन पर परंपरागत यांत्रिकी टिकी है। किसी भी गतिमान वस्तु का एक लगातार पथ होता है, और किसी भी समय वस्तु का एक निश्चित वेग होता है, इन आधारभूत गति–संबंधी मान्यताओं को जब परमाणु के भीतरी तंत्र के अतिलघु भागों पर लागू किया जाता है, तो ये मान्यताएँ **बहुत ही अधिक स्थूल** मालूम होती हैं। संक्षेप में, हमारी परिचित परंपरागत यांत्रिकी के विचारों को खींचकर अति लघु वस्तुओं के क्षेत्र में लागू करने के प्रयास से निश्चित रूप से प्रमाणित हो गया कि ऐसे में हमें इन विचारों में आमूल परिवर्तन करना होगा। परंतु यदि परंपरागत यांत्रिकी की पुरानी मान्यताएँ परमाणु के संसार में लागू नहीं होतीं, तो बड़े–बड़े भौतिक पिंडों की गति के बारे में भी वे **बिल्कुल पूरी तरह** सही नहीं हो सकतीं; **लगभग सही** ही हो सकती हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **जहाँ तक साधारण आकार वाली वस्तुओं का प्रश्न है, जिनके लिए परंपरागत यांत्रिकी के सिद्धांत मूल रूप से बनाये गये थे, इन आधारभूत सिद्धांतों को "वास्तविकता" के बहुत ही निकट मानना चाहिए**। जैसे ही हम इन सिद्धांतों को ऐसे निकायों पर लागू करना चाहते हैं जो कि साधारण वस्तुओं से बहुत अधिक नाजुक हैं तो ये निकटताएँ बुरी तरह असफल हो जाती हैं।

ऐटमी निकायों के यांत्रिक व्यवहार के अध्ययन से और क्वांटम भौतिकी के प्रतिपादन से पदार्थ के विज्ञान में जो सचमुच नयी बात खोजी और लायी गयी, वह यह तथ्य है कि **दो भिन्न भौतिक चीज़ों के बीच किसी भी संभव अंतः क्रिया की एक निश्चित निचली सीमा है** : इस सीमा से कम मात्रा में अंतः क्रिया हो ही नहीं सकती। इस खोज से किसी चलती हुई वस्तु के रास्ते की परंपरागत परिभाषा पर पानी फिर गया है। वास्तव में जब हम कहते हैं कि चलती हुई वस्तु का कोई गणितीय दृष्टि से परिशुद्ध पथ होता है, तो इस कथन में यह अर्थ निहित है कि किसी विशेष प्रकार से बनाये गये भौतिक उपकरण के द्वारा इस रास्ते को **अंकित करने की संभावना** भी होगी ही। परंतु इस बात को बिल्कुल भुलाया नहीं जा सकता कि चलती हुई वस्तु के रास्ते को अंकित करने में हमें उसकी मूल गति को अवश्य विचलित करना होगा। वास्तव में जो उपकरण चलती हुई वस्तु को आकाश में क्रमिक स्थितियों को अंकित करता जाता है, उस उपकरण पर वह वस्तु ज़रूर कुछ क्रिया करती होगी। अतः क्रिया एवं प्रतिक्रिया की बराबरी वाले न्यूटन के नियम के अनुसार उपकरण भी उस चलती हुई वस्तु पर जवाब में कुछ क्रिया करेगा। परंपरागत यांत्रिकी में तो यह मान्यता थी कि दो भौतिक वस्तुओं के बीच (यहाँ चलती हुई वस्तु और उसकी स्थिति अंकित करने वाले उपकरण के बीच) अंतः क्रिया को जितना चाहें उतना लघु बना सकते हैं। यदि ऐसा हो तो हम एक ऐसे आदर्श उपकरण की कल्पना कर सकते हैं जो इतना संवेदनशील है कि चलती हुई वस्तु की गति में लगभग कोई विचलन पैदा किये बिना ही उसकी क्रमिक स्थितियों को लगातार अंकित करता चला जाता है।

परंतु **भौतिक अंतः क्रियाओं की एक न्यूनतम सीमा होने** से इस बारे में क्रांति आ जाता है, क्योंकि अब स्थिति अंकित करने की प्रक्रिया में वस्तु की गति में जो विच हम जितना चाहें उतना कम नहीं कर सकते। **अतः गति को अंकित करने के कारण होगा, वह स्वयं वस्तु की गति का एक अभिन्न भाग बन जायेगा।** इसलिए वस्तु के मोटाई वाली पतली गणितीय रेखा करके दिखाने की बजाय हमें मजबूरन कुछ मोटाई पट्टी का उपयोग करना होगा। **परंपरागत भौतिकी के गणितीय-रेखाओं-सरीखे ती यांत्रिकी में थोड़ी फैली हुई पट्टियों में बदल जाते हैं।**

मगर याद रहे, भौतिक अंतः क्रिया की न्यूनतम मात्रा, जिसे आम तौर पर **क्रिया का क्वांटम** कहा जाता है, उसका मान बहुत ही कम है, और इसका महत्त्व तभी मालूम पड़ता है जब हम अतिलघु वस्तुओं की गति का अध्ययन करते हैं। अब जैसे, हालाँकि यह सच है कि रिवाल्वर की गोली का रास्ता भी गणितीय रेखा जैसा पैना नहीं है, पर इस रास्ते की "मोटाई" गोली के पदार्थ के अकेले परमाणु के आकार से भी कई गुणा कम है, और इसलिए व्यावहारिक रूप से इसे शून्य माना जा सकता है। परंतु यदि हम हल्की वस्तुओं की ओर ध्यान देते हैं, जो कि अपनी गति के मापने से पैदा होने वाले विचलन से अपेक्षाकृत अधिक आसानी से डगमगा जाते हैं, तो हम पाते हैं कि उनके "पथों" को कुछ मोटा मानना अधिकाधिक आवश्यक होता जाता है। परमाणु के केंद्रीय नाभिक के गिर्द चक्कर लगाने वाले **इलैक्ट्रोनों के रास्तों की मोटाई तो उनकी कक्षा के व्यास के समतुल्य हो जाती है**, जिसके कारण उनकी गति को चित्र 53 में अंकित रेखा द्वारा दिखाने की बजाय हमें उस प्रकार कल्पना करनी होगी जैसा चित्र 54 में दिखाया गया है। ऐसे मामलों में कण की गति को परंपरागत

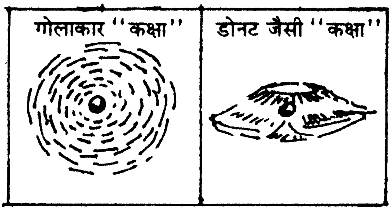


चित्र 54 : परमाणु में इलैक्ट्रोन की गति के सूक्ष्म–यांत्रिक चित्र

यांत्रिकी के परिचित ढंग से वर्णित नहीं किया जा सकता, और इसकी स्थिति और वेग दोनों एक हद तक अनिश्चित हो जाते हैं। (मात्रात्मक रूप से इसकी परिभाषा हाइसनबर्ग के अनिश्चितता के सिद्धांत तथा बोर के अनूपूरकता (complementarity) के सिद्धांत के रूप में दी गयी है।)[6]

नयी भौतिकी का यह चौंकाने वाला मोड़, जहाँ आकर किसी चलते हुए कण की गति के प्रक्षेप–पथ (trajectory) और शुद्ध स्थिति तथा वेग जैसी परिचित धारणाएँ कूड़े की टोकरी में फेंकने योग्य हो जाती हैं, हमें मानो हवा में लटका देता है। यदि परमाणविक इलैक्ट्रोनों के अध्ययन में हमें इन बुनियादी सिद्धांतों का उपयोग करने की अनुमति नहीं है, जो पहले स्वीकार किये जाते थे, तो उनकी गति को समझने के लिए हमारे पास क्या आधार रह जायेगा? क्वांटम भौतिकी के तथ्यों की इन नई माँगों – स्थिति, वेग, ऊर्जा में अनिश्चितताओं – का सामना करने के लिए हमारे पास प्रतिष्ठित यांत्रिकी के स्थान पर कैसा गणितीय ढाँचा होगा?

इन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए हम ऐसी ही एक अन्य परिस्थिति पर विचार करें जो प्रकाश की चिर–प्रतिष्ठित थ्योरी के क्षेत्र में पैदा हुई थी। हम जानते हैं कि साधारण जीवन में देखी जाने वाली प्रकाश–संबंधी अधिकतर घटनाओं की व्याख्या इस मान्यता के आधार पर की जा सकती है कि प्रकाश सीधी रेखाओं में चलता है जिन्हें **प्रकाश-किरणें** कहते हैं। अपारदर्शी पदार्थों द्वारा बनने वाली छायाएँ, समतल और वक्र दर्पणों में प्रतिबिंबों का बनना, और लैंसों तथा अन्य विविध जटिल प्रकाशिक यंत्रों के कार्य – इन सब की व्याख्या प्रकाश–किरणों के परावर्तन (reflection) तथा अपवर्तन (refraction) को नियंत्रित करने वाले मूलभूत नियमों के आधार पर की जा सकती है (चित्र 55 क, ख, ग)।

[6] अनिश्चितता के संबंधों की अधिक विस्तृत चर्चा लेखक की पुस्तक **मि० टॉम्किन्स इन वंडरलैंड** (द मैकमिलन कं०, न्यूयार्क, 1940) में पायी जायेगी।

परंतु हम यह भी जानते हैं कि ज्यामितीय प्रकाशिकी के तरीके, जिनमें प्रकाश–किरणों के रूप में प्रकाश के आगे बढ़ने की प्रतिष्ठित थ्योरी को प्रदर्शित किया जाता है, उन मामलों में बुरी तरह असफल हो जाते हैं जहाँ प्रकाशिक यंत्रों में प्रयोग किये गये छिद्र या द्वार का ज्यामितीय विस्तार

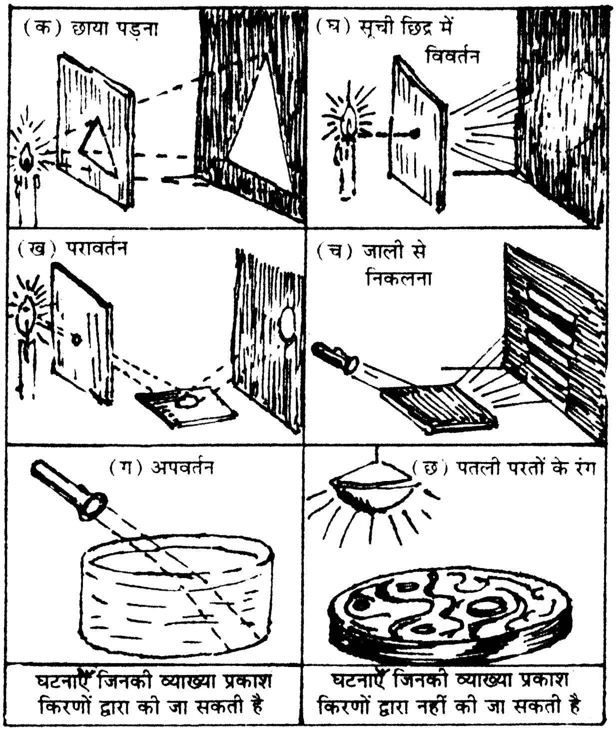


चित्र 55 : प्रकाश के विभिन्न प्रकार के व्यवहार

प्रकाश की तरंग–लंबाई के समतुल्य छोटा हो जाता है। ऐसी स्थिति में जो घटनाएँ होती हैं उन्हें **विवर्तन-क्रियाएँ** (diffraction phenomena) कहा जाता है और ये ज्यामितीय प्रकाशिकी के क्षेत्र से बिल्कुल बाहर हैं। जैसे, प्रकाश की किरण जब एक बहुत छोटे द्वार (लगभग .0001 सें0मी0) में से गुज़रती है, तो यह सरल रेखा में बिल्कुल नहीं बढ़ पाती, बल्कि एक विचित्र पंखे के–से ढंग से बिखर जाती है (चित्र 55घ)। जब प्रकाश की कोई किरण एक ऐसे दर्पण पर पड़ती है जिसकी सतह पर बहुत–सी समांतर रेखाएँ तंग–तंग खुदी हुई हों ("विवर्तन की जाली" या diffraction grating) तो यह हमारे परिचित परावर्तन के नियम के अनुसार नहीं मुड़ती, बल्कि अनेक अलग–अ... में फेंक दी जाती है जो कि खुदी हुई रेखाओं के बीच की दूरी और प्रकाश की तरंग–लं... हैं (चित्र 55च)। यह भी ज्ञात है कि जब पानी की सतह पर फैले हुए तेल की पतली प... परावर्तित होता है तो उजली और अँधेरी धारियों का एक अजीब–सा डिज़ाइन ... (चित्र 55छ)।

इन सभी देखी हुई घटनाओं की व्याख्या करने में "प्रकाश–किरण" वाली परिचि... तरह असफल हो जाती है, और इसके स्थान पर हमें यह मानना पड़ता है कि प्रका... घेरे गये पूरे स्थान पर प्रकाश की ऊर्जा निरंतर रूप से फैली हुई है।

आप आसानी से समझ जायेंगे कि प्रकाशिक विवर्तन की घटना पर **प्रकाश-किरण** की धारणा का लागू न हो सकना बहुत कुछ उसी प्रकार की बात है, जैसी क्वांटम भौतिकी की घटनाओं में **यांत्रिक प्रक्षेप-पथ** की धारणा की असफलता। जैसे हम प्रकाशिकी में असीम रूप से पतली (शून्य मोटाई वाली) प्रकाश–किरण नहीं बना सकते, ठीक वैसे ही यांत्रिकी के क्वांटम सिद्धांत कहते हैं कि गतिमान कणों के असीम रूप से पतले प्रक्षेप–पथ की बात नहीं की जा सकती। दोनों ही मामलों में हमें घटनाओं को इस प्रकार समझने के प्रयास छोड़ देने होंगे कि कोई चीज़ (प्रकाश या कण) किन्हीं ज्यामितीय रेखाओं (प्रकाशिक किरणों या यांत्रिक प्रक्षेप–पथों) पर आगे बढ़ रही है। बल्कि, हमें देखी हुई घटना का वर्णन "किसी ऐसी चीज़" के सहारे करना पड़ेगा जो कि पूरे स्थान पर निरंतर फैली हुई है। प्रकाश के मामले में यह "कोई चीज़" विभिन्न बिंदुओं पर प्रकाश–कंपनों की तीव्रता है, जबकि यांत्रिकी के मामले में "किसी चीज़" का अर्थ है इस बात की संभाविता कि यह गतिमान कण किसी भी समय किसी बिंदु–विशेष पर पाया जाये। (वह कण किसी भी समय–विशेष पर किसी एक पूर्व–निर्धारित बिंदु पर नहीं मिलेगा, अपितु इसके बहुत–से स्थानों पर मौजूद होने की संभावनाएँ हैं; यह बात ऊपर बतायी गयी अनिश्चितता की अवधारणा के अनुरूप है।) अब यह कहना संभव ही नहीं है कि कोई गतिमान कण किसी निश्चित समय पर ठीक–ठीक कहाँ होगा, यद्यपि "अनिश्चितता के संबंधों" वाले सूत्रों के द्वारा गणना की जा सकती है कि स्थिति की अनिश्चितता किन सीमाओं के भीतर रहेगी। अब एक ओर प्रकाश के विवर्तन से संबंधित तरंग–प्रकाशिकी के नियम हैं और दूसरी ओर यांत्रिक कणों की गति से संबंधित नयी "सूक्ष्म यांत्रिकी" (micro-mechanics) या "तरंग–यांत्रिकी" (wave-mechanics) के नियम हैं (एल० द ब्रोग्ली और ई० श्रोडिंजर द्वारा विकसित): इन दोनों के बीच संबंध को कई प्रयोगों के द्वारा स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जो दोनों श्रेणियों की घटनाओं के बीच समानता दर्शाते हैं।

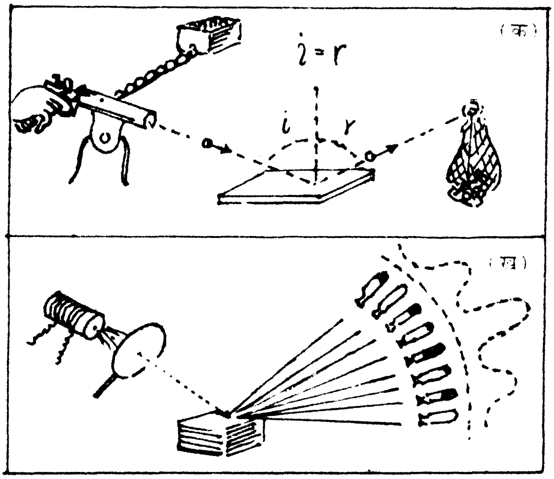


चित्र 56 : (क) प्रक्षेप–पथ की धारणा से समझी जाने वाली घटना (धातु की चादर से परावर्तित होते छर्रे; (ख) प्रक्षेप–पक्ष की धारणा से नहीं समझी जा सकने वाली घटना (सोडियम कणों का एक क्रिस्टल से परावर्तन)

उदाहरण के तौर पर चित्र 56ख में हमने ओ0 स्टर्न द्वारा परमाणविक विवर्तन के अध्ययन के लिए प्रयुक्त व्यवस्था दिखायी है। सोडियम परमाणुओं की एक किरण, जो इस अध्याय में पहले बतायी गयी विधि द्वारा प्राप्त की गयी है, एक क्रिस्टल की सतह से परावर्तित होती है। नियमित क्रम में सजी

हुई परमाणुओं की परतें, जिनसे क्रिस्टल का ढाँचा बना है, यहाँ सोडियम कणों की किरण के लिए विवर्तन–जाली जैसा कार्य करती हैं। क्रिस्टल की सतह से परावर्तित होकर ये परमाणु विभिन्न कोणों पर रखी गई छोटी बोतलों में एकत्र कर लिये जाते हैं, और अंत में प्रत्येक बोतल में जमा हुए परमाणुओं को सावधानीपूर्वक माप लिया जाता है। चित्र 56ख में दिखायी गयी दानेदार रेखा परिणाम को दर्शाती है। हम देखते हैं कि सोडियंम परमाणु एक दिशा में परावर्तित नहीं होते, जैसी कि एक छोटी–सी खिलौने की बंदूक से किसी धातु की दीवार पर फेंकी गयी लोहे की गोलियाँ होतीं (चित्र 56क), बल्कि ये कई कोणों में वितरित हैं, और इनसे जो नक्शा बनता है वह साधारण एक्स–किरणों के विवर्तन में देखे गये नक्शे के सदृश ही है।*

इस प्रकार के प्रयोगों की व्याख्या किसी भी प्रकार परंपरागत यांत्रिकी के आधार पर नहीं की जा सकती जो कि एक–एक परमाणु को अपने निश्चित प्रक्षेप–पथ पर चलता दिखलाती है, परंतु नयी सूक्ष्म–यांत्रिकी के दृष्टिकोण से इन्हें पूरी तरह समझा जा सकता है, क्योंकि इस यांत्रिकी में कणों की गति को उसी ढंग से विचारा जाता है जैसे आधुनिक प्रकाशिकी में प्रकाश–किरणों के आगे बढ़ने को विचारा जाता है।

* एक्स–किरणें प्रकाश जैसी ही हैं, सिवाय इसके कि इनकी तरंग–लंबाई साधारण प्रकाश की अपेक्षा काफ़ी कम है। –अनु०

सात

# आधुनिक कीमिया*

## 1. मूलभूत कण

विभिन्न रासायनिक तत्त्वों के परमाणु काफ़ी जटिल यंत्र हैं, जिनमें बड़ी संख्या में इलैक्ट्रोन एक केंद्रीय नाभिक (nucleus) की परिक्रमा करते हैं। इतना जान लेने के बाद यह पूछना ही पड़ेगा कि क्या परमाणुओं के ये नाभिक पदार्थ के ढाँचे की अंतिम अविभाज्य इकाइयाँ हैं? या इनको भी फिर और छोटे तथा सरल भागों में बाँटा जा सकता है? क्या यह संभव होगा कि परमाणु की सभी 92 विभिन्न प्राकृतिक किस्मों को दो–एक तरह के कणों में बाँट दिया जाये जो कि सचमुच सरल हों?

सरलता की इस चाह से पिछली शताब्दी के मध्य में ही एक अंग्रेज़ रसायनविद विलियम प्राउट ने एक प्राक्कल्पना दी थी, जिसके अनुसार **सभी तरह के रासायनिक तत्त्वों की प्रकृति एक-सी है : बस, इन सब में मौजूद हाइड्रोजन परमाणुओं का जमाव अलग-अलग है**। प्राउट की प्राक्कल्पना का आधार यह तथ्य था कि विविध तत्त्वों के रासायनिक विधियों से मालूम किये हुए परमाणु–भार (हाइड्रोजन की तुलना में) अधिकतर मामलों में पूर्णांकों के बहुत पास हैं। जैसे, ऑक्सीजन का परमाणु हाइड्रोजन परमाणु की अपेक्षा 16 गुणा भारी है। सो प्राउट ने कहा कि इसे 16 हाइड्रोजन परमाणुओं को एक साथ चिपका कर बना हुआ मानना पड़ेगा। आयोडीन का परमाणु, जिसका परमाणु–भार 127 है, 127 हाइड्रोजन परमाणुओं को मिला कर ही बना होगा, आदि।

जो भी हो, उस समय के रसायन–विज्ञान के तथ्य इस साहसपूर्ण प्राक्कल्पना को स्वीकार करने के लिए काफ़ी प्रतिकूल थे। परमाणु–भारों की परिशुद्ध मापों के द्वारा यह दर्शा दिया गया था कि वे ठीक पूर्णांकों के बराबर नहीं हैं। अधिकतर मामलों में वे पूर्णांकों के आस–पास थे और थोड़े–से मामलों में तो पूर्णांकों के पास भी नहीं थे। (उदाहरण के तौर पर, क्लोरीन का रासायनिक परमाणु–भार 35.5 है।) इन तथ्यों से, जो प्राउट की बात का सीधा खंडन करते प्रतीत होते थे, इस प्राक्कल्पना पर पानी फिर गया, और प्राउट यह जाने बिना ही दुनिया से कूच कर गये कि वास्तव में उनकी बात कितनी सही थी।

उनकी प्राक्कल्पना तब तक फिर से सिर नहीं उठा सकी जब तक कि सन् 1919 में बर्तानी भौतिक विज्ञानी एफ़० डब्लू० ऐस्टन के अन्वेषण ने इसमें नया प्राण न फूँक दिया। उन्होंने दर्शाया कि साधारण क्लोरीन दो अलग–अलग प्रकार की क्लोरीनों का मिश्रण है जिनके रासायनिक गुण बिल्कुल अभिन्न हैं परंतु परमाणु–भार दो अलग–अलग पूर्णांक हैं : 35 और 37; रसायनविदों द्वारा प्राप्त अपूर्ण अंक 35.5 तो मिश्रण का औसत परमाणु–भार है।[1]

विभिन्न रासायनिक तत्त्वों के उत्तरोत्तर अध्ययन से यह चौंकाने वाला तथ्य उजागर हुआ कि अधिकतर तत्त्व कई घटकों के मिश्रण हैं; ये घटक रासायनिक गुणों की दृष्टि से अभिन्न हैं परंतु परमाणु–भार में अलग हैं। इन्हें समस्थानिक या **आइसोटोप** नाम दिया गया, अर्थात् वे पदार्थ जो तत्त्वों

---

* "कीमिया" मध्ययुगीन यूरोप की वह विद्या थी, जिसका उद्देश्य एक तत्त्व को दूसरे में, विशेषतः लोहे को सोने में, बदलना था। –अनु०

[1] क्योंकि अधिक भारी वाली क्लोरीन 25 प्रतिशत मात्रा में उपस्थित है और हल्की वाली 75 प्रतिशत मात्रा में, अतः औसत परमाणु–भार होगा: .25x37 + .75x35, जो ठीक उतना ही है जितना पहले के रसायनविदों ने पाया था।

की आवर्त–सारणी में एक ही स्थान पर बैठते हैं।[2] यह भी एक तथ्य है कि विभिन्न आइसोटोपों के भार सदा हाइड्रोजन परमाणु के भार के (लगभग) गुणक ही होते हैं। इन तथ्यों से प्राउट की भूली–बिसरी प्राक्कल्पना फिर से जी उठी। क्योंकि परमाणु का भार मुख्यतः उसके नाभिक में ही केन्द्रित होता है, जैसा हमने पिछले परिच्छेद में देखा है, अतः प्राउट की प्राक्कल्पना को आधुनिक भाषा में इस प्रकार फिर से प्रतिपादित किया जा सकता है कि **परमाणुओं की विभिन्न जातियों के नाभिक मूलभूत हाइड्रोजन नाभिकों की विभिन्न संख्याओं से बने हैं**। पदार्थ की रचना में इन हाइड्रोजन नाभिकों की विशिष्ट भूमिका को देखते हुए इन्हें एक विशेष नाम दिया गयाः "प्रोटोन"।

अलबत्ता ऊपर के कथन में एक महत्त्वपूर्ण संशोधन करना बाकी है। उदाहरण के लिए, ऑक्सीजन परमाणु के नाभिक का विचार करें। अब क्योंकि प्राकृतिक क्रम में ऑक्सीजन आठवाँ तत्त्व है, अतः इसके परमाणु में 8 इलैक्ट्रोन होने चाहिएँ और इसके नाभिक में धनात्मक आवेश की 8 इकाइयाँ होनी चाहिएँ। परंतु ऑक्सीजन का परमाणु हाइड्रोजन की अपेक्षा 16 गुणा भारी है। अतः ऑक्सीजन के नाभिक में 8 प्रोटोन मानने से नाभिक का आवेश (8 इकाई) तो सही प्राप्त हो जायेगा पर भार (8 इकाई) ग़लत निकलेगा। यदि हम इसमें 16 प्रोटोन मानें तो भार सही हो जाता है पर आवेश ग़लत हो जाता है। (दोनों 16 हो जाते हैं।)

स्पष्ट है कि इस कठिनाई से निकलने का एकमात्र रास्ता है यह मान लेना कि **जिन प्रोटोनों से मिल कर जटिल परमाणविक नाभिक बने हैं उसमें से कुछ प्रोटोनों ने अपना धनात्मक आवेश उतार दिया है और वे विद्युत-आवेश से शून्य हो गये हैं**।* वास्तव में ऐसे आवेशहीन प्रोटोनों के अस्तित्व का सुझाव रदरफ़ोर्ड ने 1920 में ही दे दिया था, यद्यपि प्रायोगिक रूप से इन्हें खोजने में बारह वर्ष लग गये। इन्हें अब "न्यूट्रोन" कहा जाता है। यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि प्रोटोनों तथा न्यूट्रोनों को दो बिल्कुल अलग प्रकार के कण नहीं मानना चाहिए, बल्कि **एक ही** कण की दो भिन्न विद्युतीय स्थितियाँ समझना चाहिए। इस एक मूलभूत कण को अब "न्यूक्लियोन" या "नाभिक–कण" नाम से जाना जाता है। सचमुच अब यह ज्ञात हो गया है कि प्रोटोन अपना धनात्मक आवेश उतार कर न्यूट्रोनों में बदल सकते हैं, और न्यूट्रोन आवेश प्राप्त करके प्रोटोनों में बदल सकते हैं।

न्यूट्रोनों को परमाणविक नाभिक की रचना की इकाई मान लेने से पिछले कुछ पृष्ठों पर चर्चित कठिनाई दूर हो जाती है। एक ऑक्सीजन परमाणु के नाभिक में 16 इकाई भार है परंतु सिर्फ़ 8 इकाई आवेश है, यह समझने के लिए हमें स्वीकार करना ही होगा कि यह 8 प्रोटोनों तथा 8 न्यूट्रोनों से बना है। आयोडीन का एक नाभिक, जिसका परमाणु–भार 127 और परमाणु–संख्या 53 है, अपने अंदर 53 प्रोटोनों तथा 74 न्यूट्रोनों को सँजोये हैं, जबकि यूरेनियम का भारी–भरकम नाभिक (परमाणु–भार 238, परमाणु–संख्या 92) 92 प्रोटोनों तथा 146 न्यूट्रोनों से बना है।[3]

---

[2] यह शब्द यूनानी भाषा के "आइसोस" (समान) और "टोपोस" (स्थान) से बना है।

* वैसे एक संभावना यह भी हो सकती थी कि ऑक्सीजन नाभिक में 16 प्रोटोन व 8 इलैक्ट्रोन हों, जिससे इसका भार व आवेश दोनों सही प्राप्त हो जाते। परंतु *अनिश्चितता का सिद्धांत (अध्याय छः) कहता है कि नाभिक के भीतर इलैक्ट्रोन* नहीं रह सकता। इलैक्ट्रोन इतना अधिक हल्का है कि इसके पथ की मोटाई नाभिक के व्यास से अधिक हो जाती है; अतः इसे नाभिक के अंदर बंद करना कठिन है। इस तर्क तथा कुछ अन्य तथ्यों के कारण नाभिक में इलैक्ट्रोन वाली कल्पना को छोड़ दिया गया। –अनु०

[3] परमाणु–भारों की सारणी को देख कर आपके ध्यान में आ जायेगा कि आवर्त–क्रम के शुरू में तो परमाणु–भार परमाणु–संख्या के दुगुने के बराबर होता है, जिसका अर्थ है कि इन नाभिकों के अंदर प्रोटोन तथा न्यूट्रोन समान संख्या में हैं। अधिक भारी तत्त्वों में परमाणु–भार परमाणु–संख्या की अपेक्षा अधिक तेज़ी से बढ़ता है; इससे पता चलता है कि न्यूट्रोनों की संख्या प्रोटोनों की संख्या से अधिक है।

इस प्रकार प्राउट की साहसी प्राक्कल्पना को अपने जन्म के लगभग एक शताब्दी बाद जाकर वह सम्मानपूर्ण मान्यता मिली जो उसे मिलनी चाहिए थी, और अब हम कह सकते हैं कि सभी ज्ञात पदार्थों की असीम विविधता सिर्फ़ दो प्रकार के मूलभूत कणों के विविध संयोगों से उपजती है : (1) **न्यूक्लियोन** या **नाभिक-कण**, पदार्थ के बुनियादी कण, जो कि आवेशहीन हो सकते हैं या धनात्मक विद्युत–आवेश लिये हुए, और (2) इलैक्ट्रोन अर्थात् ऋणात्मक विद्युत के मुक्त कण (चित्र 57)।

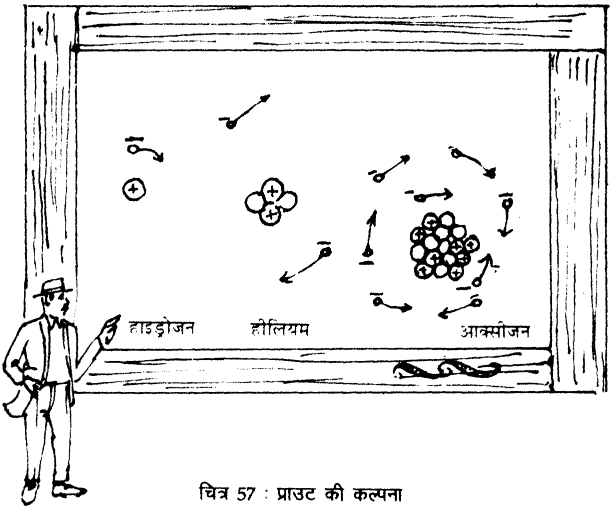


चित्र 57 : प्राउट की कल्पना

अब हम पेश करते हैं "पदार्थ के संपूर्ण पाक–शास्त्र" से कुछ नुस्खे, जिनसे मालूम होगा कि न्यूक्लियोनों तथा इलैक्ट्रोनों के विपुल भंडार से ब्रह्मांड की रसोई में हर एक व्यंजन कैसे तैयार किया गया है :

**जल** : बड़ी संख्या में ऑक्सीजन के परमाणु बनाये जायें, जिनमें प्रत्येक की रचना में 8 आवेशहीन और 8 आवेश वाले न्यूक्लियोनों को संयुक्त करना होगा और इस प्रकार बने नाभिक को 8 इलैक्ट्रोनों से बने आवरण में घेरना होगा। अब एक–एक धन–आवेश वाले न्यूक्लियोन को एक–एक इलैक्ट्रोन के साथ जोड़ते हुए हाइड्रोजन के परमाणु बनाये जायें जो ऑक्सीजन से दुगुनी संख्या में हों। हर दो हाइड्रोजन परमाणुओं को एक ऑक्सीजन परमाणु के साथ बैठाया जाये, और इस प्रकार प्राप्त जल के अणुओं को आपस में मिला कर बड़े गिलास में ठंडा–ठंडा परोसा जाये।

**खाने का नमक** : हर 12 आवेशहीन न्यूक्लियोनों को 11 आविष्ट न्यूक्लियोनों के साथ संयुक्त करके, और इस प्रकार प्राप्त नाभिक के इर्द–गिर्द 11 इलैक्ट्रोन जोड़ कर सोडियम परमाणु बनाये जायें। इतने ही क्लोरीन परमाणु बनाये जायें जिनमें प्रत्येक में 17 आवेश वाले न्यूक्लियोन (प्रोटोन) लगेंगे और 18 या 20 आवेशहीन (न्यूट्रोन)। (दो प्रकार के आइसोटोप रहेंगे।) ऐसे हर नाभिक को घेरे हुए 17 इलैक्ट्रोन होंगे। अब सोडियम व क्लोरीन परमाणुओं को तीन–आयामी शतरंज के डिज़ाइन के अनुसार सजा दिया जाये : बस, साधारण नमक के क्रिस्टल बन जायेंगे।

**टी0 एन0 टी0 (बारूद)** : प्रत्येक कार्बन परमाणु बनाने के लिए 6 आवेशहीन और 6 आवेश वाले न्यूक्लियोनों के संयोग से बने नाभिक के गिर्द 6 इलैक्ट्रोन जोड़े जायें। इसी प्रकार 7 आवेशहीन

और 7 आवेशित न्यूक्लियोन मिला कर और नाभिक के गिर्द 7 इलैक्ट्रोन जोड़ कर अनेक नाइट्रोजन परमाणु बनाये जायें। ऊपर दी गई विधि (जल के अंतर्गत) के अनुसार हाइड्रोजन व ऑक्सीजन परमाणु भी तैयार कर लिये जायें। अब 6 कार्बन परमाणुओं को एक मुद्रिका (वृत्त) के आकार में जोड़ा जाये और इनमें पहले (क्र० 1) कार्बन के साथ एक सातवाँ कार्बन परमाणु जोड़ा जाये जो मुद्रिका के बाहर ही रहे। अब मुद्रिका के क्र० 2, 4 और 6 कार्बन परमाणुओं के साथ एक—एक नाइट्रोजन परमाणु जोड़ कर प्रत्येक नाइट्रोजन के दूसरी ओर दो—दो ऑक्सीजन परमाणु जोड़े जायें। अब मुद्रिका में जो दो कार्बन परमाणु खाली रह गये (क्र० 3,5) उनके साथ एक—एक हाइड्रोजन परमाणु लगाया जाये और सातवें (बाहर वाले) कार्बन के साथ तीन हाइड्रोजन परमाणु। इस प्रकार बने अणुओं को एक नियमित तीन—आयामी ढाँचे में सजा कर बहुत—से छोटे—छोटे क्रिस्टल बना लिये जायें और इनको साथ मिला कर दबा दिया जाये। यह व्यवहार ज़रा सावधानी के साथ करना होगा, क्योंकि यह रचना अस्थिर और बहुत विस्फोटक है।

यद्यपि किसी भी मनचाहे भौतिक पदार्थ को बनाने के लिए निर्माण—सामग्री के रूप में **न्यूट्रोन, प्रोटोन तथा इलैक्ट्रोन** ही काफ़ी हैं, तथापि मूलभूत कणों की यह सूची अभी कुछ अधूरी—सी लगती है। देखिये न, यदि साधारण इलैक्ट्रोन ऋणात्मक विद्युत के मुक्त आवेश हैं, तो भला धनात्मक विद्युत के मुक्त आवेश (**धनात्मक इलैक्ट्रोन**) भी क्यों नहीं हो सकते ? और यह भी कि यदि एक न्यूट्रोन, जो पदार्थ की बुनियादी इकाई—सा लगता है, धनात्मक विद्युत आवेश लेकर प्रोटोन बन सकता है, तो **ऋणात्मक प्रोटोन** भी क्यों नहीं बन सकता ?

उत्तर यह है कि धनात्मक इलैक्ट्रोन, जो आवेश के चिह्न को छोड़कर सब दृष्टियों से बिल्कुल ऋणात्मक इलैक्ट्रोन के सदृश ही होते हैं, सचमुच प्रकृति में मौजूद हैं। और ऋणात्मक प्रोटोनों के होने की भी कुछ संभावना तो है, यद्यपि अभी तक प्रायोगिक भौतिकी इनकी खोज करने में सफल नहीं हुई है।*

धनात्मक इलैक्ट्रोन और ऋणात्मक प्रोटोन (यदि वे होते हों) उतनी विपुल मात्रा में हमारे भौतिक संसार में नहीं है जितने कि ऋणात्मक इलैक्ट्रोन और धनात्मक प्रोटोन। इसका कारण यूँ बताया जा सकता है कि ये दोनों प्रकार के कण एक—दूसरे से वैर रखते हैं। हर कोई जानता है कि दो विद्युत आवेश, जिनमें एक धनात्मक हो और दूसरा ऋणात्मक, एक—दूसरे को निरस्त कर देंगे यदि उन्हें एक साथ रखा जाये। अब, क्योंकि दो प्रकार के इलैक्ट्रोन और कुछ नहीं, धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत के मुक्त आवेश हैं, यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वे एक ही स्थान पर एक साथ मौजूद रहेंगे। सचमुच, जैसे ही धनात्मक इलैक्ट्रोन ऋणात्मक इलैक्ट्रोन के पास आयेगा, उन दोनों के विद्युत—आवेश तुरंत एक—दूसरे को निरस्त कर देंगे और कण के तौर पर दोनों इलैक्ट्रोनों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। मगर हाँ, जब दो इलैक्ट्रोन इस प्रकार एक—दूसरे का विनाश कर देते हैं तो इसके परिणाम—स्वरूप सघन विद्युत—चुंबकीय विकिरण ($\gamma$ किरणों)+ का जन्म होता है जो

---

* प्रोटोन और इसके उलटे कण प्रति—प्रोटोन (anti-proton) में केवल विद्युत—आवेश ही नहीं, अन्य गुण भी उलटे हैं, जैसा आगे समझाया जायेगा। प्रकृति में तो अब तक भी प्रति—प्रोटोनों को नहीं देखा गया, परंतु प्रयोगशाला में अत्यधिक वेग से दौड़ते हुए कणों के उपयोग से इन्हें बनाया और "देखा" गया है। पहली बार ऐसा प्रयोग ओ० चैंबरलेन तथा ई० सेग्रे ने 1955 में किया था, जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्तमान में फ़र्मीलैब (शिकागो) तथा सर्न (जिनीवा) प्रयोगशालाओं में प्रोटोनों व प्रति—प्रोटोनों की उच्च ऊर्जा वाली किरणों को बनाना व टक्कर कराना रोज़मर्रा की बात हो गयी है। इससे बहुत—से भारी—भारी कण प्राप्त होते हैं जिनकी अर्ध—आयु बहुत छोटी होती है। —अनु०

\+ प्रकाश भी विद्युत—चुंबकीय विकिरण ही है। गामा किरणों में अंतर इतना ही है कि इनकी तरंग—लंबाई बहुत ही कम (लगभग $10^{-15}$ मी०) है। —अनु०

विनाश–प्रक्रिया के बिंदु से भाग जाती हैं और विनष्ट कणों की मूल ऊर्जा अपने साथ ले जाती हैं। भौतिकी के एक मूलभूत नियम के अनुसार ऊर्जा को न पैदा किया जा सकता है और न विनष्ट ही। यहाँ जो हम देख रहे हैं, वह तो ऊर्जा का रूप–परिवर्तन मात्र है : दोनों मुक्त इलैक्ट्रोनों की स्थिर–विद्युत–ऊर्जा* रूप बदल कर विकिरण की चल–विद्युत ऊर्जा में बदल जाती है। धनात्मक और ऋणात्मक इलैक्ट्रोन के मिलन में जो प्रक्रिया होती है, प्रो0 बोर्न ने उसे "उद्दाम विवाह" की संज्ञा दी है[4], जबकि प्रो0 ब्राउन ने इसे कुछ उदासी का रंग देते हुए दोनों इलैक्ट्रोनों की "युगल आत्महत्या" बताया है[5] चित्र 58क में इस मिलन का रेखांकन किया गया है।

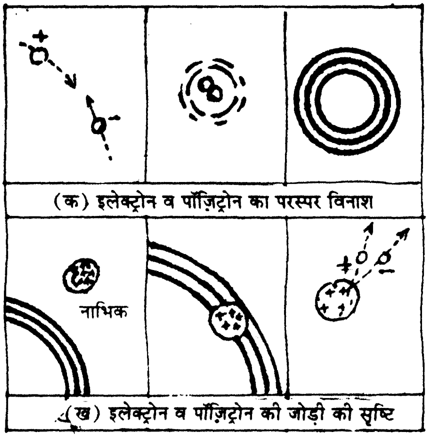


चित्र 58 : (क) दो इलैक्ट्रोनों की "विनाश" की प्रक्रिया और उससे विद्युत–चुंबकीय तरंगों की उत्पत्ति और (ख) एक इलैक्ट्रोन–जोड़ी की "सृष्टि" एक परमाणु–नाभिक के पास से गुज़रती हुई तरंग के द्वारा

दो विपरीत आवेशों वाले इलैक्ट्रोनों के परस्पर "विनाश" की उलटी प्रक्रिया "जोड़ी की सृष्टि" है; इसमें सघन गामा विकिरण के परिणाम–स्वरूप "शून्य" में से एक धनात्मक और एक ऋणात्मक इलैक्ट्रोन प्रकट हो जाते हैं। शून्य पर हमने " " चिह्न इसलिए लगाया है कि **ऐसा लगता है** कि पहले कुछ नहीं था, पर वास्तव में ऐसे नये इलैक्ट्रोनों की हर जोड़ी गामा किरणों की ऊर्जा के ख़र्च से जन्मती है। सचमुच, विकिरण की जितनी ऊर्जा इलैक्ट्रोनों की जोड़ी के जन्म में ख़र्च होगी, वह विनाश की प्रक्रिया में निकलने वाली ऊर्जा के बिल्कुल बराबर है। **जोड़ी की सृष्टि** की यह क्रिया, जिसकी संभावना विकिरण (गामा किरणों) के किसी नाभिक के पास से गुज़रने पर अधिक होती है[6], चित्र 58ख में रूपरेखा के तौर पर दिखायी गयी है। यह एक ऐसा उदाहरण है जिसमें विद्युत के दो विपरीत आवेश पैदा हो जाते हैं जहाँ पहले बिल्कुल कोई आवेश नहीं था। परंतु इस प्रक्रिया पर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि इबोनाइट की छड़ और ऊनी कपड़े वाले प्रयोग से हम परिचित ही हैं, जिसमें दोनों को आपस में रगड़ने पर दोनों विपरीत प्रकार की विद्युत से आवेशित हो जाते हैं। यदि हमारे पास पर्याप्त ऊर्जा हो तो हम धनात्मक और ऋणात्मक इलैक्ट्रोनों के चाहे कितने भी जोड़े

---

* *स्थिर इलैक्ट्रोनों की ऊर्जा उनके भार (द्रव्यमान) के कारण है। आइंस्टाइन के प्रसिद्ध नियम $E=mc^2$ के अनुसार कोई भी भार ऊर्जा के समतुल्य है।* —अनु०

4 एम० बोर्न, **एटॉमिक फ़िज़िक्स** (जी० ई० स्टैचर्ट एंड कं०, न्यूयार्क, 1935)।

5 टी० बी० ब्राउन, **मॉडर्न फ़िज़िक्स** (जॉन वाइले एंड संस, न्यूयार्क, 1940)।

6 *वैसे सिद्धांततः इलैक्ट्रोनों की जोड़ी की सृष्टि बिल्कुल खाली आकाश में भी हो सकती है; फिर भी नाभिकों के आसपास मौजूद सघन विद्युत–क्षेत्र से इस प्रक्रिया में काफ़ी आसानी होती है।*

बना सकते हैं, परंतु हम यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि परस्पर विनाश की प्रक्रिया उन्हें जल्दी ही पुनः खेल के बाहर कर देगी, और जितनी ऊर्जा शुरू में ख़र्च हुई थी, वह पूरी वसूल हो जायेगी।

इलैक्ट्रोनों की जोड़ी के ऐसे "थोक उत्पादन" का एक बड़ा रोचक उदाहरण "अंतरिक्ष किरणों (cosmic rays) की बौछार" नामक घटना में मिलता है। ये किरणें तब पैदा होती हैं जब अंतर–तारकीय अंतरिक्ष से उच्च ऊर्जा वाले कणों की धाराएँ आकर पृथ्वी के वातावरण से टकराती हैं। ब्रह्मांड के विशाल सूनेपन में सभी दिशाओं में इधर–उधर दौड़ने वाली इन धाराओं का स्रोत तो अब भी विज्ञान की अनबूझ पहेली ही बना हुआ है[7], परंतु हमें यह काफ़ी अच्छी तरह मालूम है कि जब प्रचंड वेग से दौड़ते हुए इलैक्ट्रोन** वातावरण की बाहरी परतों से टकराते हैं तब क्या होता है। जिन परमाणुओं से वातावरण बना है, उनके नाभिकों के निकट से गुज़रते हुए प्राथमिक, उच्च वेग वाला, इलैक्ट्रोन धीरे–धीरे अपनी आरंभिक ऊर्जा खो देता है, जो कि इसके रास्ते के सभी बिंदुओं से गामा विकिरण के रूप में निकलती है। इस विकिरण से जोड़ी की सृष्टि की बहुत सारी प्रक्रियाएँ होने लगती हैं, और नवजात धनात्मक व ऋणात्मक इलैक्ट्रोन प्राथमिक कण के रास्ते पर दौड़ पड़ते हैं (चित्र 59)।

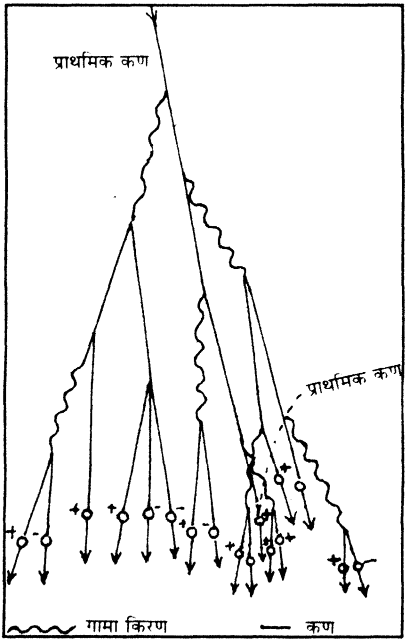


चित्र 59 : अंतरिक्ष–किरणों के प्रारंभ की एक बौछार

[7] प्रकाश के वेग के 99.9999999999999 प्रतिशत तक वेगों से चलने वाले इन उच्च–ऊर्जा–युक्त कणों के पैदा होने की सबसे सरल व्याख्या, जो संभवतः सबसे अधिक संगत भी है, यह मान कर की जा सकती है कि ये ब्रह्मांड के अंतरिक्ष में तैरने वाले गैस व धूल के विशाल बादलों (नीहारिकाओं) के बीच अनुमानतः मौजूद बहुत ऊँचे विद्युत विभवांतरों (वोल्टेज) के द्वारा धकेले जाते हैं। हम यह भी सोच सकते हैं कि ऐसे अंतर–तारकीय बादल विद्युत–आवेशों को उसी प्रकार एकत्र कर लेते होंगे जैसे हमारे वातावरण में साधारण गरजने वाले बादल। परंतु इस प्रकार जो विभवांतर बनेंगे, वे बिजली चमकने के लिए जिम्मेवार विभवांतरों की अपेक्षा बहुत अधिक होंगे।

**अब हमें अच्छी तरह मालूम हो गया है कि सुदूर अंतरिक्ष से आने वाले कण इलैक्ट्रोन नहीं, धन–आवेश वाले कण (प्रोटोन आदि) होते हैं। –अनु०

ये दूसरी पीढ़ी के इलैक्ट्रोन, जिनके पास अभी भी बहुत अधिक ऊर्जा होती है, और अधिक गामा विकिरण को जन्म देते हैं, जो कि और अधिक इलैक्ट्रोनों के जोड़ों का उत्पादन करती है। पूरे वातावरण से गुज़रते हुए कई गुणा हो जाने की यह प्रक्रिया बार–बार दुहरायी जाती है। परिणामतः वह प्राथमिक इलैक्ट्रोन जब अंत में समुद्र–तल पर पहुँचता है तो उसके साथ दूसरी–तीसरी पीढ़ियों के इलैक्ट्रोनों की एक भीड़ होती है, जिसमें आधे धनात्मक और आधे ऋणात्मक होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी अंतरिक्ष–किरणों की बौछारें तब भी पैदा हो सकती हैं जब द्रुत गति वाले इलैक्ट्रोन भारी भौतिक पदार्थों में से गुज़रते हैं। हाँ, घनत्व अधिक होने के कारण यहाँ नयी शाखाओं का उद्‌भव अपेक्षाकृत बहुत जल्दी–जल्दी होगा।

अब हम ऋणात्मक प्रोटोनों के अस्तित्व की संभावना की ओर ध्यान दें। शायद कोई सोचे कि न्यूट्रोन के एक ऋणात्मक आवेश प्राप्त कर लेने से या एक धनात्मक आवेश खो देने से, जो कि वही बात है, इस प्रकार का कण बन सकता है जो प्रोटोन का उलटा होगा।* परंतु ऐसा नहीं हो सकता। कारण यह है कि इन बुनियादी कणों में विद्युत आवेश के अतिरिक्त और भी कई गुण हैं जो धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों प्रकार की संख्याओं द्वारा बताये जा सकते हैं। प्रोटोन का उलटा जो कण होगा ("प्रति–प्रोटोन"), उसका न केवल विद्युत–आवेश ऋणात्मक होगा, अपितु शेष सभी धन–ऋण चिह्न वाले गुण भी प्रोटोन से उलटे होंगे। अतः न्यूट्रोन को ऋणात्मक आवेश दे देने मात्र से वह प्रोटोन का उलटा नहीं हो सकता। स्वयं न्यूट्रोन को भी "उलटा–सीधा एक समान" नहीं मानना चाहिए। नवीनतम थ्योरी के अनुसार न्यूट्रोन का उलटा एक अलग कण होता है जिसे हम "प्रति–न्यूट्रोन" कह सकते हैं।** प्रति–प्रोटोन की उत्पत्ति **प्रति-न्यूट्रोन** को ऋणात्मक आवेश देने से हो सकती है, न्यूट्रोन को देने से नहीं। हमारे संसार के पदार्थों में ऐसे प्रति–प्रोटोनों और प्रति–न्यूट्रोनों का यदि अस्तित्व है तो वे पैदा होते ही तुरंत प्रोटोनों और न्यूट्रोनों से मिल कर परस्पर विनाश की प्रक्रिया कर देंगे; अतः इनका पता लगाना काफ़ी कठिन है। याद रखिए कि धनात्मक इलैक्ट्रोन (पॉज़िट्रोन) की खोज तब जाकर हुई जब साधारण ऋणात्मक इलैक्ट्रोन की धारणा को विज्ञान में आये हुए लगभग आधी शताब्दी बीत चुकी थी।

यदि हम प्रकृति में प्रति–प्रोटोनों तथा प्रति–न्यूट्रोनों के अस्तित्व की संभावना को मान कर चलें, तो हम ऐसे परमाणुओं की कल्पना कर सकते हैं जो, यूँ कहिये कि, उलटे नमूने पर बने हैं। उनके नाभिक **प्रति-न्यूट्रोनों और प्रति-प्रोटोनों** से बने होंगे और इन नाभिकों के आसपास पॉज़िट्रोनों के आवरण होंगे। इन "उलटे" परमाणुओं के साधारण गुण हू–ब–हू हमारे संसार के परमाणुओं के समान ही होंगे।+ उलटे पानी, उलटे मक्खन, आदि के गुणों (घनत्व, क्वथनांक आदि) को जाँचने से इनके और साधारण पानी, मक्खन आदि के बीच भेद करना संभव नहीं होगा। वास्तव में दोनों में अंतर पहचानने का कोई भी तरीका नहीं हो सकता – जब तक हम साधारण और "उलटे" पदार्थों को एक साथ न मिलायें। पर हाँ, एक बार हमने ऐसे विपरीत पदार्थों को एक साथ मिला दिया तो बस, विपरीत

* मूल लेखक ने इसी संभावना को मानते हुए लिखा है। परंतु पिछले चार दशकों के अध्ययनों से यह बात ग़लत सिद्ध हुई है। अतः आने वाले कुछ अनुच्छेदों को सुधार कर लिखा जा रहा है। –अनु०

** प्रति–न्यूट्रोन (anti-neutron) की खोज 1956 में की गयी थी। न्यूट्रोन एवं प्रति–न्यूट्रोन एक ही नहीं, बल्कि दो अलग–अलग कण हैं जो मिलने पर एक–दूसरे का विनाश कर देते हैं। दोनों में अंतर क्या है? न्यूट्रोन भले ही कुल मिला कर आवेशहीन है, पर इसके भीतर (+) और (–) आवेशों वाले भाग और विद्युत–धाराएँ हैं। प्रति–न्यूट्रोन के भीतर ये सभी भाग और धाराएँ न्यूट्रोन की अपेक्षा उलटे हैं। –अनु०

+ वर्ष 1996 में यूरोपीय नाभिकीय शोध केंद्र (CERN) में "उलटे" हाइड्रोजन परमाणुओं को बनाया गया है। परंतु प्राकृतिक रूप से ऐसे परमाणु अब तक कहीं नहीं पाये गये हैं। –अनु०

आवेश वाले इलैक्ट्रोन परस्पर विनाश की प्रक्रिया करेंगे और इसी प्रकार विपरीत आवेश वाले प्रोटोन–प्रति–प्रोटोन तथा न्यूट्रोन–प्रति–न्यूट्रोन भी, और यह मिश्रण ऐसी प्रचंड उग्रता के साथ फट पड़ेगा कि परमाणु बम को भी मात कर देगा। क्या मालूम, हमारे अपने तारा–परिवार के अलावा ऐसे तारा–परिवार भी कहीं पर हों जो ऐसे उलटे पदार्थों से बने हों! ऐसे में हमारे यहाँ से एक साधारण–सा पत्थर भी यदि दूसरी तरह से बने हुए संसार पर फेंका जाये (या इससे उलटा), तो जैसे ही वह वहाँ प्रवेश करेगा, वैसे ही परमाणु बम बन कर फट पड़ेगा!

अब हम उलटे परमाणुओं के बारे में इन सपनीली–सी अटकलों को ज़रा छोड़ दें, और एक दूसरी ही तरह के बुनियादी कण का विचार करें, जो शायद अनोखेपन में उलटे कणों से कुछ कम नहीं है, बल्कि जिसमें यह गुण भी है कि यह जिन विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं में भाग लेता है उन्हें देखा जा सकता है – इसे कहते हैं **न्यूट्रीनो**। यह भौतिक विज्ञान में "पीछे के दरवाज़े से" आया और बहुत–से हल्कों से उठते "बुरी नज़र वालों" के संदेह के स्वरों के बावजूद अब मूलभूत कणों के परिवार में अपना अटल स्थान बनाये हुए है। न्यूट्रीनो को कैसे पाया और पहचाना गया, यह आधुनिक विज्ञान की सबसे दिलचस्प जासूसी कहानियों में से एक है।

न्यूट्रीनो के अस्तित्व की खोज एक ऐसे तरीके से हुई जिसे गणितज्ञ "रिडक्सियो एड एब्सर्डम" (किसी मान्यता के तार्किक निष्कर्ष निकालते–निकालते निरर्थक तक ले जाना) कहते हैं। यह रोमांचकारी खोज किसी चीज़ के पाये जाने से शुरू नहीं हुई, बल्कि इस तथ्य से हुई कि कुछ ग़ायब था। यह ग़ायब चीज़ थी ऊर्जा। अब भौतिक विज्ञान के सबसे पुराने और सबसे अचल नियमों में से एक यह है कि ऊर्जा न पैदा की जा सकती है, न विनष्ट ही। अतः जब यह पाया गया कि जितनी ऊर्जा होनी चाहिए थी उतनी नहीं थी, तो इसका अर्थ यह था कि ज़रूर कोई चोर या चोरों का गिरोह होगा जो इसे ले उड़ा होगा। अब वैज्ञानिकों के दिमाग़ तो ऐसे उपजाऊ होते हैं कि वे किसी चीज़ को न देख पाते हुए भी उसे नाम तो दे ही देते हैं। सो इन ऊर्जा के चोरों को विज्ञान के खोजियों ने "न्यूट्रीनो" नाम दे दिया।

पर यह तो हम कहानी से ज़रा आगे निकल गये। अब कुख्यात "ऊर्जा–लूट–कांड" के तथ्यों की ओर लौटें : जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, हर परमाणु का नाभिक न्यूक्लियोनों से बना होता है, जिनमें लगभग आधे आवेशहीन (न्यूट्रोन) होते हैं और शेष धनात्मक विद्युत आवेश वाले (प्रोटोन) होते हैं। यदि न्यूट्रोनों और प्रोटोनों की संख्याओं के बीच संतुलन बिगाड़ दिया जाये, जैसे एक या अधिक अतिरिक्त न्यूट्रोन या प्रोटोन जोड़ कर[8], तो विद्युत का पुनः समायोजन होना अवश्यंभावी होगा। यदि न्यूट्रोनों की संख्या उचित से अधिक हो, तो कुछ न्यूट्रोन ऋणात्मक इलैक्ट्रोनों को नाभिक से बाहर निकालते हुए प्रोटोन बन जायेंगे। यदि प्रोटोनों की संख्या उचित से अधिक हो, तो उनमें से कुछ धनात्मक इलैक्ट्रोनों को फेंकते हुए न्यूट्रोन बन जायेंगे। इस तरह की दो प्रक्रियाएँ चित्र 60 में दर्शायी गयी है। परमाणु के नाभिक में होने वाले ऐसे विद्युत–समायोजनों को **बीटा-विकार** (β-decay) कहते हैं, और नाभिक से निकलते इलैक्ट्रोनों को बीटा–कण कहते हैं। अब क्योंकि नाभिक का ऐसा अंदरूनी परिवर्तन एक निश्चित प्रक्रिया है, अतः इसके साथ ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा ही निकलनी चाहिए, जो कि फेंके गये इलैक्ट्रोन को प्राप्त होगी। अतः हम अपेक्षा करेंगे कि किसी भी एक पदार्थ की ऐसी एक प्रक्रिया में निकलने वाले सभी बीटा–कण समान वेग से चलेंगे।

---

[8] नाभिक पर कणों की वर्षा करने से ऐसा किया जा सकता है, जिसका वर्णन इस अध्याय में ही आगे किया जायेगा।

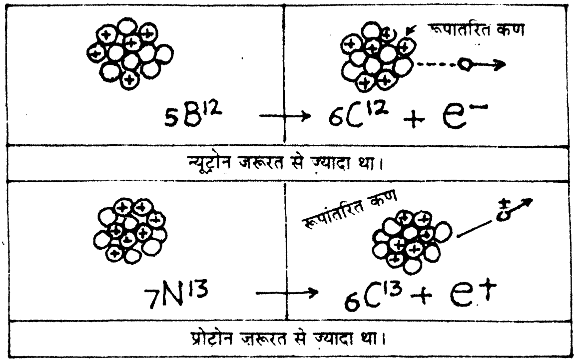


चित्र 60 : ऋणात्मक तथा धनात्मक बीटा–विकार की रूपरेखा
(प्रस्तुति की सुविधा के लिए सभी नाभिकीय कणों को एक ही समतल में चित्रित किया है)

परंतु बीटा–विकार की प्रक्रियाओं के प्रेक्षण से प्राप्त हुए तथ्य इस उम्मीद को पूरी तरह नकार रहे थे। वास्तव में यह पाया गया कि किसी एक पदार्थ से निकलने वाले इलैक्ट्रोनों की गतिज ऊर्जाएँ कुछ भी हो सकती हैं, शून्य से लेकर एक निश्चित ऊपरी सीमा तक। प्रश्न है कि जहाँ–जहाँ इलैक्ट्रोन की ऊर्जा उस निश्चित "ऊपरी सीमा" से कम है, वैसे मामलों में बाकी ऊर्जा कहाँ गयी ? ऐसे कोई अन्य कण या विकिरण नहीं पाये गये जिनसे इस विसंगति को दूर किया जा सकता। अर्थात् बीटा–विकार की प्रक्रिया में "ग़ायब ऊर्जा का मामला" काफ़ी गंभीर हो गया। कुछ अर्से तक यह धारणा बनने लगी थी कि यह प्रकरण ऊर्जा की अविनाशिता के प्रसिद्ध सिद्धांत की असफलता का पहला प्रायोगिक प्रमाण था, जो कि भौतिक थ्योरी के पूरे सुपरिष्कृत भवन को मटियामेट कर डालता। मगर एक अन्य संभावना भी थी : शायद ग़ायब ऊर्जा को किसी नयी किस्म के कण ले गये थे, जो हमारे प्रेक्षण के सारे उपायों को धता बताते हुए उड़ गये। डॉ० पाउली ने यह सुझाव रखा कि नाभिकीय ऊर्जा के "बग़दादी चोरों" की भूमिका निभाने वाले न्यूट्रीनो नामक प्राक्कल्पित कण हो सकते हैं, जिन पर कोई विद्युत–आवेश नहीं होता और जिनका भार साधारण इलैक्ट्रोन के भार से अधिक नहीं है। वास्तव में, द्रुत गति से चलने वाले कणों और पदार्थ के बीच की अंतर–क्रिया संबंधी जाने–माने तथ्यों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता था कि ऐसे आवेशहीन हल्के कणों को किसी भी वर्तमान भौतिक उपकरण से पकड़ा नहीं जा सकता था; किसी भी रोकने वाले पदार्थ की बहुत बड़ी मोटाई में से भी ये कण बिना किसी कठिनाई के गुज़र जाते। उदाहरण के तौर पर, दिखाई देने वाला प्रकाश धातु की एक पतली–सी पत्ती से पूरी तरह रुक जाता है; बहुत दूर तक भेदने वाली एक्स तथा गामा किरणों की तीव्रता को काफ़ी कम करने के लिए कई इंच मोटा सीसा (lead) चाहिए, जबकि न्यूट्रीनो की किरण सीसे की कई प्रकाश–वर्ष की मोटाई को भी आसानी से भेद कर निकल जायेगी। कोई आश्चर्य नहीं कि ये किसी भी संभव प्रेक्षण से बच कर भाग जाते हैं, और इनके भाग जाने से ऊर्जा की जो कमी दिखाई देती है, सिर्फ़ उसी से इनका पता चलता है।

यद्यपि एक बार नाभिक के बाहर निकल जाने के बाद हम न्यूट्रीनो को नहीं पकड़ सकते, तथापि इसके चले जाने के कारण उत्पन्न हुए एक दूसरी किस्म के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। देखिए, जब आप राइफ़ल से गोली चलाते हैं तो राइफ़ल वापिस आपके कंधे को मारती है, और कोई बड़ी तोप भारी गोला फेंकने के बाद अपने पहियों पर पीछे लुढ़कती है। तीव्र गति वाले कणों को फेंकते हुए नाभिक में भी यांत्रिक प्रतिक्षेप (पीछे की ओर धक्का) के समान ही प्रभाव होना

चाहिए। सचमुच, प्रयोगों में पाया गया कि बीटा–विकार करने वाले नाभिक, फेंके हुए इलैक्ट्रोन की विपरीत दिशा में कुछ वेग से चलते है। परंतु नाभिक के पीछे हटने का अजीब गुण यह है कि निकाला गया इलैक्ट्रोन भले ही तेज़ चल रहा हो या धीरे, नाभिक के प्रतिक्षेप का वेग हमेशा लगभग समान ही रहता है। यह बात बड़ी विचित्र लगती है, क्योंकि हम स्वभाविक ही अपेक्षा करते हैं कि तोप से तेज़ी से फेंका हुआ गोला धीमे गोले से अधिक तीव्र धक्का देगा (चित्र 61)।

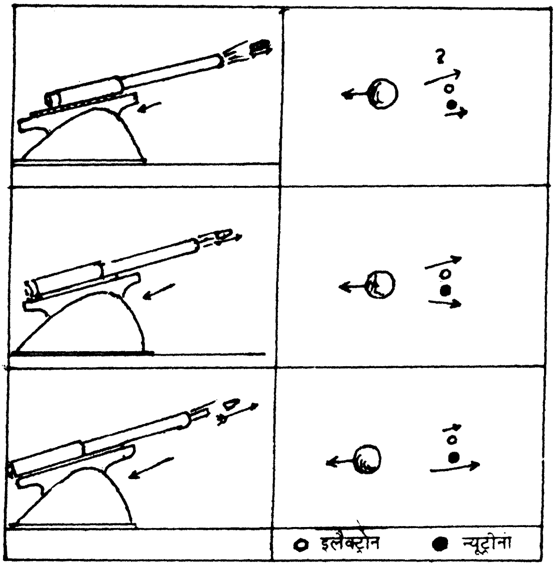


चित्र 61 : तोप चलाने में और नाभिकीय भौतिकी में प्रतिक्षेप का मामला

इस पहेली का हल इसी तथ्य में निहित है कि इलैक्ट्रोन के साथ–साथ नाभिक सदा एक न्यूट्रीनो को भी फेंकता है* जो बाकी बची ऊर्जा को ले जाता है। यदि कुल उपलब्ध ऊर्जा में से अधिकतर को इलैक्ट्रोन ले जाये और वह तेज़ी से चले तो न्यूट्रीनो की ऊर्जा कम रहेगी, और इसका उलटा भी सत्य है। अतः **दोनों** कणों के सम्मिलित प्रभाव के कारण नाभिक में आया प्रतिक्षेप (recoil) सदा बराबर तीव्र होता है। यदि इस तथ्य से न्यूट्रोनों के अस्तित्व का प्रमाण नहीं मिलता तो कहीं नहीं मिलेगा।

अंत में एक कण का उल्लेख करेंगे जो पहले–पहल अंतरिक्ष–किरणों में पाया गया, परंतु जो परमाणु के नाभिक के भीतर अतीव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बात यह है कि नाभिक के भीतर कई प्रोटोन होते हैं जो सभी धनात्मक आवेश लिये हुए होते हैं। कोई भी ऋणात्मक आवेश वहाँ होता नहीं। आप जानते हैं कि समान चिह्न वाले आवेश एक–दूसरे को विकर्षित करते हैं; अतः शायद आपके मन में यह प्रश्न उठा हो कि नाभिक के सब प्रोटोन एक–दूसरे से दूर क्यों नहीं भाग जाते?

* ताज़ी जानकारी के अनुसार ऋणात्मक इलैक्ट्रोन के साथ निकलने वाले कण का नाम न्यूट्रीनो नहीं, बल्कि उसका उलटा अर्थात् प्रति–न्यूट्रीनो है। बीटा–विकार की दूसरी किस्म में धनात्मक इलैक्ट्रोन के साथ न्यूट्रीनो निकलता है। न्यूट्रीनो तथा प्रति–न्यूट्रीनो दोनों आवेशहीन कण हैं। इनमें प्रमुख अंतर यह है कि न्यूट्रीनो की "हैलिसिटी" ऋणात्मक या बायें हाथ जैसी है, जबकि प्रति–न्यूट्रीनो की धनात्मक या दाहिने जैसी है। इसका मोटा अर्थ यह है कि इनमें से एक बायें हाथ वाले पेच की तरह चलता है और दूसरा दाहिने हाथ वाले की तरह। यह अंतर कुछ उसी प्रकार का है जैसा बायें और दाहिने हाथ के दस्तानों के बीच होता है (देखिए, अध्याय तीन, चित्र 21)। – अनु०

आवेशहीन न्यूट्रोनों को बाँध रखने के लिए भी कोई विद्युत–बल काम नहीं आयेगा। अतः उनको भी ज़रा–से झटके के फलस्वरूप बिखर जाना चाहिए। परंतु ऐसा नही होता। इसका कारण यह है कि दो प्रोटोनों के बीच, दो न्यूट्रोनों के बीच तथा न्यूट्रोन–प्रोटोन के बीच एक प्रकार के कण के लिए छीना–झपटी होती रहती है जिसका नाम है पाई या **पायोन**। (यह **मैसोन** जाति का कण है। मैसोन का अर्थ है मध्यम भार वालाः इलैक्ट्रोन से भारी परंतु प्रोटोन से हल्का।) जैसे, न्यूट्रोन से पाई कण निकला तो पड़ोस के प्रोटोन या न्यूट्रोन ने झपट लिया। इस क्रिया के कारण सभी न्यूक्लियोन आपस में बँधे रहते हैं। इतना और बता दें कि जैसे न्यूक्लियोन और उनके उलटे कण कुल चार प्रकार के हैं, वैसे ही पायोन तीन प्रकार के हैं – धनात्मक और ऋणात्मक आवेश वाले, जो कि एक–दूसरे के उलटे है, और आवेशहीन पायोन, जो उलटा–सीधा एक समान है। सभी पायोन अस्थिर कण हैं जो जन्म के बाद एक सैकंड के बहुत छोटे भाग में ही नष्ट हो जाते हैं।*

अब हम अब तक की चर्चा के निष्कर्षों को मिला कर देख सकते हैं और उन सभी बुनियादी कणों की संपूण सूची प्रस्तुत कर सकते हैं जो ब्रह्मांड की रचना में भूमिका निभा रहे हैं, और उनके बीच परस्पर संबंधों को भी बता सकते हैं।

सबसे पहले तो न्यूक्लियोन या नाभिक–कण हैं, जो कि पदार्थ के लगभग संपूर्ण भार को लिये हुए हैं; इस प्रकार ये पदार्थ की आधारभूत सामग्री हैं। ये आवेशहीन (न्यूट्रोन) या धनात्मक आवेश वाले (प्रोटोन) होते हैं, और इनके उलटे कण क्रमशः आवेशहीन प्रति–न्यूट्रोन तथा ऋणात्मक आवेश वाले प्रति–प्रोटोन होते हैं जो अभी तक प्रकृति में नहीं पाये गये। उसके बाद ऋणात्मक विद्युत के मुक्त आवेश के रूप में इलैक्ट्रोन तथा उसका उलटा पॉज़िट्रोन हैं। फिर वे रहस्यमय कण न्यूट्रीनो व प्रति–न्यूट्रीनो भी हैं, जिन पर कोई विद्युत–आवेश नहीं है और जो इलैक्ट्रोन से भी काफ़ी हल्के हैं।[9]

नाभिक को स्थायी बनाने में केन्द्रीय भूमिका अदा करने वाले तीन पाई कणों को भी शामिल करना होगा। ये वे टोपियाँ हैं जिनको अदल–बदल कर प्रोटोन और न्यूट्रोन लगातार अपने रूप में अदला–बदली करते रहते हैं।

अंत में विद्युत–चुंबकीय तरंगें हैं, जिन्हें कण के रूप में फ़ोटोन कहा जाता है, और जो खाली आकाश में विद्युत तथा चुंबकीय बलों के फैलने के लिए उत्तरदायी हैं।

भौतिक संसार के ये सारे बुनियादी अंग एक–दूसरे से संबंधित हैं और विविध प्रकार से संयोग कर सकते हैं। जैसे, कोई न्यूट्रोन एक इलैक्ट्रोन और प्रति–न्यूट्रीनो निकाल कर प्रोटोन बन सकता है। (न्यूट्रोन ⟶ प्रोटोन + इलैक्ट्रोन + प्रति–न्यूट्रीनो), और प्रोटोन एक पॉज़िट्रोन और न्यूट्रीनो को बाहर फेंक कर वापिस न्यूट्रोन बन सकता है। (प्रोटोन⟶ न्यूट्रोन + पॉज़िट्रोन + न्यूट्रीनो)। विपरीत आवेशों वाले दो इलैक्ट्रोन मिल कर विद्युत–चुंबकीय विकिरण में परिवर्तित हो सकते हैं (इलैक्ट्रोन + पॉज़िट्रोन ⟶ विकिरण), या वे विकिरण से जन्म भी ले सकते हैं (विकिरण ⟶ इलैक्ट्रोन + पॉज़िट्रोन)। प्रोटोन एक धनात्मक पायोन को फेंक कर न्यूट्रोन बन सकता है (प्रोटोन⟶ धना० पायोन + न्यूट्रोन), या आवेशहीन पायोन फेंकते हुए अपनी पहचान बरकरार भी रख सकता है। (प्रोटोन⟶

* यह अनुच्छेद मूल पाठ में नहीं है। पाठ को पूरा और आधुनिकतम बनाने के लिए इसे यहाँ जोड़ दिया गया है और चित्र 62 में भी तदनुसार संशोधन किये गये हैं। – अनु०

[9] अनेक सैद्धांतिक और प्रायोगिक कारणों से न्यूट्रीनो के "स्थिर–भार" को बिल्कुल शून्य माना गया है। हाल के प्रयोगों से संभावना उठी है कि शायद यह भार शून्य न हो, यद्यपि इसकी मात्रा बहुत ही छोटी होगी – इलैक्ट्रोन के भार के दसवें भाग से कम। –अनु०

आवेशहीन पायोन + प्रोटोन), या एक ऋणात्मक पायोन पकड़ कर न्यूट्रोन बन सकता है (प्रोटोन + ऋण–पायोन → न्यूट्रोन)। अंत में, दोनों प्रकार के न्यूट्रीनो इलैक्ट्रोन/पॉज़िट्रोन के साथ संयोग कर सकते हैं; इससे पायोन बनते हैं (न्यूट्रीनो + पॉज़िट्रोन → धन–पायोन, प्रति–न्यूट्रीनो + इलैक्ट्रोन → ऋण–पायोन)। न्यूट्रीनों और इलैक्ट्रोनों के संयोग से बने कण (पायोन), आंतरिक ऊर्जा से बहुत अधिक लदे रहते हैं, जिससे उनका भार उनके अंगों के संयुक्त भार की अपेक्षा दो सौ गुणा हो जाता है।**

चित्र 62 में ब्रह्मांड की रचना में भागीदार मूलभूत कणों का रूपरेखीय चार्ट दिखाया गया है।

| पदार्थ के मूलभूत कण: न्यूक्लियोन | न्यूक्लियोनों को जोड़ रखने वाले : पायोन | मुक्त विद्युत-आवेश: इलैक्ट्रोन | इलैक्ट्रोनों के साथी : न्यूट्रीनो |
|---|---|---|---|
| $p^{+}$ o<br>$n$ o | o $\pi^{+}$ | • $e^{-}$ | • $\nu$ |
| | o $\pi^{0}$ | $\gamma$ | फोटोन (सबसे न्यारे) |
| $\bar{n}$ o<br>$p^{-}$ o | o $\pi^{-}$ | $e^{+}$ | • $\bar{\nu}$ |

चित्र 62 : आधुनिक भौतिकी के मूलभूत कणों का चार्ट

आप पूछ सकते हैं : "क्या हम अंत तक पहुँच गये हैं ? यह मान लेने का हमें क्या अधिकार है कि न्यूक्लियोन, दोनों इलैक्ट्रोन, पायोन और दोनों न्यूट्रीनो वास्तव में बुनियादी हैं, या इनको और छोटे अंगों में विभक्त करना संभव नहीं है ? क्या सिर्फ़ एक सदी पहले यह नहीं माना जाता था कि परमाणु बिल्कुल अविभाज्य हैं ? और आज देखिए, परमाणु का चित्र कितना जटिल हो गया है!" उत्तर यह है कि, स्वाभाविक ही, पदार्थ के विज्ञान के भावी विकास को पहले से तो नहीं बताया जा सकता; फिर भी अब हमारे पास यह विश्वास करने के लिए बहुत बेहतर कारण हैं कि हमारे मूलभूत कण वास्तव में लघुतम इकाइयाँ है और इन्हें आगे नहीं तोड़ा जा सकता। जिन परमाणुओं को अविभाज्य कहा जाता था, उनके बड़े जटिल रासायनिक, प्रकाशिक, और दूसरे गुण मालूम थे, जिससे अनुमान होना चाहिए था कि इन परमाणुओं की कुछ अंदरूनी रचना है। दूसरी ओर, आधुनिक भौतिकी के मूलभूत कणों के गुण सरल से सरल हैं; वास्तव में इनकी सरलता की तुलना ज्यामितीय बिंदुओं की सरलता से की जा सकती है। और यह भी है कि पूर्व–प्रतिष्ठित भौतिकी के "अभाज्य परमाणुओं" की संख्या बहुत बड़ी होती थी; उनकी जगह पर अब हमारे पास केवल तीन–चार ही तरह की वस्तुएँ बची हैं जो एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं : न्यूक्लियोन, पायोन, इलैक्ट्रोन, और न्यूट्रीनो। अब हम कितना ही चाहें और कितना ही प्रयास करें कि हर चीज़ को उसके सरलतम रूप में देख सकें, तो

**यही कारण है कि पायोन बहुत अस्थिर हैं। –अनु०

*भी किसी चीज़ को शून्य तो नहीं बनाया जा सकता। इस प्रकार लगता है कि पदार्थ को बनाने वाले मूलभूत कणों की खोज में हम बिल्कुल अंत तक पहुँच गये हैं।**

हाल के दशकों में हुई खोजों से स्पष्ट हो गया है कि इलैक्ट्रोन और न्यूट्रीनो (जो वास्तव में एक ही परिवार के सदस्य हैं) तो सचमुच बिंदु की तरह सरल हैं, परंतु न्यूक्लियोनों और पायोनों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। पहले भी ऐसे संकेत मिले थे कि इन कणों की कुछ अंदरूनी रचना है; इनके भीतर पूरा विद्युत–आवेश भी एक ही बिंदु पर एकत्र नहीं है बल्कि योजनाबद्ध ढंग से वितरित है।

वर्ष 1964 में गैलमान और ज़्वाइग ने **क्वार्क** नामक कणों की कल्पना की, जिन्हें न्यूक्लियोनों व पायोनों के अंग माना जा सकता है। क्वार्कों के बारे में एक विचित्र बात यह है कि इनके आवेश मूलभूत आवेश $1.6 \times 10^{-19}$ कूलंब के गुणक नहीं, बल्कि इसके एक तिहाई या दो तिहाई होते हैं। सबसे सरल दो क्वार्क u **(अप)** तथा d **(डाउन)** हैं जिनके आवेश क्रमशः +2/3 तथा -1/3 इकाई हैं। इनको मुक्त रूप में नहीं देखा जा सकता है; इनके संयोग से बनने वाले उन्हीं कणों को देखा जा सकता है जिनके आवेश पूर्णांकों में हों। कोई भी न्यूक्लियोन तीन क्वार्कों के संयोग से बनता है, जबकि हर मैसोन की रचना में एक क्वार्क व एक प्रति–क्वार्क शामिल रहते हैं, जैसे :

प्रोटोन : p=uud
न्यूट्रोन : n=udd } (न्यूक्लियोन)

धन–पायोन : $\pi^+ = u\bar{d}$
ऋण–पायोन : $\pi^- = \bar{u}d$
आवेशहीन पायोन : $\pi^0 = u\bar{u}$ या $d\bar{d}$ } (पायोन),

जहाँ $\bar{u}$ व $\bar{d}$ प्रति–क्वार्क हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि पदार्थ की रचना की व्याख्या के लिए मोटे तौर पर दो प्रकार के क्वार्क, एक इलैक्ट्रोन तथा एक न्यूट्रीनो, और इन सबके उलटे कण, इतनी ही मूलभूत चीज़ों की ज़रूरत है। परंतु अत्यंत उच्च वेग से चलने वाले पदार्थों की टक्करों में बीसियों प्रकार के भारी–भारी कण पैदा होते हैं। साथ ही अंतरिक्ष–किरणों की बौछारों में भी अनेक अजीबों–ग़रीब कण पाये जाते हैं। इन सबको समझने के लिए एक और जोड़ी क्वार्क – s (स्ट्रेंज) एवं c (चार्म्ड) – तथा एक और जोड़ी भारी इलैक्ट्रोन (म्यूओन) एवं भारी न्यूट्रीनो चाहिएँ। ये "दूसरी पीढ़ी" के मूलभूत कण हैं। ऊर्जा का स्तर इससे भी ऊँचा होने पर "तीसरी पीढ़ी" के कणों को भी शामिल करना पड़ता है। ज्ञातव्य है कि तीसरी पीढ़ी के दूसरे क्वार्क अर्थात् अब तक के सबसे भारी क्वार्क t (ट्रुथ) के अस्तित्व की प्रायोगिक रूप से पुष्टि हाल (1994) में ही हुई है।

अभी तक क्वार्कों को मुक्त रूप में देखने के प्रयासों में पक्की सफलता नहीं मिली है, यद्यपि हाल में फ्रैंडमैन, केंडाल एवं टेलर ने ऐसी संभावना प्रदर्शित की थी और 1990 में इन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला।

---

* यहाँ से इस परिच्छेद के अंत तक की सामग्री मूल ग्रंथ में नहीं थी। अधुनातम खोजों की जानकारी देने के लिए इसे जोड़ दिया गया है। –अनु०

हाल में क्वार्क की थ्योरी में यह बात भी जोड़ दी गयी है कि उक्त सभी क्वार्क तीन–तीन "रंगों" में मिलते हैं : लाल, पीला व नीला। प्रत्येक न्यूक्लियोन में शामिल तीन क्वार्कों में प्रत्येक रंग का एक–एक क्वार्क रहता है; तीनों को मिला कर "सफ़ेद" रंग बन जाता है। दिखाई देने वाले सभी पदार्थ "सफ़ेद" होते हैं। इस तरह यह सरल चित्र फिर से धीरे–धीरे अधिक जटिल होता जा रहा है। तो भी संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सब पदार्थों के मूल में तीन ही प्रकार के कण हैं (क) 6 लैप्टोन (3 इलैक्ट्रोन, 3 न्यूट्रीनो), (ख) 6 क्वार्क (u,d,s,c,b,t), और (ग) कई प्रकार के बोसोन–कण, जो इन सभी के बीच अंतर–क्रियाओं के लिए ज़िम्मेवार हैं।

ये कण एक–दूसरे पर जो बल लगाते हैं, वे चार मूलभूत किस्मों के हैं – (क) गुरुत्वाकर्षण, जो बहुत क्षीण होता है और बड़े–बड़े भारों के लिए ही ध्यान देने योग्य मात्रा प्राप्त करता है, (ख) विद्युत –चुंबकीय बल जो केवल आवेशित कणों पर लगता है, (ग) शक्तिशाली नाभिकीय बल जो क्वार्कों के बीच लागू होता है, और (घ) क्षीण नाभिकीय बल जो क्वार्कों व लैप्टोनों के बीच लगता है अैर जो बीटा–विकार के लिए ज़िम्मेवार है। इनमें पहले दो बल तो दूर–दूर तक भी प्रभावी रहते हैं, जबकि अंतिम दो केवल अत्यंत निकट ($10^{-15}$ मी0) के कणों पर ही प्रभावी होते हैं। इन चार बलों को हम कणों के रूप में भी सोच सकते हैं – क्रमशः ग्रैविटोन, फ़ोटोन, ग्लूओन तथा अन्य बोसोन।

आधुनिक कण–भौतिक विज्ञानियों के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती है एक ऐसी सामान्य, एकीकृत क्रिया को खोजना, जो इन चारों बलों को अपने भीतर समेटे हुए हो। इस क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि है अब्दुस्सलाम एवं वाइनबर्ग द्वारा प्रतिपादित "विद्युत–क्षीण" थ्योरी जिसमें (ख) एवं (घ) का एकीकरण हो गया है।

**2. परमाणु का हृदय**

अब तक पदार्थ की रचना में काम आने वाले बुनियादी कणों की प्रकृति व गुणों के साथ हम भली भाँति परिचित हो गये हैं। तो आइए, अब हम अपनी निगाहें लगायें नाभिक के विस्तृत अध्ययन पर, जो परमाणु का हृदय है। परमाणु के बाहरी शरीर की रचना की तुलना तो कुछ हद तक एक लघु ग्रह–परिवार के साथ की जा सकती है, परंतु नाभिक की अपनी रचना बिल्कुल अलग ही दृश्य उपस्थित करती है। सबसे पहले इतना तो स्पष्ट है कि नाभिक को जोड़ कर रखने वाले बल शुद्धतः विद्युत प्रकृति के बल नहीं हो सकते, क्योंकि नाभिकीय कणों में से कम से कम आधे (न्यूट्रोन) बिना विद्युत–आवेश के हैं, जबकि बाकी आधे (प्रोटोन) सभी धनात्मक आवेश लिये हुए हैं, जिससे कि वे एक–दूसरे को विकर्षित करते हैं। ऐसे कणों के समूह का स्थिर रहना कैसे संभव है जिनके बीच विकर्षण के अलावा कोई बल ही न हो ?

नाभिक के अंगभूत भाग कैसे एक साथ जुड़े रहते हैं, इसे समझने के लिए यह मान कर ही चलना होगा कि ज़रूर इन कणों के बीच किसी अन्य प्रकार का बल है, जो कि आकर्षक प्रकृति का है। यह बल जिस प्रकार आवेश वाले कणों पर लगता है उसी प्रकार आवेशहीन कणों पर भी। ऐसे बल, जो सभी कणों को एक साथ बाँधते हैं, भले ही उन कणों की प्रकृति कैसी भी हो, आम तौर पर "जोड़ने वाले बल" कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर, ऐसे बल द्रवों में दिखाई देते हैं, जहाँ वे विभिन्न अणुओं को आकाश में उड़ जाने से रोकते हैं। परमाणु के नाभिक में भी विभिन्न कणों के बीच वैसे ही "जोड़ने वाले बल" लागू होते हैं जो नाभिक को प्रोटोनों के आपसी विकर्षण के प्रभाव में आकर बिखरने

से रोकते हैं।+ यही कारण है कि नाभिक के अंदर बड़ी संख्या में नाभिक–कण (न्यूक्लियोन) इस प्रकार ठूँस कर पैक कर दिये गये हैं जैसे किसी डिब्बे में कंचे ही कंचे हों, जबकि परमाणु के बाहरी शरीर में तो विभिन्न आवरणों में सजे इलैक्ट्रोनों को इधर–उधर चलने के लिए ढेरों स्थान उपलब्ध है। जैसा कि सर्वप्रथम इस पुस्तक के लेखक ने सुझाया था, यह मान कर चला जा सकता है कि नाभिक की रचना उसी ढंग से हुई है जैसे किसी साधारण द्रव की। और जैसा कि साधारण द्रवों में होता है, यहाँ पर भी पृष्ठ–तनाव (surface tension) वाली महत्त्वपूर्ण क्रिया होती है। आपको याद होगा कि द्रवों में पृष्ठ–तनाव इसलिए होता है कि द्रव के भीतर के किसी भी कण को पड़ोसी कण सभी ओर से खींचते हैं, जबकि सतह (पृष्ठ) पर अवस्थित कणों पर पड़ोसी कण जो बल लगाते हैं, उससे वे भीतर की ओर ही खिंचते हैं (चित्र 63)।

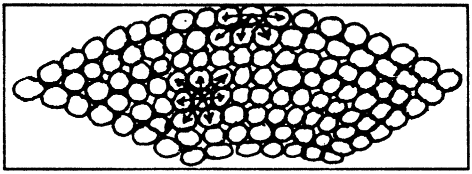

चित्र 63 : द्रव पदार्थ में पृष्ठ–तनाव के बल की व्याख्या

इसका परिणाम यह होता है कि किसी भी द्रव की बूँद में, जिस पर कोई बाहरी बल न लग रहे हों, गोलाकार आकृति में आने की प्रवृत्ति होती है, क्योंकि निश्चित आयतन के लिए जितनी भी ज्यामितीय आकृतियाँ हो सकती हैं, उनमें सबसे कम पृष्ठ–क्षेत्रफल गोले का ही है। क्योंकि परमाणविक नाभिक के कणों को एक–दूसरे के साथ जोड़ने वाले बल भी निकटतम पड़ोसी तक ही सीमित होते हैं, अतः नाभिकों में भी पृष्ठ–तनाव होता है और ये लगभग गोलाकार आकृति बनाये रखते हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **विभिन्न तत्त्वों के नाभिक एक ही सर्व-सामान्य "नाभिकीय द्रव" की बूँदें मानी जा सकती हैं** जिनके आकार छोटे या बड़े हैं। मगर यह बिल्कुल नहीं भूलना चाहिए कि नाभिकीय द्रव यद्यपि गुणात्मक रूप से साधारण द्रवों से बहुत मिलता–जुलता है, तथापि मात्रात्मक रूप से काफ़ी अलग है। वास्तव में इसका घनत्व जल के घनत्व से $2.4 \times 10^{14}$ गुणा अधिक है, और इसमें पृष्ठ–तनाव के बल भी जल की अपेक्षा $10^{18}$ गुणा बड़े होते हैं। इन भीमकाय संख्याओं को समझने योग्य बनाने के लिए निम्नलिखित उदाहरण पर विचार किया जाये। मान लीजिए, हमारे पास तार का बना हुआ चौखटा है जिसकी लंबाई–चौड़ाई लगभग 2 इंच है। इसकी तीन भुजाएँ अंग्रेज़ी अक्षर यू (U) के उलटे आकार में हैं और चौथी ओर एक अलग सीधी तार है जो ऊपर–नीचे चलायी जा सकती है। इस चौखटे में साबुन के पानी की झिल्ली है। अब झिल्ली के पृष्ठ–तनाव का बल आड़ी तार को ऊपर खींचेगा। हम इस आड़ी तार से एक भार लटका कर इस पृष्ठ–तनाव के बल का मुकाबला कर सकते हैं। यदि झिल्ली साबुन घुले जल से बनी है और, मान लो, 0.1 मि०मी० मोटी है, तो इसका भार कोई ¼ ग्राम होगा, और आप इससे कुल लगभग ¾ ग्राम का भार लटका सकेंगे।

+ इन जोड़ने वाले बलों की पहुँच (range) बहुत कम दूरी तक ही होती है; अतः ये बल केवल एक–दूसरे को छूते हुए कणों के बीच ही प्रभावी होते हैं। –अनु०

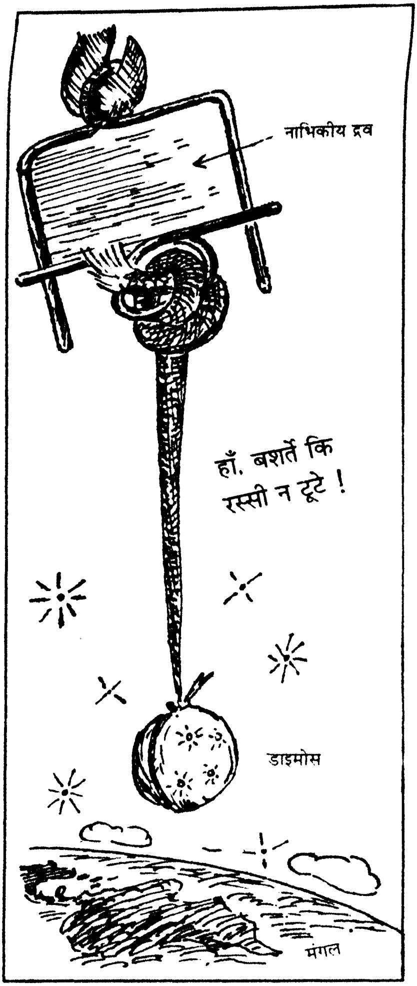


चित्र 64 : नाभिकीय 'द्रव' में पृष्ठ–तनाव का प्रचंड बल

अब यदि इसी प्रकार की झिल्ली नाभिकीय द्रव से बनाना संभव होता, तो ऐसी झिल्ली का भार 5 करोड़ टन होता (करीब एक हज़ार महासागरीय जहाज़ों के भार के बराबर), और आड़ी तार पर हम एक हज़ार अरब ($10^{12}$) टन का वज़न लटका सकते, जो कि मोटे तौर पर "डाइमोस" (मंगल के दूसरे उपग्रह) का भार है (चित्र64)। सचमुच, नाभिकीय द्रव से बने साबुन के बुलबुले फुलाने के लिए ज़रा दमदार फेंफड़ों की ज़रूरत पड़ती!

जब हम परमाणविक नाभिकों को नाभिकीय द्रव की नन्हीं–नन्हीं बूँदें मान कर विचार करने लगें, तो इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को बिल्कुल नज़र–अंदाज़ नहीं करना चाहिए कि ये बूँदें विद्युत से आवेशित हैं, क्योंकि नाभिक को बनाने वाले कणों में से लगभग आधे प्रोटोन हैं। पृष्ठ के अंगभूत प्रोटोनों के बीच परस्पर विद्युत–विकर्षण के बल नाभिक को दो या अधिक भागों में तोड़ देना चाहते हैं। यदि

पृष्ठ–तनाव के बल इन पर हावी हो जायें तो नाभिक कभी अपने आप टूटेगा नहीं, बल्कि यदि दो अलग–अलग नाभिक एक–दूसरे के संपर्क में आयेगें तो उनमें मिल कर एक हो जाने की प्रवृत्ति रहेगी, जैसी कि दो साधारण जल की बूँदों में रहती है। इसके विपरीत, यदि विद्युत–विकर्षण वाले बल हावी हो जायें तो नाभिक में अपने आप दो या अधिक भागों में टूट जाने की प्रवृत्ति रहेगी; दोनों भाग बड़े वेग से एक–दूसरे से दूर भाग जाना चाहेंगे। ऐसी टूटन की प्रक्रिया को आम तौर पर "विखंडन" (fission) नाम से जाना जाता है।

विभिन्न तत्त्वों के नाभिकों में पृष्ठ–तनाव और विद्युत–बलों की रस्सा–कशी के संबंध में परिशुद्ध गणनाएँ बोर एवं व्हीलर ने 1939 में कीं, और इनसे यह अति महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकला कि आवर्त–सारणी के पहले आधे भाग में (अर्थात् चाँदी तक) तो सभी तत्त्वों के नाभिकों में पृष्ठ–तनाव के बलों का प्रभुत्व रहता है, जबकि इससे अधिक भारी सभी नाभिकों में विद्युत–विकर्षण के बल हावी रहते हैं। अतः चाँदी से अधिक भारी सभी तत्त्वों के नाभिक मूल रूप से अस्थिर हैं, और बाहर से पर्याप्त ज़ोर से झटका लगने पर दो या अधिक भागों में टूट जायेंगे, और इस क्रिया में पर्याप्त मात्रा में अंदरूनी नाभिकीय ऊर्जा भी निकलेगी (चित्र 65 ख)। इसके विपरीत, जब कोई दो हल्के नाभिक, जिनका संयुक्त परमाणु–भार चाँदी के परमाणु–भार से कम हो, एक–दूसरे के पास आ जायें, तो अपने आप उनको मिल कर एक हो जाना चाहिए (चित्र 65 क)* – इसे "विलयन" (fusion) कहा जाता है।

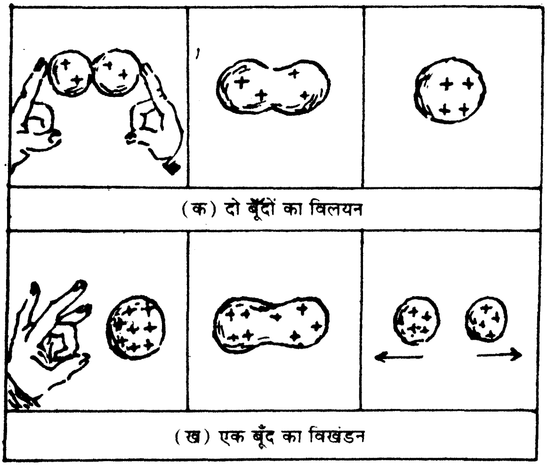


चित्र 65

परंतु याद रखना पड़ेगा कि न तो दो हल्के नाभिकों का विलय आम तौर पर **अपने आप** हो सकता है, और न किसी भारी नाभिक का विखंडन ही, जब तक कि बाहर से इसके लिए कुछ प्रयास न किया जाये। वास्तव में, दो हल्के नाभिकों का विलयन कराने के लिए हमें उनके विद्युत–आवेशों के विकर्षण–बल के विपरीत दोनों को एक साथ लाना होगा, जबकि किसी भारी नाभिक को विखंडन की राह पर लाने के लिए हमें इसे ज़रा ज़ोर से झटकना होगा जिससे कि यह पर्याप्त बड़े विस्तार के साथ कंपन करने लगे।

* अद्यतन जानकारी के अनुसार चाँदी नहीं, बल्कि लोहा वह तत्त्व है, जिसके नाभिक सब से अधिक स्थिर हैं। यही कारण है कि पृथ्वी पर लोहे की मात्रा इतनी अधिक है। –अनु०

यहाँ हम देखते हैं कि ऊर्जा मुक्त करने वाली प्रक्रिया भी शुरू में उत्तेजित किये बिना चालू नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति विज्ञान में आम तौर पर **अधिस्थिरता** (metastability) **वाली स्थिति** कहलाती है। इसके कई उदाहरण हो सकते है, जैसे पहाड़ी के ऊँचे किनारे के पीछे पड़ी चट्टान, या आपकी जेब में पड़ी माचिस, या किसी बम में मौजूद टी0 एन0 टी0 का मसाला। इनमें से हर मामले में बड़ी मात्रा में ऊर्जा मुक्त होने के लिए तैयार है, परंतु चट्टान पहाड़ी के नीचे लुढ़केगी नहीं जब तक उसे धकेल कर कगार के पार न कर दिया जाये, माचिस की शलाका जलेगी नहीं जब तक आपके जूते के तलवे या किसी अन्य चीज़ की रगड़ से उसे गर्म न किया जाये, और टी0 एन0 टी0 भी विस्फोट नहीं करेगा जब तक कि पलीते से दागा न जाये। हम जिस दुनिया में रहते हैं, उसमें चाँदी के रुपये के सिवाय प्रायः हर चीज़ में नाभिकीय विस्फोट की संभावना है[10]; फिर भी ये पदार्थ तार–तार नहीं हो जाते। इसका कारण यही है कि नाभिकीय प्रतिक्रिया को शुरू करने के संबंध मे बहुत भारी कठिनाइयाँ हैं या, विज्ञान की भाषा में, नाभिकीय रूपांतरणों की उत्प्रेरण–ऊर्जाएँ (excitation energies) बहुत ही अधिक हैं।

नाभिकीय ऊर्जा की दृष्टि से देखा जाये तो हम लोग उसी तरह के संसार में रहते हैं (नहीं, हाल तक रहते थे) जिस तरह बर्फ़ीले तापमानों में रहने वाला एस्कीमो, जिसके लिए बर्फ़ ही एकमात्र ठोस है और अल्कोहल ही एकमात्र द्रव है। ऐसे एस्कीमो ने आग की तो कभी बात भी न सुनी होगी, क्योंकि बर्फ़ के दो टुकड़ों को रगड़ने से आग नहीं निकल सकती, और वह अल्कोहल को एक मज़ेदार पेय के अलावा कुछ भी नहीं समझता होगा, क्योंकि इसका तापमान बढ़ा कर जलाने के बिंदु तक ले जाने के लिए उसके पास कोई उपाय नहीं है।**

अब ज़रा सोचिए कि हमारे काल्पनिक एस्कीमो को कैसी ज़बरदस्त हैरानी होती जब उसे पहली बार अल्कोहल जलाने वाला साधारण बर्नर दिखाया जाता। परमाणु के अदंरूनी भाग में छिपी ऊर्जा को बड़े पैमाने पर मुक्त करने की हाल की खोज से मानव जाति को हुआ महान विस्मय भी उसी के तुल्य है। हाँ, एक बार नाभिकीय प्रक्रिया को शुरू करने की कठिनाई से उबर जाने के बाद इसके परिणामों से सारी कठिनाइयों का मूल्य कई गुणा वसूल हो जायेगा। इन क्रियाओं में मुक्त होने वाली ऊर्जा कितनी अधिक है, इसका अनुभव करने के लिए कार्बन व ऑक्सीजन परमाणु की बराबर–बराबर मात्रा वाले मिश्रण को उदाहरण के तौर पर लीजिए। ये पदार्थ निम्नलिखित समीकरण के अनुसार रासायनिक रूप से जुड़ सकते हैं :

$$C + O \rightarrow CO + \text{ऊर्जा}.$$

इस मिश्रण के हर एक ग्राम से हमें 920 कैलोरी[11] प्राप्त होगी। परंतु यदि इन दोनों परमाणविक जातियों के साधारण रासायनिक एकीकरण (आणविक विलयन – चित्र 66 क) के स्थान पर हम दोनों नाभिकों का कीमियाई एकीकरण (नाभिकीय विलयन) करा दें (चित्र 66 ख) :

$${}_{6}C^{12} + {}_{8}O^{16} \rightarrow {}_{14}Si^{28} + \text{ऊर्जा},$$

तो मिश्रण के हर ग्राम पर मुक्त होने वाली ऊर्जा $1.4\times10^{10}$ कैलोरी, अर्थात रायायनिक विलयन की

[10] आपको याद होगा कि चाँदी के नाभिक न तो विलयन कर सकते हैं और न विखंडन ही।

**उसी प्रकार हम भी विलयन/विखंडन द्वारा विशाल मात्रा में ऊर्जा दे सकने वाले पदार्थों के बीच में रहते हुए भी नाभिकीय ऊर्जा से अनजान थे, क्योंकि इसको विमुक्त करने के लिए आवश्यक उत्प्रेरण नहीं हो सकता था। –अनु०

[11] कैलोरी ऊष्मा (गर्मी) की एक इकाई है, जिसकी परिभाषा है कि यह एक ग्राम जल का तापमान 1 डिग्री सैं० बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊर्जा है।

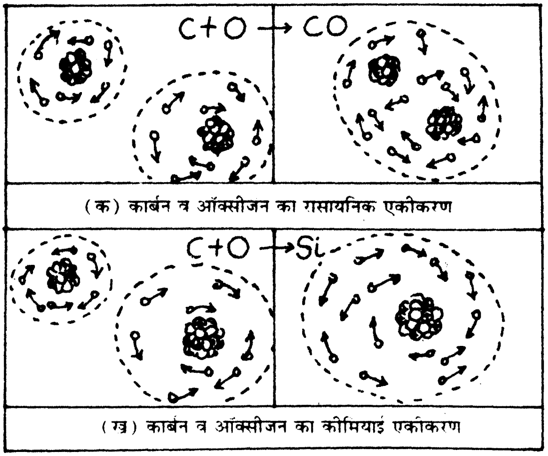


चित्र 66

अपेक्षा डेढ़ करोड़ गुणा अधिक होगी।

इसी प्रकार एक ग्राम टी0 एन0 टी0 के जटिल अणुओं के टूट कर जल, कार्बन डाई–ऑक्साइड और नाइट्रोजन बनने (आणविक विखंडन) में 1000 कैलोरी के लगभग ऊर्जा मुक्त होती है, जबकि किसी भारी तत्त्व, जैसे पारे, की इतनी ही मात्रा का नाभिकीय विखंडन होने पर हमें कुल मिला कर $10^{10}$ कैलोरी प्राप्त होगी।

हाँ, यह कभी भूलना नहीं चाहिए कि जहाँ अधिकतर रासायनिक प्रतिक्रियाएँ कुछ सौ डिग्री के तापमान पर आसानी से होने लगेंगी, वहाँ उपर्युक्त तरह के नाभिकीय रूपांतरण बीसियों लाख डिग्री से कम तापमान पर शुरू ही नहीं होंगे! नाभिकीय प्रतिक्रिया के शुरू करने की यह कठिनाई ही वह कारण है जिससे हम आश्वस्त हो सकते हैं कि ज़बरदस्त विस्फोट के साथ पूरे ब्रह्मांड के शुद्ध चाँदी में बदल जाने का तुरंत कोई ख़तरा नहीं है।

### 3. परमाणुओं को भेदना

वैसे तो परमाणु–भारों का पूर्ण संख्या होना अपने आप में ही इस बात के पक्ष में ज़ोरदार तर्क है कि परमाणु का नाभिक कई कणों से बना हुआ है, तो भी ऐसी रचना का अंतिम प्रमाण तो नाभिक को दो या अधिक अलग–अलग भागों में तोड़ने के प्रत्यक्ष अनुभव में ही पाया जा सकता है।

ऐसी भेदन की प्रक्रिया सचमुच हो सकती है, इसका सबसे पहला संकेत तो सत्तर वर्ष पूर्व (1896 में) बैक्वेरल द्वारा रेडियो–धर्मिता (radio-activity) की खोज से ही मिल गया था। सचमुच, यह प्रमाणित कर दिया गया था कि आवर्त–सारणी के अंतिम छोर के पास स्थित यूरेनियम व थोरियम जैसे तत्त्वों से जो अति दूर तक बेधने वाली किरणें (साधारण एक्स–किरणों के समान) अपने आप निकलती हैं, उसका कारण यही है कि ये परमाणु धीरे–धीरे अपने आप विघटित होते हैं। इस नयी खोजी गयी घटना का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से प्रयोगधर्मी विज्ञानी जल्दी ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी भारी नाभिक के विघटन में अपने आप दो भाग हो जाते हैं जो काफ़ी असमान होते

हैं – (1) एक छोटा–सा टुकड़ा, जिसे **अल्फ़ा कण** कहते हैं जो कि हीलियम का नाभिक है, और (2) मूल नाभिक का शेष भाग, जो कि संतान (नये पैदा हुए) तत्त्व का नाभिक होता है। जब मूल यूरेनियम –238 नाभिक अल्फ़ा कण छोड़ता हुआ टूटता है तो इसके परिणाम–स्वरूप बनने वाले संतान–तत्त्व* **यूरेनियम $X_1$** में तुरंत आंतरिक विद्युत–समायोजन होता है जिससे ऋणात्मक विद्युत–आवेश की दो इकाइयाँ (साधारण इलैक्ट्रोन) निकलती हैं। इससे वह संतान–नाभिक फिर यूरेनियम नाभिक बन जाता है, परंतु यूरेनियम के इस आइसोटोप का भार मूल यूरेनियम नाभिक की अपेक्षा चार इकाइयाँ कम (234) होता है। इस विद्युत–समायोजन के बाद फिर अल्फ़ा कण छोड़ने की शृंखला जारी रहती

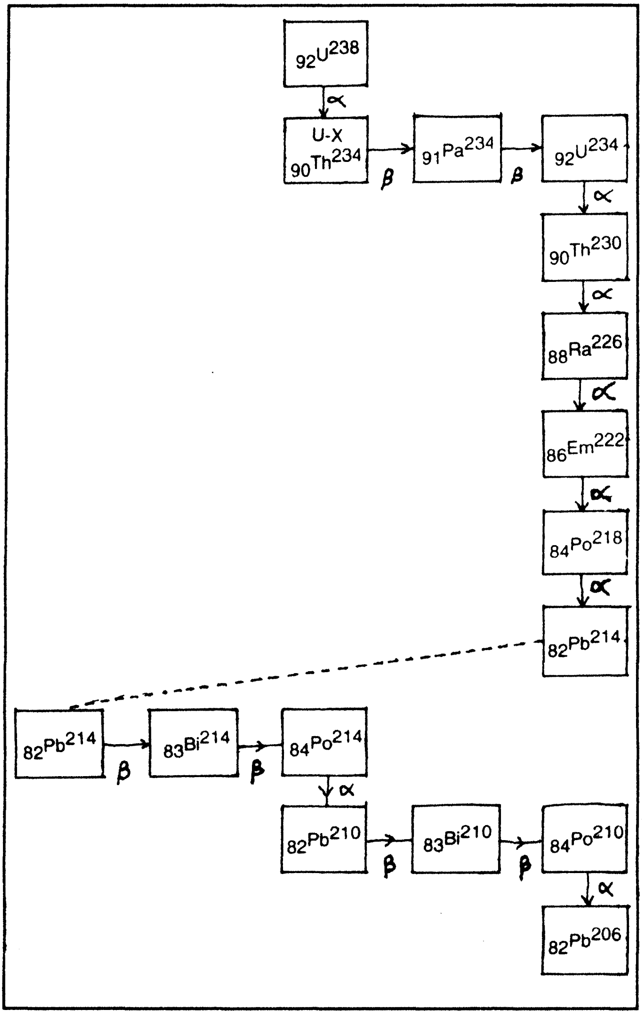


चित्र 66 ★ : यूरेनियम-238 से शुरू होने वाली रेडियो–धर्मी शृंखला

---

* यूरेनियम-X1 और कुछ नहीं, थोरियम (परमाणु–संख्या 90; परमाणु–भार 234) है। –अनु०

है, फिर और विद्युत–समायोजन (बीटा–विकार) होता रहता है, आदि, जब तक कि हम अतंतः सीसे (lead -206) के नाभिक तक नहीं पहुँच जाते, जो कि स्थिर प्रतीत होता है और आगे विघटित नहीं होता (चित्र 66 ★)।**

दो अन्य रेडियोधर्मी परिवारों में भी उसी प्रकार एक के बाद एक रेडियोधर्मी रूपांतरणों की श्रृंखला देखी जाती है – अल्फ़ा कण और इलैक्ट्रोन बारी–बारी से फेंके जाते हैं। इन दो में एक तो थोरियम परिवार है, जो भारी तत्त्व थोरियम-232 से शुरू होता है, और दूसरा है एक्टीनो–यूरेनियम परिवार जो यूरेनियम-235 से शुरू होता है। इन तीनों परिवारों में प्रत्येक में अपने आप विघटन की प्रक्रियाएँ तब तक चलती हैं जब तक कि सीसे का कोई एक आइसोटोप न बच जाये।

किसी जिज्ञासु पाठक को संभवतः आश्चर्य होगा जब वह अपने आप होने वाले रेडियोधर्मी विघटन के ऊपर लिखे वर्णन की तुलना पिछले परिच्छेद की पूरी चर्चा के साथ करेगा, जिसमें कहा गया था कि **आवर्त-सारणी के उत्तरार्ध के सभी तत्त्वों के नाभिकों में अस्थिरता होने का अंदेशा है,** क्योंकि यहाँ नाभिक को एक साथ जोड़ कर रखने वाले पृष्ठ–तनाव के बलों पर तोड़क विद्युत–बल हावी हैं। यदि चाँदी से अधिक भारी सभी नाभिक अस्थिर हैं, तो फिर अपने आप विघटन की क्रिया केवल यूरेनियम, रेडियम, थोरियम और कुछ अत्यधिक भारी तत्त्वों में ही क्यों देखी जाती है ? इसका उत्तर यह है कि सिद्धांत के तौर पर तो चाँदी से भारी सभी तत्त्वों को रेडियोधर्मी मानना ही होगा, और ये वास्तव में धीरे–धीरे विघटित होकर अपेक्षाकृत हल्के तत्त्वों में रूपांतरित हो रहे हैं। परंतु अधिकतर मामलों में अपने आप होने वाला विघटन इतनी क्षीण गति से होता है कि यह किसी भी तरह देखा नहीं जा सकता। अब देखिए, आयोडीन, सोना, पारा और सीसा जैसे परिचित तत्त्वों में परमाणु अनेक शताब्दियों में एकाध की दर से विघटित हो सकते हैं, जो इतना धीमा है कि अधिकाधिक संवेदनशील भौतिक उपकरणों द्वारा भी नहीं पकड़ा जा सकता। केवल अत्यधिक भारी तत्त्वों में ही अपने आप टूटने की प्रवृत्ति इतनी तेज़ है कि देखने योग्य रेडियोधर्मिता में परिणत हो।[12] जब कोई अस्थिर नाभिक एक से अधिक प्रकार की प्रतिक्रियाओं द्वारा टूट सकता है, तो ऐसी विभिन्न प्रक्रियाओं की दरें इस पर निर्भर होती हैं कि एक–दूसरे के अनुपात में प्रत्येक रूपांतरण की कितनी संभाविता (probability) है। अब जैसे, एक यूरेनियम परमाणु का नाभिक कई प्रकार टूट सकता है : यह अपने आप दो बराबर भागों में बँट सकता है, या तीन भागों में भी, या छोटे–बड़े कई भागों में बँट सकता है जिनके आकार ढेरों प्रकार के हो सकते हैं। परंतु इसके लिए सबसे आसान है एक अल्फ़ा कण और शेष बचे भारी नाभिक में बँट जाना, और इसलिए आम तौर पर ऐसा ही होता है। यह पाया गया है कि यूरेनियम-238 नाभिक के अपने आप दो बराबर भागों में बँट जाने की संभाविता एक अल्फ़ा कण को काट फेंकने की अपेक्षा कोई दस लाख गुणा कम है, और यदि हम एक ग्राम यूरेनियम का नमूना लें तो अपने आप विखंडन की एक प्रक्रिया देखने के लिए हमें कई मिनट तक प्रतीक्षा करनी होगी, जिसमें यूरेनियम नाभिक लगभग आधे–आधे दो भागों में टूट जाता है।

रेडियोधर्मी घटनाओं की खोज से यह निस्संदेह प्रमाणित हो गया कि नाभिक की रचना कई

**पिछले परिच्छेद में कहा गया था कि ज़ोर का झटका दिये बिना भारी तत्त्व का नाभिक विखंडित नहीं हो सकता। वह बात उस प्रक्रिया के बारे में कही गयी थी जिसमें भारी नाभिक दो लगभग बराबर भागों में बँट जाता है। यहाँ हम दूसरी प्रकार की प्रक्रियाओं (अल्फ़ा–विकार) की बात कर रहे हैं जो अपने आप होती रहती हैं। –अनु०

[12] उदाहरणतया, यूरेनियम-238 में प्रतिग्राम हमें कई हज़ार परमाणु प्रति सैकंड टूटते हुए मिलते हैं।

भागों से मिल कर हुई है, और इससे कृत्रिम ढंग से नाभिकीय रूपांतरण (एक प्रकार के नाभिक को दूसरे में बदलने) के लिए प्रयोगों का रास्ता खुल गया। तब यह प्रश्न उठा : यदि बहुत भारी, बहुत अस्थिर तत्त्वों के नाभिक अपनी मर्ज़ी से ही विघटित होते रहते हैं, तो क्या हम साधारणतया स्थिर रहने वाले तत्त्वों के नाभिकों को द्रुत गति से चलने वाले नाभिकीय कणों से चोट करके तोड़ नहीं सकते?

ऐसा विचार करके रदरफ़ोर्ड ने निश्चय किया कि साधारणतया स्थिर रहने वाले विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं पर उन नाभिकीय टुकड़ों (अल्फ़ा कणों) की सघन वर्षा की जाये जो अस्थिर रेडियोधर्मी नाभिकों के अपने आप टूटने पर निकलते हैं (और इसलिए आसानी से उपलब्ध हैं)। रदरफ़ोर्ड ने 1919 में नाभिकीय रूपांतरण के अपने पहले प्रयोगों में जो सामान काम में लाये (चित्र 67), वे आजकल भौतिक विज्ञान की प्रयोगशालाओं में काम आने वाले दैत्याकार परमाणु–भेदकों की तुलना में सरलता का आदर्श थे। यहाँ वर्षा करने वाले अल्फ़ा कणों का स्रोत एक धातु की पत्ती पर बैठायी गयी रेडियोधर्मी पदार्थ की पतली–सी परत थी (A), और जिस तत्त्व पर वर्षा करनी थी (इस चित्र में ऐलुमिनियम), उसका एक पतला–सा तंतु (B) बना कर स्रोत से थोड़ी दूर रखा गया था। ये दोनों चीज़ें हवा से खाली एक बेलनाकार पात्र में रखी गयी थीं जिसके अंतिम सिरे पर प्रतिदीप्त (fluorescent) पदार्थ की बनी खिड़की थी (C), जो एक पर्दे की तरह काम करती थी। लक्ष्य–तंतु को इस प्रकार बनाया गया था कि इस पर टकराने वाले अल्फ़ा कण इसी में सोख लिये जायें, ताकि उनके लिए पर्दे तक जाकर उसे प्रकाशित करना संभव न हो। अतः वह पर्दा बिल्कुल अँधेरा रहेगा जब तक अल्फ़ा कणों की वर्षा के परिणाम–स्वरूप लक्ष्य–पदार्थ से निकलते हुए नाभिकीय टुकड़े उस पर्दे पर न टकरा जायें।

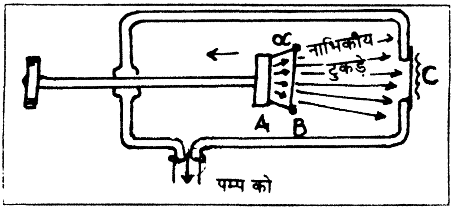

चित्र 67 : परमाणु को पहली बार कैसे खंडित किया गया

इन सभी वस्तुओं को अपने–अपने स्थान पर सजा कर जब रदरफ़ोर्ड ने एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र में से पर्दे को देखा तो ऐसा नज़ारा दिखाई दिया जिसे किसी भी तरह अँधेरा मानना संभव नहीं था। वहाँ हज़ारों छोटी–छोटी चिंगारियां पूरी सतह पर इधर–उधर नाच रही थीं। हर एक चिंगारी स्क्रीन के पदार्थ पर एक प्रोटोन के टकराने से उत्पन्न होती थी, और हर एक प्रोटोन लक्ष्य पर टकराते हुए अल्फ़ा–कण द्वारा ऐलुमिनियम परमाणु से बाहर फेंका गया "टुकड़ा" था। इस प्रकार एक तत्त्व को कृत्रिम ढंग से दूसरे में रूपांतरित करने की सैद्धांतिक संभावना निश्चित सत्य हो गयी।[13]

रदरफ़ोर्ड के इस प्रसिद्ध प्रयोग के बाद कुछ दशकों में ही तत्त्वों के कृत्रिम रूपांतरण का विज्ञान भौतिकी की सबसे बड़ी और सबसे महत्त्वपूर्ण शाखाओं में गिना जाने लगा। साथ ही इसकी तकनीकी में भी ज़बरदस्त प्रगति हुई —नाभिकों पर वर्षा के लिए आवश्यक तीव्र गति वाले कणों के उत्पादन में भी, और इससे प्राप्त परिणामों को देखने–जाँचने की विधियों में भी।

[13] ऊपर वर्णित क्रिया को इस समीकरण से दर्शाया जा सकता है :
$_{13}Al^{27} + _{2}He^{4}$ (अल्फ़ा) $\rightarrow$ $_{14}Si^{30} + _{1}H^{1}$ (प्रोटोन)

जब कोई नाभिकीय प्रक्षेपक किसी नाभिक पर जा टकराता है तो क्या होता है, यह स्वयं अपनी आँखों से देखना हो तो इसके लिए सबसे अधिक संतोषजनक उपकरण है **बादल-बक्सा** (cloud chamber) या विल्सन का बक्सा, यदि इसके आविष्कारक के नाम पर कहें। इसकी रूपरेखा चित्र 68 में दिखायी गयी है। इसके काम करने का आधार यह तथ्य है कि द्रुत गति से चलने वाले आवेशित कण, जैसे अल्फ़ा कण, जब हवा या किसी अन्य गैस में से गुज़रते हैं तो अपने रास्ते पर स्थित परमाणुओं में एक विशेष प्रकार का विकार पैदा करते चलते हैं। यह विकार कैसा होता है ? ये प्रक्षेपक अपने शक्तिशाली विद्युत–क्षेत्र के बल पर अपनी राह में पड़ने वाले गैस के परमाणुओं से एक–एक या अधिक इलैक्ट्रोन तोड़ते चलते हैं, जिससे कि बड़ी संख्या में परमाणुओं के आयन रास्ते पर रह जाते हैं। यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती, क्योंकि उस कण के जाने के बाद जल्दी ही आयन हवा में से इलैक्ट्रोन वापिस खींच लेते हैं और पुनः सामान्य स्थिति बहाल हो जाती है। परंतु जिस गैस में इस प्रकार आयनीकरण होगा, वह यदि पहले से जल–वाष्प से संतृप्त हो, तो प्रत्येक आयन पर एक नन्हीं–सी बूँद बन जायेगी, क्योंकि जल–वाष्प का यह गुण है कि यह आयनों, धूल–कणों आदि पर जमना चाहती है। अतः प्रक्षेप–कण के रास्ते के साथ–साथ कुहरे की एक पतली–सी पट्टी बन जायेगी। दूसरे शब्दों में, गैस में से गुज़रते हुए किसी भी आवेशित कण का रास्ता उसी प्रकार दीखने लगता है जैसे धुआँ छोड़ने वाले वायुयान का।

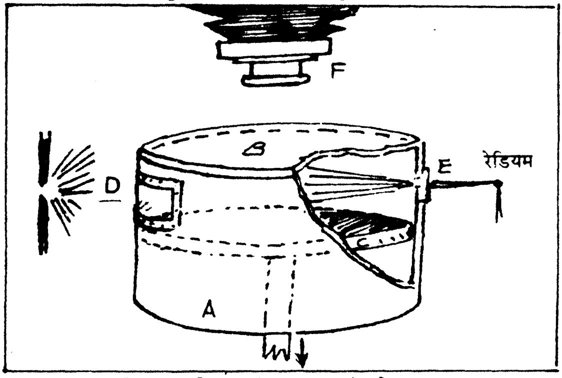


चित्र 68 . विल्सन के बादल–बक्से की रूपरेखा

तकनीकी दृष्टिकोण से बादल–बक्सा एक बहुत सरल उपकरण है। मोटे तौर पर इसमें एक धातु का बेलनाकार बक्सा होता है (A), जिसके ऊपर काँच का ढक्कन होता है (B), और भीतर एक पिस्टन (C), जिसको ऊपर–नीचे चलाने की व्यवस्था होती है जो चित्र में नहीं दिखायी गयी है। पिस्टन की ऊपरी सतह पर काला रंग किया रहता है। इस सतह और काँच के ढक्कन के बीच के स्थान में साधारण हवा (या ज़रूरत के अनुसार कोई भी अन्य गैस ) भर दी जाती है जिसमें काफ़ी मात्रा में जल–वाष्प रहती है। अब यदि खिड़की (E) में से कोई परमाणविक प्रक्षेपक (तेज़ चलता हुआ कण) बक्से में प्रवेश करे* और इसके तुरंत बाद पिस्टन को एकाएक नीचे चलाया जाये, तो पिस्टन के ऊपर की हवा ठंडी हो जायेगी और उसमें जो जल–वाष्प है वह जमने लगेगी और वह प्रक्षेपकों के पथों के साथ–साथ कुहरे की लकीरों के रूप में प्रकट होगी। पार्श्व की खिड़की (D) में से शक्तिशाली प्रकाश फेंकने पर ये कुहरे की लकीरें पिस्टन की काली सतह की पृष्ठभूमि पर स्पष्ट उभर आयेंगी और इन्हें आँख से देखा जा सकेगा या कैमरा (F) से इनका छायाचित्र खींचा जा सकेगा।

* यहाँ "खिड़की" का अर्थ खुला स्थान नहीं है। "E" स्थान पर किसी पदार्थ की बहुत पतली पत्ती होगी, जिसमें से हवा का आना–जाना नहीं हो सकता परंतु जिसे हमारे प्रक्षेपक आसानी से पार कर सकते हैं। खिड़की "D" किसी पारदर्शक पदार्थ से बनी होगी। –अनु०

कैमरा पिस्टन की गति के साथ अपने आप संचालित होता है। यह सरल–सी व्यवस्था आधुनिक भौतिकी के सबसे महत्त्वपूर्ण लघु–उपकरणों में से एक है, और इससे हम नाभिकीय वर्षा के परिणामों के सुंदर छायाचित्र प्राप्त कर सकते है।

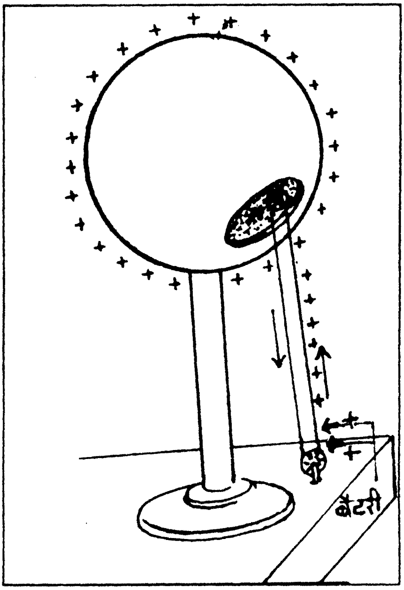


चित्र 69 : स्थिर–विद्युत जेनेरेटर का सिद्धांत : प्रारंभिक भौतिकी से यह बात भली भाँति ज्ञात है कि गोलाकार धातु के संचालक पर कोई आवेश दिया जाये तो वह संचालक की बाहरी सतह पर फैल जाता है। यदि हम इस गोले में बने एक छिद्र से एक चलती हुई पट्टी के द्वारा छोटा–सा आवेश भीतर ले आयें तो यह गोले की बाहरी सतह पर आ जायेगा। अतः इस प्रकार छोटे–छोटे आवेश देते जाने से गोले को चाहे जितनी अधिक वोल्टेज तक आवेशित कर सकते है। व्यवहार में एक पट्टी लगातार छिद्र से गोले में जाती रहती है और छोटे ट्रांसफ़ारमर द्वारा पैदा किये विद्युत आवेश को भीतर ले जाती है।

स्वाभाविक ही, ऐसी विधि बनाना भी अभीष्ट था जिससे शक्तिशाली विद्युत–क्षेत्रों में विभिन्न आवेशों वाले कणों को त्वरित करने मात्र से परमाणविक प्रक्षेपकों की शक्तिशाली किरणें उत्पादित की जा सकें। इन विधियों से दुर्लभ व महँगे रेडियोधर्मी पदार्थों की मुहताजी से तो छुटकारा मिलता ही है; साथ ही हम अल्फ़ा से अलग प्रकार के प्रक्षेपक भी काम में ला सकते हैं (जैसे प्रोटोन), और साधारण रेडियोधर्मी विघटन से प्राप्त होने वाली गतिज ऊर्जाओं की अपेक्षा अधिक ऊर्जा भी प्राप्त कर सकते हैं। द्रुत वेग वाले परमाणविक प्रक्षेपकों की सघन बौछारों के उत्पादन में जो मशीनें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, उनमें **स्थिर-विद्युत** (electrostatic) **जेनेरेटर**, **साइक्लोट्रोन** और **रेखाकार त्वरित्र** (linear accelerator) शामिल हैं, जिन्हें कार्यविधि के संक्षिप्त वर्णन के साथ क्रमशः चित्र 69, 70 और 71 में दिखाया गया है।*

* कणों को त्वरित करने वाली आज की मशीनें यद्यपि उस समय (1950-60) की अपेक्षा हज़ारों गुणा अधिक शक्तिशाली, जटिल और महँगी हैं, तथापि ये सभी मोटे तौर पर ऊपर दर्शाये सिद्धांतों के आधार पर ही कार्य करती हैं। इनमें से कुछ तो इतनी अधिक महँगी हैं कि कई देशों को मिल कर इनके लिए धनराशि जुटानी पड़ी है, जैसे जिनेवा में स्थित यूरोपीय समुदाय की मशीन। भारत में विशाल परमाणु–भेदक मशीनें कलकत्ता (परिवर्तनीय–ऊर्जा साइक्लोट्रोन), नयी दिल्ली (नाभिकीय विज्ञान केंद्र का स्थिर–विद्युत–जेनेरेटर) और मुंबई (टाटा संस्थान का स्थिर–विद्युत–जेनेरेटर) में स्थित हैं। –अनु०

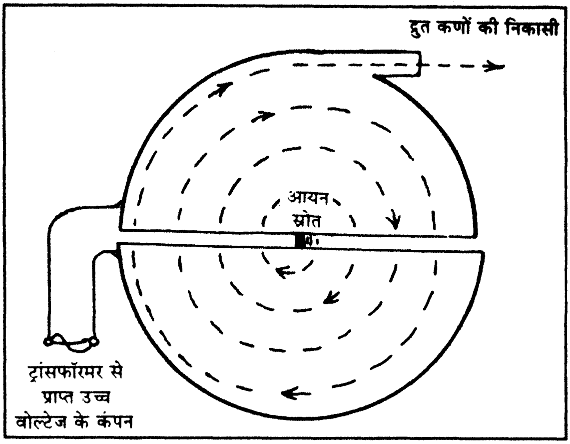


चित्र 70 : साइक्लोट्रोन का सिद्धांत : साइक्लोट्रोन में मोटे तौर पर दो अर्धवृत्ताकार धातु के बक्से होते हैं जिनको एक तीव्र चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाता है (जिसकी दिशा इस चित्र की सतह के लम्बवत है)। दोनों बक्सों को ट्रांसफ़ार्मर के साथ जोड़ा जाता है जिससे उनको बारी–बारी से धन और ऋण बिजली का आवेश मिलता है। केंद्र में स्थित स्रोत से निकलने वाले आयन चुंबकीय क्षेत्र में वृत्ताकार रास्तों पर चलते जाते हैं। हर बार एक बक्से से दूसरे तक जाने में वे त्वरित हो जाते हैं। जैसे–जैसे उनकी गति बढ़ती जाती है, वे सर्पिल रास्ते पर चलते हुए बढ़ते हैं, और अंत में बहुत अधिक गति से बाहर निकलते हैं।

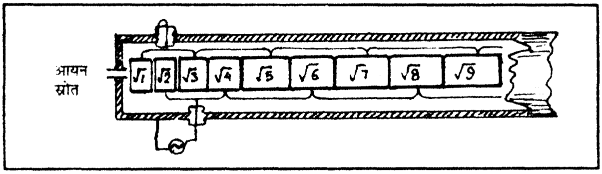


चित्र 71 : रेखाकार त्वरित्र का सिद्धांत : इस मशीन में अनेक बेलन होते है जिनकी लंबाई क्रमशः बढ़ती जाती है और इन्हें एक ट्रांसफ़ार्मर द्वारा बारी–बारी से धन और ऋण आवेश दिया जाता है। जब आयन एक बेलन से दूसरे की ओर जाते हैं तो उन दोनों के बीच विद्यमान वोल्टेज के अंतर के कारण धीरे–धीरे त्वरित होते जाते हैं, और इस प्रकार हर बार उनकी ऊर्जा एक निश्चित मात्रा में बढ़ जाती है। क्योंकि गति ऊर्जा के वर्गमूल की समानुपाती है, अतः आयनों का प्रत्यावर्ती क्षेत्र के साथ ताल बनाये रखने के लिए बेलनों की लंबाई पूर्णांकों के वर्गमूल के अनुपात में रखनी होगी। इस प्रकार के तंत्र को पर्याप्त लंबाई तक बनाया जाये तो हम आयनों को किसी भी वांछित गति तक त्वरित कर सकते हैं।

ऊपर वर्णित प्रकारों के विद्युत–त्वरित्रों के उपयोग से विभिन्न कणों की शक्तिशाली किरणों का उत्पादन करके, और इन किरणों की वर्षा विभिन्न पदार्थों से बने लक्ष्यों पर करके, हम बहुत संख्या में नाभिकों को एक–दूसरे में बदल सकते हैं, जिनका बादल–बक्से के छायाचित्रों के द्वारा सुविधापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।[+]

इस प्रकार का पहला चित्र कैंब्रिज में पी0 एम0 एस0 ब्लैकेट ने लिया था; इसमें नाइट्रोजन से भरे बक्से में से गुज़रती प्राकृतिक अल्फ़ा कणों की एक बौछार का चित्रण था (चित्र 71 ★ क)।[14]

+ नाभिकीय प्रतिक्रियाओं में पैदा हुए कणों के अध्ययन के लिए बादल–बक्से के अलावा अब कई अन्य संसूचक (detectors) उपलब्ध हैं; इनमें से अनेक में अर्ध–संचालक तथा इलैक्ट्रॉनिक यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। –अनु0

14 ब्लैकेट के छायाचित्र में दर्ज की गयी कीमियाई प्रतिक्रिया इस समीकरण द्वारा दर्शाई जा सकती है:
${}_{7}N^{14} + {}_{2}He^{4} \rightarrow {}_{8}O^{17} + {}_{1}H^{1}$

इसमें सबसे पहले तो यह देखा गया कि कणों द्वारा बनायी लकीरों की लंबाई सीमित है। कारण यह है कि गैस में उड़ते हुए (और गैस के आयन बनाते हुए) कण धीरे–धीरे अपनी गतिज ऊर्जा खो देते हैं, जिससे वे अंततः रुक जाते हैं। छायाचित्रों में लकीरों के दो अलग–अलग समूह थे जिनकी लबाइयाँ भी अलग थीं : इसका कारण यह था कि अलग–अलग ऊर्जाओं वाले अल्फ़ा कणों के दो समूह स्रोत से निकल रहे थे। (स्रोत दो अल्फ़ा–प्रदायक तत्त्वों ThC व ThC' का मिश्रण था। यह देखा जा सकता था कि अल्फ़ा कणों की लकीरें, जो कि सामान्यतया बिल्कुल सीधी होती हैं, अंत के पास आकर स्पष्ट मुड़ती दीखती हैं, जहाँ पर कि अल्फ़ा कणों की अधिकतर ऊर्जा समाप्त हो गयी है, और धीमी गति के कारण रास्ते में मिलने वाले नाइट्रोजन नाभिकों के साथ अप्रत्यक्ष टक्कर होने से वे अधिक आसानी से विचलित हो जाते हैं। परंतु इस छायाचित्र का सबसे बड़ा आकर्षण तो उस विशिष्टि अल्फ़ा–पथ में था, जिसमें अपनी ही तरह से दो शाखाएँ फूटी थीं – एक शाखा लंबी और पतली थी, जबकि दूसरी छोटी और मोटी । इसमें बक्से के एक नाइट्रोजन नाभिक और बाहर से आते हुए अल्फ़ा कण के बीच सीधी आमने–सामने की टक्कर का परिणाम नज़र आता था। पतली लंबी लकीर उस प्रोटोन का पथ दर्शा रही थी जो टक्कर के धक्के से नाइट्रोजन नाभिक में से बाहर फेंका गया था, जबकि मोटी छोटी लकीर टक्कर के कारण एक ओर को धकेले गये नाभिक का पथ दिखा रही थी। इसमें कोई तीसरी लकीर नहीं थी जिससे छिटके हुए अल्फ़ा कण का पता चलता : इस तथ्य से संकेत मिलता है कि मूल अल्फ़ा कण नाभिक में चिपक कर उसके साथ ही चल रहा था।

यदि किसी त्वरित्र (accelerator) की टोंटी से निकली द्रुत गति वाले प्रोटोनों की किरणें बादल–बक्से की खिड़की से प्रवेश करती हैं, और उस खिड़की के भीतर रखी बोरोन की परत से टकराती हैं, तो आसपास की हवा में नाभिकीय टुकड़े सभी दिशाओं में उड़ने लगते हैं। इन टुकड़ों की लकीरें हमेशा तिकड़ियों में ही प्रकट होती हैं, क्योंकि प्रोटोन की चोट खाने पर बोरोन का नाभिक तीन बराबर भागों में टूट पड़ता है।[15]

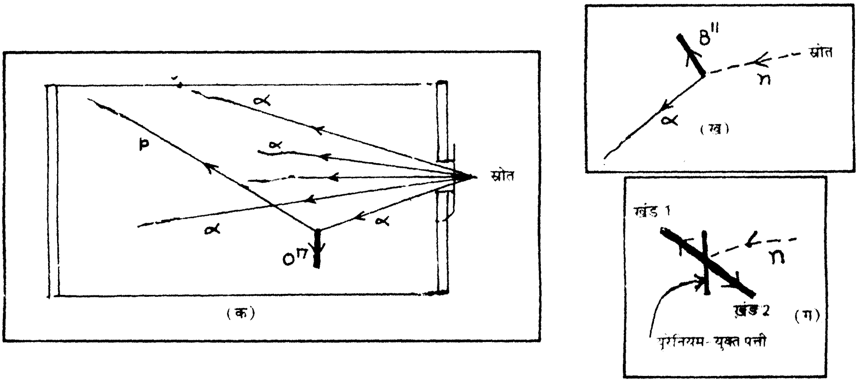


चित्र 71★ : बादल–बक्से से प्राप्त कुछ प्रतिनिधि चित्र

[15] इस प्रतिक्रिया का समीकरण है: ${}_5B^{11} + {}_1H^1 \rightarrow {}_2He^4 + {}_2He^4 + {}_2He^4$

अब यदि त्वरित्र से प्राप्त द्रुत गति वाले ड्यूट्रोनों की किरण (भारी हाइड्रोजन के नाभिक, जिनमें से प्रत्येक एक प्रोटोन और एक न्यूट्रोन से बना है) एक ऐसे लक्ष्य से टकराये जिसमें भारी हाइड्रोजन भी है, तो ड्यूट्रोनों और ड्यूट्रोनों की टक्करों के परिणाम–स्वरूप दो प्रकार की लकीरें दिखाई पड़ेंगी : लंबी लकीरें प्रोट्रोनों की और छोटी लकीरें तिगुने–भारी हाइड्रोजन के नाभिकों की, जिनको ट्राइटोन कहते हैं[16]।

बादल–बक्से के चित्रों की गैलरी कभी पूरी नहीं होगी जब तक इसमें न्यूट्रोनों वाली नाभिकीय प्रतिक्रियाएँ शामिल न की जायें, क्योंकि प्रोटोनों के साथ–साथ न्यूट्रोन ही हर नाभिक के ढाँचे के मुख्य अंश हैं। यूँ तो बादल–बक्से के चित्रों में न्यूट्रोन के पथ खोजना व्यर्थ ही होगा, क्योंकि न्यूट्रोन में विद्युत–आवेश नहीं होता। ये "नाभिकीय भौतिकी के काले घोड़े" ज़रा भी आयन बनाये बिना किसी भी पदार्थ से गुज़र जाते हैं। परंतु फिर भी कुछ आशा है। देखिए, जब आप किसी शिकारी की बंदूक से धुआँ उठता देखते हैं और कबूतर को आकाश से नीचे गिरता देखते हैं, तो जान जाते हैं कि ज़रूर गोली चली थी, यद्यपि आपने आँख से गोली नहीं देखी। इसी प्रकार जब आप बादल–बक्से का ऐसा छायाचित्र देखते हैं जिसमें नाइट्रोजन का नाभिक बोरोन व हीलियम नाभिकों में टूटता नज़र आता है, तो सोचे बिना नहीं रह सकते कि उस मूल नाभिक को किसी अदृश्य कण ने ज़ोर से टक्कर मारी होगी। और सचमुच, इस प्रकार का छायाचित्र प्राप्त करने के लिए बादल–बक्से की बायीं दीवार के भीतर रेडियम व बैरिलियम का मिश्रण रखना पड़ता है, जिसके बारे में विदित है कि यह द्रुत न्यूट्रोनों का स्रोत है।[17] जिस सरल रेखा में न्यूट्रोन बक्से में चल रहा था, उसे देखने के लिए आपको इतना ही करना है कि न्यूट्रोन–स्रोत की स्थिति को उस बिंदु से जोड़ देना है जहाँ नाइट्रोजन नाभिक टूटा (चित्र 71★ख)।

अब यदि ऐलुमिनियम की एक पतली पत्ती पर यूरेनियम की हल्की–सी परत चढ़ा दी जाये तो यूरेनियम की विखंडन–प्रक्रिया भी देखी जा सकती है : इसमें विखडन से बने दो टुकड़े परस्पर उलटी दिशाओं में ऐलुमिनियम से निकल कर भागते दिखाई पड़ेंगे (चित्र 71★ग)। यूँ तो यूरेनियम के विखंडन का कारण भी न्यूट्रोन होता है और विखंडन के परिणाम–स्वरूप भी दो–तीन न्यूट्रोन जन्म लेते हैं, पर स्वाभाविक ही बादल–बक्से के चित्र में कोई भी न्यूट्रोन दिखाई नहीं देंगे।

विद्युत–क्षेत्रों द्वारा त्वरित कणों की नाभिकों पर वर्षा करने से प्राप्त तरह–तरह के नाभिकीय रूपांतरणों का वर्णन करते जायें तो इसकी कोई सीमा नहीं है, परंतु अब हमें एक अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर ध्यान देना चाहिए : इस प्रश्न का संबंध ऐसी वर्षा की **दक्षता** (efficiency) से है। यह याद रखना पड़ेगा कि, उदाहरणतया, 1 ग्राम बोरोन को पूरी तरह हीलियम में बदलने के लिए हमें इसमें मौजूद $6 \times 10^{22}$ परमाणुओं में से प्रत्येक को तोड़ना होगा। ध्यान में रखिए कि शक्तिशाली से शक्तिशाली त्वरित्र भी केवल $10^{15}$ कण प्रति सैकंड ही दे पायेगा, अर्थात् यदि हर एक कण बोरोन के एक नाभिक को तोड़ देता, तो भी यह कार्य पूरा करने के लिए हमें त्वरित्र मशीन को 6 करोड़ सैकंड या लगभग 2 वर्ष तक चलाना पड़ता।

---

16 इस प्रतिक्रिया को निम्न समीकरण से दर्शाया जायेगा: $_1H^2 + {_1H^2} \rightarrow {_1H^3} + {_1H^1}$

17 कीमियाई समीकरणों में यहाँ बतायी गयी क्रियाएँ इस रूप में बतायी जा सकती हैं : (क) न्यूट्रोन का उत्पादन : $_4Be^9 + {_2He^4}$ (रेडियम से निकला अल्फ़ा कण) $\rightarrow {_6C^{12}} + {_0n^1}$; (ख) न्यूट्रोन की नाइट्रोजन नाभिक से टक्कर : $_7N^{14} + {_0n^1} \rightarrow {_5B^{11}} + {_2He^4}$

परंतु सत्य तो यह है कि विभिन्न मशीनों में से जो आवेशित नाभिकीय प्रक्षेपक निकलते हैं, वे इससे बहुत कम प्रभावी होते हैं : प्रायः कई हज़ार प्रक्षेपकों में से एक से ही आशा की जा सकती है कि वह लक्ष्य पदार्थ में कोई नाभिकीय विखंडन पैदा करेगा। परमाणुओं पर कण–वर्षा की इस अत्यंत निम्न दक्षता का कारण यह है कि नाभिकों के आसपास इलैक्ट्रोनों के आवरण रहते हैं जो अपने भीतर से गुज़रने वाले आवेशित प्रक्षेपकों का वेग कम कर सकते हैं। अब क्योंकि ऐसे परमाणविक आवरण का क्षेत्रफल नाभिक के क्षेत्रफल की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, और स्वाभाविक ही हम अपने प्रक्षेपकों को नाभिकों की ओर सही निशाना लगा कर नहीं फेंक सकते, अतः ऐसा हर प्रक्षेपक किसी एक नाभिक को सीधी टक्कर मारने से पहले ज़रूर बहुत–से परमाणविक आवरणों को छेदता हुआ चलता है। इस स्थिति को रूपरेखा में चित्र 72 में दिखाया गया है, जहाँ नाभिक ठोस काले गोलों के रूप में और उनके इलैक्ट्रोन–आवरण हल्की छायाओं के रूप में दिखाये गये हैं। परमाणु और नाभिक के व्यासों का अनुपात लगभग 10,000 है; अतः लक्ष्य–क्षेत्रफलों का अनुपात 10 करोड़ के मुकाबले एक होगा। दूसरी ओर, हम यह भी जानते हैं कि किसी परमाणु के इलैक्ट्रोन–आवरण से गुज़रते हुए कोई आवेशित कण अपनी ऊर्जा के एक प्रतिशत का लगभग एक सौवाँ भाग खो देता है, जिससे कि लगभग 10,000 परमाणु–पिंडों में से गुज़रने में इसकी ऊर्जा समाप्त हो जायेगी। इन संख्याओं से यह आसानी से देखा जा सकता है कि लगभग 10,000 में से एक ही कण को नाभिक पर प्रहार करने का मौका मिलेगा, इससे पहले कि उसकी सारी मूल ऊर्जा परमाणविक आवरणों में घिसटने में ही नष्ट हो जाये। अतः हमारे प्रक्षेपक कणों में किसी भी लक्ष्य–पदार्थ के नाभिकों को तोड़ने वाली टक्कर मारने की दक्षता काफ़ी कम है। इस दक्षता को लेकर गणना करते हुए हम पाते हैं कि 1 ग्राम बोरोन को पूरी तरह रूपांतरित करने के लिए इसे किसी आधुनिक परमाणु–भेदक मशीन की किरण में कम से कम 20,000 वर्ष तक रखना होगा!

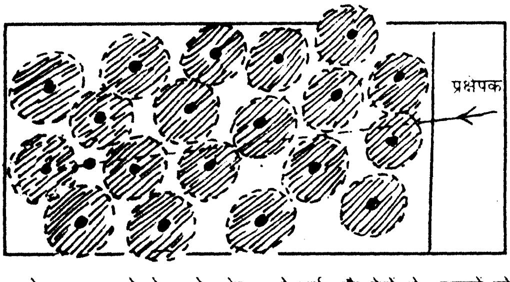


चित्र 72 : नाभिक को टक्कर मारने से पहले प्रक्षेपक को कई इलैक्ट्रोनों के आवरणों को छेदना पड़ता है

## 4. नाभिकीय ऊर्जा*

जैसे मुक्त इलैक्ट्रोन–किरणों के व्यावहारिक उपयोग के पूरे क्षेत्र के ज्ञान को इलैक्ट्रॉनिक्स नाम दिया गया, उसी प्रकार "न्यूक्लियॉनिक्स" या "नाभिकीय ऊर्जा" शब्द उस विज्ञान का नाम है जिसका विषय बड़े पैमाने पर मुक्त होने वाली नाभिकीय ऊर्जा का व्यावहारिक उपयोग है। पिछले परिच्छेदों में हमने देखा है कि विभिन्न रासायनिक तत्त्वों के नाभिक (चाँदी के सिवाय) अगाध मात्रा

* मूल पाठ में इस विषय के लिए "न्यूक्लियॉनिक्स" शब्द का प्रयोग किया गया था, जो अनुपयुक्त होते हुए भी कई दशक पूर्व प्रचलित था। हम आधुनिक शब्दावली का प्रयोग कर रहे हैं। –अनु०

में आंतरिक ऊर्जा से भरे हैं जिसे मुक्त किया जा सकता है : हल्के तत्त्वों में नाभिकीय विलयन की प्रक्रिया के द्वारा, और भारी तत्त्वों में नाभिकीय विखंडन के द्वारा। हमने यह भी देखा कि नाभिकों पर कृत्रिम रूप से त्वरित किये गये (दौड़ाये गये) आवेशित कणों की वर्षा करने वाली विधि की दक्षता बहुत ही निम्न (कम) है। अतः व्यावहारिक स्तर पर नाभिकीय ऊर्जा का उत्पादन करने के लिए ऐसी विधि कारगर नहीं हो सकती, यद्यपि विभिन्न नाभिकीय रूपांतरणों के सैद्धांतिक अध्ययन की दृष्टि से वह विधि अतीव महत्त्वपूर्ण है।

अल्फ़ा कण और प्रोटोन जैसे साधारण नाभिकीय प्रक्षेपक मुख्यतः इसलिए बहुत कम प्रभावी रहते हैं कि ये सब विद्युत आवेश लिये हुए हैं, जिसके कारण परमाणुओं के शरीरों में से गुज़रते हुए इनकी ऊर्जा खर्च होती जाती है, और इससे ये अक्सर लक्ष्य पदार्थ के आवेशित नाभिकों के पर्याप्त पास नहीं आ पाते हैं। अतः यदि आवेशहीन प्रक्षेपकों का उपयोग किया जाये, जैसे विभिन्न नाभिकों पर न्यूट्रोनों की वर्षा की जाये, तो काफ़ी बेहतर परिणामों की आशा की जा सकती है।** परंतु यहाँ भी एक पेंच है। न्यूट्रोनों को हम लायेंगे कहाँ से ? यदि न्यूट्रोन बिना किसी कठिनाई के नाभिक के भीतर पैठ सकते हैं और प्रतिक्रिया कर सकते हैं, तो इसका परिणाम यह भी है कि प्रकृति में ये मुक्त रूप में मौजूद ही नहीं हैं। जब भी किसी नाभिक में से किसी प्रक्षेपक के धक्के के कृत्रिम रूप से कोई मुक्त न्यूट्रोन बाहर फेंका जाता है (उदाहरणतया बैरिलियम नाभिकों पर अल्फ़ा कणों की वर्षा करने से), तो यह बहुत जल्दी ही किसी अन्य नाभिक द्वारा पुनः पकड़ लिया जाता है।

अतः नाभिकीय वर्षा के लिए यदि न्यूट्रोनों की बहुसंख्यक बौछार तैयार करनी हो तो हमें किसी तत्त्व के नाभिकों में से एक–एक करके ढेर सारे न्यूट्रोन निकालने होंगे। इसके लिए और भी विशालतर संख्या में आवेशित प्रक्षेपकों की ज़रूरत पड़ेगी जिनकी दक्षता बहुत कम होती है। इस तरह हम वापिस उसी समस्या पर पहुँच गये हैं!

हाँ, इस दुष्चक्र से निकलने का एक रास्ता है। यदि न्यूट्रोनों की टक्कर से ही न्यूट्रोनों को निकालना संभव हो, और वह भी इस प्रकार कि हर एक न्यूट्रोन कई (एक से अधिक) न्यूट्रोनों को पैदा कर दे, तब तो ये कण ऐसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनी संख्या बढ़ाते जायेंगे जैसे खरगोश (चित्र 97 से तुलना करिए), या छूत लगे हुए अंग में जीवाणु, और एक ही न्यूट्रोन के वंशजों की संख्या जल्दी ही इतनी अधिक हो जायेगी कि पदार्थ के बड़े–से टुकड़े के हरएक नाभिक पर आक्रमण कर सकें।

एक विशेष नाभिकीय प्रतिक्रिया ऐसी है जिसमें इस तरह न्यूट्रोनों की संख्या का गुणा होते जाना संभव है (जैसा कि नीचे के अनुच्छेद में समझाया जायेगा) और इस एक प्रतिक्रिया की खोज के कारण ही नाभिकीय भौतिकी में बहुत बड़ा धमाका–सा हुआ। जो नाभिकीय भौतिकी पहले पदार्थ के अंतरंगतम गुणों से संबंधित शुद्ध विज्ञान थी, वह अपने ऊँचे एकांत आसन से उठ कर अख़बारों की मोटी सुर्ख़ियों, गर्मा–गर्म राजनैतिक चर्चाओं और विस्मयकारी औद्योगिक व सैनिक घटनाक्रमों के शोर–भरे भँवर में उतर आयी। यूँ तो हर अख़बार पढ़ने वाला जानता है कि नाभिकीय ऊर्जा, जिसे आम तौर पर परमाणु–ऊर्जा कहा जाता है, यूरेनियम नाभिकों के विखंडन की प्रक्रिया द्वारा मुक्त की जा सकती है, जिसकी खोज हान व स्ट्रासमान ने 1938 में की थी। पर यदि कोई यह सोचे कि विखंडन मात्र से, अर्थात् किसी भारी नाभिक के दो लगभग बराबर भागों में टूटने भर से, लगातार

**एक तो न्यूट्रोन आयनीकरण के द्वारा अपनी ऊर्जा ख़र्च नहीं करेंगे; दूसरा, ये धन–आवेश वाले नाभिक से विकर्षित भी नहीं होंगे। –अनु०

फैलती जाने वाली नाभिकीय प्रतिक्रिया प्राप्त हो जायेगी, तो यह ग़लती होगी। विखंडन से प्राप्त होने वाले नाभिकीय टुकड़े तो दूसरे नाभिकों में विखंडन नहीं करा सकते, क्योंकि ये बहुत–सा आवेश लिये रहते हैं (प्रत्येक टुकड़े पर यूरेनियम नाभिक के कुल आवेश का लगभग आधा आवेश रहता है), जो उन्हें दूसरे नाभिकों के बहुत निकट आने से रोकता है। इस प्रकार, इन नाभिकीय टुकड़ों की शुरू की उच्च ऊर्जा जल्दी–जल्दी पड़ोसी परमाणुओं के इलैक्ट्रोन–आवरणों में खो जाती है, और ये कोई और विखंडन की प्रक्रिया कराये बिना शीघ्र ही रुक जाते हैं।

अपने आप चलती रहने वाली नाभिकीय प्रतिक्रिया के रूप में विखंडन की प्रक्रिया इस खोज के कारण अति महत्त्वपूर्ण हो गयी कि बिल्कुल धीमा हो जाने से पहले **हर विखंडित टुकड़ा एक-एक न्यूट्रोन छोड़ता है** (चित्र 73)।

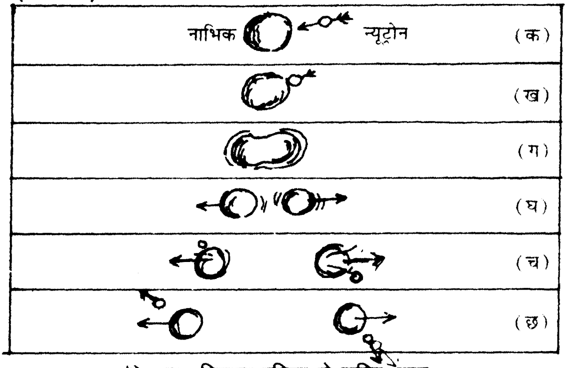

चित्र 73 : विखडन प्रक्रिया के क्रमिक चरण

विखंडन के बाद होने वाली इस अजीब प्रक्रिया का कारण यह है कि जैसे किसी खिंचे हुए स्प्रिंग को बीच में से तोड़ देने पर दोनों भाग प्रबल दोलन (vibration) करेंगे, वैसे ही भारी नाभिक के दोनों टूटे हुए भागों में भी दोलन होता है। इन दोलनों में इतनी ऊर्जा तो नहीं होती कि दोनों का फिर से विखंडन हो जाये, परंतु नाभिक के अंगभूत कणों में से एकाध को निकाल फेंकने के लिए यह ऊर्जा पर्याप्त है। जब हम कहते हैं कि प्रत्येक खंड में से एक न्यूट्रोन निकलता है, तो इसका अर्थ सांख्यिकीय रूप में लेना चाहिए। हो सकता है कि किसी एक खंड में से दो या इससे भी अधिक न्यूट्रोन निकलें – या किसी खंड में से एक भी न निकले। किसी खंड से औसतन कितने न्यूट्रोन निकलेंगे, यह स्वाभाविक ही दोलनों की तीव्रता पर निर्भर है, जो स्वयं विखंडन की प्रक्रिया में निकलने वाली कुल ऊर्जा से तय होती है। अब जैसा कि हमने पहले ही देखा, विखंडित होने वाला नाभिक जितना भारी होगा, मुक्त होने वाली ऊर्जा भी उतनी अधिक होगी। अतः यह अपेक्षा करनी ही चाहिए कि जैसे–जैसे आवर्त सारणी में हम आगे बढ़ते हैं, वैसे–वैसे प्रत्येक खंड से निकलने वाले न्यूट्रोनों की औसत संख्या भी बढ़ेगी। जैसे, स्वर्ण नाभिक के विखंडन में (जो कि अभी तक प्रायोगिक रूप से देखा नहीं गया है क्योंकि इसको शुरू करने के लिए अत्यधिक ऊर्जा की ज़रूरत है) संभवतः एक से काफ़ी कम न्यूट्रोन प्रति खंड निकलेंगे, जबकि यूरेनियम-235 के नाभिकों के विखंडन में औसतन 1.2 न्यूट्रोन प्रति खंड निकलते हैं, और इससे भी अधिक भारी नाभिकों (जैसे प्लूटोनियम-239) के विखंडन में प्रति खंड निकलने वाले न्यूट्रोनों की औसत संख्या और भी ज़्यादा होती है। स्पष्ट ही, न्यूट्रोनों से न्यूट्रोन पैदा करते जाने की शर्त को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी है कि यदि किसी पदार्थ में एक

सौ न्यूट्रोन प्रवेश करें, तो अगली पीढ़ी में हमें एक सौ से अधिक न्यूट्रोन प्राप्त हों। इस शर्त को पूरा करने की संभावना दो बातों पर निर्भर है : नाभिक–विशेष में विखंडन कराने की न्यूट्रोनों की तुलनात्मक दक्षता*, और विखंडन हो जाने पर नये पैदा होने वाले न्यूट्रोनों की औसत संख्या। यह याद रखना ही पड़ेगा कि यद्यपि आवेशित कणों की अपेक्षा न्यूट्रोन अधिक प्रभावी प्रक्षेपक हैं, तथापि विखंडन कराने में उनकी दक्षता सौ प्रतिशत नहीं होती। ऐसा भी हो सकता है कि उच्च वेग वाला न्यूट्रोन किसी नाभिक में प्रवेश करने के बाद भी नाभिक को अपनी गतिज ऊर्जा का सिर्फ़ एक भाग दे कर बाकी ऊर्जा सहित फिर बाहर निकल जाये। यदि बार–बार ऐसा होता रहे तो वह सारी ऊर्जा कई नाभिकों के बीच बँट जायेगी, और किसी भी नाभिक को विखंडित होने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं मिलेगी।

नाभिकीय रचना के सामान्य सिद्धांतों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न्यूट्रोनों की विखंडन–क्षमता तत्त्वों के परमाणु-भार के साथ–साथ बढ़ती है, और आवर्त–सारणी के अंतिम छोर के तत्त्वों के लिए यह एक सौ प्रतिशत के काफ़ी पास पहुँच जाती है।

अब हम दो संख्यात्मक उदाहरण हल करके न्यूट्रोन–प्रजनन के लिए अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को समझ सकते हैं। (क) मान लीजिए, कोई नाभिक है जिसमें तेज़ न्यूट्रोनों द्वारा विखंडन की दक्षता 35 प्रतिशत है और हर विखंडन के साथ पैदा होने वाले न्यूट्रोनों की औसत संख्या 1.6 है।[18] ऐसे मामले में शुरू के 100 न्यूट्रोन कुल 35 विखंडन करायेंगे, जिनमें अगली पीढ़ी के $35 \times 1.6 = 56$ तेज़ न्यूट्रोन पैदा होंगे। स्पष्ट है कि इस उदाहरण में न्यूट्रोनों की संख्या समय के साथ तेज़ी से घटती जायेगी, क्योंकि हर पीढ़ी में पिछली पीढ़ी की अपेक्षा लगभग आधे ही न्यूट्रोन होंगे। (ख) अब मान लीजिए, हम कोई अधिक भारी नाभिक लेते हैं जिसमें न्यूट्रोनों की विखंडन–दक्षता बढ़ कर 65 प्रतिशत हो जाती है, और प्रति विखंडन पैदा होने वाले न्यूट्रोनों की संख्या 2.2 हो जाती है। इस बार हमारे शुरू के 100 न्यूट्रोन 65 विखंडन करायेंगे, जिनसे कुल $65 \times 2.2 = 143$ तेज़ न्यूट्रोन पैदा होंगे। इस प्रकार हर नयी पीढ़ी में न्यूट्रोनों की संख्या पहले की अपेक्षा लगभग 50 प्रतिशत बढ़ जायेगी, और थोड़ी ही देर में इतने अधिक न्यूट्रोन हो जायेंगे कि वहाँ मौजूद हर एक नाभिक को तोड़ डालेंगे (चित्र 74)। इस प्रक्रिया को बढ़ती जाने वाली शाखायुक्त **शृंखला-प्रतिक्रिया** (chain reaction) कहते हैं, और जिन पदार्थो में ऐसी प्रतिक्रिया हो सकती है उन्हें **विखंडनीय (fissionable) पदार्थ** कहते हैं।

बढ़ने वाली शृंखला–प्रतिक्रियाओं के विकास की शर्तो का सावधानीपूर्वक सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि विविध नाभिकीय प्रजातियों में से **सिर्फ़ एक ही प्रकार का नाभिक प्राकृतिक रूप से मौजूद है जिसमें ऐसी प्रतिक्रिया संभव है। यह है प्रसिद्ध यूरेनियम का आइसोटोप, U-235, जो प्रकृति में एकमात्र विखंडनीय पदार्थ है।**

परंतु U-235 प्रकृति में शुद्ध रूप में मौजूद नहीं है, और यह सदा यूरेनियम के अधिक भारी अविखंडनीय आइसोटोप U-238 के साथ बहुत अधिक पतला किया हुआ ही मिलता है। (कुल

* न्यूट्रोन जब किसी नाभिक के साथ क्रिया करता है तो अनेक संभावनाएँ उठती हैं, जैसे अल्फ़ा–कण बाहर फेंकना, या प्रोटोन, या कुछ और। विखंडन इन संभावनाओं में से एक है। "तुलनात्मक दक्षता" का अर्थ है, सभी संभव क्रियाओं की कुल संभाविता की तुलना में विखंडन की संभाविता। –अनु०

[18] ये संख्याएँ सिर्फ़ समझाने के लिए बतायी गयी हैं; ये किसी वास्तविक नाभिकीय प्रजाति के गुण नहीं दर्शातीं।

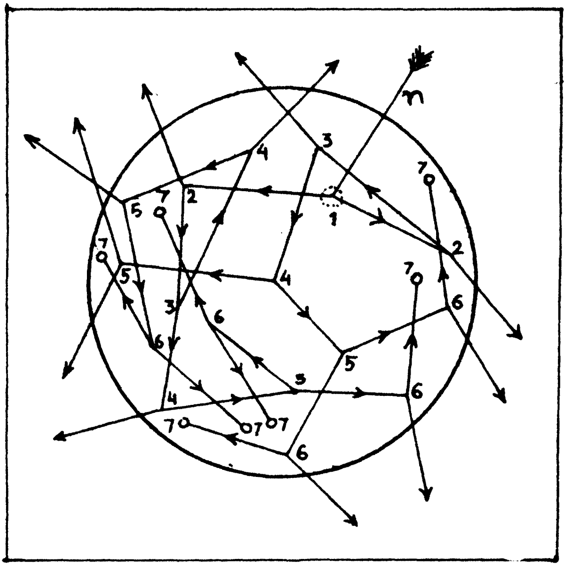


चित्र 74 : किसी विखंडनीय पदार्थ के गोलाकार टुकड़े में एक आवारा न्यूट्रोन द्वारा प्रारंभ नाभिकीय क्रिया–शृंखला। अनेक न्यूट्रोन गोले की सतह पार करके खो जाते हैं; फिर भी हर पीढ़ी में न्यूट्रोनों की संख्या बढ़ती जाती है, जिसका परिणाम विस्फोट होता है।

प्राकृतिक यूरेनियम का 0.7 प्रतिशत U-235 है और 99.3 प्रतिशत U-238 है।) यदि हम प्राकृतिक यूरेनियम लें तो उसमें मौजूद U-238 बढ़ती हुई शृंखला–प्रतिक्रिया में ठीक उसी प्रकार बाधा पहुँचाता है जैसे गीली लकड़ी में मौजूद पानी उसे जलने नहीं देता।* सच तो यह है कि इस निष्क्रिय आइसोटोप के साथ मिले होने के कारण ही अति विखंडनीय U-235 के परमाणु अभी तक प्रकृति में मौजूद हैं; अन्यथा वे सभी विखंडन की तेज़ शृंखला–प्रतिक्रिया द्वारा बहुत पहले ही नष्ट हो गये होते। अतः U-235 की ऊर्जा का उपयोग कर पाने के लिए या तो इन परमाणुओं को अधिक भारी U-238 परमाणुओं से अलग करना पड़ेगा, या फिर भारी परमाणुओं को बाहर निकाले बिना ही उनके नाभिकों के बाधक प्रभाव को निरस्त करने की कोई विधि सोच निकालनी पड़ेगी। परमाणु–ऊर्जा को मुक्त करने की समस्या पर जो कार्य किया गया, उसमें दोनों तरीके अपनाये गये, और दोनों में सफलता मिली। यहाँ हम इन तरीकों की चर्चा बहुत संक्षेप में ही करेंगे, क्योंकि इस पुस्तक में ऐसी तकनीकी समस्याओं के विस्तार में जाने के लिए गुंजाइश नहीं है।[19]

---

* आप सोचेंगे कि U-238 क्योंकि U-235 से अधिक भारी है, अतः इसे और भी अधिक विखंडनीय होना चाहिए। परंतु वास्तव में विखंडन की तुलनात्मक संभावना नाभिक के भार के अतिरिक्त अन्य गुणों पर भी निर्भर है, जैसे नाभिक में मौजूद न्यूट्रोनों की संख्या सम या विषम होना। (विषम संख्या वाले नाभिकों में अधिक आसानी से विखंडन होता है।) U-238 में भी विखंडन हो सकता है, परन्तु केवल तभी जब आने वाले न्यूट्रोनों की गति काफी तेज़ हो, जबकि U-235 धीमे न्यूट्रोनों से भी विखंडित हो सकता है। आधुनिक शब्दावली में U-235 जैसे नाभिक को विदल्य (fissile) कहेंगे (जबकि मूल लेखक ने इसे "विखंडनीय" कहा है) और U-238 जैसे को विखंडनीय (fissionable)। भारत में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थोरियम (Th-232) विखंडनीय श्रेणी में आता है। एक बात और : विदल्य पदार्थों में, जहाँ धीमे और तेज़ दोनों प्रकार के न्यूट्रोन विखंडन करा सकते हैं, तेज़ न्यूट्रोनों की विखंडन – दक्षता काफ़ी कम होती है क्योंकि तेज़ न्यूट्रोन अक्सर विखंडन कराने से पहले ही नाभिक के पार निकल जाता है।–अनु०

[19] अधिक विस्तृत चर्चा के लिए पाठक सैलिग हैच कृत पुस्तक, **एक्स्प्लेनिंग द ऐटम**, को देख सकते हैं, जो पहली बार वाइकिंग प्रेस द्वारा 1947 में प्रकाशित हुई। इसका नया संस्करण, जिसे डॉ यूजीन राबिनोविच ने संशोधित किया है, कंपास अजिल्द माला में उपलब्ध है। (आधुनिक जानकारी के लिए देखें एम० मान कृत **पीसफुल यूज़ेज़ ऑफ़ एटॉमिक एनर्जी**, तीसरा संशोधित संस्करण, 1975, या जी०एम० स्रूच एवं एल० स्रूच द्वारा संपादित **द उबिकिटस एटम**, 1974 –अनु०)

यूरेनियम के दो आइसोटोपों को सीधे–सीधे अलग कर देना एक बहुत कठिन तकनीकी समस्या है, क्योंकि दोनों के अभिन्न रासायनिक गुणों के कारण औद्योगिक रसायन–विज्ञान की साधारण विधियों से इनको अलग नहीं किया जा सकता। इन दोनों प्रकार के परमाणुओं में जो एकमात्र अंतर है, वह भार का है : एक का भार दूसरे से 1.3 प्रतिशत अधिक है। इससे संकेत मिलता है कि पृथक्करण की विधियाँ ऐसी प्रक्रियाओं पर आधारित हों जिनमें परमाणुओं के भिन्न–भिन्न भारों की प्रमुख भूमिका हो, जैसे **विसरण** (diffusion) (पतली झिल्ली या छिद्र के पार निकलना, जिसमें भारी परमाणुओं की गति अपेक्षाकृत धीमी रहती है), **केन्द्रापसरण** (centrifugation) (घूमते हुए बर्तन में भारी परमाणुओं का केन्द्र से अधिक दूर जाना), या चुंबकीय और वैद्युत क्षेत्रों में आयन–किरणों का विचलन (जो कि अधिक भारी आयनों के लिए कम होगा)। चित्र 75 (क एवं ख) में हमने रूपरेखा में पृथक्करण की दो प्रमुख विधियाँ संक्षिप्त वर्णन के साथ दिखायी हैं।

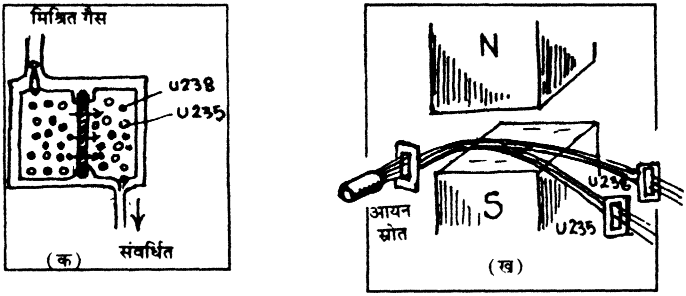


चित्र 75 : (क) आइसोटोपों को अलग–अलग करने की विसरण–विधि। दोनों आइसोटोपों से बनी गैस को बायें चैम्बर में पंप द्वारा भरा जाता है और यह बीच की दीवार पार करके दाहिनी ओर फैलती है। हल्के अणु क्योंकि अधिक तेज़ गति से विसरित होते हैं, अतः गैस का जो अंश दाहिनी ओर जाता है वह U-235 में अधिक संपन्न होता है। (ख) चुंबकीय विधि द्वारा आइसोटोपों को अलग करना। गैस–आयनों की किरण एक घने चुंबकीय क्षेत्र से गुज़ारी जाती है, और जिन आयनों में हल्का वाला आइसोटोप होता है वे अधिक विचलित हो जाते हैं। क्योंकि किरण की तीव्रता अधिक रखने के लिए चौड़े छिद्र का उपयोग करना पड़ेगा, अतः दोनों किरणें ( U-235 और U-238) पूरी अलग नहीं होतीं और आंशिक विलगन ही प्राप्त होता है।

इन सभी विधियों में दिक़्क़त यह है कि दोनों यूरेनियम आइसोटोपों के भारों का अंतर बहुत कम होने के कारण एक ही चरण में दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। एक चरण में थोड़ा–सा U-238 अलग किया जा सकेगा, जिससे कि शेष भाग **संवर्धित** (enriched) हो जायेगा, यानी उसमें U-235 का प्रतिशत बढ़ जायेगा। इस प्रक्रिया को बार–बार दुहराना पड़ेगा जिससे अधिकाधिक संवर्धित मसाला प्राप्त होता जाये। बहुत बार दुहराने के बाद पर्याप्त शुद्धता वाले U-235 के नमूने प्राप्त किये जा सकते हैं, परंतु इसकी पर्याप्त मात्रा प्राप्त करना बहुत कठिन एवं महँगा है।

इसकी अपेक्षा बढ़िया तरीका यह है कि शृंखला–प्रतिक्रिया प्राकृतिक यूरेनियम में ही चलायी जाये जिसमें अधिक भारी आइसोटोप के बाधक प्रभाव को कृत्रिम रूप से कम करने के लिए तथाकथित **मंदक** (moderator) का प्रयोग किया जाये। इस तरीके को समझने के लिए हमें याद रखना पड़ेगा कि यूरेनियम का भारी आइसोटोप बाधा कैसे बन जाता है? मुख्यतः यह U-235 के विखंडन में उत्पादित न्यूट्रोनों में से बहुत बड़े भाग को सोख लेता है, जिससे बढ़ने वाली शृंखला–प्रतिक्रिया का विकास रुक जाता है। अतः यदि हम कुछ ऐसा कर सकें जो U-238 नाभिकों को न्यूट्रोन चुराने से रोक सके, तो फिर वे सभी न्यूट्रोन U-235 के विखंडन के लिए उपलब्ध रहेंगे

और हमारी समस्या सुलझ जायेगी। पहली दृष्टि में तो ऐसा लगेगा कि U-238 नाभिकों को अधिकतर न्यूट्रोनों को हज़म कर जाने से रोकना बिल्कुल असंभव है, क्योंकि इन नाभिकों की संख्या U-235 नाभिकों की अपेक्षा 140 गुणा अधिक है। परंतु हमें इस तथ्य से सहायता मिलती है कि "न्यूट्रोन को पकड़ने की क्षमता" यूरेनियम के दोनों आइसोटोपों के लिए भिन्न है, और यह इस पर निर्भर करती है कि न्यूट्रोन कितने वेग से चल रहा है। विखंडित नाभिक से बाहर निकलते हुए तेज़ न्यूट्रोनों को पकड़ने के लिए दोनों आइसोटोपों की क्षमता बराबर है, यानी यदि U-235 में एक न्यूट्रोन पकड़ा जायेगा तो U-238 में 140 न्यूट्रोन। मध्यम वेग वाले न्यूट्रोनों के लिए U-238 नाभिक U-235 नाभिकों की अपेक्षा कुछ अधिक पकड़—क्षमता रखते हैं। परंतु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बहुत धीमी गति से चलते न्यूट्रोनों के लिए U-235 की पकड़—क्षमता बहुत ही बेहतर हो जाती है। अतः यदि हम विखंडन से प्राप्त न्यूट्रोनों को धीमा कर सकें, कुछ इस प्रकार कि उनका शुरू का उच्च वेग **यूरेनियम नाभिकों से टकराने के पूर्व** ही बहुत कम हो जाये, तो U-235 नाभिक कम संख्या में होते हुए भी U-238 नाभिकों की अपेक्षा न्यूट्रोनों को पकड़ने का अधिक मौका पा सकते हैं।

न्यूट्रोनों को मंद करने के लिए आवश्यक व्यवस्था इस प्रकार बनायी जा सकती है कि प्राकृतिक यूरेनियम के बहुत—से छोटे—छोटे टुकड़ों को किसी ऐसे पदार्थ (मंदक) के बीच में वितरित करके रखा जाये, जो बहुत न्यूट्रोनों को पकड़े बिना उनका वेग मंद कर दे। इस कार्य के लिए प्रयुक्त होने वाले सर्वोत्तम पदार्थ हैं भारी पानी, कार्बन, और बैरिलियम के लवण।* चित्र 76 में हमने रूपरेखा के तौर पर दिखाया है कि मंदक पदार्थ के बीच यूरेनियम के दाने वितरित करके बना हुआ ऐसा "पुंज" (pile) वास्तव में कैसे कार्य करता है।[20]

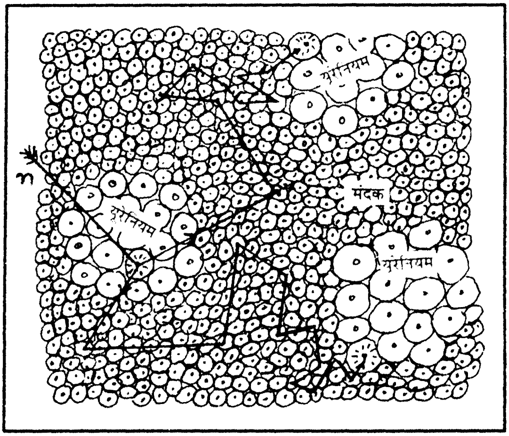


चित्र 76 : शायद जीव—विज्ञान से संबंधित लगता है, परंतु इसमें मंदक पदार्थ (छोटे परमाणु) के बीच—बीच में जड़े हुए यूरेनियम (बड़े परमाण) के टुकड़े दर्शाये गये हैं। बायीं ओर के टुकड़े में एक U नाभिक में विखंडन पैदा करते हुए दो तेज़ न्यूट्रोन मंदक में प्रवेश करते हैं और उसके नाभिकों के साथ टकराते—टकराते धीरे—धीरे मंद पड़ जाते हैं। जब तक ये न्यूट्रोन अन्य U टुकड़ों के पास पहुँचते हैं तब तक काफी मंद पड़ चुके होते हैं और U-235 द्वारा पकड़ लिए जाते हैं, जो कि U-238 नाभिकों की अपेक्षा मंद न्यूट्रोनों के साथ अतःक्रिया में अधिक सक्रिय हैं।

---

* इन सभी पदार्थों के परमाणु—भार अपेक्षाकृत बहुत कम हैं और न्यूट्रोनों को सोखने की क्षमताएँ भी कम हैं। (साधारण पानी इसलिए उतना उपयुक्त नहीं है क्योंकि हाइड्रोजन के हल्के आइसोटोप में न्यूट्रोन को सोखने की काफी अधिक प्रवृत्ति है।) —अनु०

[20] यूरेनियम—पुंजों (या आधुनिक नाभिकीय रिएक्टरों) के बारे में अधिक जानकारी के लिए पाठकों का ध्यान फिर परमाणु—ऊर्जा से संबंधित विशेष पुस्तकों की ओर दिलाया जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया, हल्का वाला आइसोटोप U-235 (जो कि प्राकृतिक यूरेनियम में केवल 0.7 प्रतिशत मात्रा में मौजूद है) प्रकृति में मौजूद एकमात्र विखंडनीय* नाभिक है जिसमें बढ़ती हुई श्रृंखला–प्रतिक्रिया हो सकती है, और इस प्रकार नाभिक की ऊर्जा को बड़े पैमाने पर मुक्त किया जा सकता है। परंतु हम कृत्रिम रूप से तो अन्य प्रकारों के नाभिक भी बना सकते हैं, जो साधारणतया प्रकृति में नहीं मिलते, परंतु जिनके गुण U-235 के समान ही हों। सचमुच, एक विखंडनीय तत्त्व में बढ़ने वाली श्रृंखला–प्रतिक्रिया स्थापित हो जाये तो उसमें बड़ी संख्या में पैदा होने वाले न्यूट्रोनों के उपयोग से हम दूसरे अविखंडनीय नाभिकों को विखंडनीय नाभिकों में बदल सकते हैं।

इस प्रकार का पहला उदाहरण हमें उपर्युक्त "पुंज" (रिएक्टर) में होने वाली घटनाओं में मिलेगा, जहाँ मंदक पदार्थ के साथ प्राकृतिक यूरेनियम का मिश्रण इस्तेमाल किया जाता है। यह तो हम देख ही चुके हैं कि मंदक के प्रयोग से हम U-238 नाभिकों द्वारा न्यूट्रोन पकड़ने की क्रिया को कम कर सकते हैं, इस हद तक कि U-235 नाभिकों के बीच विखंडन की श्रृंखला चल निकले। फिर भी कुछ न्यूट्रोन तो U-238 द्वारा पकड़े ही जायेंगे।** इससे क्या होगा ?

स्वाभाविक ही U-238 द्वारा न्यूट्रोन पकड़ने से और भी भारी आइसोटोप U-239 प्राप्त होगा। परंतु यह पाया गया कि यह नवजात नाभिक बहुत देर तक मौजूद नहीं रह सकता। एक–एक करके दो इलैक्ट्रोन फेंक कर यह एक नये रासायनिक तत्त्व के नाभिक में बदल जाता है जिसकी परमाणु–संख्या 94 है। **यह नया कृत्रिम आइसोटोप, जिसको प्लूटोनियम (Pu-239) कहा जाता है, U-235 से भी अधिक विखंडनीय है।** यदि हम U-238 की बजाय एक अन्य प्राकृतिक रेडियोधर्मी आइसोटोप थोरियम (Th-232) में न्यूट्रोनों के पकड़े जाने की व्यवस्था कर दें, तो यह इसी प्रकार Th-233 बन जायेगा, और उसके बाद दो इलैक्ट्रोन बाहर फेंक कर **एक अन्य कृत्रिम विखंडनीय आइसोटोप U-233** बन जायेगा।+

अतएव प्राकृतिक रूप से विखंडनीय नाभिक U-235 से शुरू करके और रिएक्टर में कृत्रिम विखंडनीय सामग्री बनाने का चक्र बारंबार चलाते हुए **यह संभव है, कम से कम सिद्धांततः अवश्य संभव है, कि प्राकृतिक यूरेनियम व थोरियम के पूरे भंडार को विखंडनीय सामग्रियों में बदल दिया जाये, जिसका उपयोग नाभिकीय ऊर्जा के सघन स्रोत के रूप में किया जा सकता है।**

इस परिच्छेद के अंत में हम मानव के भविष्य के शांतिपूर्ण विकास या युद्ध द्वारा आत्म–विनाश के लिए उपलब्ध कुल ऊर्जा का एक मोटा आकलन पेश करेंगे। यह आकलन किया गया है कि यूरेनियम के अयस्क के जितने भी ज्ञात भंडार हैं, उनमें मौजूद U-235 की कुल मात्रा इतनी नाभिकीय ऊर्जा दे सकती है कि वह विश्व के उद्योगों की सारी ज़रूरतें कई वर्षों तक पूरी करने के लिए पर्याप्त है (यदि ये उद्योग सिर्फ़ नाभिकीय ऊर्जा पर ही आधारित हों), परंतु यदि हम U-238 को प्लूटोनियम में बदल कर उपयोग करने की संभावना को भी गणनाओं में शामिल करें तो यह समय–अवधि कई

---

* आधुनिक शब्दावली में इसे विदल्य (fissile) कहते हैं। –अनु०

** U-235 नाभिक के विखंडन की हर घटना में औसतन 2.43 न्यूट्रोन निकलते हैं। विखंडन–श्रृंखला को सम गति से जारी रखने के लिए इनमें से केवल एक न्यूट्रोन का U-235 में विखंडन करना आवश्यक है। अतः शेष 1.43 न्यूट्रोनों में से अधिकतर U-238 द्वारा ही पकड़े जायेंगे। –अनु०

+ इससे स्पष्ट है कि जिस किसी देश में नाभिकीय रिएक्टर कार्यरत हैं, अर्थात् विखंडन–श्रृंखलाएँ चालू हैं, वहां Pu-239 जैसी विदल्य सामग्री बनाने की संभावना है। इसे यूरेनियम आदि अन्य पदार्थों से अलग करना भी अपेक्षाकृत आसान है क्योंकि इसके रासायनिक गुण उनसे अलग हैं। भारत में 1974 में जो पहला परमाणु–विस्फोट किया गया था, उसमें इसी प्रकार से बनाये प्लूटोनियम का उपयोग किया गया था। –अनु०

शताब्दियों तक बढ़ जायेगी। अब यदि थोरियम के भंडारों को भी शामिल कर लें (उसे U-233 में परिवर्तित करके) तो यह अवधि और भी आगे बढ़ कर कम से कम एक–दो हज़ार वर्ष की हो जायेगी, जो इतनी लंबी है कि "भविष्य में परमाणु–ऊर्जा की कमी" के बारे में चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं रह जायेगी।*

यहाँ तक कि यदि नाभिकीय ऊर्जा के ये सारे संसाधन समाप्त हो जायें, और यूरेनियम तथा थोरियम अयस्कों के कोई नये भंडार भी न पाये जायें, तो भी आने वाली पीढ़ियाँ साधारण चट्टानों से सदा नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त कर सकेंगी। बात यह है कि सभी रासायनिक तत्त्वों की भाँति यूरेनियम व थोरियम भी थोड़ी–सी मात्रा में लगभग सभी साधारण पत्थरों में मौजूद रहते हैं। अब जैसे, साधारण ग्रेनाइट चट्टानों में प्रति टन 4 ग्राम यूरेनियम व 12 ग्राम थोरियम रहता है। पहली दृष्टि में तो यह बहुत ही कम लगता है, परंतु ज़रा गणना करके तो देखें। हम जानते हैं कि विखंडनीय सामग्री के 1 किलोग्राम में इतनी नाभिकीय ऊर्जा है कि विस्फोटक के रूप में (जैसे परमाणु–बम में) यह टी0 एन0 टी0 के 20,000 टन के बराबर है और ईंधन के रूप में 20,000 टन पैट्रोल के समान है। अतः एक टन चट्टानों में छिपे 16 ग्राम यूरेनियम व थोरियम को यदि विखंडनीय सामग्री में बदल दिया जाये तो यह साधारण ईंधन के 320 टन के समतुल्य होगा। इतनी ऊर्जा मिलने से तो यूरेनियम–थोरियम को अलग करने की सारी जटिल प्रक्रियाओं का ख़र्च भी वसूल हो जायेगा – विशेष रूप से क्योंकि अयस्कों के बढ़िया भंडारों की समाप्ति के बाद ऊर्जा के दाम बढ़ जायेंगे।

यूरेनियम जैसे भारी तत्त्वों में नाभिकीय विखंडन के द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने में भौतिक विज्ञानियों ने विजय पा ली है, पर इसकी उलटी क्रिया अर्थात् **नाभिकीय विलयन** (nuclear fusion) पर वे अब भी कार्य कर रहे हैं, जिसमें हल्के तत्त्वों के दो नाभिक विलय करके (जुड़ कर) अधिक भारी नाभिक बना लेते हैं, और जिसमें विशाल मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है। जैसा कि हम ग्यारहवें अध्याय में देखेंगे, हमारे सूर्य की ऊर्जा इसी विलयन की प्रक्रिया से पैदा होती है : यहाँ साधारण हाइड्रोजन के कई नाभिक एक साथ मिल कर हीलियम का नाभिक बन जाते हैं जो कि उनसे अधिक बड़ा है। ऐसा इसलिए संभव है कि सूर्य के भीतरी भाग के अत्यधिक तापमान पर हाइड्रोजन के सभी नाभिक (प्रोटोन) एक–दूसरे से बहुत उग्रता के साथ टकराते रहते हैं। ऐसी ताप–नाभिकीय कहलाने वाली प्रतिक्रियाओं को यदि मानव के काम आने के लिए पृथ्वी पर दुहराना हो तो विलयन प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम सामग्री होगी भारी हाइड्रोजन या **ड्यूटीरियम,** जो समुद्र के साधारण जल में थोड़ी मात्रा में मौजूद है। ड्यूटीरियम का नाभिक, जिसे ड्यूटरोन कहते हैं, एक प्रोटोन और एक न्यूट्रोन वाला होता है। जब दो ड्यूटरोनों की टक्कर होती है तो निम्नलिखित दो में से एक प्रतिक्रिया होती है :

$$d + d \rightarrow He\text{-}3 + n \,;\, d + d \rightarrow H\text{-}3 + p,$$

अर्थात् हीलियम-3 नाभिक और न्यूट्रोन, या हाइड्रोजन-3 नाभिक और प्रोटोन, प्राप्त होते हैं, और दोनों ही प्रकार से बड़ी मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है। परंतु इस रूपांतरण को अमल में लाने के लिए ड्यूटीरियम को दस करोड़ डिग्री तापमान पर रखना होगा!

---

* भारत में यूरेनियम बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है, परंतु थोरियम पर्याप्त मात्रा में है। अतः भारत का परमाणु–ऊर्जा कार्यक्रम थोरियम के उपयोग से U-233 बनाने की दिशा में बढ़ रहा है। U-233 या Pu-239 जैसी विदल्य सामग्री बनाने वाले रिएक्टर को **ब्रीडर रिएक्टर** कहते हैं।—अनु०

सर्वप्रथम सफल नाभिकीय–विलयन–यंत्र था हाइड्रोजन बम, जिसमें ड्यूटीरियम की विलयन प्रतिक्रिया चालू करने के लिए पहले विखंडन वाले बम का विस्फोट किया गया। परंतु इससे बहुत ही अधिक जटिल समस्या है **नियंत्रित ताप-नाभिकीय प्रतिक्रिया**, जिससे शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए लगातार विशाल मात्रा में ऊर्जा प्राप्त हो सकेगी। इसमें जो मुख्य कठिनाई है, अर्थात् अतीव गर्म गैस को समेट कर रखने की कठिनाई, उस पर शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्रों की मदद से विजय पायी जा सकती है। ये क्षेत्र ड्यूटरोनों को एक केंद्रीय गर्म स्थान पर बाँधे रहेंगे ताकि वे (ड्यूटरोन) बर्तन की दीवारों को न छू सकें। (अन्यथा दीवारें पिघल जायेंगी और वाष्प बन जायेंगी!)*

---

* हाल के दशकों में संसार–भर में नियंत्रित ताप–नाभिकीय प्रतिक्रिया का स्वप्न साकार करने की दिशा में अथक प्रयास किये गये हैं। मुख्य रूप से दो प्रकार के निकायों पर ध्यान दिया गया है। पहले प्रकार में (ऊपर बताये सिद्धांत के अनुसार) एक गैस को इतने अधिक तापमान पर रखा जाता है कि उसके परमाणुओं के सारे इलैक्ट्रोन उड़ कर अलग हो जाते हैं। इस प्रकार की गैस, जिसमें धन–आवेश लिए हुए नाभिक तथा ऋण–आवेश वाले इलैक्ट्रोन अलग–अलग उड़ते हैं, **प्लाज़्मा** कहलाती है। इस घनी प्लाज़्मा को चुंबकीय क्षेत्र की मदद से स्कूटर की ट्यूब की आकृति (टोरस) के क्षेत्र में कैद करके रखा जाता है। अब यदि एक विद्युत–धारा की मदद से अचानक प्लाज़्मा का घनत्व खूब बढ़ा दिया जाये तो विलयन की क्रिया चालू हो सकती है जिससे बड़ी मात्रा में ऊर्जा विमुक्त होगी।

दूसरे प्रकार में ड्यूटीरियम के किसी यौगिक को ठोस अवस्था में छोटी–सी गोली के रूप में लिया जाता है। इस गोली पर लेज़र के प्रकाश की अत्यंत तीखी बौछार पड़ती है जिससे क्षण–भर में गोली का सारा पदार्थ वाष्प में, बल्कि प्लाज़्मा में, बदल जाता है; साथ ही प्रकाश के दबाव के कारण यह पदार्थ अत्यंत घना भी हो जाता है। इस प्रकार विलयन के लिए उपयुक्त परिस्थिति बन जाती है।

वर्ष 1989 में कुछ विज्ञानियों ने दावा किया था कि पैलेडियम जैसी धातुओं का उत्प्रेरक के रूप में उपयोग करते हुए साधारण तापमान पर भी ड्यूटीरियम परमाणुओं का विलयन (cold fusion) कराया जा सकता है। इस दावे की पुष्टि नहीं हो पायी। जो भी हो, बड़ी मात्रा में और नियंत्रित रूप से विलयन द्वारा ऊर्जा की विमुक्ति की मंज़िल तक हम अभी नहीं पहुँच पाये हैं।–अनु०

आठ

# अव्यवस्था का सिद्धांत

**1. तापीय अव्यवस्था**

यदि आप गिलास में पानी डालें और इसे देखें, तो आपको बिल्कुल साफ़, एकरूप द्रव दिखाई देगा जिसमें आंतरिक रचना या अंगों या हिलने–डुलने–चलने का कोई नाम–निशान तक नहीं (यदि आप गिलास को हिलायें नहीं)। लेकिन हम जानते हैं कि जल की एकरूपता केवल प्रतीति है और यदि जल को दस–बीस लाख गुणा आवर्धित करके देखा जाये, तो इसकी ज़बरदस्त कणात्मक (दानेदार) रचना प्रकट हो जायेगी, जिसमें बहुत बड़ी संख्या में अलग–अलग अणु एक साथ सटा कर भरे हुए हैं।

इतने ही आवर्धन से यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि यह जल ज़रा भी स्थिर नहीं है, और इसके अणु उग्र रूप से उत्तेजित होकर चल रहे हैं और एक–दूसरे को धकेल रहे हैं, मानो ये बहुत ही उत्तेजित भीड़ के लोग हों। जल के या किसी भी अन्य पदार्थ के अणुओं की यह अव्यवस्थित हलचल **तापीय गति** कहलाती है, जिसका सीधा–सा कारण यह है कि किसी भी पदार्थ की गर्मी के लिए यह गति ही ज़िम्मेदार है। यद्यपि आदमी की आँख को न अणु स्वयं नज़र आते हैं और न अणुओं की गति ही, तो भी जिसे हम गर्मी कहते हैं उसका आभास तो अणुओं की गति द्वारा ही मानव–शरीर की तंत्रिकाओं (nerves) में पैदा की गयी उत्तेजना से होता है। मानव से बहुत–बहुत छोटे प्राणियों के लिए, जैसे पानी की एक बूँद में झूलते हुए छोटे–छोटे जीवाणुओं के लिए, तापीय गति का प्रभाव बहुत अधिक सुप्रकट होता है, और ये बेचारे जल के उछलते–कूदते और सभी दिशाओं से ठोकरें मारते हुए अणुओं द्वारा लगातार ठोके, धकेले और इधर–उधर फेंके जाते हैं और तनिक भी चैन नहीं पाते (चित्र 77)।

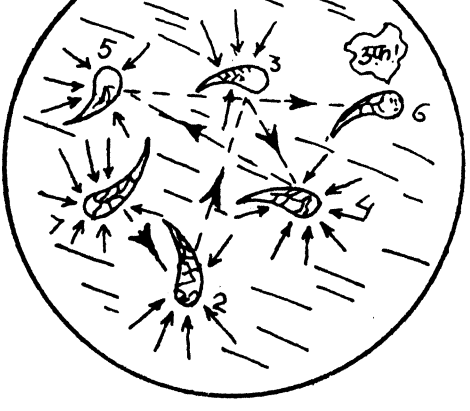


चित्र 77 : अणुओं के साथ ठोकर खा कर इधर–उधर फेंके जाते हुए एक जीवाणु की छः क्रमिक स्थितियाँ (इसमें भौतिक स्थितियाँ तो सही बनी हैं, परंतु जीवाणु–विज्ञान की दृष्टि से यह बिल्कुल सही नहीं है।)

इस प्रकार की घटना को **ब्राउनीय गति** कहते हैं, अंग्रेज़ वनस्पति–विज्ञानी राबर्ट ब्राउन के नाम पर, जिन्होंने सर्वप्रथम एक शताब्दी से भी अधिक पहले पौधों के छोटे–छोटे बीजाणुओं के अध्ययन में इसे देखा था। परंतु यह विचित्र घटना वास्तव में सिर्फ़ ऊपर बताये उदाहरण तक सीमित न होकर बिल्कुल सामान्य है, और किसी भी प्रकार के द्रव में झूलते हुए किसी भी प्रकार के बहुत छोटे कणों के अध्ययन में देखी जा सकती है, और हवा में तैरते धुएँ और धूल के सूक्ष्म कणों में भी।

यदि हम द्रव को गर्म करें तो इसमें लघु कणों का अव्यवस्थित नृत्य और भी तेज़ हो जाता है, जबकि ठंडा करने पर इस हलचल की तेज़ी में कमी आ जाती है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि यह जो गति दिखाई देती है, वह पदार्थ की गुप्त तापीय गति है, और जिसे हम तापमान कहते हैं वह और कुछ नहीं, अणुओं की हलचल की तीव्रता की माप है। ब्राउनीय गति की तापमान पर निर्भरता का अध्ययन करने पर पाया गया कि घटते तापमान के साथ किसी भी पदार्थ के अणुओं की हलचल इस प्रकार मंद होती जाती है कि शून्य से 273 डिग्री सैल्सियस नीचे (-273°C) के तापमान पर यह हलचल पूरी तरह रुक जायेगी, और सभी अणु अपने स्थानों पर स्थिर हो जायेंगे। इससे प्रकट होता है कि यह तापमान नीचे से नीचा तापमान है और इसे **परिशुद्ध शून्य** नाम दिया गया है। इससे भी नीचे तापमान की बात करना निरर्थक है, क्योंकि पूरा रुक जाने से अधिक धीमी गति नहीं हो सकती।

परिशुद्ध शून्य के आसपास के तापमान पर किसी भी पदार्थ के अणुओं की गतिज ऊर्जा इतनी कम होती है कि उनके आपसी आकर्षण के बल उन्हें एक साथ बाँध कर ठोस पिंड बना देते हैं, और इस जमी हुई स्थिति में वे अणु, बस, ज़रा–ज़रा काँपने से अधिक हलचल नहीं कर सकते। जैसे–जैसे तापमान बढ़ता है, कंपन अधिकाधिक तीव्र होता जाता है, और एक स्थिति आती है जबकि हमारे अणु चलने की कुछ स्वतंत्रता अनुभव करने लगते हैं और एक–दूसरे पर से फिसलते हुए चल सकते हैं। जमे हुए पदार्थ का कड़ापन अब ग़ायब हो जाता है, और यह द्रव बन कर बहने लगता है। कोई पदार्थ किस तापमान पर पिघलेगा, यह उसके अणुओं के बीच लगने वाले परस्पर आकर्षण–बलों की दृढ़ता पर निर्भर है। कुछ पदार्थों में, जैसे हाइड्रोजन, या नाइट्रोजन व ऑक्सीजन का मिश्रण जिससे वातावरण की हवा बनी है, अणुओं के आपसी आकर्षण–बल बहुत कमज़ोर होते हैं, और अपेक्षाकृत कम तापमान पर ही तापीय हलचलें जमी हुई स्थिति को नष्ट कर देती हैं। अतः हाइड्रोजन 14 डिग्री परिशुद्ध (अर्थात् -259° सै०) से नीचे तापमानों पर ही जमी हुई स्थिति में रह सकती है जबकि ठोस ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन क्रमशः 55 परि० एवं 64 परि० (अर्थात् -218° सै० और -209° सै०) पर ही पिघल जाती हैं। दूसरे पदार्थों में अणुओं के बीच आकर्षण अधिक दृढ़ होता है और वे अपेक्षाकृत ऊँचे तापमानों तक ठोस बने रह सकते हैं : जैसे, शुद्ध अल्कोहल -130° सै० तक जमा रहता है, जबकि जमा हुआ जल (बर्फ़) तो 0° सै० पर आकर ही पिघलता है। ऐसे पदार्थ भी हैं जो इनसे भी काफ़ी ऊँचे तापमानों तक ठोस बने रहते हैं, जैसे सीसे का टुकड़ा +327° सै० पर ही जाकर पिघलेगा, लोहा +1535° पर, और एक दुर्लभ किस्म की ओस्मियम नामक धातु है जो +2700° सै० तक ठोस बनी रहती है। पदार्थ की ठोस स्थिति में यद्यपि अणु अपने–अपने स्थान पर दृढ़तापूर्वक बँधे रहते हैं, तथापि इसका अर्थ यह क़तई नहीं है कि उनमें तापीय हलचल नहीं होती। सच तो यह है कि, तापीय गति के मूलभूत नियम के अनुसार, किसी भी एक तापमान पर अणु की औसत ऊर्जा हर पदार्थ के लिए बराबर है, चाहे वह ठोस हो या द्रव या गैस। अंतर केवल इस बात का है कि कुछ पदार्थों में इतनी

ऊर्जा अणुओं को अपने–अपने बँधे हुए स्थान से उखाड़ कर चलने–फिरने की स्वतंत्रता देने के लिए पर्याप्त है (द्रव या गैस की स्थिति), जबकि दूसरे पदार्थों में अणुओं को बाँधे रखने वाला आकर्षण इतना दृढ़ है कि इतनी ऊर्जा पाकर भी उनके अणु अपने स्थान पर ही इधर–उधर डोल सकते हैं, जैसे छोटी–छोटी ज़ंजीरों से बँधे हुए उत्तेजित कुत्ते (ठोस स्थिति)।

ठोस पिंड के अणुओं का यह तापीय कंपन या दोलन पिछले अध्याय में वर्णित एक्स–रे वाले छायाचित्रों में आसानी से देखा जा सकता है। क्योंकि किसी क्रिस्टल के जालीनुमा ढाँचे में बैठे अणुओं की फ़ोटो उतारने के लिए काफ़ी समय लगाने की ज़रूरत है, इसलिए यह आवश्यक है कि वे (अणु) इस दौरान अपने नियत स्थानों से न हिलें, न चलें। नियत स्थिति के आसपास कंपन करना भी अच्छी फ़ोटोग्राफ़ी में सहायक नहीं है, क्योंकि इससे चित्र धुँधले हो जायेंगे।

चित्र 78 : तापमान और आणविक हलचल

अधिक पैने चित्र उतारने के लिए क्रिस्टलों को जहाँ तक संभव हो ठंडा करना होगा। कई बार इसके लिए उन्हें द्रव हवा में डुबो दिया जाता है। दूसरी ओर, जिस क्रिस्टल का चित्र उतारना है,

उसे यदि गर्म होने दिया जाये, तो चित्र अधिकाधिक धुँधलाता जाता है, और गलनांक (पिघलने का तापमान) आने पर तो जालनुमा व्यवस्था पूरी तरह ग़ायब हो जाती है, क्योंकि अणु अपना–अपना स्थान छोड़ कर पिघले हुए पदार्थ में अनियमित ढंग से इधर–उधर चलने लगते हैं।

ठोस पदार्थ जब पिघल जाता है, तो भी इसके अणु एक साथ रहते हैं। इसका कारण यह है कि यद्यपि अब अणुओं की तापीय हलचल उनको क्रिस्टल की जाली की नियत स्थितियों से उखाड़ने के लिए पर्याप्त है, तो भी अणुओं को द्रव से **बाहर** ले जाने के लिए पर्याप्त नहीं है। परंतु यदि तापमान और भी अधिक बढ़ा दिया जाये तो आकर्षण–बल अणुओं को एक साथ रख पाने में पूरी तरह असफल हो जाते हैं और वे (अणु) सभी दिशाओं में उड़ जाते हैं, जब तक कि किसी बर्तन की दीवारों के द्वारा उन्हें रोका न जाये। जब ऐसा होता है तो स्पष्ट है कि पदार्थ गैसीय स्थिति में आ गया है। ठोस पदार्थ के पिघलने के समान ही द्रवों का गैसीकरण भी विभिन्न पदार्थों में विभिन्न तापमानों पर होता है : जिन पदार्थों में आंतरिक आकर्षण बल अपेक्षाकृत कमज़ोर हैं, वे कम तापमान पर ही वाष्प बन जायेंगे, उन पदार्थों की अपेक्षा जिनमें ये बल अधिक दृढ़ हैं। हाँ, इस बार परिवर्तन की प्रक्रिया काफ़ी महत्त्वपूर्ण रूप से उस दबाव पर भी निर्भर है जिसमें द्रव को रखा गया है, क्योंकि बाहरी दबाव से आकर्षण–बलों को अणुओं को एक साथ रखने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, जैसा कि हर कोई जानता है, पानी को यदि कस कर बंद की हुई केतली में उबाला जाये तो खुली केतली की अपेक्षा अधिक ऊँचे तापमान पर खौलेगा (और प्रैशर कुकर में तो और भी ऊँचे तापमान पर)। दूसरी ओर, ऊँचे पहाड़ों पर, जहाँ वातावरण का दबाव काफ़ी कम होता है, $100^{\circ}$ सै० से काफ़ी कम तापमान पर ही पानी खौलने लगेगा। यहाँ तक भी बता दिया जाये कि पानी के खौलने के तापमान को माप कर यह गणना की जा सकती है कि वातावरण का दबाव कितना है, और इसके आधार पर समुद्र–तल से अपने स्थान की ऊँचाई भी जानी जा सकती है।

लेकिन आप कहीं मार्क ट्वेन का अनुकरण न करिएगा : उनकी कहानी के अनुसार वे एक बार ऊँचाई मापने के फेर में एक एनीरायड बैरोमीटर लेकर उसे खौलते हुए मटर के झोल की केतली में डालने वाले थे। इससे आपको ऊँचाई का अंदाज़ा तो नहीं मिलेगा; हाँ, ताँबे की ऑक्साइड के कारण झोल का स्वाद ज़रूर बिगड़ जायेगा।

ऊँचे गलनांक वाले पदार्थ का क्वथनांक (खौलने का तापमान) भी ऊँचा ही होगा*, जैसे द्रव हाइड्रोजन $-253^{\circ}$ सै० पर खौलती है, द्रव ऑक्सीजन व नाइट्रोजन क्रमशः $-183^{\circ}$ सै० व $-196^{\circ}$ सै० पर, अल्कोहल $+78^{\circ}$ सै० पर, सीसा $+1260^{\circ}$ सै० पर, लोहा $+3000^{\circ}$ सै० पर, और ऑस्मियम $+5300^{\circ}$ सै० से भी ऊँचे बिंदु पर।[1]

ठोस पदार्थ की सुन्दर क्रिस्टलीय रचना के टूटने पर अणु पहले तो केंचुओं के कुनबे की तरह एक–दूसरे के अगल–बगल ही सरकते रहते हैं, और बाद में (तापमान अधिक बढ़ने पर) डरे हुए पक्षियों के झुंड की तरह दूर–दूर उड़ जाते हैं। परंतु बढ़ती हुई तापीय गति की विनाशक शक्ति की यही अंतिम सीमा नहीं है। यदि तापमान और ऊपर चढ़ जाये तो अणुओं का अस्तित्व मात्र ख़तरे में पड़ जाता है, क्योंकि अणुओं की आपसी टक्करों की लगातार बढ़ती उग्रता उन्हें अलग–अलग परमाणुओं में तोड़ने में भी सक्षम है। इस घटना को **तापीय विच्छेदन** (thermal dissociation) कहते

* इसका कारण तो स्पष्ट ही है : गलन और क्वथन दोनों ही अणुओं के आपसी आकर्षण–बलों के खेल हैं। –अनु०

[1] सभी तापमान सामान्य दबाव के लिए दिये गये हैं।

हैं, और यह अणुओं की तुलनात्मक दृढ़ता पर निर्भर है। कुछ कार्बनिक पदार्थों के भिन्न–भिन्न अणुओं को परमाणुओं या परमाणु–समूहों में तोड़ने के लिए कुछ सौ डिग्री जैसा न्यून तापमान ही पर्याप्त है। दूसरे अणु, जिनकी रचना अधिक मज़बूत है, जैसे जल, उनको नष्ट करने के लिए एक हज़ार डिग्री से भी अधिक ऊँचे तापमान की आवश्यकता होगी। और जब तापमान कई हज़ार डिग्री तक चढ़ जाये,

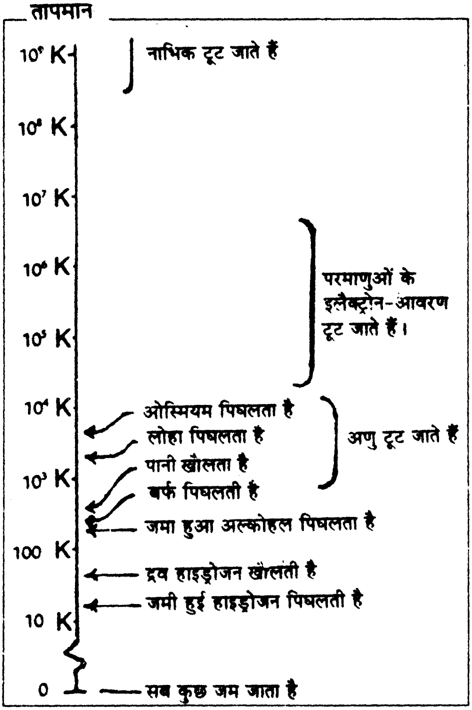


चित्र 79 : तापमान का विनाशकारी प्रभाव

तो कोई भी अणु साबुत नहीं बचेगा, और पूरा पदार्थ शुद्ध रासायनिक तत्त्वों का गैसीय मिश्रण हो जायेगा।

हमारे सूर्य की सतह पर ऐसी ही स्थिति है, जहाँ तापमान 6000° सै0 तक पहुँच गया है। दूसरी ओर, लाल सितारों के अपेक्षाकृत ठंडे वातावरणों में[2] अणु अब भी मौजूद हैं, जैसा कि वर्णक्रमीय विश्लेषण (spectral analysis) की विधियों द्वारा दर्शाया जा चुका है।

उच्च तापमानों पर होने वाली तापीय टक्करों की उग्रता अणुओं को उनके अंगभूत परमाणुओं में ही नहीं तोड़ देती, बल्कि स्वयं परमाणुओं के बाहरी इलैक्ट्रोनों को नोच कर उनको भी तोड़–फोड़ देती है। यह **तापीय आयनीकरण** अधिकाधिक प्रमुख रूप से सामने आता है जब तापमान चढ़ कर दस–हज़ारों या लाखों डिग्री तक पहुँच जाता है, और कई मिलियन डिग्री के आसपास यह प्रक्रिया पूर्णता तक पहुँचती है, अर्थात् परमाणुओं के सभी इलैक्ट्रोन अलग हो जाते हैं। इन विस्मयकारी उच्च

[2] देखिए, अध्याय ग्यारह।

तापमानों पर, जो कि हमारी प्रयोगशालाओं में पैदा किये जा सकने वाले किसी भी तापमान से बहुत ऊँचे हैं, परमाणु परमाणु नहीं रह जाते। सारे इलैक्ट्रोन छिन कर अलग हो जाते हैं और एक–दूसरे से ज़बरदस्त बल के साथ टकराते हैं। परंतु परमाणुओं के शरीरों की इस पूरी बरबादी के बावजूद पदार्थ की मूलभूत रासायनिक पहचान फिर भी इस रूप में बनी रहती है कि परमाणुओं के नाभिक तो साबुत रहते हैं। यदि तापमान कम हो जाये तो नाभिक फिर आसपास से इलैक्ट्रोनों को पकड़ लेंगे और परमाणुओं का शरीर फिर से सही–सलामत बन जायेगा।

पदार्थ के तापीय विनाश की यह प्रक्रिया और आगे भी जा सकती है। यह पूर्णता पर तब पहुँचेगी जब स्वयं नाभिकों को भी अलग–अलग न्यूक्लियोनों (प्रोटोनों व न्यूट्रोनों) में तोड़ दिया जाये। इसके लिए तापमान को कम से कम कई अरब डिग्री तक चढ़ना होगा। गर्म से गर्म तारों में भी हमें ऐसे उच्च तापमान नहीं मिलते, यद्यपि यह बहुत संभाव्य लगता है कि कई अरब वर्षों पूर्व, जबकि हमारे ब्रह्मांड की आयु अभी कम थी, ऐसे ऊँचे तापमान अवश्य रहे होंगे। इस विस्मयकारी प्रश्न पर हम इस पुस्तक के अंतिम अध्याय में फिर लौटेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तापीय हलचल का प्रभाव यह है : क्वांटम के नियम पर आधारित करीने से बनी पदार्थ की रचना* को क़दम–दर–क़दम नष्ट करते जाना, और इस शानदार भवन को कणों के ऐसे ढेर में बदल देना जो बेतहाशा दौड़ते, इधर–उधर उड़ते, एक–दूसरे से टकराते रहते हैं, जिसमें न तो कोई नियम और न कोई नियमितता ही नज़र आती है।

**2. अव्यवस्थित गति का वर्णन कैसे किया जाये?**

पदार्थ के कणों की तापीय गति भले ही बिल्कुल अव्यवस्थित हो, परंतु यह सोचना बहुत बड़ी ग़लती होगी कि इस कारण से तापीय गति का कोई भौतिक वर्णन (नियम, फ़ार्मूला आदि) हो ही नहीं सकता। सच तो यह है कि तापीय गति का **पूरी तरह अव्यवस्थित होना** अपने आप इसको एक नये नियम में बाँध देता है : **अव्यवस्था का नियम**, जिसको प्रायः **सांख्यिकीय** (statistical) **व्यवहार का नियम** कहा जाता है। इस बात को समझने के लिए हम ज़रा अपना ध्यान "पियक्कड़ की चहलकदमी" वाली प्रसिद्ध समस्या पर लगायें। मान लीजिए, एक शराबी शहर के बड़े पार्क के बीच बिजली के खंभे के सहारे खड़ा है। यह तो मालूम नहीं कि वह यहाँ कब और कैसे आया, मगर अचानक उसके मन में आता है कि कहीं चला जाये। बस, वह चल पड़ता है : कुछ क़दम एक दिशा में, फिर कुछ और क़दम दूसरी किसी दिशा में, और इसी प्रकार वह थोड़े–थोड़े क़दमों बाद अपनी दिशा बिल्कुल बेतरतीब ढंग से बदलता रहता है (चित्र 80)। इस टेढ़ी–मेढ़ी यात्रा के कई (उदाहरणतया 100) चरण पूरे करने के बाद हमारा पियक्कड़ बाबू उस खंभे से कितनी दूर पहुँचा होगा? पहली बार में शायद कोई सोचे कि हर चरण पूरी तरह बेतरतीब होने के कारण इस प्रश्न का कोई उत्तर हो ही नहीं सकता। परंतु यदि हम थोड़ा और ध्यान दें तो पायेंगे कि हम यह भले ही न बता पायें कि 100 बार मुड़ने के बाद पियक्कड़ कहाँ होगा, परंतु बहुत बार मुड़ने के बाद खंभे से उसकी **सबसे अधिक संभाव्य** (most probable) दूरी के बारे में ज़रूर बताया जा सकता है।

---

* क्वांटम के नियम पर आधारित रचना वह है जिसमें विभिन्न कणों की आपसी दूरियाँ, कंपन आदि इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि सभी गतिज एवं स्थितिज ऊर्जाएँ कुछ निश्चित मात्राओं तक ही सीमित हैं अर्थात् "क्वांटमीकृत" हैं। –अनु०

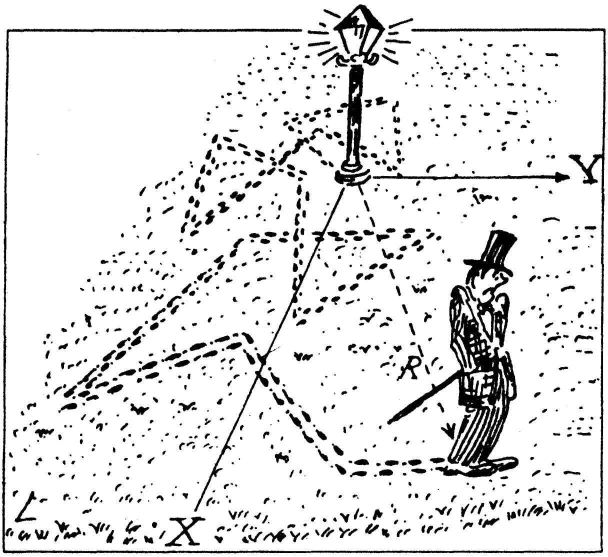


चित्र 80 : पियक्कड़ की चहलकदमी

इस समस्या के साथ गणितीय कड़ाई से निपटने के लिए खंभे को मूल–बिंदु मानते हुए हम घास में दो प्रधान अक्ष खींचते हैं : X - अक्ष हमारी ओर आ रहा है और Y - अक्ष दाहिनी ओर को। मान लीजिए कि N बार (चित्र में इसका मान 14 है) इधर–उधर चलने के बाद खंभे से पियक्कड़ की दूरी R है। हमें वह नियम मालूम करना है जिससे R (या इसके औसत मान) का N के साथ संबंध स्पष्ट हो जाये। अब ज़रा N वीं बारी की चाल की रेखा को देखिए। यदि दोनों अक्षों पर इस रेखा के प्रक्षेप $X_N$ और $Y_N$ हैं, तो पाइथागोरस के प्रमेय के अनुसार :

$$R^2 = (X_1 + X_2 + ..... + X_N)^2 + (Y_1 + Y_2 + .....+ Y_N)^2,$$

जहाँ X और Y धनात्मक भी हो सकते हैं और ऋणात्मक भी : यह इस पर निर्भर है कि हमारा पियक्कड़ बाबू उस चरण में इस ओर जा रहा था या उस ओर। ध्यान दें कि क्योंकि उसकी गति **पूरी तरह बेतरतीब** है, अतः X व Y का मान लगभग उतनी ही बार धनात्मक होगा जितनी बार ऋणात्मक होगा।

बीजगणित के प्रारंभिक नियमों के अनुसार कोष्ठकों के भीतर के पदों के योग का वर्ग निकालने के लिए हमें कोष्ठक के भीतर के हर पद को अपने आप से भी गुणा (वर्ग) करना होगा और अन्य सभी पदों से भी । इस प्रकार :

$$(X_1 + X_2 + X_3 + .... + X_N)^2$$
$$= (X_1 + X_2 + X_3 +.... + X_N). (X_1 + X_2 + X_3 + .... + X_N)$$
$$= (X_1^2 + X_1X_2 + X_1X_3 + .... + X_2^2 + X_1X_2 + X_2X_3 + .... + X_N^2 + .....$$

इस लंबे योग में सभी X वाले पदों के वर्ग आयेंगे ($X_1^2, X_2^2, ......, X_N^2$), और वे पद भी जिन्हें "मिश्रित गुणज" कहते हैं, जैसे $X_1X_2$, $X_2X_3$, आदि।

यहाँ तक तो सरल अंकगणित की ही बात हुई, पर अब पियक्कड़ के क़दमों की अव्यवस्थित प्रकृति पर आधारित सांख्यिकीय बिंदु आता है। जैसा कि ऊपर कहा गया, सभी

X पदों के मान धनात्मक या ऋणात्मक होने की बराबर–बराबर संभावना है। परिणामतः "मिश्रित गुणजों" को देखते हुए आपको संभवतः हमेशा ऐसे जोड़े मिल जायेंगे जिनमें दोनों गुणजों की मात्रा तो बराबर है पर चिह्न ( + या –) उलटा है : ऐसे जोड़े एक–दूसरे को निरस्त कर देंगे। चरणों की कुल संख्या जितनी अधिक होगी, संभवतः उतना ही यह+ और – पदों का निरस्त होना अधिक पूर्ण होगा। हाँ, सभी X पदों के वर्ग बच जायेंगे, क्योंकि सभी वर्ग धनात्मक होते हैं। इस प्रकार पूरे वर्ग को हम लिख सकते हैं : $X_1^2+X_2^2+....+X_N^2 = NX^2$ जहाँ X विभिन्न कड़ियों के X- अक्ष पर प्रक्षेपों की औसत लंबाई है।*

ठीक इसी प्रकार हम पाते हैं कि Y वाले पदों वाले दूसरे कोष्ठक के वर्ग का मान भी $NY^2$ निकाला जा सकता है, जहाँ Y एक कड़ी के Y- अक्ष पर प्रक्षेप की औसत लंबाई है। इस बात को फिर दुहराना आवश्यक है कि यह कड़ाई से किया गया बीजगणित का काम नहीं है, वरन् यह उस सांख्यिकीय तर्क पर आधारित है जिससे चहलकदमी की हर कड़ी के बेतरतीब होने के कारण सभी "मिश्रित गुणज" आपस में निरस्त होकर लगभग समाप्त हो जाते हैं। अब हमारे पियक्कड़ बाबू की खंभे से सबसे अधिक संभाव्य दूरी इस सरल संबंध से प्राप्त होती है :

$$R^2 = N(X^2 + Y^2),$$

या $R = \sqrt{N}.\sqrt{X^2 + Y^2}$

परंतु $\sqrt{X^2 + Y^2}$ तो पाइथागोरस के प्रमेय के अनुसार एक कड़ी की औसत लंबाई है। यदि हम इस औसत लंबाई को L कहें तो हम पायेंगे :

$$R = L\sqrt{N}$$

सरल शब्दों में इस परिणाम का अर्थ यह है : **बहुत बड़ी संख्या में बेतरतीब ढंग से मुड़ने-चलने के बाद पियक्कड़ की खंभे से सबसे अधिक संभावित दूरी है : सरल रेखा में एक बार में चली हुई औसत दूरी गुणा इन दूरियों की संख्या का वर्गमूल।**

अतः यदि हर बार मुड़ने से पहले (किस कोण पर मुड़ेगा, राम जाने !) हमारा पियक्कड़ बाबू औसतन 1 मीटर चलता है, तो सर्वाधिक संभावना है कि सौ बार (यानी कुल एक सौ मीटर) चलने के बाद वह खंभे से सिर्फ़ $\sqrt{100}$ अर्थात् दस मीटर दूर ही पहुँचा होगा। यदि वह बिना मुड़े सीधा चला गया होता, तो सौ मीटर दूर पहुँच गया होता – जिससे प्रमाणित होता है कि चल कर कहीं जाना हो तो शराब से परहेज़ करना ही बेहतर है।

ऊपर के उदाहरण की सांख्यिकीय प्रकृति इस बात से प्रकट होती है कि हम यहाँ **सर्वाधिक संभाव्य** दूरी ही बता रहे हैं; ऐसी हरएक घटना में होने वाली वास्तविक दूरी सही–सही नहीं बता सकते हैं। किसी एक पियक्कड़ के मामले में होने को हो सकता है कि वह बिल्कुल मुड़े ही नहीं और सीधा सरल रेखा में चलता जाये, यद्यपि इसकी संभाविता बहुत नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि वह हर बार 180 डिग्री के कोण पर मुड़े, जिससे हर दूसरी बारी में वह वापिस खंभे पर आ जायेगा। परंतु यदि बड़ी संख्या में पियक्कड़ हों, और वे सभी उसी खंभे से अपने टेढ़े–मेढ़े रास्तों पर चलना शुरू करें, और एक–दूसरे के रास्ते में टाँग न अड़ायें, तो पर्याप्त समय बीत जाने पर आप पायेंगे कि वे

---

* गणित जानने वाले पाठक समझ गये होंगे कि यह साधारण औसत नहीं, वर्ग–औसत–वर्गमूल यानी आर० एम० एस० है। –अनु०

सभी खंभे के आसपास एक निश्चित क्षेत्र में इस प्रकार फैले हुए हैं कि खंभे से उनकी **औसत दूरी** को ऊपर दिये गये नियम से जाना जा सकता है। अनियमित गति के कारण फैल जाने का ऐसा एक उदाहरण चित्र 81 में दर्शाया गया है, जहाँ हमने चहलकदमी करते हुए छः पियक्कड़ दिखाये हैं। अब कहने की ज़रूरत नहीं है कि जितने अधिक पियक्कड़ होंगे, और वे अव्यवस्थित ढंग से चलते हुए जितनी अधिक बार मुड़ेंगे, उतना ही अधिक परिशुद्ध परिणाम उपर्युक्त नियम से प्राप्त होगा।

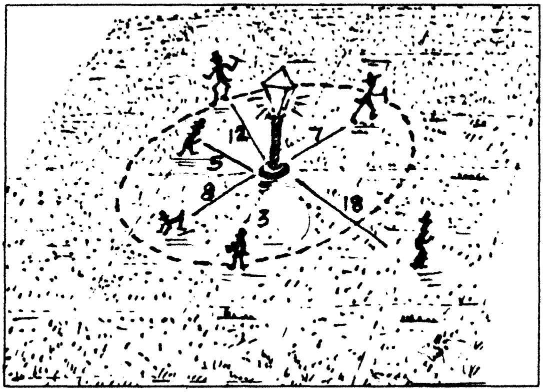

चित्र 81 : खंभे के आस–पास चलते हुए छः पियक्कड़ों का सांख्यिकीय विस्तार।

अब ज़रा पियक्कड़ों के स्थान पर द्रव में झूलते हुए पौधों के बीजाणु या जीवाणु जैसे अति–सूक्ष्म पिंड ले लीजिए, और आपको वही चित्र दिखाई देगा जो वनस्पति–विज्ञानी ब्राउन ने अपने सूक्ष्मदर्शी यंत्र में देखा था। यह ठीक है कि बीजाणु या जीवाणु पिये हुए नहीं हैं, परंतु जैसा हमने ऊपर बताया, उनके आसपास के अणु तापीय गति से चलते हुए इन पिंडों को लगातार हर संभव दिशा में धकेल रहे हैं। अतः इन बीजाणुओं या जीवाणुओं को मजबूरन उसी प्रकार के टेढ़े–मेढ़े रास्तों पर चलना पड़ता है, जैसे शराब के नशे में धुत होकर पूरी तरह दिशा–ज्ञान खो चुके किसी पियक्कड़ को।

आइए, पानी की एक बूँद में झूलते हुए बहुत–से सूक्ष्म कणों की ब्राउनीय गति को सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखें। किसी भी "खंभे" (बिंदु) के आसपास एक छोटे–से घेरे में स्थित कणों के समूह पर ध्यान दीजिए। अब यदि आप इन्हीं कणों को लगातार देखते रहें, तो पायेंगे कि समय बीतने के साथ ये कण धीरे–धीरे पूरे दृष्टि–क्षेत्र में (बल्कि उसके बाहर भी) फैल जायेंगे (चित्र 81), और मूल–बिंदु से उनकी औसत दूरी समय–अवधि के वर्गमूल के अनुपात में बढ़ती जायेगी, जैसा कि पियक्कड़ के चलने की दूरी बताने वाला गणितीय नियम कहता है।

सच तो यह है कि गति का वही नियम पानी की बूँद के हर एक अणु पर भी लागू होता है, पर आप अलग–अलग अणुओं को देख नहीं पायेंगे, और यदि देख भी पाते तो उन्हें अलग–अलग पहचानना असंभव होता। इस प्रकार की अदृश्य गति को दृश्य बनाने के लिए दो अलग–अलग प्रकार के अणु लेने होंगे जिन्हें किसी गुण से, जैसे उनके भिन्न रंगों से, पहचाना जा सके। जैसे, हम एक परख नली लेकर उसका आधा भाग पोटाशियम परमैंगनेट के घोल से भर सकते हैं; इस पदार्थ से पानी में एक सुंदर लाल–जामुनी रंग आ जाता है। अब यदि हम इसके ऊपर कुछ साफ़ पानी डाल

दें, जरा सावधानी के साथ जिससे दोनों परतें आपस में मिल न जायें, तो हम पायेंगे कि वह रंग धीरे-धीरे साफ़ पानी में प्रवेश कर जाता है। यदि आप पर्याप्त देर तक प्रतीक्षा करें तो पायेंगे कि पेंदे से सतह तक पूरे पानी का रंग एक-सा हो जायेगा (चित्र 82)।

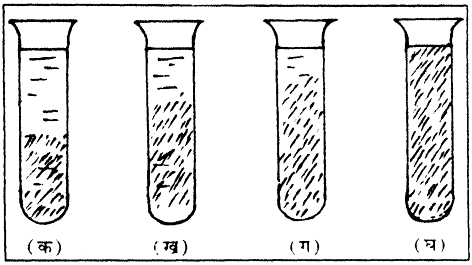


चित्र 82 : रंग धीरे-धीरे पूरे पानी में फैल जाता है

यह क्रिया, जिससे हर कोई परिचित है, **विसरण** (diffusion) कहलाती है और इसका कारण है पानी के अणुओं में रंग के अणुओं की अनियमित तापीय गति। हमें पोटाशियम परमैंगनेट के हर अणु को एक छोटा-सा पियक्कड़ मानना होगा जो जल के अणुओं के निरंतर थपेड़ों से इधर-उधर धकेला जा रहा हो। अब क्योंकि पानी में तो अणु काफी सटा कर भरे हुए होते हैं (गैस के विपरीत), अतः दो टक्करों के बीच में हर अणु का औसत मुक्त पथ बहुत ही छोटा होता है, बस लगभग $10^{-8}$ इंच ही। दूसरी ओर, क्योंकि सामान्य तापमान पर अणु लगभग .1 मील प्रति सैकंड अर्थात् 6000 इंच प्रति सैकंड की गति से चलते हैं, अतः एक टक्कर से दूसरी तक चलने में अणु को केवल $10^{-12}$ सैकंड ही लगता है। इसका अर्थ है कि एक सैकंड की अवधि में रंग का हर अणु लगभग $10^{12}$ बार टकरायेगा और इतनी ही बार अपनी दिशा बदलेगा। पहले सैकंड में औसतन कितनी दूरी तय होगी? यह है $10^{-8}$ इंच (मुक्त पथ की लंबाई), गुणा $10^{12}$ का वर्गमूल। इससे हमें विसरण की जो औसत गति प्राप्त होती है वह मात्र .01 इंच प्रति सैकंड है। यह प्रगति काफ़ी धीमी लगती है, क्योंकि यदि रंग का अणु टक्करों से विचलित नहीं हुआ होता तो वह इतने ही समय में .1 मील दूर चला गया होता! यदि आप 100 सैकंड तक प्रतीक्षा करें तो बेचारा गिरते-पड़ते इससे 10 गुणा ($\sqrt{100} = 10$) अधिक यानी .1 इंच दूरी तय कर पायेगा, और 10,000 सैकंड में (लगभग 3 घंटे में) विसरण के कारण रंग 100 गुणा दूर चला गया होगा ($\sqrt{10,000} = 100$), या करीब 1 इंच दूर। जी हाँ, विसरण एक धीमी प्रक्रिया है : जब आप चाय के प्याले में चीनी डालें तो उसे चम्मच से हिला देना ही बेहतर रहेगा, बजाय इसके कि चीनी के अणुओं की अपनी ही गति के द्वारा उनके चाय में मिल जाने का इंतज़ार करते रहना!

विसरण की प्रक्रिया आणविक भौतिकी की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं में से एक है। इसके एक और उदाहरण के तौर पर, आइए, देखें कि लोहे के चिमटे का एक सिरा यदि चूल्हे में रख दिया जाये तो इस चिमटे में गर्मी कैसे आगे बढ़ती है। आप अपने अनुभव से जानते ही हैं कि चिमटे का दूसरा सिरा गर्म होने में काफ़ी देर लगती है, पर आप संभवतः यह नहीं जानते होंगे कि इस धातु की डंडी में गर्मी इलैक्ट्रोनों के विसरण के द्वारा ही आगे ले जायी जाती है। जी हाँ, लोहे के साधारण चिमटे

में, बल्कि धातु की किसी भी चीज़ में, वास्तव में इलैक्ट्रोन भरे हुए होते हैं। धातु और दूसरे पदार्थो (जैसे काँच) में अंतर यही है कि धातु के परमाणु के बाहरी इलैक्ट्रोनों में से कुछ (1 या 2) छूट कर निकल जाते हैं और वे अनियमित तापीय गति को लिये हुए धातु की जाली में सब जगह घूम सकते हैं, ठीक उसी तरह जैसे साधारण गैस के कण।

धातु के टुकड़े की बाहरी सीमाओं पर कुछ पृष्ठ–बल (surface-forces) होते हैं जो इन इलैक्ट्रोनों को बाहर निकलने से रोकते हैं[3], परतु जहाँ तक पदार्थ के भीतर चलने–फिरने का प्रश्न है, ये इलैक्ट्रोन पूरी तरह मुक्त होते हैं। यदि किसी धातु के तार के सिरों के बीच विद्युत–क्षेत्र लगाया जाये, तो ये मुक्त असंबद्ध इलैक्ट्रोन विद्युत–बल की दिशा में बेतहाशा दौड़ पड़ते हैं, जिससे विद्युत–धारा पैदा होती है। दूसरी ओर अधातु पदार्थ आम तौर पर अच्छे कुचालक होते हैं, क्योंकि उनमें सभी इलैक्ट्रोन अपने–अपने परमाणुओं से बँधे रहते हैं और इसलिए मुक्त रूप से विचरण नहीं कर सकते।

हाँ, तो धातु की छड़ के एक सिरे को जब आग में रख दिया जाता है, तो धातु के इस भाग में मुक्त इलैक्ट्रोनों की तापीय गति काफ़ी बढ़ जाती है, और ये तीव्र वेग वाले इलैक्ट्रोन दूसरे क्षेत्रों में विसरित होने लगते हैं और अपनी गर्मी की अतिरिक्त ऊर्जा को भी ले जाते हैं। यह प्रक्रिया पानी में रंग के अणुओं के विसरण के बिल्कुल समान है, सिवाय इसके कि दो अलग–अलग तरह के कणों (पानी और रंग के अणु) की बजाय यहाँ हम **गर्म इलैक्ट्रोन गैस का दूसरे क्षेत्रों में विसरण देख रहे हैं जो ठंडी इलैक्ट्रोन-गैस से भरे हैं।** परंतु पियक्कड़ की चहलकदमी वाला नियम यहाँ भी उसी तरह लागू होता है, और धातु की छड़ में गर्मी के फैलने की दूरी उसी अनुपात में बढ़ती है जिसमें समय का वर्गमूल।

विसरण के अपने अंतिम उदाहरण में हम एक बिल्कुल अलग तरह की बात लेते हैं जिसका महत्त्व पूरे ब्रह्मांड के स्तर पर है। जैसा कि हम बाद के अध्यायों में देखेंगे, हमारे सूर्य की ऊर्जा इसके बहुत अंदरूनी भागों में रासायनिक तत्त्वों के कीमियाई रूपांतरण के द्वारा पैदा होती है। यह ऊर्जा सघन विकिरण (radiation) के रूप में मुक्त होती है, और "प्रकाश के कण" या प्रकाश के क्वांटम सूर्य के घने पिंड को पार करते हुए सतह की ओर अपनी लंबी यात्रा शुरू करते हैं। अब क्योंकि प्रकाश 3 लाख कि0मी0 प्रति सैकंड के वेग से चलता है, और सूर्य की त्रिज्या सिर्फ 7 लाख कि- मी- ही है, अतः किसी भी प्रकाश क्वांटम को बाहर आने के लिए बस, 2 सैकंड से कुछ ही अधिक समय लगना चाहिए, बशर्ते कि यह किसी विचलन के बिना सरल रेखा में चले। परंतु यह वास्तविकता से बहुत दूर है; बाहर जाने के रास्ते में प्रकाश के क्वांटम असंख्य बार सूर्य के पदार्थ के नाभिकों व इलैक्ट्रोनों से टकराते हैं। सौर पदार्थ में प्रकाश का मुक्त पथ करीबन 1 सेंटीमीटर है (जो कि एक अणु के मुक्त पथ से बहुत अधिक लंबा है), और क्योंकि सूर्य की त्रिज्या $7x10^{10}$ सेंमी है, अतः हमारे प्रकाश के क्वांटम को सतह तक पहुँचने में $(7x10^{10})^2$ या $5x10^{21}$ पियक्कड़ जैसे कदम उठाने होंगे। अब हरएक कदम में क्योंकि $1/3x10^{-10}$ या $3x10^{-11}$ सै0 लगता है, अतः पूरी यात्रा में $3x10^{-11}x5x10^{21} = 1.5x10^{11}$ सै0 या लगभग 5,000 वर्ष का समय लगता है! यहाँ हम फिर से देखते हैं कि विसरण की प्रक्रिया कितनी धीमी है। प्रकाश को सूर्य के केन्द्र से सतह तक आने में 50 शताब्दियाँ लग जाती हैं, जबकि एक बार ग्रहों के बीच के खाली आकाश में आ जाने के बाद सीधी रेखा में चलते हुए यह सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी मात्र आठ मिनट में तय कर डालता है!

3 जब हम धातु की तार को उच्च तापमान तक गर्म करते हैं तो इसके भीतर के इलैक्ट्रोनों की तापीय गति अधिक उग्र हो जाती है और इनमें से कुछ सतह के बाहर जाने में भी सफल हो जाते हैं। इलैक्ट्रोन–ट्यूबों में इसी घटना–क्रिया का उपयोग किया जाता है; शौकिया रेडियो बनाने वाले इस बात से परिचित हैं।

### 3. संभाविताओं को गिनना

विसरण की बात तो एक सरल उदाहरण मात्र है, जहाँ आणविक गति की समस्या में संभाविता (probability) के सांख्यिकीय नियम का अनुप्रयोग किया गया। इस चर्चा में आगे बढ़ने से पहले हमें उन तरीकों के बारे में अधिक सीखना होगा जिनसे विभिन्न सरल या जटिल घटनाओं की संभाविता की गणना की जाती है। इसके बाद ही हम उस परम महत्त्वपूर्ण **एंट्रोपी के नियम** को समझने की कोशिश कर सकेंगे, जो हर भौतिक पिंड के तापीय व्यवहार पर नियंत्रण करता है, चाहे वह किसी द्रव की नन्ही–सी बूँद हो या फिर तारों का विशाल ब्रह्मांड।

संभाविता की गणना की सरल से सरल समस्या सिक्के को उछालने के साथ संबंधित है। हर कोई जानता है कि इस मामले में "चित" या "पट" आने की संभावना बराबर–बराबर है (बशर्ते कि सिक्का "शोले" वाला खोटा सिक्का न हो और ईमानदारी से फेंका जाये!) आम तौर पर लोग कहते हैं कि चित या पट दोनों की संभाविता पचास–पचास है, परंतु गणित में **आधा-आधा** कहने का प्रचलन अधिक है। यदि आप चित व पट आने की संभाविताओं को जोड़ दें तो आप पायेंगे : $1/2 + 1/2 = 1$. इस थ्योरी में किसी घटना की संभाविता एक होने का अर्थ है पक्की निश्चतता : सचमुच, यह बिल्कुल निश्चित है कि सिक्के को उछालने पर आपको या तो चित मिलेगा, या पट (बशर्ते कि सिक्का लुढ़कता हुआ सोफ़ा के नीचे जाकर ग़ायब न हो जाये)।

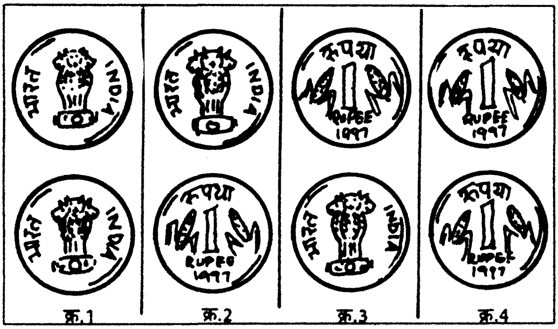


चित्र 83 : दो बार सिक्का उछालने पर चार संभव संयोग

अब मान लीजिए कि आप सिक्के को एक के बाद एक करके दो बार उछालते हैं। यह समझना बड़ा आसान है कि यहाँ चार प्रकार की संभावनाएँ हैं जो चित्र 83 में दिखायी गयी हैं। पहली संभावना में दो बार चित मिलता है और अंतिम में दो बार पट, जबकि बीच की दोनों संभावनाएँ एक–सी हैं – यदि आपको इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि पहले चित आया या पट। अतः आप कहेंगे कि दोनों बार चित पाने की संभावना 4 में 1 बार अर्थात् 1/4 है, दोनों बार पट पाने की संभावना भी 1/4 है, जबकि एक चित और एक पट की संभावना 4 बार में 2 यानी 1/2 है। यहाँ भी सभी का योग, $1/4 + 1/4 + 1/2 = 1$ : यह पक्का है कि तीनों में से एक संयोग तो ज़रूर मिलेगा।

आइए, अब देखें कि सिक्के को 3 बार उछालने पर क्या होता है? कुल मिला कर $2 \times 2 \times 2 = 8$ संभावनाएँ हैं, जिन्हें संक्षेप में निम्न तालिका में दिखाया गया है :

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पहली बार | चि | चि | चि | चि | प | प | प | प |
| दूसरी बार | चि | चि | प | प | चि | चि | प | प |
| तीसरी बार | चि | प | चि | प | चि | प | चि | प |
| | (1) | (2) | (2) | (3) | (2) | (3) | (3) | (4) |

इस तालिका पर आप ग़ौर करें तो पायेंगे कि तीनों बार चित आने (क्र0 1 ) की संभाविता 8 में से 1 है, और तीनों बार पट आने (क्र0 4) की संभाविता भी इतनी ही है। शेष सभी संभावनाएँ बराबर–बराबर बँटी हैं – दो बार चित और एक बार पट (क्र0 2 ), या एक बार चित और दो बार पट (क्र0 3) – और प्रत्येक की संभाविता 3/8 है।

अब एक और कदम आगे जाकर 4 बार सिक्का फेंक देखें, यद्यपि विभिन्न संभावनाएँ दर्शाने वाली हमारी तालिका तेज़ी से बड़ी होती जा रही है। अब हमारे पास ये 16 संभावनाएँ हैं :

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पहली बार | चि | चि | चि | चि | चि | चि | चि | चि | प | प | प | प | प | प | प | प |
| दूसरी बार | चि | चि | चि | चि | प | प | प | प | चि | चि | चि | चि | प | प | प | प |
| तीसरी बार | चि | चि | प | प | चि | चि | प | प | चि | चि | प | प | चि | चि | प | प |
| चौथी बार | चि | प | चि | प | चि | प | चि | प | चि | प | चि | प | चि | प | चि | प |
| | (1) | (2) | (2) | (3) | (2) | (3) | (3) | (4) | (2) | (3) | (3) | (4) | (3) | (4) | (4) | (5) |

यहाँ चारों बार चित आने (क्र0 1) की संभाविता 1/16 है, और चारों बार पट आने (क्र0 5) की भी वही है। मिश्रित परिणाम, जिनमें तीन बार चित और एक बार पट हों (क्र0 2), या तीन बार पट और एक बार चित (क्र0 4) – इनमें से प्रत्येक की संभाविता 4/16 या 1/4 है, जबकि चित व पट दो–दो बार आने (क्र0 3) की संभाविता 6/16 या 3/8 है।

अब यदि आप इसी प्रकार चलते रहें तो बहुत बार सिक्का उछालने के लिए बनने वाली तालिकाएँ इतनी लंबी होंगी ही कि जल्दी ही आपके पास काग़ज़ की कमी हो जायेगी। जैसे, 10 बार उछालने के लिए 1024 विभिन्न संभावनाएँ हैं (यानी $2x2x2x2x2x2x2x2x2x2 = 2^{10}$)। लेकिन इतनी लंबी तालिकाएँ बनाना ज़रा भी आवश्यक नहीं है क्योंकि संभाविता को जोड़ने के कुछ सरल नियम हैं। ऊपर दिए उदाहरणों में ये सरल नियम पहचाने जा सकते हैं और फिर अधिक जटिल मामलों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

सबसे पहले आप ध्यान दें कि दो बार चित आने की संभाविता कैसे प्राप्त होती है ? इसके लिए एक–एक उछाल में चित आने की संभाविताओं को गुणा करना होता है : ¼ = ½ x ½। इसी प्रकार तीन या चार बार चित आने की संभाविता पाने के लिए अलग–अलग बारियों में चित आने की संभाविता को उतनी ही बार आपस में गुणा करना होगा (1/8 = 1/2 x 1/2 x 1/2; 1/16 = 1/2 x 1/2 x 1/2 x 1/2)। अब यदि कोई आपसे पूछे कि 10 बार सिक्का उछालने पर हर बार चित आने की संभाविता कितनी है, तो आप आसानी से उत्तर दे सकते हैं : 1/2 को दस बार अपने आप से गुणा करके। उत्तर आयेगा .00098, जिससे पता चलता है कि यह काफ़ी विरला संयोग है : करीब एक हज़ार में एक। तो यहाँ हम "संभाविताओं के गुणन" का नियम देखते हैं जो कहता है कि **यदि आप को कई भिन्न घटनाओं में विशेष परिणाम एक साथ चाहिएँ, तो आप उनको पाने की संभाविता मालूम करने के लिए उनमें से हर एक परिणाम की गणितीय संभाविता को आपस में गुणा कर दीजिए।*** अतः यदि आपको कई सारी चीज़ें चाहिएँ, और हरएक की संभाविता काफ़ी कम है, तो उन **सबको** पा लेने की संभावना (हाय !) और भी कमतर हो जायेगी।

* यह नियम तभी लागू होगा जब सभी परिणाम एक–दूसरे से स्वतंत्र हों। – अनु०

एक और नियम है, जिसमें "संभाविताओं का जोड़" होता है। इस नियम के **अनुसार यदि आप चाहते हों कि एक घटना का परिणाम कई संभावनाओं में से कोई एक हो (किसी भी एक से काम चलेगा), तो इसे पाने की गणितीय संभाविता आपकी सूची के एक-एक परिणाम की गणितीय संभाविताओं के योग के बराबर होगी।**

इसे देखने के लिए एक उदाहरण लेते हैं जिसमें सिक्के को दो बार उछाल कर आप एक चित और एक पट चाहते हैं। यहाँ आप "पहले चित, फिर पट" या "पहले पट, फिर चित" दोनों में से **कोई भी एक** चाहते हैं। इन दोनों संयोगों में से प्रत्येक की संभाविता 1/4 है (गुणा वाले नियम के अनुसार); अतः दोनों में से किसी एक को पाने की संभावना होगी 1/4 + 1/4, यानी 1/2. सारांश : यदि आप चाहते हैं "यह, **और** यह भी, **और** वह भी, .... " तो आप सभी अलग–अलग परिणामों की गणितीय संभाविताओं को **गुणा** करिए। परंतु यदि आप चाहते हों "यह **या** वह, **या** वह . . . . . "तो आप इन सभी की संभाविताओं को **जोड़** दीजिए। ध्यान दीजिए कि "और" वाले मामले में जैसे–जैसे आपकी फ़रमाइश की चीज़ों की संख्या बढ़ती जायेगी, उन सबको पाने की संभाविता कम से कमतर होती जायेगी। "या" वाले मामले में, जब आपको कई चीज़ों में से सिर्फ़ एक चाहिए, चीज़ों की सूची लंबी होने के साथ आपके संतुष्ट होने की संभावना भी बढ़ती जायेगी।

सिक्के उछालने वाले प्रयोग इस बात का अर्थ समझाने के लिए बहुत अच्छे उदाहरण हैं कि जब आप किसी प्रयोग को बहुत अधिक बार करते हैं तो संभाविता के नियम भी अधिक परिशुद्ध परिणाम देते हैं। यह बात चित्र 84 में दर्शायी गयी है, जिसमें दो, तीन, चार, दस और एक सौ बार सिक्का उछालने पर चित व पट की विभिन्न प्रतिशत संख्याएँ पाने की संभाविता दिखायी गयी है। इसमें साफ़ दिखायी देता है कि उछालों की संख्या बढ़ने के साथ संभाविता की वक्र अधिकाधिक पैनी होती जाती है, और इसमें बराबर–बराबर अनुपात पर जो सर्वाधिक संभाविता वाला बिंदु है, वह अधिकाधिक सुस्पष्ट होता जाता है। जैसे दो या तीन उछालों में, या चार में भी, हर बार चित या हर बार पट आने की संभाविता कुछ तो रहती ही है, जबकि 10 उछालों में 90 प्रतिशत चित या 90 प्रतिशत पट आने की संभाविता भी नहीं के बराबर है (चित्र 84)। जब उछालों की संख्या और भी

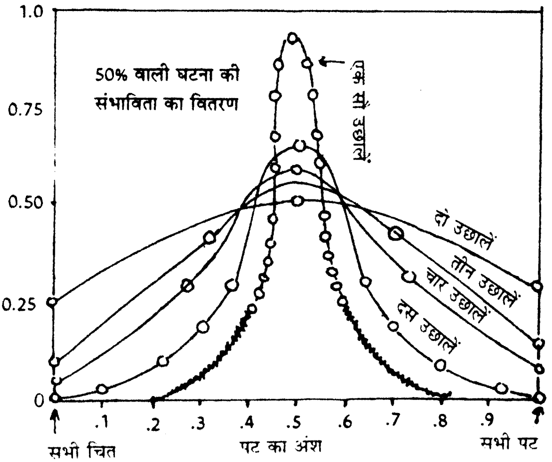


चित्र 84 : चित और पट की आपेक्षिक संख्याएँ

अधिक हो जाये, जैसे 10000 या 100000, तब तो संभाविता की वक्र सुई जैसी पैनी हो जाती है, और पचास–पचास प्रतिशत से ज़रा–सा भी हटने की गुंजाइश नहीं के बराबर हो जाती है।

आइए, अब हम अभी तक सीखे हुए संभाविता के गणित के सरल नियमों का उपयोग करते हुए "पोकर" के प्रसिद्ध खेल में आने वाले पाँच पत्तों के विभिन्न संयोगों की आपेक्षिक संभाविताओं पर विचार करें।

यदि आपको मालूम नहीं तो हम बता दें कि ताश के इस खेल में हर खिलाड़ी को पाँच–पाँच पत्ते बाँटे जाते हैं, और जिसको उच्चतम (सबसे बढ़िया) संयोग मिलता है वह दाँव जीत जाता है। वैसे इसमें कई और जटिलताएँ भी होती हैं, जैसे बेहतर पत्ते पाने की आशा में अपने कुछ पत्ते बदलने की संभावना, अपने प्रतिद्वंद्वियों को झाँसा देकर हार मनवा लेने की मनोवैज्ञानिक रणनीति : ऐसा दिखाना मानो आपके पास बहुत बढ़िया पत्ते हैं, जबकि सचमुच वैसा हो नहीं, आदि। परंतु हम इन सब पर ध्यान नहीं देंगे। वैसे सच तो यह है कि यह झाँसा–पट्टी ही खेल का मर्म है, और इसे देखते हुए एक बार प्रसिद्ध डैनिश भौतिक विज्ञानी नील्स बोर ने प्रस्ताव रखा था कि क्यों न बिल्कुल नये तरह का खेल खेला जाये, जिसमें पत्ते रहें ही नहीं; बस, खिलाड़ी अपने काल्पनिक पत्तों के बारे में बातें करके ही एक–दूसरे को झाँसा देते रहें! पर इसे छोड़िए : क्योंकि यह शुद्धतः मनोवैज्ञानिक मामला है, अतः यह संभाविता–गणित के क्षेत्र के बिल्कुल बाहर है।

संभाविता की गणना में कुछ कसरतें करने के लिए अब हम पोकर के खेल में आने वाले कुछ संयोगों की संभाविताओं की गणना करेंगे। इनमें से एक संयोग को "फ़्लश" कहते हैं : इसमें सभी पाँच पत्ते एक ही रंग के होते हैं (चित्र 85)।

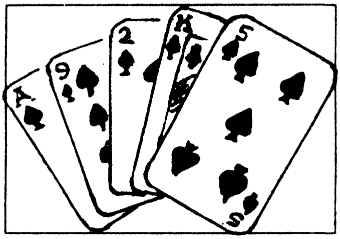

चित्र 85 : फ़्लश (हुक्म में)

यदि आप फ़्लश पाना चाहते हैं तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि आपको पहला पत्ता कौन–सा मिला। बस, आपको इतनी ही गणना करनी है कि शेष चार पत्तों का भी वही रंग होने की संभाविता क्या है? अब ताश की पूरी गड्डी में 52 पत्ते हैं; प्रत्येक रंग के तेरह–तेरह।* अतः जब आपको पहला पत्ता मिला गया, तो गड्डी में उसी रंग के 12 पत्ते बच गये। इस प्रकार आपका दूसरा पत्ता उसी रंग का होने की संभाविता है 12/51. इसी प्रकार, तीसरे, चौथे व पाँचवें पत्तों का रंग भी वही हो, इन बातों की संभाविताएँ निम्न भिन्नों द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं : 11/50, 10/49 और 9/48. आप चाहते हैं कि सभी 4 पत्ते उसी रंग के हों जो पहले पत्ते का रंग था; अतः संभाविताओं को गुणा करने वाला नियम लागू होगा। ऐसा करने पर आप पाते हैं कि फ़्लश पाने की संभाविता है :

* यहाँ हम "जोकर" की मौजूदगी से उठने वाली जटिलताओं को नज़र–अंदाज़ कर रहे हैं। (जोकर एक खाली पत्ता होता है जिसे खिलाड़ी अपनी मर्ज़ी से कोई भी पत्ता मान सकता है।) – अनु०

$$\frac{12}{51} \times \frac{11}{50} \times \frac{10}{49} \times \frac{9}{48} = \frac{11880}{5997600} = \frac{1}{505},$$ या लगभग 500 में एक।

परंतु आप ऐसा न सोचिए कि 500 बारी में आपके पास अवश्य फ़्लश आ ही जायेगा। हो सकता है कि बिल्कुल ही न आये, या यह भी हो सकता है कि दो बार आ जाये।** यह तो संभाविता का खेल है : हो सकता है कि 500 से बहुत अधिक बारी खेलने पर भी आपके पास अभीष्ट संयोग न आये; दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि पहली बार पत्ते आपके हाथ में आते ही फ़्लश दिखाई दे जाये। संभाविता की थ्योरी तो इतना ही कह सकती है कि संभवतः आपको 500 बारी में 1 फ़्लश मिलेगा। इसी प्रकार के तरीकों से गणना करते हुए आप यह भी जान सकते हैं कि 30,000,000 खेलों में आपको संभवतः करीब दस बार पाँचों इक्के (एक जोकर सहित) मिलेंगे।

पोकर में एक और संयोग होता है, जो कि फ़्लश से भी दुर्लभ होता है और इसलिए अधिक भारी माना जाता है : इसे कहते हैं "फुल हैंड", या अधिक लोग कहते हैं "फुल हाउस"। इस में रहते हैं एक "जोड़ा" और "एक तरह के तीन" (अर्थात् 2 पत्ते दो रंगों में एक ही संख्या वाले, और 3 पत्ते तीन रंगों में एक ही संख्या वाले – उदाहरणतया, 2 पंजियाँ और 3 बेग़में, जैसा चित्र 86 में दिखाया गया है।

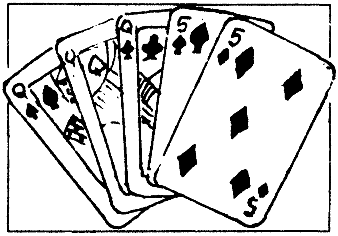

चित्र 86 : फुल हाउस

मान लीजिए, आप फुल हाउस चाहते हैं। यदि आपको मिले पहले दो पत्ते एक ही संख्या वाले नहीं हैं, तो फुल हाउस पाने की संभाविता कितनी है? फुल हाउस के लिए आपको बाकी 3 पत्ते ऐसे मिलने चाहिएँ कि उनमें से 2 पत्ते पहले दोनों में से एक की जोड़ी के हों और 1 पत्ता दूसरे की जोड़ी का हो। अब गड्डी के बचे हुए 50 पत्तों में 6 ही हैं जो आपके पत्तों से मेल खाते हैं। (यदि आपके पास एक बेग़म और एक पंजी है, तो गड्डी में 3 बेग़में व 3 पंजियाँ बची हैं)। अतः तीसरा पत्ता सही आने की संभाविता 50 में से 6 है, या 6/50. इसी प्रकार चौथे पत्ते के सही होने की संभाविता 5/49 है, क्योंकि गड्डी में बचे 49 पत्तों में से सिर्फ़ 5 सही हैं, और पाँचवें पत्ते के सही होने की संभाविता 4/48 है। अतः फुल हाउस आने की संभाविता है :

$$\frac{6}{50} \times \frac{5}{49} \times \frac{4}{48} = \frac{120}{117600} = \frac{1}{980},$$

**प्रसिद्ध कहानी है कि एक जुआरी ने जब एक प्रोफ़ेसर से यह सुना कि फ़्लश आने की संभाविता 500 में एक है, तो वह इसी आशा में खेलता रहा। संयोग से 499 बार फ़्लश नहीं आया। अब 500 वीं बार उसने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया, इस विश्वास के साथ कि फ़्लश आना ही है। अब आप अनुमान करिए कि क्या हुआ होगा। – अनु०

अर्थात् फ़्लश की संभाविता से लगभग आधी।*

इसी प्रकार दूसरे संयोगों की संभाविताओं की गणना भी की जा सकती है, उदाहरणतया "स्ट्रेट" की (जिसमें पाँच क्रमिक संख्याओं की शृंखला बन जाती है)। थोड़े परिश्रम और धैर्य से जोकर की मौजूदगी, पहली बार में मिले पत्तों को बदलने की गुंजाइश आदि के प्रभावों को भी गणनाओं में शामिल किया जा सकता है।

इस प्रकार की गणनाओं से पता चलता है कि पोकर में विभिन्न संयोगों को जो वरीयता–क्रम दिया जाता है, वास्तव में गणितीय संभाविताएँ भी उसी क्रम में हैं। लेखक को मालूम नहीं है कि क्या यह वरीयता की व्यवस्था पुराने ज़माने के किसी गणितज्ञ ने बनायी थी या फ़ैशनेबल जुआघरों और छोटे–छोटे अँधेरे अड्डों में खेलने वाले लाखों खिलाड़ियों ने अपने धन को दाँव पर लगा–लगा कर प्रायोगिक रूप से सीखते–सीखते स्थापित की। यदि दूसरी बात सही हो तो यह इस बात का बढ़िया उदाहरण है कि जटिल घटनाओं की आपेक्षिक संभाविताओं का सांख्यिकीय ढंग से (वास्तव में आँकड़े एकत्र करके) कैसे अध्ययन किया जा सकता है!

संभाविता की गणना का एक और रोचक उदाहरण, जिसमें एक बहुत ही अनपेक्षित उत्तर प्राप्त होता है, "संपाती (एक साथ पड़ने वाले) जन्मदिनों" की समस्या है। ज़रा याद करने की कोशिश कीजिए : क्या आपको दो अलग व्यक्तियों की जन्मदिन की पार्टी में एक ही दिन बुलाया गया है ? आप शायद कहें कि ऐसे दोहरे निमंत्रण की संभावना बहुत ही कम है, क्योंकि आपको निमंत्रित करने वाले मित्रों की संख्या सिर्फ़ (मान लीजिए) 24 है, जबकि उनके जन्मदिनों के लिए वर्ष के 365 दिन मौजूद हैं। जब एक वर्ष में इतने सारे दिन हैं, तो 24 व्यक्तियों के अलग–अलग जन्मदिन होने की पर्याप्त गुंजाइश है; अतः उनमें से दो के द्वारा एक ही दिन जन्मदिन का केक काटने की संभावना बहुत कम होगी।

परंतु आपका यह अनुमान बिल्कुल ग़लत है, भले ही आपको विश्वास न हो। सच तो यह है कि 24 में से ऐसे एक जोड़ी (या कई जोड़ी) व्यक्तियों के मौजूद होने की काफ़ी संभाविता है जिनका जन्मदिन एक साथ पड़ता हो। वास्तव में ऐसी जोड़ी होने की संभाविता, ऐसा न होने की अपेक्षा कहीं अधिक है।

इस बात की पुष्टि स्वयं करने के लिए आपको इतना ही करना होगा कि अपने किन्हीं भी 24 मित्रों या रिश्तेदारों के जन्मदिनों की सूची बनानी होगी, या इससे भी सरल यह है कि पुस्तकालय में जाकर विश्व या भारत में "कौन व्यक्ति कौन है" जैसे किसी भी संदर्भ–ग्रंथ में अंदाज़न कोई भी पृष्ठ खोल कर लगातार दिये गये 24 व्यक्तियों के जन्मदिनों की तुलना करनी होगी। या फिर संभाविता–गणित के सरल नियम लागू करके इसकी संभाविता मालूम कर सकते हैं, जैसा नीचे दिया गया है। (इन नियमों के साथ हम सिक्का उछालने व पोकर के खेलों के माध्यम से परिचित हो चुके हैं।)

* सजग पाठक ने शायद ध्यान दिया होगा कि इस गणना में थोड़ी–सी ग़लती है। इस संभाविता में तो ऐसे संयोग भी शामिल हैं जिनमें चार बेग़में और एक पंजी या एक बेग़म और चार पंजियाँ आ जायें। इन दोनों की संभाविता को यहाँ दी गयी संख्या में से घटाने पर सही संभाविता प्राप्त होती है : 1/1089. इसके अलावा फुल हाउस की पूरी संभाविता को भी ज्ञात किया जा सकता है, इस शर्त के बिना कि पहले दो पत्ते भिन्न संख्याओं वाले हों। शुद्ध गणना से हम पाते हैं कि फुल हाउस की संभाविता 1/692 है। – अनु०

पहले हम यह गणना करें कि 24 व्यक्तियों के समूह में हरएक के जन्म की तारीख़ अलग–अलग होने की संभाविता कितनी है। पहले व्यक्ति का जन्मदिन पूछा जाये : यह तो वर्ष के 365 दिनों मे से कोई भी हो सकता है।[+] अब इस बात की संभाविता कितनी है कि दूसरे व्यक्ति का जन्मदिन इससे **अलग** होगा ? क्योंकि दूसरे व्यक्ति का जन्मदिन वर्ष के किसी भी दिन होना संभव है, इसलिए 365 में से सिर्फ़ एक बार संभावना है कि उसका जन्मदिन पहले व्यक्ति के साथ मेल खायेगा, और 364 बार संभावना है कि उससे अलग होगा। अतः अलग होने की संभाविता 364/365 है। इसी प्रकार, यदि इन दोनों के जन्मदिन अलग–अलग हैं तो तीसरे व्यक्ति का जन्मदिन इन दोनों से अलग होने की संभाविता 363/365 है, क्योंकि वर्ष के दो दिनों में ही यह शर्त पूरी नहीं होगी। आगे जिन–जिन व्यक्तियों के जन्मदिन हम पूछते जायेंगे, उन सबके जन्मदिन भिन्न–भिन्न होने की संभाविताएँ हैं 362/365, 361/365, 360/365, आदि, और अंत में 24वें व्यक्ति पर पहुँच कर संभाविता हो जाती है :

$$\frac{365\text{-}23}{365} = \frac{342}{365} ,$$

अतः सबके जन्मदिन अलग–अलग होने की संभाविता मालूम करने के लिए हमें इन सभी भिन्नों को आपस में गुणा करना होगा, जिससे प्राप्त होगा :

$$\frac{364}{365} \times \frac{363}{365} \times \frac{362}{365} \times \ldots\ldots\times \frac{342}{365} ,$$

उच्चतर गणित के तरीकों के प्रयोग से यह गुणा कुछ ही मिनटों में की जा सकती है, या यदि आप इन तरीकों से परिचित नहीं हैं तो सीधे–सीधे गुणा कर सकते हैं।[5] इस गणना का परिणाम है 0.46, अर्थात् कोई भी दो जन्मदिन **एक साथ न पड़ने** की संभाविता आधे से कुछ कम है। दूसरे शब्दों में, 100 में से 46 व्यक्तियों के दो–दो दर्जन मित्रों में सबके जन्मदिन अलग–अलग होंगे, और 54 व्यक्तियों के 24-24 मित्रों में से किन्हीं दो या अधिक के जन्मदिन मिलते होंगे।[*] अतः यदि आपके 40 या अधिक मित्र हैं, और आपको कभी भी एक ही दिन में दो जन्मदिन–उत्सवों पर निमंत्रित नहीं किया गया है, तो आप काफ़ी संभाविता के साथ निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि या तो आपके कई मित्र जन्मदिन मनाते ही नहीं, या फिर आपको उसमें बुलाते नहीं!

संपाती जन्मदिनों की समस्या इस बात का बेहतरीन उदाहरण है कि कैसे जटिल घटनाओं की संभाविता के मामले में सहज–बुद्धि से आँका गया परिणाम बिल्कुल ग़लत हो सकता है। लेखक ने यह प्रश्न बहुत–बहुत लोगों के सामने रखा है, जिनमें कई प्रमुख विज्ञानी भी शामिल हैं, और एक को छोड़ कर[6] हर कोई 2 : 1 से लेकर 15 : 1 तक की शर्त लगाने को तैयार था कि 24 मित्रों में ऐसा संपात नहीं होगा। यदि लेखक ने ये सारी शर्तें स्वीकार कर ली होतीं तो अब तक वह काफ़ी धनी हो गया होता !

---

[+] सरलता के लिए हम यहाँ चार वर्ष में एक बार आने वाले 366 वें दिन को नज़र–अंदाज़ कर रहे हैं। –अनु०

[5] लघुगुणक या कैलकुलेटर का उपयोग करके।

[*] तीस मित्र होने पर यह अनुपात 29:71 हो जायेगा, चालीस मित्र होने पर 11:89, और पचास मित्र होने पर 3:97। –अनु०

[6] एकमात्र अपवाद जो था वह (आप मानें या न मानें) एक हंगेरियाई गणितज्ञ था। (इस पुस्तक के प्रथम अध्याय की शुरुआत देखें।)

इस बात को बार–बार दुहराने की ज़रूरत है कि यदि हम विभिन्न घटनाओं की संभाविता की गणना नियमों के अनुसार करें और उनमें से सर्वाधिक संभाविता वाली घटना को चुन लें, तो बिल्कुल पक्का नहीं है कि वह घटना अन्य घटनाओं की अपेक्षा अधिक बारंबार घटेगी। जब तक हमारे परीक्षणों की संख्या हज़ारों–लाखों में न पहुँच जाये ("अरबों–खरबों" कहना और भी बेहतर होगा), तब तक इस प्रकार निकाला गया निष्कर्ष "संभावित" ही रहेगा, "निश्चित" कभी नहीं। जब थोड़ी–सी घटनाएँ ही परीक्षण के लिए उपलब्ध हों तो संभाविता वाले परिणाम ज़रा ढीले ही रहते हैं। अतः ऐसे में सांख्यिकीय विश्लेषण की उपयोगिता सीमित ही रहती है, जैसे विभिन्न गूढ़लिपियों (codes) या गुप्त संदेशों का अर्थ निकालने में, जिनमें थोड़ा ही लिखा हो।

उदाहरणार्थ, हम एडगर ऐलेन पो द्वारा अपनी प्रसिद्ध कहानी "दि गोल्ड बग" में वर्णित किस्से को लें। उन्होंने किन्हीं मि० लेग्रांद का ज़िक्र किया है, जिनको दक्षिण कैरोलिना के वीरान समुद्र–तट पर सैर करते हुए एक छोटा–सा चर्मपत्र मिला जो आधा गीली बालू में दबा हुआ था। लेग्रांद साहब उसे समुद्र–तट पर बनी अपनी कुटीर में ले आये। वहाँ आग तापते हुए जब उस चर्मपत्र को भी आग पर गर्म किया तो उस पर कुछ रहस्यमय निशान उभर आये। ज़ाहिर है कि यह लिखाई ऐसी स्याही से लिखी गयी थी कि वह ठंडे में तो बिल्कुल अदृश्य थी, पर गर्म होते ही लाल रंग में साफ़–साफ़ दिखाई देने लगी। इसमें एक खोपड़ी का चित्र था, जिससे संकेत मिलता है कि इसे किसी लुटेरे ने लिखा था, और नीचे बकरे का सिर बना हुआ था, जिससे निस्संदेह मालूम हो गया कि यह लुटेरा कोई और नहीं, बल्कि प्रसिद्ध कप्तान किड ही था।* बीच में कई पंक्तियाँ मुद्रण–चिह्नों से लिखी थीं जो किसी गुप्त ख़ज़ाने का अता–पता बताती मालूम पड़ती थीं (चित्र 87)।

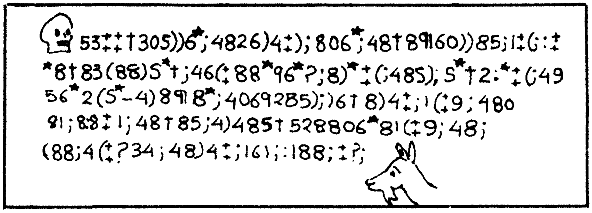


चित्र 87 : कप्तान किड का संदेश

अब क्योंकि एडगर ऐलेन पो ने कहा है, सो हम मान लेते हैं कि सत्रहवीं सदी के लुटेरे अर्ध–विराम और उद्धरण–चिन्ह तथा ‡ , + और ¶ जैसे अन्य मुद्रण–चिह्नों से परिचित थे।

मि० लेग्रांद को धन की ज़रूरत थी; सो उन्होंने अपनी सारी बौद्धिक शक्ति उस गुप्त संदेश का अर्थ निकालने में लगा दी, और अंत में अंग्रेज़ी भाषा में विभिन्न अक्षरों के प्रयोग की आपेक्षिक आवृत्ति के आधार पर सफलता पा ली। उनके तरीके का आधार यह था कि यदि आप किसी भी अंग्रेज़ी के पाठ में आये विभिन्न अक्षरों को गिनें, चाहे शेक्सपीयर के छंदों में या फिर एडगर वालेस की रहस्य–कथा में, तो आप पायेंगे कि अक्षर e कुल मिला कर सबसे अधिक बार आता है। इसके बाद सर्वाधिक बारंबारता के साथ आने वाले अक्षरों का क्रम इस प्रकार है :

a, o, i, d, h, n, r, s, t, u, y, c, f, g, l, m, w, b, .....

* अंग्रेज़ी में "किड" का अर्थ मेमना होता है। –अनु०

कप्तान किड के गुप्त संदेश में आने वाले भिन्न चिह्नों को गिन कर मि० लेग्रांद ने मालूम कर लिया कि इस संदेश में सबसे अधिक बार आने वाला चिह्न 8 था। "आहा", वे बोल उठे, "इसका मतलब है कि यह संभवतः अंग्रेज़ी अक्षर e का निशान है।"

इस एक मामले में उनका अनुमान सही निकल गया, पर स्वाभाविक ही ऐसे निष्कर्ष को बिल्कुल पक्का नहीं, **बहुत संभावित** ही कहा जा सकता था। और तो और, यदि गुप्त संदेश यह होता कि "You will find a lot of gold and coins in an iron box in woods two thousand yards south from an old hut on Bird Island's north tip", तो इसमें एक भी बार e नहीं आता! परंतु संभाविता के नियम मि० लेग्रांद के पक्ष में थे, और उनका अनुमान सचमुच सही निकला।

पहली बार में सफलता क्या मिली, मि० लेग्रांद को ज़रा ज़्यादा ही भरोसा हो गया, और उन्होंने उसी तरीके को अपनाते हुए संदेश में आये चिह्नों को उनके आने की आवृत्ति के क्रम में चुनना शुरू किया। निम्नलिखित तालिका में हम कप्तान किड के संदेश में आने वाले विभिन्न चिह्नों को उनकी आवृत्ति के क्रम में दे रहे हैं।

| संदेश में अक्षरों की आवृत्ति का क्रम | | अंग्रेज़ी भाषा में अक्षरों की आवृत्ति का क्रम | वास्तविक अर्थ |
|---|---|---|---|
| चिह्न 8 आया है | 33 बार | e | e |
| ; | 26 | a | t |
| 4 | 19 | o | h |
| ‡ | 16 | i | o |
| ( | 16 | d | r |
| * | 13 | h | n |
| 5 | 12 | n | a |
| 6 | 11 | r | i |
| + | 8 | s | d |
| 1 | 8 | t | |
| 0 | 6 | u | |
| g | 5 | y | |
| 2 | 5 | c | |
| i | 4 | f | |
| 3 | 4 | g | g |
| ? | 3 | l | u |
| ¶ | 2 | m | |
| – | 1 | w | |
| . | 1 | b | |

दाहिनी ओर के पहले कालम में अंग्रेज़ी वर्णमाला के अक्षर हैं जिन्हें अंग्रेज़ी भाषा में उनके आने की तुलनात्मक आवृत्ति के क्रम में प्रस्तुत किया गया है। अतः यह मान लेना तर्कसम्मत ही होता कि बायीं ओर के पहले कालम में दिये गये प्रत्येक चिह्न का अभिप्राय पहले दाहिने कालम में उसके सामने के अक्षर से होगा। परंतु ऐसा करने से तो हम पाते हैं कि कप्तान किड का संदेश इस प्रकार शुरू होता है :

n g i i s g u n d d r h a o e c r ......

बिल्कुल कोई तुक नहीं!

क्या हुआ? क्या वह पुराना डकैत इतना चालाक था कि उसने चुन–चुन कर ऐसे शब्द इस्तेमाल किये कि उनमें आने वाले अक्षर उस आवृत्ति के साथ न आयें जैसे कि सामान्य तौर पर अंग्रेज़ी भाषा में आते हैं? बिल्कुल नहीं; बात सिर्फ़ इतनी है कि वह संदेश अक्षरों की सांख्यिकीय गणना करने के लिए पर्याप्त लंबा नहीं है; इसलिए अक्षरों का सर्वाधिक संभावित क्रम इसमें नहीं मिलता। यदि कप्तान किड ने अपना ख़ज़ाना ऐसे अजीब ढंग से छिपाया होता कि उसे पाने के निर्देश लिखने में कई पृष्ठ खप जाते, या इससे भी बेहतर, एक पूरा ग्रंथ ही बन जाता, तो आवृत्ति के नियमों का इस्तेमाल करते हुए गुत्थी सुलझाने में मि० लेग्रांद को सफलता मिलने की अधिक अच्छी संभावना रहती।

यदि आप एक सिक्के को 100 बार उछालें तो आप काफ़ी निश्चय के साथ कह सकते हैं कि लगभग 50 बार चित आयेगा, परंतु यदि सिर्फ़ 4 ही बार उछालें तो क्या जाने, तीन (75 प्रतिशत) चित और एक (25 प्रतिशत) पट आ जायें, या इससे ठीक उलटा हो जाये। इस बारे में नियम यही है कि जितनी अधिक बार हम प्रयोग करेंगे, उतनी ही अधिक कड़ाई के साथ संभाविता के नियमों का पालन होगा।

हाँ, तो जब सांख्यिकीय विश्लेषण वाले सरल तरीके से काम नहीं चला, क्योंकि गुप्त संदेश में पर्याप्त संख्या में अक्षर नहीं थे, तो मि० लेग्रांद को अंग्रेज़ी भाषा के विभिन्न शब्दों की विस्तृत रचना पर आधारित विश्लेषण करना पड़ा। सबसे पहले तो उन्होंने इस मान्यता की पुष्टि की कि सबसे अधिक बार आने वाला चिह्न 8 सचमुच e का ही द्योतक है : उन्होंने ग़ौर किया कि इस अपेक्षाकृत छोटे–से संदेश में ही 88 यह योग बारंबार (5 बार) आया है। अब हर कोई जानता ही है कि अंग्रेज़ी शब्दों में e बहुत बार दुहराया जाता है (जैसे meet, fleet, speed, seen, been, agree, आदि में)। यही नहीं, यदि 8 सचमुच e की जगह आया है तो हम अपेक्षा करेंगे कि यह "the" शब्द का भाग बन कर बार–बार आयेगा। गुप्त संदेश के पाठ के निरीक्षण से हम पाते हैं कि ; 48 यह योग इन थोड़ी–सी पंक्तियों में ही सात बार आ गया है। यदि यह अनुमान सच हो, तो हमे मानना पड़ेगा कि ; का अर्थ t है और 4 का अर्थ h है।

कप्तान किड के संदेश का अर्थ निकालने में इसके बाद क्या कदम उठाये गये, इसके विस्तार के लिए पाठक श्री पो की मूल कहानी को देखें। अंततः इस संदेश का पूरा पाठ यह पाया गया : "A good glass in the bishop's hostel in the devil's seat. Forty-one degrees and thirteen minutes northeast by north. Main branch seventh limb east side. Shoot from the left eye of the death's head. A bee-line from the tree through the shot fifty feet out."

विभिन्न चिह्नों के सही अर्थ, जैसे मि0 लेग्रांद ने निकाले, हमारी तालिका में अंतिम कालम में दिखाये गये हैं, और आप देख सकते हैं कि ये ठीक उसी व्यवस्था के अनुसार नहीं हैं जो संभाविता के नियमों के आधार पर अपेक्षित है। ऐसा इसीलिए है कि पाठ इतना छोटा है कि संभाविता के नियमों को कार्य करने का ठीक से मौका ही नहीं मिलता। परंतु इस छोटे–से "सांख्यिकीय नमूने" में भी कुछ हद तक तो संभाविता की थ्योरी के अनुसार चलने की अक्षरों की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती ही है, और यदि संदेश में अक्षरों की संख्या बहुत बड़ी हो तो यह प्रवृत्ति लगभग अचूक नियम बन जायेगी।

ऐसा लगता है कि केवल एक ही ऐसा उदाहरण है जिसमें संभाविता के नियमों के परिणाम को वास्तव में बहुत बड़ी संख्या में प्रयोग करके जाँचा गया है (सिवाय इसके कि बीमा कंपनियाँ दीवालिया नहीं हो जातीं)। यह है अमरीका के झंडे और माचिस वाला प्रसिद्ध सवाल।

संभाविता के इस सवाल से निपटने के लिए आपको एक अमरीकी झंडे के लाल व सफ़ेद पट्टियों वाले भाग की आवश्यकता पड़ेगी। यदि झंडा उपलब्ध न हो तो एक बड़ा–सा काग़ज़ लीजिए और उस पर बराबर–बराबर दूरी पर कई समांतर रेखाएँ खींच कर पट्टियाँ बना लीजिए। तब आपको एक माचिस चाहिए – कोई भी माचिस हो सकती है, बशर्ते कि उसकी तीलियाँ पट्टियों की चौड़ाई से कम लंबी हों। अब आपको एक ग्रीक पाई चाहिए जो कि खाने की चीज़ नहीं है, बल्कि ग्रीक वर्णमाला का एक अक्षर है जैसे हिन्दी में "प" होता है। इसे "$\pi$" लिखते हैं। ग्रीक वर्णमाला में "प" की ध्वनि के अलावा इसका एक और अर्थ भी है : किसी भी वृत्त की परिमिति व व्यास का अनुपात। आपको मालूम होगा कि इसका मान है 3.1415926535..... (इसके आगे और भी बहुत–से अंक ज्ञात हैं, पर उन सब की हमें ज़रूरत नहीं पड़ेगी)।

अब झंडे को एक मेज़ पर बिछा दीजिए, एक तीली को हवा में उछालिए और इसे झंडे पर गिरने दीजिए (चित्र 88 क)। हो सकता है कि यह इस प्रकार गिरे कि पूरी एक ही पट्टी के अंदर रहे, या हो सकता है कि दो पट्टियों की सीमा–रेखा को काटे। दोनों प्रकार से गिरने की संभावना कितनी–कितनी है?

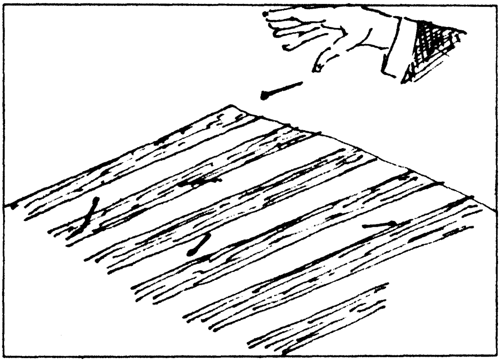

चित्र 88 : पट्टियों और तीली का खेल

दूसरी समस्याओं में संभाविताएँ ज्ञात करने के लिए हमने जो विधि अपनायी है, उसके अनुसार हमें सीमा–रेखा को काटने या न काटने के अंतर्गत आने वाली विभिन्न संभावनाओं को गिनना होगा। परंतु हम सभी संभावनाओं को कैसे गिन सकते हैं, जबकि यह स्पष्ट है कि कोई भी तीली झंडे पर अनंत प्रकार से गिर सकती है?

आइए, इस प्रश्न पर ज़रा और ग़ौर करें। जिस भी पट्टी पर तीली गिरे, उसकी अपेक्षा तीली की स्थिति को बतलाने के लिए हमें तीली के मध्य से निकटतम सीमा–रेखा की दूरी बतानी होगी, और तीली तथा पट्टी की दिशा के बीच बनने वाला कोण भी बताना होगा (चित्र 89)। सरलता के लिए तीलियों की लंबाई और पट्टियों की चौड़ाई को बराबर–बराबर (जैसे प्रत्येक को दो इंच) मानते हुए हमने तीलियों के गिरने के तीन प्रतिनिधि उदाहरण दिये है।

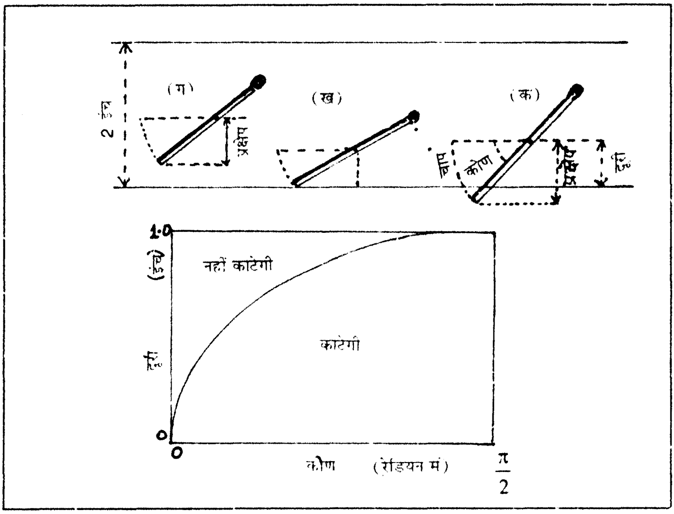

चित्र 89 : तीली वाली समस्या में साइन का आलेख

यदि तीली का केन्द्र किसी सीमा–रेखा के काफ़ी पास हो, और कोण कुछ बड़ा–सा हो (जैसा "क" में दिखाया है), तो तीली रेखा को काटेगी। दूसरी ओर, यदि कोण छोटा हो (जैसा "ख" में है), या रेखा से दूरी अधिक हो (जैसा "ग" में है), तो तीली एक ही पट्टी की सीमाओं के भीतर रहेगी। परिशुद्ध ढंग से यूँ कहेंगे कि तीली रेखा को तभी काटेगी यदि पट्टियों की अभिलंब दिशा में आधी तीली का प्रक्षेप, सीमा व तीली के बीच दूरी से अधिक हो (जैसा कि "क" में है)। यदि ऐसा नहीं हो (जैसा "ख" तथा "ग" में है) तो वह रेखा को नहीं काटेगी। इस कथन को चित्र के निचले भाग में ग्राफ़ बना कर बताया गया है। इसमें गिरी हुई तीली के कोण को रेडियन में क्षैतिज (X) अक्ष पर अंकित किया है। (किसी कोण का मान रेडियन में उतना ही होता है जितनी एक इंच त्रिज्या के वृत्त में उस कोण वाली चाप की लंबाई इंचों में होती है।) ऊर्ध्वाधर (Y) अक्ष पर हमने ऊपर की दिशा में आधी तीली के प्रक्षेप की लंबाई अंकित की है; इस लंबाई को त्रिकोणमिति में संबंधित कोण का **साइन** (sine) कहते हैं। स्पष्ट है कि जब चाप की लंबाई शून्य होगी तो साइन भी शून्य ही होगा क्योंकि ऐसे में तीली क्षैतिज स्थिति में है। जब चाप $\pi/2$ हो जाती है, यानी वह कोण समकोण हो जाता है,[7] तो साइन का मान एक हो जाता है, क्योंकि तीली की स्थिति ऊर्ध्वाधर है और तीली स्वयं अपने प्रक्षेप को पूरा ढक लेती है। चाप की लंबाई का मान इन दोनों के बीच में हो तो साइन का मान साइनुसायड नामक परिचित तरंग–नुमा वक्र से जाना जाता है। (चित्र 89 में 0 और $\pi/2$ के बीच में पड़ने वाली चौथाई तरंग ही दिखायी गयी है।)

इस चित्र का इस्तेमाल करके हम सुविधापूर्वक आकलन कर सकते हैं कि गिरी हुई तीली के रेखा को काटने या न काटने की संभाविता कितनी–कितनी है। वास्तव में, जैसा हमने ऊपर देखा ही है (चित्र 89 के ऊपरी भाग में दिये गये तीन उदाहरणों को फिर देख लीजिए), तीली पट्टियों की सीमा–रेखा को तभी काटेगी यदि तीली के केन्द्र की सीमा–रेखा से दूरी आधी तीली के प्रक्षेप से कम

[7] जिस वृत्त की त्रिज्या 1 हो, उसकी परिमिति उसके व्यास से $\pi$ गुणा यानी $2\pi$ होती है। अतः वृत्त के एक पाद की लंबाई $2\pi/4$ या $\pi/2$ होती है।

हो, अर्थात् कोण के साइन से कम हो। ऐसा तब होगा जब हमारे ग्राफ़ में उस दूरी और उस कोण को अंकित करने से जो बिंदु मिलेगा वह साइन वाली वक्र से **नीचे** पड़े। दूसरी ओर, जो तीली पूरी तरह एक ही पट्टी के भीतर गिरेगी, उससे हमें साइन वाली वक्र रेखा के **ऊपर** बिंदु मिलेगा।

अतः संभाविता की गणना के हमारे नियमों के अुनसार, सीमा–रेखा को काटने और न काटने की संभाविताओं का अनुपात वही होगा जो कि साइन–वक्र के नीचे और उससे ऊपर के क्षेत्रफलों का है। या हम यूँ कह सकते हैं कि इनमें से किसी भी घटना की संभाविता की गणना करने के लिए हमें वक्र के नीचे या ऊपर के क्षेत्रफल को ग्राफ़ की आयत के पूरे क्षेत्रफल से भाग देना पड़ेगा। इस बात का गणितीय प्रमाण दिया जा सकता है (देखिए, अध्याय दो) कि हमारे ग्राफ़ में अंकित साइन–वक्र के नीचे का क्षेत्रफल पूरा 1 के बराबर है। क्योंकि पूरी आयत का क्षेत्रफल तो $\pi/2\times1=\pi/2$ है, अतः तीली के सीमा–रेखा के आर–पार गिरने की संभाविता है : $1\div(\pi/2)=2/\pi$ (यदि तीली की लंबाई पट्टी की चौड़ाई के बराबर हो)।

यहाँ $\pi$ अचानक आ पड़ता है, जहाँ इसके आने की क़तई अपेक्षा नहीं थी। इस रोचक तथ्य को सबसे पहले अठारहवीं सदी के विज्ञानी काउंट बुफ़ों ने पहचाना, और इसीलिए अब तीली और पट्टी वाली समस्या उनके नाम पर नामित है। एक उद्यमी इतावाली गणितज्ञ लात्सेरीनी ने सचमुच प्रयोग करके देखा जिसमें 3408 बार तीली उछाली गयी और पाया गया कि इनमें से 2169 बार तीली सीमा–रेखा को काटती हुई गिरी। बुफ़ों के फ़ार्मूले के साथ इस प्रयोग के विवरण की तुलना करने से $\pi$ के स्थान पर $2\times3408/2169$ या 3.1415929 प्राप्त होता है, जो कि दशमलव के छठे स्थान तक $\pi$ के परिशुद्ध गणितीय मान से मिलता है और सातवें स्थान पर ही उससे कुछ अलग है।

सचमुच, यह संभाविता के नियमों के सही होने का बड़ा ही रोचक प्रमाण है, पर इससे भी अधिक विचित्र यह होगा कि संख्या "2" का मान ज्ञात करने के लिए एक सिक्के को लाखों–करोड़ों बार उछाला जाये और कुल बारियों की संख्या को चित आने की संख्या से भाग दिया जायें। निश्चय ही, इस प्रकार आप पायेंगे : 2.000000......, *जिसमें पायी जाने वाली त्रुटि वैसी ही बारीक होगी जैसी कि लात्सेरीनी द्वारा निकाले गये "$\pi$" के मान में।

## 4. "रहस्यमय" एंट्रोपी

संभाविता के गणित के उपर्युक्त उदाहरणों से, जो सभी साधारण जीवन की घटनाओं से संबंधित हैं, हमने जाना कि छोटी संख्याओं में दुहरायी जाने वाली घटनाओं के लिए यदि संभाविता के आधार पर भविष्य–कथन किये जायें तो ये अक्सर निराशाजनक हो सकते हैं, परंतु जब हम बड़ी संख्याओं की ओर जाते हैं तो ये उत्तरोत्तर बेहतर होते जाते हैं। अब हम जानते हैं कि हम किसी पदार्थ का छोटे से छोटा टुकड़ा भी लें (जो कि सुविधापूर्वक पकड़े जाने योग्य हो) तो उसमें लगभग असंख्य अणु या परमाणु मौजूद रहते है। इस कारण ये संभाविता के नियम अणु–परमाणुओं की संख्याओं के साथ व्यवहार करने में विशेष रूप से काम आ सकते हैं। जैसे, पियक्कड़ की चहलकदमी वाले उदाहरण में यदि आधा दर्जन पियक्कड़ हों, जो शायद दो–दो दर्जन कदम उठायें, तो सांख्यिकीय नियम हमें केवल मोटे तौर पर ही कुछ बता सकते है, परंतु वही नियम जब हर सैकंड में अरबों बार टक्करें खाते हुए रंग के अरबों अणुओं पर प्रयुक्त किये जाते हैं, तो इस प्रकार प्राप्त विसरण के नियम का अतीव कड़ाई से पालन होता है।

---

* या 1.99999........ – अनु०

एक और बात पर ध्यान दीजिए। जो रंग पहले परख–नली के सिर्फ़ आधे पानी में घुला हुआ था, वह (और पानी डाल देने पर) विसरण की प्रक्रिया द्वारा पूरे द्रव में एक समान फैल जाना चाहता है : हम कह सकते हैं कि ऐसा इसलिए होता है कि ऐसा एक समान वितरण पहले वाले वितरण की अपेक्षा **अधिक संभावित** है। ठीक यही कारण है कि जिस कमरे में बैठ कर आप इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं, वह एक दीवार से दूसरी दीवार तक और फ़र्श से छत तक एक समान हवा से भरा है, और आपको कभी यह ख़्याल तक नहीं आता कि कमरे की सारी हवा अचानक एक दूर के कोने में इकट्ठी हो सकती है, जिससे कि अपनी कुर्सी पर बैठे–बैठे आपका दम घुट जाये। **यह भयानक घटना किसी भी तरह भौतिक रूप से असंभव नहीं है; बस, इसकी संभाविता बहुत कम है।**

स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, आइए, एक कमरे की बात सोचें जो एक काल्पनिक ऊर्ध्वाधर (खड़ी) सीमा द्वारा दो बराबर भागों में बँटा हुआ है, और पूछें कि दोनों भागों के बीच हवा के अणुओं का सबसे अधिक संभावित वितरण कैसा होगा। स्वाभाविक ही, यह समस्या सिक्का उछालने वाली समस्या के समान ही है, जिसकी हमने पिछले परिच्छेद में चर्चा की थी। यदि हम एक अकेले अणु को लें, तो इसके कमरे के दाहिने आधे या बायें आधे भाग में होने की संभाविता बराबर–बराबर है, ठीक उसी प्रकार जैसे उछाला हुआ सिक्का मेज़ पर चित या पट गिर सकता है। अब दूसरे, तीसरे, आदि किसी भी एक अणु की वही बात है: कमरे के दाहिने या बायें भाग में उसके होने की संभाविता बराबर–बराबर है, भले ही अन्य अणु किसी भी भाग में हों।[8] इस प्रकार कमरे के दोनों आधे भागों में अणुओं के वितरण की समस्या वैसी ही है जैसी सिक्के को बहुत बार उछालने पर चित या पट आने की समस्या। जैसा कि चित्र 84 में आपने देखा, सिक्के वाले मामले में 50-50 प्रतिशत वाले वितरण की संभाविता ही सबसे अधिक है। उस चित्र से हमने यह भी देखा है कि उछालों की संख्या के बढ़ने के साथ 50 प्रतिशत के बिंदु पर सभांविता भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, और जब संख्या बहुत बड़ी हो जाती है तो यह संभाविता निश्चितता में बदल जाती है। अणुओं की संख्या बढ़ने पर भी वही होगा। अब क्योंकि एक औसत आकार वाले कमरे में कोई $10^{27}$ अणु होते हैं,[9] अतः इन सबके एक साथ कमरे के एक ही भाग में (जैसे दाहिने भाग में) इकट्ठे हो जाने की संभाविता वही होगी, जो सिक्के की $10^{27}$ उछालों में हर बार चित आने की होती है :

$$(1/2)^{10^{27}} = \{(1/2)^{10}\}^{10^{26}} \cong 10^{-3\times10^{26}},$$ अर्थात् $10^{3\times10^{26}}$ में से एक !

अच्छा, यह सोचिए कि कितने समय में एक बार ऐसी स्थिति आ सकती है कि हवा के सभी अणु कमरे के एक ही भाग में हों? क्योंकि हवा के अणु, जो कि लगभग 0.5 कि०मी० प्रति सै० की गति से चलते हैं, कमरे के एक सिरे से दूसरे तक पहुँचने में केवल .01 सैकंड ही लगाते है, अतः कमरे में उनके वितरण में हर सैकंड में 100 बार अदल–बदल होगी। इसका परिणाम यह होगा कि सभी अणुओं के एक भाग में एकत्र होने में हमें औसतन $10^{3\times10^{26}-2} = 10^{299,999,999,999,999,999,999,999,998}$ सै० तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जबकि ब्रह्मांड की कुल आयु $10^{17}$ सैकंड है ! अतः आप तसल्ली से अपनी पुस्तक पढ़ते रहिए : संयोगवश दम घुट जाने को लेकर घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है।

---

8 आप यह न सोचें कि जिस क्षेत्र में पहले ही ढेर–से अणु हों, वहाँ एक और अणु के जाने में कोई रुकावट होगी। वास्तव में गैस के विभिन्न अणुओं के बीच इतनी अधिक दूरी होती है कि जगह की तंगी बिल्कुल नहीं होती।

9 किसी 10 फुट × 15 फुट के कमरे में, जिसमें 9 फुट ऊँची छत हो, आयतन 1350 घन फुट होगा, या, $4\times10^7$ घन सेंमी, अर्थात् $4\times10^4$ लिटर। अब क्योंकि किसी भी गैस के 22.4 लिटर में $6\times10^{23}$ अणु होते हैं, अतः $4\times10^4$ लिटर में $4\times10^4\times6\times10^{23}/22.4 \cong 10^{27}$ अणु होंगे।

एक अन्य उदाहरण के तौर पर मेज़ पर रखे पानी के गिलास को लीजिए। हम जानते हैं कि पानी के अणु अपनी अनियमित तापीय गति के क्रम में सभी संभव दिशाओं में बड़े वेग से दौड़ रहे हैं, परंतु इनको जोड़ने वाले बल इन्हें एक–दूसरे से दूर उड़ जाने से रोकते हैं। क्योंकि हर अकेले अणु की गति की दिशा पूरी तरह संयोग के नियम से नियंत्रित है, अतः हम ऐसी संभावना भी सोच सकते हैं कि किसी एक क्षण में गिलास के ऊपर वाले आधे भाग के अणुओं की गति ऊपर की ओर हो, जबकि नीचे वाले भाग में भरे आधे अणु नीचे की ओर चल रहे हों।[10] दोनों समूहों को बाँटने वाले क्षैतिज समतल पर स्थित अणुओं पर यद्यपि परस्पर आकर्षण के बल लगेंगे परंतु ये बल दोनों समूहों की "अलग होने की एकजुट इच्छा" का विरोध नहीं कर पायेंगे, और हम एक अद्भुत भौतिक घटना देखेंगे : गिलास का आधा पानी अपने आप बंदूक की गोली के वेग से छत की ओर दौड़ पड़ेगा!

एक अन्य संभावना यह है कि जल के अणुओं की सारी ऊर्जा उन्हीं अणुओं में केन्द्रित हो जाये जो गिलास के ऊपर वाले भाग में हैं। ऐसा होने पर पेंदे के पास का पानी एकाएक जम जायेगा, जबकि इसकी ऊपरी परतें ज़ोरों से उबलने लगेंगी। क्या कारण है कि ऐसी घटनाएँ घटती हुई आपने कभी नहीं देखीं? ऐसा नहीं कि ये पूरी तरह असंभव हैं, परंतु इसलिए कि इनकी संभाविता अतीव कम है। सचमुच, यदि आप गणना करें कि शुरू में बेतरतीब रूप से सभी दिशाओं में वितरित आणविक वेगों की दिशाएँ संयोगवश ऊपर दी गयी स्थिति में हो जाने की संभाविता कितनी है, तो आपको लगभग उतनी ही छोटी मात्रा प्राप्त होगी, जितनी कि हवा के सभी अणुओं के एक कोने में इकट्ठे हो जाने की संभाविता है। इसी प्रकार अणुओं की आपसी टक्करों के कारण उनका एक समूह अपनी अधिकतर गतिज ऊर्जा खो दे, जबकि दूसरा समूह अपने उचित हिस्से से काफ़ी अधिक ऊर्जा प्राप्त करे, इसकी संभाविता भी नहीं के बराबर है। यहाँ भी आप पायेंगे कि आम तौर पर अणुओं के वेगों का जो वितरण देखा जाता है, वह वही है जिसकी संभाविता सभी प्रकार के अन्य वितरणों से अधिक है।*

अब यदि हम ज़बरदस्ती ऐसी अवस्था ले आयें जिसमें कि अणुओं की स्थितियों या वेगों का वितरण सबसे अधिक संभाविता वाला नहीं हो, जैसी कि कमरे के एक कोने से सारी हवा बाहर निकाल देने पर प्राप्त होगी, या ठंडे पानी के ऊपर कुछ गर्म पानी डाल देने से प्राप्त होगी, तो क्या होगा? भौतिक परिवर्तनों का एक सिलसिला शुरू होगा जो हमारे पदार्थ को इस कम संभावित अवस्था से सर्वाधिक संभावित की ओर ले जायेगा। हवा कमरे में विसरण करेगी (फैलेगी), जब तक कि यह पूरे कमरे को एक समान नहीं भर लेती, और गिलास में ऊपर के भाग से गर्मी पेंदे की ओर बहेगी, जब तक कि पूरे पानी का तापमान एक नहीं हो जाता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **वे सभी भौतिक प्रक्रियाएँ, जो अणुओं की अनियमित गतियों पर निर्भर हैं, उसी दिशा में अग्रसर होती हैं जिसमें संभाविता बढ़ती जाये। साम्य (equilibrium) की स्थिति, जहाँ पहुँचने पर और कोई परिवर्तन नहीं होता, वह है जिसमें संभाविता सबसे अधिक है।** जैसा कि हमने कमरे की हवा वाले उदाहरण में देखा है, विभिन्न आणविक वितरणों की संभाविताएँ अक्सर बहुत ही छोटी संख्याओं द्वारा व्यक्त की जाती हैं, जो सुविधाजनक नहीं हैं (जैसे पूरी हवा दाहिने आधे कमरे में एकत्र होने के लिए $10^{-3\times10^{26}}$)। अतः ऐसी संख्या की बजाय उसका लॉग या लघुगणक (logarithm) बताने की परिपाटी

---

[10] वास्तव में हमें ऊपर जाने वाले अणुओं में ही रुचि है, परंतु सभी अणु एक साथ ऊपर वाली दिशा में नहीं चल सकते – संवेग की अविनाशिता के यांत्रिक नियम के मद्देनज़र वैसा होना असंभव है। इसलिए हम आधे ऊपर, आधे नीचे की बात कह रहे हैं।

* अणुओं की संख्या बहुत बड़ी होने के कारण सभी "अन्य" वितरणों की संभाविता नहीं के बराबर होती है। –अनु०

है। यह मात्रा (संभाविता का लॉग) **एंट्रोपी** नाम से जानी जाती है, और पदार्थ की अनियमत तापीय गति से जुड़े सभी प्रश्नों में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ऊपर जो कहा गया कि भौतिक प्रक्रियाएँ सर्वाधिक संभाविता वाली स्थिति की ओर ले जाती हैं, उसे इस रूप में कहा जा सकता है : **किसी भी भौतिक निकाय में अपने आप जो कोई भी परिवर्तन होते हैं, वे एंट्रोपी के बढ़ने की दिशा में होते हैं, और साम्य की अंतिम स्थिति में एंट्रोपी अपने सर्वाधिक संभव मान के बराबर होती है।**

यह सुप्रसिद्ध **एंट्रोपी का नियम** है, जिसे ऊष्मागतिकी (thermodynamics) का दूसरा नियम भी कहा जाता है। (पहला नियम तो ऊर्जा की अविनाशिता बतलाता है।) विद्यार्थी प्रायः इस विषय में घबराते हैं, पर आप देख सकते हैं कि इसमें कोई ऐसी बात नहीं है जिससे आपको डर लगे।

एंट्रोपी के नियम को **बढ़ती अव्यवस्था का नियम** भी कहा जा सकता है। जैसा हमने ऊपर दिये सभी उदाहरणों में देखा है, एंट्रोपी सर्वाधिक तभी होती है जब अणुओं की स्थितियाँ एवं गतियाँ पूरी तरह बेतरतीब ढंग से वितरित होती हैं, अर्थात् उनकी गति या स्थिति में कुछ तरतीब लाने की कोशिश से एंट्रोपी कम हो जाती है। एंट्रोपी के नियम को एक अन्य रूप में भी रखा जा सकता है, जो अधिक व्यावहारिक है, जिसका संबंध ऊष्मा को यांत्रिक गति में बदलने की संभावना से है। यदि हम याद रखें कि ऊष्मा वास्तव में अणुओं की अव्यवस्थित यांत्रिक गति ही है, जबकि पूरे पिंड के चलने का अर्थ है सभी अणुओं का एक साथ चलना, तो यह समझना आसान होगा किसी भौतिक पिंड के अंदर की ऊष्मा को पूरी तरह यांत्रिक ऊर्जा (स्थूल गति) में बदलने का अर्थ है उस पिंड के सभी अणुओं को एक ही दिशा में चलने के लिए बाध्य करना। परंतु पानी से भरे गिलास वाले उदाहरण में, जहाँ आधे पानी के अपने आप छत की ओर उछलने की बात थी, हमने देखा है कि इस प्रकार की परिघटना की संभाविता इतनी कम है कि इसे व्यावहारिक रूप से असंभव ही माना जायेगा। **अतः ऊष्मा की ऊर्जा कभी भी पूरी तरह यांत्रिक गति में नहीं बदल सकती, यद्यपि यांत्रिक गति की ऊर्जा अवश्य पूरी तरह ऊष्मा बन सकती है (जैसे घर्षण द्वारा)।** यह नियम तथाकथित "दूसरे प्रकार की सतत चलने वाली मोटर"[11] की संभावना को वर्जित कर देता है। (यह मोटर एक ऐसा काल्पनिक यंत्र है जो साधारण तापमान पर रखे हुए किसी भौतिक पिंड में से ऊष्मा निकाल–निकाल कर उसे यांत्रिक गति में बदलता जाता है। इससे वह पिंड ठंडा होता जाता है, और उसकी ऊर्जा से लगातार यांत्रिक कार्य होता जाता है।) उदाहरणतया, भाप से चलने वाला ऐसा जहाज़ बनाना असंभव है जिसके बॉयलर में कोयले को जला कर नहीं बल्कि समुद्र के पानी से ऊष्मा निकाल कर वाष्प बनती हो, अर्थात् जिसमें पंप द्वारा इंजिन में पानी खींचा जाता हो और उसकी गर्मी निकाल कर उस पानी को बर्फ़ के टुकड़ों के रूप में वापिस समुद्र में फेंक दिया जाता हो।

परंतु तब साधारण भाप–इंजिन एंट्रोपी के नियम का उल्लंघन किये बिना ऊष्मा को गति में कैसे बदल देते हैं? यह करिश्मा इस तथ्य के कारण संभव हो जाता है कि आपके इंजिन में **ईंधन जलाने से मुक्त हुई गर्मी का केवल एक भाग ही गतिज ऊर्जा में बदला जाता है,** जबकि एक और बड़ा भाग तो निकास की वाष्प के रूप में बारह फेंक दिया जाता है, या फिर विशेष रूप से लगाये हुए वाष्प–शीतकों द्वारा सोख लिया जाता है। यहाँ हमारे निकाय में दो विपरीत दिशाओं में एंट्रोपी के परिवर्तन होते हैं : (1) ऊष्मा का एक भाग पिस्टन की यांत्रिक ऊर्जा में बदल जाने से एंट्रोपी में कमी

[11] "पहले प्रकार की सतत चलने वाली मोटर" वह यंत्र है जो बाहरी ऊर्जा की आपूर्ति के बिना बराबर कार्य करती जाये – यह ऊर्जा की अविनाशिता के नियम के विरुद्ध होने के कारण असंभव है।

आना, और (2) दूसरा भाग गर्म पानी के बॉयलरों से ठंडे शीतकों में चले जाने के परिणाम–स्वरूप एंट्रोपी में वृद्धि। एंट्रोपी के नियम का तो इतना ही तकाज़ा है कि निकाय की **कुल एंट्रोपी** की मात्रा में वृद्धि हो और इसका पालन करने के लिए दूसरे प्रकार के परिवर्तन की मात्रा पहले प्रकार से अधिक करनी पड़ती है। इस स्थिति को कुछ बेहतर समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए जिसमें 5 किलोग्राम का एक भार फ़र्श से 6 फुट ऊँचे पटरे पर रखा है। अब ऊर्जा की अविनाशिता के सिद्धांत के अनुसार यह बिल्कुल असंभव है कि यह भार अपने आप, किसी बाहरी सहायता के बिना, छत की ओर ऊपर उठ जाये (चित्र 89★)। दूसरी ओर, यह बिल्कुल संभव है कि इसके एक भाग को नीचे फ़र्श पर गिरने दिया जाये और इस प्रकार मुक्त हुई ऊर्जा का उपयोग दूसरे भाग को ऊपर उठाने में किया जाये।

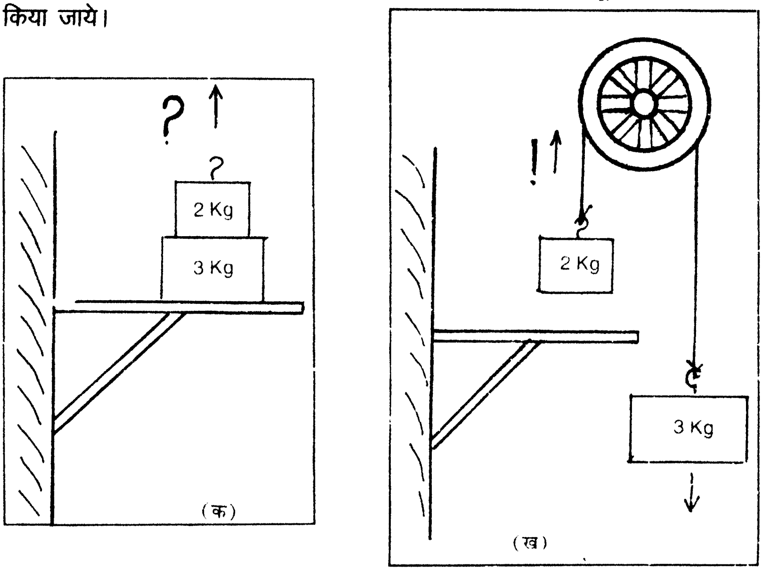


चित्र 89★: भार 'अपने आप' ऊपर कैसे उठ सकता है?

ऐसे ही ढंग से हम अपने निकाय के एक भाग की एंट्रोपी कम कर सकते हैं, बशर्ते कि दूसरे भाग की एंट्रोपी में वृद्धि के द्वारा उस कमी को पूरा किया जा सके। दूसरे शब्दों में, जहाँ **अणु अव्यवस्थित ढंग से चल रहे हों, हम एक क्षेत्र में कुछ व्यवस्था ला सकते हैं, यदि हम इसके लिए तैयार हों कि दूसरे क्षेत्र के अणुओं की गति में और भी अधिक अव्यवस्था हो जाये।** बहुत–सी व्यावहारिक स्थितियों में, जैसे सब प्रकार के ताप–इंजिनों में, हमें ऐसा करने में कोई हर्ज़ नहीं लगता।

## 5. सांख्यिकीय उतार-चढ़ाव

पिछले परिच्छेद की चर्चा से आपको अवश्य स्पष्ट हो गया होगा कि एंट्रोपी का नियम और इसके सभी परिणाम पूरी तरह इस तथ्य पर आधारित हैं कि स्थूल पिंडों की भौतिकी में हम सदा अणुओं की अति विशाल संख्याओं को लेते हैं, जिसके कारण संभाविता पर आधारित कोई भी भविष्य–कथन लगभग पूरी तरह निश्चितता में बदल जाता है। परंतु जब हम पदार्थ की बहुत थोड़ी मात्रा को लेते हैं तो इस प्रकार का भविष्य–कथन उतना निश्चित नहीं रहता।

उदाहरण के तौर पर, एक बड़े—से कमरे में भरी हवा पर विचार करने की बजाय (जैसा हमने पिछले उदाहरण में किया) यदि हम इससे बहुत कम आयतन में हवा लें, जैसे एक छोटे—से घन में जिसका प्रत्येक किनारा एक माइक्रोन[12] के सौवें भाग के बराबर हो, तो स्थिति बिल्कुल अलग दिखाई देगी। सचमुच, क्योंकि हमारे घन का आयतन $10^{-18}$ घन सेंमी अर्थात् $10^{-21}$ लिटर है, अतः इसमें केवल $10^{-21} \times 6 \times 10^{23}/22.4 \approx 30$ अणु होंगे, और मूल घन के आधे भाग में उन सबके इकट्ठे हो जाने की संभाविता होगी $(1/2)^{30} \approx 10^{-9}$। दूसरी ओर, घन के अपेक्षाकृत बहुत छोटे आकार के कारण अणुओं की गतियों में उलट—फेर होने की दर बढ़कर $5 \times 10^{10}$ बारी प्रति सैकंड हो जायेगी। (क्योंकि वेग होगा 0.5 कि0मी0 प्रति सैकंड परंतु दूरी केवल $10^{-6}$ सेंमी होगी)। अतः ($10^{-9}$ को $5 \times 10^{10}$ से गुणा करके) हर एक सैकंड में औसतन 50 बार हम पायेंगे कि घन का आधा भाग खाली है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि पूरे नहीं, आधे से कुछ ही अधिक अणुओं के आधे घन में एकत्रित होने की बात हो, तो ऐसी घटनाएँ काफ़ी अधिक जल्दी—जल्दी होंगी। उदाहरणतया ऐसा वितरण, जिसमें कोई 20 अणु एक आधे भाग में हों और शेष 10 दूसरे आधे में (अर्थात् पहले आधे भाग में केवल 10 अणु अधिक हों), एक सैकंड में कितनी बार होगा? इसकी आवृत्ति होगी $(1/2)^{10} \times 5 \times 10^{10} \approx 10^{-3} \times 5 \times 10^{10}$, अर्थात् 5 करोड़ बार प्रति सैकंड।*

अतः छोटे पैमाने पर तो हवा में अणुओं का वितरण एक समान से काफ़ी दूर है। यदि हम पर्याप्त आवर्धन करके देख पाते, तो मालूम पड़ता कि जगह—जगह पर हवा के कण क्षण—भर के लिए केंद्रित होते हैं, पर तुरंत फिर से शेष हवा में मिल जाते हैं, फिर दूसरी जगहों पर केंद्रित हो जाते हैं, आदि। इस प्रभाव को **घनत्व का उतार-चढ़ाव** कहते हैं और अनेक भौतिक परिघटनाओं में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उदाहरणतया, जब सूर्य की किरणें वातावरण से गुज़रती हैं तो ये असमानताएँ (हवा का घनत्व कम या अधिक होना) वर्णक्रम (spectrum) की नीली किरणों को छितरा देती हैं, जिससे आकाश नीला दीखता है और सूर्य वास्तविक से कहीं अधिक लाल दीखता है। यह लालिमा सूर्योदय व सूर्यास्त के समय विशेष गहरी हो जाती है, जबकि सूर्य की किरणों को हवा की अधिक मोटी परत में से गुज़रना पड़ता है। ज़रा सोचिए कि यदि ये घनत्व के उतार—चढ़ाव मौजूद न होते तो क्या होता? आकाश सदा बिल्कुल काला दीखता और दिन में भी तारे दिखाई देते।**

साधारण द्रवों में भी ऐसे ही घनत्व एवं दबाव के उतार—चढ़ाव होते रहते हैं, यद्यपि ये अपेक्षाकृत हल्के होते हैं। अतः ब्राउनीय गति का वर्णन यह कह कर भी किया जा सकता है कि पानी में तैरते लघु—कण इसलिए इधर—उधर धकेले जाते हैं कि उनकी आमने—सामने की सतहों पर पड़ने वाले दबाव तेज़ी से बदलते रहते हैं। जब द्रव को गर्म करके उसके क्वथनांक के पास पहुँचा दिया जाता है, तो घनत्व के उतार—चढ़ाव अधिक प्रचंड हो जाते हैं और इससे (प्रकाश के परावर्तन से) द्रव में ज़रा दूधियापन आ जाता है।

अब हम इस प्रश्न पर विचार कर सकते हैं : क्या एंट्रोपी का नियम ऐसे लघु पदार्थों पर भी लागू होता है जिनमें सांख्यिकीय उतार—चढ़ाव प्रमुखता से प्रकट होते हैं? एक जीवाणु, जो जीवन—भर अणुओं के धक्कों से इधर—उधर उछाला जाता है, निश्चय ही आपके इस कथन को

---

[12] एक माइक्रोन, जिसे आम तौर पर ग्रीक अक्षर म्यू (μ) लिखा जाता है, .0001 सेंमी के बराबर होता है।

* यह गणना पूरी सही नहीं है क्योंकि इसमें ऐसा माना गया है कि आधे—आधे बँटे हुए 20 अणुओं की कोई भूमिका ही नहीं है। सही आवृत्ति होगी ${}^{30}c_{10} \times (1/2)^{30} \times 5 \times 10^{10} \approx 3 \times 10^{-2} \times 5 \times 10^{10} = 1.5$ अरब बार प्रति सैकंड। —अनु०

**और तारे टिमटिमाते भी नहीं। चंद्रमा पर से ऐसा दृश्य ही दिखाई देता है। —अनु०

हास्यास्पद समझेगा कि ऊष्मा यांत्रिक गति में रूपांतरित नहीं हो सकती। परंतु इस संदर्भ में यह कहना उचित नहीं होगा कि एंट्रोपी के नियम का उल्लंघन हो जाता है; बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि इस नियम का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वास्तव में यह नियम तो इतना ही कहता है कि आणविक गतियों को पूरी तरह से ऐसे बड़े-बड़े पिंडों की गति में रूपांतरित नहीं किया जा सकता, जिनमें विशाल संख्याओं में अणु मौजूद हों। जीवाणु के लिए, जो कि स्वयं अणुओं की अपेक्षा कोई **बहुत अधिक बड़ा नहीं है,** तापीय और यांत्रिक गति के बीच अंतर लगभग समाप्त ही हो जाता है, और यह अपने को इधर-उधर धकेलने वाली अणुओं की टक्करों को वैसा ही समझता होगा जैसा हम किसी उत्तेजित भीड़ में खड़े हुए सब ओर से आने वाले धक्कों को समझेंगे। यदि हम जीवाणु होते, तो ऐसी स्थिति में स्वयं को एक गतिपालक पहिये (fly wheel) से बाँध कर "दूसरे प्रकार की सतत चलने वाली मोटर" बना सकते।* परंतु तब उसे अपने लाभ के लिए उपयोग कर सकने की बुद्धि भी हममें नहीं होती! अतः, हम जीवाणु नहीं हैं, इस बात को सोच कर दुःखी होने का कोई कारण नहीं है।

जीवित शरीरों में हमें बढ़ती एंट्रोपी के नियम का उलटा आभास प्राप्त होता है। सचमुच, बढ़ता हुआ पौधा कार्बन-डाई-ऑक्साइड के सरल अणुओं को (हवा से) लेता है और जल के अणुओं को (ज़मीन से) लेता है, और इनसे उन जटिल कार्बनिक अणुओं की रचना कर डालता है जिनसे उसका शरीर बनता है। क्या पौधे सचमुच बढ़ती एंट्रोपी के नियम के विरुद्ध चलते हैं? क्या उन्हें अपनी बढ़त में किसी रहस्यमय **जीवनी शक्ति** की मदद मिलती है, जैसा कि पुराने ज़माने के दार्शनिकों का मत था?

इस प्रश्न का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि वास्तव में कोई अंतर्विरोध नहीं है, क्योंकि पौधों को बढ़ने के लिए कार्बन-डाई-आक्साइड, जल और कुछ लवणों के अलावा प्रचुर मात्रा में **धूप** भी चाहिए। सूर्य की किरणें ऊर्जा तो लाती ही हैं (जो कि बढ़ते हुए पौधे के शरीर में संचित हो जाती है, और जब उसकी लकड़ी जलती है तो फिर मुक्त हो जाती है); साथ ही तथाकथित "ऋणात्मक एंट्रोपी" (निम्न-स्तरीय एंट्रोपी) भी लाती हैं। जब हरी पत्तियाँ प्रकाश को सोख लेती हैं तो यह ऋणात्मक एंट्रोपी समाप्त हो जाती है। अतः पौधों की पत्तियों में होने वाले प्रकाश-संश्लेषण में वास्तव में दो परस्पर संबंधित प्रक्रियाएँ शामिल हैं : (क) सूर्य की किरणों की प्रकाश-ऊर्जा रूपांतरित होकर जटिल कार्बनिक अणुओं की रासायनिक ऊर्जा बन जाना, और (ख) सूर्य की किरणों की ऋणात्मक एंट्रोपी का प्रयोग करके सरल से जटिल अणु बनाना, जिससे अणुओं की एंट्रोपी कम हो जाती है। व्यवस्था-बनाम-अव्यवस्था के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि जब सूर्य की विकिरण पृथ्वी पर आती है तो उसकी ऊर्जा की एक अंदरूनी व्यवस्था होती है, जो हरी पत्तियों द्वारा सोख लेने पर समाप्त हो जाती है। यह व्यवस्था अंशतः अणुओं को दे दी जाती है, जिससे वे अधिक जटिल और अधिक व्यवस्थित स्वरूप ग्रहण कर पाते हैं। पौधे तो अपने शरीर को अकार्बनिक यौगिकों से बनाते हैं, और इस प्रक्रिया में ऋणात्मक एंट्रोपी (व्यवस्था) सूर्य की किरणों से लेते हैं, जबकि जानवरों को वैसी ऋणात्मक एंट्रोपी पाने के लिए पौधों को (या एक-दूसरे को) खाना पड़ता है। हम यूँ कह सकते हैं कि वे ऋणात्मक एंट्रोपी के दूसरे दर्जे के उपभोक्ता हैं।

---

* यह बात केवल मज़ाक के तौर पर कही गयी प्रतीत होती है। वास्तव में इस प्रकार कोई छोटी या बड़ी मशीन नहीं चलायी जा सकती। यहाँ तक कि एक निश्चित दिशा में चलते हुए बहुत-से अणुओं की किरण भी प्राप्त नहीं की जा सकती। -अनु०

नौ

# जीवन एक पहेली

## 1. हम कोशिकाओं से बने हैं

पदार्थ की रचना की चर्चा में हमने जान–बूझ कर अभी तक भौतिक पिंडों के एक छोटे परंतु महत्त्वपूर्ण समूह का बिल्कुल ज़िक्र नहीं किया जिसमें ब्रह्मांड की अन्य सभी चीज़ों से अलग एक अद्‌भुत गुण है: ये पिंड **सजीव** हैं। सजीव और निर्जीव पदार्थों के बीच महत्त्वपूर्ण अंतर क्या है? और यह आशा करना कहाँ तक उचित है कि जीवन रूपी परिघटना को उन्हीं बुनियादी भौतिक नियमों के आधार पर समझा जा सकता है जो निर्जीव पदार्थ के गुणों का सफलतापूर्वक वर्णन करते हैं?

जब हम जीवन रूपी परिघटना की बात करते हैं, तो आम तौर पर हमारे दिमाग़ में कोई बड़ा–सा और जटिल–सा सजीव शरीर रहता है, जैसे कोई पेड़ या घोड़ा या मानव। परंतु इतने जटिल सजीव तंत्र को पूरा का पूरा लेकर, उसकी जाँच करके, सजीव पदार्थ के मूलभूत गुणों को समझने की कोशिश करना उतना ही व्यर्थ होगा जितना कि अकार्बनिक पदार्थों की रचना के अध्ययन की कोशिश में मोटरकार जैसी किसी बड़ी, जटिल–सी मशीन पर विचार करना।

इस कार्य में आने वाली कठिनाइयाँ स्पष्ट हो जाती हैं जब हम यह समझ लेते हैं कि दौड़ने वाली मोटरकार विभिन्न धातुओं से निर्मित और तरह–तरह की आकृतियों वाले हजारों पुर्ज़ों से बनी है, जो कि अलग–अलग अवस्थाओं मे हैं। इनमें कई तो ठोस हैं (जैसे इस्पात की चैसिस यानी बाहरी ढाँचा, ताँबे के तार और काँच का बना हवा–रोधक शीशा), कई द्रव हैं (जैसे रेडियेटर में पानी, टैंक में पैट्रोल और सिलिंडर में मोबिल तेल) और कुछ गैसें हैं (जैसे कार्बुरेटर से सिलिंडरों में जाने वाला ईंधन–हवा का मिश्रण)। इसलिए मोटरकार रूपी पदार्थ की गठरी का विश्लेषण करने में पहला कदम होगा उसे ऐसे विभिन्न भागों में अलग करना, जिनमें प्रत्येक भाग अपने आप में भौतिक रूप से समांगी (एक जैसा) हो। इस प्रकार हम पाते हैं कि विभिन्न धातु–पदार्थ (जैसे इस्पात, ताँबा, क्रोमियम आदि), विभिन्न काँच–सरीखे पदार्थ (जैसे शीशा और निर्माण में लगने वाले प्लास्टिक पदार्थ), विभिन्न समांगी द्रव (जैसे पानी और पेट्रोल), आदि इसके अवयव है।

अब हम विश्लेषण को और आगे बढ़ा सकते हैं। भौतिक अनुसंधान के उपलब्ध तरीकों का उपयोग करते हुए हम पाते हैं कि ताँबे वाले भाग में छोटे–छोटे क्रिस्टल हैं जो ताँबे के परमाणुओं की नियमित परतों से बने हैं। ये परतें एक दूसरे के ऊपर दृढ़ता से जुड़ी हुई हैं। रेडियेटर के भीतर का पानी बहुत बड़ी संख्या वाले जल के अणुओं से बना है जो रेडियेटर में अपेक्षाकृत ढीले–ढाले भरे गये हैं और जिनमें प्रत्येक अणु एक ऑक्सीजन व दो हाइड्रोजन परमाणुओं से बना है। और कार्बुरेटर से जो गर्म मिश्रण वाल्वों में से होकर सिलिंडरों में जा रहा है, उसमें वातावरण के ऑक्सीजन व नाइट्रोजन अणुओं के साथ मिश्रित पेट्रोल–वाष्प के अणु मुक्त रूप से नाच रहे हैं, और पैट्रोल के अणु स्वयं कार्बन व हाइड्रोजन परमाणुओं से बने है।

इसी प्रकार, किसी जटिल सजीव शरीर, जैसे मानव–शरीर, का विश्लेषण करने के लिए हमें इसे अलग–अलग अंगों में बाँट कर सोचना पड़ेगा, जैसे मस्तिष्क, हृदय और आमाशय, और फिर इन अंगों को भी ऐसी सामग्रियों में तोड़ना होगा जो **जीव-वैज्ञानिक रूप से समांगी** हैं और जिनका सामूहिक नाम है "ऊतक" (tissues)।

एक तरह से देखें तो विभिन्न प्रकार के ऊतक वे सामग्रियाँ हैं जिनसे जटिल–जटिल सजीव शरीरों तथा उनके अंगों की रचना हुई है, उसी प्रकार जैसे यांत्रिक पुर्जे विभिन्न समांगी भौतिक पदार्थों से बनाये जाते हैं। शरीर–रचना (anatomy) एवं शरीर–क्रिया (physiology) के विज्ञान सजीव शरीरों के क्रिया–कलापों का विश्लेषण इस दृष्टि से करते हैं कि जिन विभिन्न **ऊतकों** से वे बने हैं उनके गुण क्या–क्या हैं? इस अर्थ में ये विज्ञान इंजीनियरी–विज्ञान के सदृश हैं, जिसमें विभिन्न मशीनों की क्रिया को उनकी रचना में लगे भौतिक पदार्थों के ज्ञात यांत्रिक, चुंबकीय, विद्युतीय और दूसरे गुणों के आधार पर समझा जाता है।

जीवन क्या है, इस पहेली का उत्तर केवल इतना देखने से ही नहीं पाया जा सकता कि ऊतकों को संयोजित करके कैसे जटिल शरीर बन जाते हैं, बल्कि यह भी समझना होगा कि ये ऊतक **विभिन्न परमाणुओं से** कैसे बने हैं, क्योंकि हर सजीव शरीर अंततः परमाणुओं से ही बना है।

पर यदि आप समझें कि सजीव ऊतक जैविक रूप से समांगी है, सो इसकी तुलना किसी भौतिक रूप से समांगी साधारण पदार्थ से की जा सकती है, तो यह बहुत बड़ी ग़लती होगी। सचमुच, सूक्ष्मदर्शी यंत्र (microscope) द्वारा किसी भी ऊतक की प्रारंभिक जाँच दर्शाती है (चाहे वह ऊतक त्वचा का हो या माँसपेशी का या मस्तिष्क का) कि इसमें बहुत बड़ी संख्या में अलग–अलग इकाइयाँ हैं जिनकी प्रकृति से ही पूरे ऊतक के गुण कमोबेश निर्धारित होते हैं (चित्र 90)। सजीव पदार्थ की रचना की इन मूलभूत इकाइयों को आम तौर पर "कोशिकाएँ" (cells) कहते हैं। इनको "जैविक परमाणु" (अर्थात् "अविभाज्य") भी कहा जा सकता है : इस अर्थ में कि किसी भी एक प्रकार के ऊतक के जैविक गुण उसमें तभी तक रहेंगे जब तक कि उसमें कम से कम एक पूरी कोशिका हो।

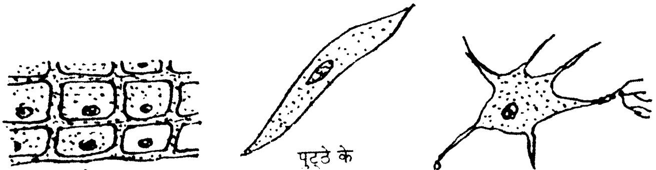


चित्र 90 : विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ

उदाहरणतया, मॉसपेशी का कोई ऊतक, जिसे आधी कोशिका के आकार के बराबर काटा जाये, माँसपेशी के सिकुड़ने का गुण पूरी तरह खो देगा, ठीक उसी प्रकार जैसे मैग्नीशियम की तार में से आधे परमाणु के बराबर निकाला हुआ टुकड़ा मैग्नीशियम धातु नहीं रह जाता, बल्कि कोयले का छोटा–सा टुकड़ा हो जाता है।[1]

[1] परमाणु की रचना की चर्चा से आपको याद होगा कि मैग्नीशियम परमाणु (परमाणु–क्र० 12, परमाणु–भार 24) में 12 प्रोटोनों एवं 12 न्यूट्रोनों से बना एक नाभिक होता है जो 12 इलैक्ट्रोनों के आवरण से घिरा होता है। मैग्नीशियम के परमाणु को आधा–आधा काटने से हमें दो नये परमाणु मिलेंगे, जिनमें प्रत्येक के नाभिक में 6 प्रोटोन व 6 न्यूट्रोन होंगे, और बाहर 6 इलैक्ट्रोन होंगे – दूसरे शब्दों में, ये दोनों कार्बन के परमाणु होंगे।

ऊतकों को बनाने वाली कोशिकाएँ आकार में ज़रा छोटी होती हैं (औसतन एक सिरे से दूसरे तक एक मिलीमीटर का सौवाँ भाग[2])। आपका परिचित कोई भी पौधा या जानवर अवश्य कोशिकाओं की अति विशाल संख्या से बना होगा। उदाहरण के तौर पर, एक वयस्क मानव का शरीर कई लाख अरब विभिन्न कोशिकाओं से बना है!

छोटे जीव स्वाभाविक ही इससे कम कोशिकाओं से बने होते हैं। जैसे, घरेलू मक्खी या चींटी के शरीर में बीस–तीस करोड़ से अधिक कोशिकाएँ नहीं हैं। एक बड़ी–सी जमात **एककोशी** जीवों की भी है, जैसे **अमीबा, फफूँद** (fungus) (जैसे वह फफूँद जिसके कारण "दाद" नामक छूत होती है) और विभिन्न प्रकार के **जीवाणु** (bacteria) जिनमें प्रत्येक एक ही कोशिका से बना है, और इसे किसी अच्छे सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ही देखा जा सकता है। ये अकेली–अकेली सजीव कोशिकाएँ उन "सामाजिक क्रिया–कलापों" से मुक्त हैं जो किसी जटिल शरीर में शामिल कोशिकाओं को करने पड़ते हैं; अतः इनका अध्ययन जीव–विज्ञान के सबसे रोचक अध्यायों में से एक है।

**यदि हम जीवन के प्रश्न को सामान्य तौर पर समझना चाहें, तो इसका हल हमें जीवित कोशिकाओं में मिलेगा।**

**सजीव कोशिकाओं के ऐसे क्या गुण हैं जिनसे ये साधारण अकार्बनिक पदार्थों से इतने अलग हैं, और उन मृत कोशिकाओं से भी अलग हैं जैसी कि आपके लिखने के डैस्क की लकड़ी में हैं या आपके जूतों के चमड़े में हैं?**

**सजीव कोशिकाओं के ये मूलभूत गुण, जिनसे इनकी अलग पहचान बनती है, इस प्रकार हैं : (1) ये आसपास के माध्यम से अपनी रचना के लिए आवश्यक सामग्रियाँ ले सकते हैं, (2) ये इन सामग्रियों को उन पदार्थों में बदल सकते हैं जो इनके शरीर के बढ़ने में काम आते हैं, और (3) अपना ज्यामितीय आकार सीमा से अधिक बड़ा हो जाने पर ये दो समान कोशिकाओं में विभक्त हो सकते हैं जिनमें प्रत्येक मूल कोशिका से आधे आकार की होती है (और बढ़ने की क्षमता रखती है)।** जी हाँ, ये "खाने", "बढ़ने" और "संख्या बढ़ाने" की योग्यताएँ वही हैं जो अकेली–अकेली कोशिकाओं को मिला कर बने सभी अधिक जटिल जीवों में भी हैं।

आलोचना करने वाले पाठक आपत्ति उठा सकते हैं कि ये तीन गुण तो साधारण निर्जीव अकार्बनिक पदार्थों में भी पाये जा सकते हैं। जैसे, यदि हम पानी में बने नमक के अति–संतृप्त घोल में नमक का छोटा–सा दाना डाल दें[3], तो वह क्रिस्टल बढ़ने लगेगा,

---

[2] कोई–कोई कोशिका काफ़ी बड़े आकार की भी हो सकती है – एक परिचित उदाहरण के तौर पर अंडे के पीतक (पीले भाग) को ले सकते हैं, जो पूरा एक ही कोशिका होता है। हाँ, यह ज़रूर है कि ऐसे मामलों में भी कोशिका के प्राणाधार भाग, जिनके कारण कोशिका को सजीव कहा जाता है, सूक्ष्म आकार के ही होते हैं। पीले पदार्थ का अधिकतर भाग तो बस, पक्षी के भ्रूण के विकास के लिए संचित भोजन ही होता है।

[3] अति–संतृप्त घोल तैयार करने के लिए गर्म पानी में बहुत–सा नमक घोल लेना होगा, जितना भी घुल सके। फिर उसे कमरे के तापमान तक ठंडा करना होगा। क्योंकि तापमान कम होने के साथ घुलनशीलता भी कम हो जाती है, अतः ठंडा पानी नमक के जितने अणुओं को घोल कर रख सकता है, उससे कहीं अधिक मात्रा में नमक उसमें मौजूद होगा। फिर भी, अतिरिक्त नमक–अणु लंबे समय तक घोल में ही रहेंगे जब तक हम इस घोल में एक नन्हा–सा क्रिस्टल न डाल दें। ऐसा समझिए कि यह क्रिस्टल शुरुआती धक्का दे देता है, और नमक के अणुओं के घोल से बाहर निकलने के लिए एक प्रकार का व्यवस्थाकारक बन जाता है।

क्योंकि यह अपनी सतह पर परत–दर–परत नमक के अणु जमा करता जायेगा जो पानी में से लिये गये हैं, बल्कि पानी में से खदेड़े गये हैं। हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि कुछ यांत्रिक प्रभावों के कारण, जैसे बढ़ते क्रिस्टल के बढ़ते भार से, एक निश्चित आकार पा लेने के बाद यह दो भागों में विभक्त भी हो जाता है, और इस प्रकार बने "संतान क्रिस्टल" बढ़ने की प्रक्रिया जारी रखते हैं। इस प्रक्रिया को हम "जीवन की परिघटना" में क्यों नहीं गिन सकते?

इस प्रश्न और ऐसे ही अन्य प्रश्नों के उत्तर देने के लिए सबसे पहले तो यह कहना पड़ेगा कि जब हम जीवन को साधारण भौतिक व रासायनिक परिघटनाओं का ही एक जटिलतर प्रकार मानते हैं, तो हमें इन दोनों प्रकारों के बीच किसी पैनी सीमा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जैसे, हम कहते हैं कि बहुत संख्या में अणुओं से बनी गैस के व्यवहार को बताने के लिए सांख्यिकीय नियम काम आते हैं (देखिए अध्याय आठ), परंतु इस प्रकार के वर्णन की वैधता के लिए संख्या की कोई सीमा सही–सही नहीं बतायी जा सकती। यह तो हम जानते हैं कि कमरे में भरी हुई वातावरण की हवा एकाएक कमरे के एक कोने में इकट्ठी नहीं हो जा सकती, या कम से कम ऐसी अजीब घटना के घट जाने की संभावना नहीं के बराबर है। दूसरी ओर, हम यह भी जानते हैं कि यदि पूरे कमरे में दो, तीन या चार ही अणु होते, तब तो वे बार–बार एक कोने में इकट्ठे होते। अब यह सोचिए कि जिन संख्याओं पर पहला कथन लागू होता है और जिन पर दूसरा कथन लागू होता है, उन दोनों के बीच की सीमा ठीक–ठीक कहाँ है? एक हज़ार अणु? दस लाख? एक अरब?

इसी प्रकार जब हम प्रारंभिक जीवन–प्रक्रियाओं पर आते हैं तो हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि सरल आणविक परिघटना, जैसे पानी वाले घोल से नमक का क्रिस्टलीकरण, और इससे बहुत अधिक जटिल परंतु बुनियादी तौर पर वैसी ही परिघटना, जैसे सजीव कोशिका का बढ़ना और विभाजित होना, इन दोनों के बीच कोई पैनी सीमा–रेखा होगी।

फिर भी, इस एक उदाहरण से तो निपटा जा सकता है। हम कह सकते हैं कि घोल में पड़े क्रिस्टल के बढ़ने को जीवन की परिघटना नहीं मानना चाहिए, क्योंकि क्रिस्टल अपनी बढ़त के लिए जिस "भोजन" का प्रयोग करता है, वह जिस रूप में घोल में था उसी रूप में, किसी परिवर्तन के बिना ही, आत्मसात कर लिया जाता है। नमक के जो अणु पहले पानी के साथ मिले हुए थे, वही अब बढ़ते हुए क्रिस्टल की सतह पर जमा हो जाते हैं। यह तो सामग्री का साधारण–सा **यांत्रिक एकत्रीकरण** हुआ, न कि ख़ास **जीव-रासायनिक परिपाचन**। फिर क्रिस्टलों की संख्या बढ़ने की प्रक्रिया भी कैसी है? किसी–किसी समय ये क्रिस्टल अनियमित–से भागों में बँट जाते हैं जिनका कोई पहले से निश्चित अनुपात नहीं है, वह भी मात्र भार–रूपी यांत्रिक बल के कारण। अतः इसमें सजीव कोशिका के जैविक विभाजन के साथ कोई ख़ास समानता नहीं है, जो निश्चित और सदा एक समान होने वाला और मुख्यतः अंदरूनी बलों के द्वारा प्रेरित होता है।

जैविक प्रक्रिया की काफ़ी अधिक सटीक उपमा मिल जाती यदि, उदाहरणतया, पानी में कार्बन–डाई–ऑक्साइड के घोल में अल्कोहल के एक अकेले अणु ($C_2H_5OH$) की मौजूदगी से एक अपने आप चलने वाली संश्लेषण (synthesis)- प्रक्रिया शुरू हो जाती,

जिसमें पानी ($H_2O$) के अणुओं को एक–एक करके घुली हुई गैस ($CO_2$) के अणुओं से मिला कर अल्कोहल के नये अणु बन जाते (चित्र 91)।[4] सचमुच, यदि साधारण सोडावाटर के गिलास में व्हिस्की की एक बूँद डाल कर इस पूरे सोडे को शुद्ध व्हिस्की में बदला जा सके, तो हमें अल्कोहल को सजीव पदार्थ मानना ही पड़ जायेगा!

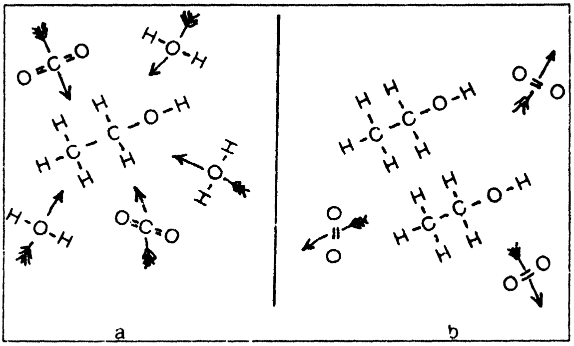


चित्र 91 : इस रूपरेखीय चित्र में दिखाया है कि कैसे अल्कोहल का अणु जल और कार्बन–डाई–ऑक्साइड के अणुओं को जुटा कर अल्कोहल के एक और अणु में बदल देता । यदि अल्कोहल में ऐसी आत्म–संश्लेषण की क्रिया संभव होती, तो हमें अल्कोहल को सजीव मानना पड़ जाता।

यह उदाहरण सच्चाई से उतना दूर नहीं है जितना लगता है क्योंकि, जैसा हम बाद में देखेंगे, ऐसे जटिल रासायनिक पदार्थ सचमुच में होते हैं, जिन्हें **वाइरस** कहा जाता है, जिनके काफ़ी जटिल अणु (लाखों परमाणुओं से बने) सचमुच आसपास के माध्यम से दूसरे सरल अणु लेकर उन्हें अपने जैसी इकाइयों में व्यवस्थित करने का कार्य करते हैं। इन वायरस–कणों को साधारण रासायनिक अणु ही मानना पड़ेगा, पर साथ ही सजीव शरीर भी मानना होगा; अतः **ये सजीव एवं निर्जीव पदार्थ के बीच की "खोयी हुई कड़ी"** दर्शाते हैं।

पर अब हमें साधारण कोशिकाओं के आकार और संख्या बढ़ाने की समस्या पर लौट आना होगा। ये कोशिकाएँ यद्यपि बहुत जटिल हैं, तो भी बड़े जीवों से तो बहुत कम जटिल हैं; इन्हें तो सरलतम सजीव पदार्थ ही मानना होगा।

यदि हम एक प्रतिनिधि कोशिका को किसी अच्छे सूक्ष्मदर्शी से देखें तो हम पाते हैं कि यह अर्ध–पारदर्शक जैली जैसी सामग्री से बनी है जिसकी रासायनिक रचना बहुत ही जटिल है। इसे जीवद्रव्य (protoplasm) के सामान्य नाम से जाना जाता है। यह सब ओर से कोशिका की दीवारों से घिरा रहता है जो कि प्राणियों की कोशिकाओं में तो पतली व लचीली होती हैं परंतु पौधों की कोशिकाओं में मोटी व कठोर। इससे पौधों की कोशिकाओं का शरीर काफ़ी कड़ा हो जाता है। (चित्र 90 में तुलना करें।) प्रत्येक कोशिका के अंदर के भाग में **नाभिक** (nucleus) नामक एक छोटा–सा गोलाकार पिंड होता है (चित्र 92 क), जो कि **क्रोमैटिन** नामक पदार्थ के महीन जाल से बना होता है। यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि

[4] उदाहरणार्थ, नीचे लिखी काल्पनिक प्रतिक्रिया हो सकती थी:

$3H_2O + 2CO_2 + [C_2H_5OH] \rightarrow 2[C_2H_5OH] + 3O_2$,

जहाँ अल्कोहल के एक अणु की मौजूदगी से दूसरा अणु पैदा हो जाता।

साधारण परिस्थिति में कोशिका को बनाने वाले जीवद्रव्य के विभिन्न भागों की पारदर्शिता बराबर होती है, जिससे कि सजीव कोशिका को सूक्ष्मदर्शी से देखने मात्र से कोशिका की रचना मालूम नहीं की जा सकती। रचना को देखने के लिए हमें कोशिका की सामग्री को **रँगना** पड़ता है, जिसमें हम इस तथ्य का लाभ उठाते हैं कि जीवद्रव्य की रचना के कुछ भाग रंग–सामग्री को अधिक मात्रा में सोखते हैं और कुछ कम। रंगने की प्रक्रिया में नाभिक के जाले को बनाने वाली साम्रगी विशेष रूप से प्रभावित होती है, और यह अपेक्षाकृत उजली पृष्ठभूमि पर साफ़ नज़र आ जाती है।[5] इसीलिए इसका नाम "क्रोमैटिन" पड़ा, जिसका ग्रीक भाषा में अर्थ है "रंग लेने वाला पदार्थ"।

जब कोशिका विभाजन की अनिवार्य प्रक्रिया की तैयारी कर रही होती है, तो नाभिकीय जाल की रचना पहले की अपेक्षा अधिक असमान हो जाती है, और इसमें अलग–अलग कणों का समूह दिखाई पड़ता है (चित्र 92 ख, ग)।[6] ये कण, जो आम तौर पर रेशे या छड़ के आकार के होते हैं, "क्रोमोसोम" (अर्थात् रंग लेने वाले पिंड) कहलाते हैं।*

किसी भी एक जैविक प्रजाति को लें; इसके शरीर में जितनी भी कोशिकाएँ होती हैं (सिवाय तथाकथित प्रजनन–कोशिकाओं के), उनमें से प्रत्येक में क्रोमोसोमों की सख्या बिल्कुल बराबर होती है। यह संख्या मोटे तौर पर अधिक विकसित जीवों के लिए अधिक और कम विकसित जीवों के लिए कम होती है। जैसे, फलों पर मँडराने वाली नन्ही–सी मक्खी, जो शानदार लैटिन नाम **ड्रोसोफ़िला मेलानोगास्टर** से विभूषित है, और जिस पर प्रयोग करके जीव–विज्ञानी जीवन की बुनियादी पहेलियों से संबंधित कई बातें समझ पाये हैं, प्रत्येक कोशिका में आठ क्रोमोसोम लिये हुए है। मटर के पौधे की कोशिकाओं में चौदह क्रोमोसोम होते हैं और मकई में बीस। जीव–विज्ञानी स्वयं (और बाकी सभी मानव भी) हर कोशिका में **अड़तालीस** क्रोमोसोम रखने का अभिमान कर सकते हैं।+ इस तथ्य को इस बात का शुद्ध गणितीय प्रमाण समझा जा सकता था कि मानव मक्खी से छः गुणा श्रेष्ठतर है, परंतु इस प्रकार के तर्क से तो चिंगट मछली, जिसकी कोशिकाओं में **दो सौ** क्रोमोसोम हैं, मानव से भी बेहतर साबित हो जायेगी!

विभिन्न जैविक प्रजातियों की कोशिकाओं में क्रोमोसोमों की संख्या के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह **हमेशा सम संख्या** होती है, और क्रोमोसोम जोड़ियों में मिलते

---

[5] इससे मिलती–जुलती विधि को आप व्यवहार में लाकर देख सकते हैं। यदि आप काग़ज़ पर (सफ़ेद) मोमबत्ती से कुछ लिखें, तो लिखाई नज़र नहीं आयेगी। पर यदि आप इस काग़ज़ पर काली पेंसिल से शेड करने लगें तो ग्रेफाइट (पेंसिल का काला पदार्थ) मोम से ढके हुए स्थान पर नहीं चिपकेगा। अतः शेड की हुई पृष्ठभूमि पर लिखाई साफ़ उभर आयेगी। (यदि आप काग़ज़ को महीन राख से रगड़ें तो राख के मोम पर चिपक जाने से भी लिखाई दिखाई पड़ने लगेगी। – अनु०)

[6] यह याद रखना होगा कि जीवित कोशिका को रंगने की प्रक्रिया में वह आम तौर पर मर जाती है, जिससे उसका आगे का विकास रुक जाता है। अतः कोशिका–विभाजन के क्रमिक चित्र, जैसे चित्र 92 में दिखाये गये है, किसी एक ही कोशिका को देख कर प्राप्त नहीं किये जा सकते। इसके लिए कई कोशिकाएँ लेकर प्रत्येक को विकास के अलग–अलग चरणों पर रंगना (और मार देना) होगा। पर सिद्धांततः इससे अधिक अंतर नहीं पड़ता। (अब फ़ेज़–कंट्रास्ट सूक्ष्मदर्शी की मदद से कोशिकाओं को रंगे और मारे बिना भी विभाजन–क्रिया के चित्र देखे जा सकते हैं। –अनु०)

* कुछ जीवाणु (जैसे ई० कोलाइ) वृत्ताकार क्रोमोसोम वाले भी होते हैं।–अनु०

+ आधुनिक जानकारी के अनुसार मानव की कोशिकाओं में क्रोमोसोमों की संख्या 48 नहीं, 46 है। – अनु०

हैं। वास्तव में **प्रत्येक जोड़ी के क्रोमोसोम** (एक अपवाद को छोड़कर, जिसकी चर्चा इस अध्याय में बाद में की जायेगी) **लगभग अभिन्न होते हैं: इनमें एक माता से और एक पिता से प्राप्त हुआ होता है। माता-पिता से प्राप्त होने वाले ये दो क्रोमोसोम-समूह अपने अंदर उन जटिल ख़ानदानी गुणों को लिये रहते हैं जो सभी जीवों की एक पीढ़ी से दूसरी को सौंपे जाते हैं।**

कोशिका के विभाजन में क्रोमोसोम ही पहल करते हैं: प्रत्येक क्रोमोसोम अपनी पूरी लंबाई में बड़ी सफ़ाई से दो समान पतले रेशों में बँट जाता है जबकि कोशिका अभी एक इकाई ही होती है (चित्र 92घ)।

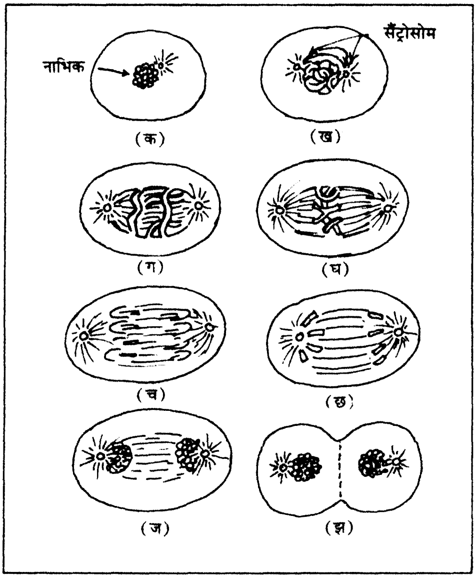


चित्र 92 : कोशिका–विभाजन (माइटोसिस) के क्रमिक चरण।

कोशिका के विभाजन से पहले का क्रोमोसोमों का उलझा हुआ बंडल जब विभाजन की तैयारी में व्यवस्थित होने लगता है, लगभग उसी समय दो बिंदु, जिनको **सैंट्रोसोम** कहते हैं और जो नाभिक की बाहरी सीमा के पास साथ–साथ स्थित होते हैं, धीरे–धीरे एक–दूसरे से दूर कोशिका के उलटे किनारों की ओर बढ़ने लगते हैं (चित्र 92क, ख, ग)। कुछ पतले धागे–से भी उभरते हैं जो इन अलग हुए सैंट्रोसोमों को नाभिक के क्रोमोसोमों के साथ जोड़ते हैं। जब क्रोमोसोम दो–दो रेशों में बँट जाते हैं, तो प्रत्येक का एक आधा भाग एक सैंट्रोसोम से और दूसरा आधा दूसरे सैंट्रोसोम से बँधा होता है, और उक्त धागों के सिकुड़ने से ये दोनों आधे भाग एक–दूसरे से दूर खिंच जाते हैं (चित्र 92च, छ)। जब यह प्रक्रिया लगभग पूरी हो जाती है (चित्र 92 ज), तो कोशिका की दीवारें मध्य–रेखा पर भीतर की ओर धँसने लगती हैं (चित्र 92झ)। इस सीमा पर प्रत्येक आधे भाग के शरीर पर एक पतली–सी दीवार उग आती है। फिर दोनों आधे भाग एक–दूसरे से अलग होकर दो स्वतंत्र नयी कोशिकाएँ बन जाते हैं।

यदि इन दोनों शिशु–कोशिकाओं को बाहर से पर्याप्त भोजन मिलता रहे, तो ये बढ़कर अपनी "माँ" का आकार (दुगुना) प्राप्त कर लेंगे, क्रोमोसोम भी अपनी मोटाई पूरी कर लेंगे, और एक निश्चित अवधि के "विश्राम" के बाद फिर विभाजित हो जायेंगे, ठीक वैसी ही प्रक्रिया से जिससे स्वयं इन्होंने अलग–अलग स्वरूप प्राप्त किया था।

कोशिका–विभाजन के विभिन्न चरणों की यह जानकारी सीधे प्रेक्षणों का परिणाम है। इस परिघटना को समझने में विज्ञान अभी, बस, इतनी ही दूर तक जा पाया है, क्योंकि जो भौतिक–रासायनिक बल इस प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेवार हैं, उनकी सही–सही प्रकृति को समझने की दिशा में बहुत कम प्रेक्षण–कार्य हुआ है। पूरी कोशिका को एक इकाई के तौर पर देखें तो यह अब भी इतनी जटिल मालूम होती है कि सीधे भौतिक आधार पर इसका विश्लेषण करना भारी पड़ेगा। इस समस्या को लेने के पहले क्रोमोसोमों की प्रकृति को समझना पड़ेगा – यह अपेक्षाकृत कुछ सरल है, और इसी की चर्चा आगामी परिच्छेद में की जायेगी।

परंतु पहले यह विचार करना उपयोगी होगा कि कोशिकाओं की बड़ी संख्या से बने जटिल जीवों में कोशिका–विभाजन किस प्रकार संतान पैदा करने की प्रक्रियाओं के लिए ज़िम्मेवार है? यहाँ शायद हम यह प्रश्न पूछने को उद्यत हों कि पहले मुर्गी हुई या अंडा? परंतु सच यह है कि ऐसी किसी भी चक्रीय प्रक्रिया का वर्णन करने में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है कि हम "अंडे" (कोशिका) से शुरू कर रहे हैं, जो विकसित होते हुए "मुर्गी" (या दूसरा जानवर) बन जायेगा, या मुर्गी से जो अंडा देगी।

मान लीजिए हम "मुर्गी" से शुरू करते हैं जो तुरंत अंडे से निकली ही है। अंडा टूटने (अर्थात् जन्म) के समय इसके शरीर की कोशिकाएँ विभाजन–पर–विभाजन की प्रक्रिया से गुज़र रही हैं, जिससे शरीर तेज़ी से बढ़ता व विकसित होता है। आपको याद होगा कि मानव जैसे किसी वयस्क जानवर के शरीर में कई लाख अरब कोशिकाएँ होती हैं, जो सभी एक अकेले निषेचित (fertilised) अंडे से विभाजित होते–होते बनी हैं; अतः शायद पहली नज़र में ऐसा मानना स्वाभाविक होगा कि इस मुकाम तक पहुँचने के लिए क्रमिक विभाजनों की बहुत लंबी शृंखला रही होगी। परंतु ज़रा याद करिए कि सिस्सा बिन दाहिर ने कृतज्ञ राजा को ज्यामितीय शृंखला के सिर्फ 64 कदमों की गिनती करने के लिए राज़ी करके उससे अनजाने में कितने सारे गेहूँ के दाने देने की प्रतिज्ञा करवा ली थी, या ब्रह्मांड के अंत वाली समस्या में 64 चक्रिकाओं को फिर से व्यवस्थित करने में कितने वर्ष लग जायेंगे, जैसा कि अध्याय एक में चर्चा की गयी थी? आप समझ जायेंगे कि अपेक्षाकृत थोड़ी ही बार क्रमिक विभाजन होने से सचमुच बहुत बड़ी संख्या में कोशिकाएँ बन जायेंगी। यदि हम कहें कि एक वयस्क मानव के बराबर बड़ा शरीर होने के लिए एक कोशिका का x बार क्रमिक विभाजन आवश्यक है, और याद रखें कि बढ़ते हुए शरीर में हर एक बार कोशिका–विभाजन होने पर इनकी संख्या दुगुनी हो जाती है (क्योंकि हर एक कोशिका की जगह दो हो जाती हैं), तो निम्नलिखित समीकरण हमें बता देगा कि एक अंड–कोशिका के बनने से वयस्कता तक कितनी बार क्रमिक विभाजन हुआ : $2^x = 10^{14}$, या $x \approx 47$.

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे वयस्क शरीर में प्रत्येक कोशिका उस मूल अंड–कोशिका की, जिससे हमारे जन्म की शुरुआत हुई, लगभग पचासवीं पीढ़ी की सदस्य है।[7]

छोटी आयु के जानवर में तो कोशिकाएँ तेज़ी से विभाजित होती हैं, परंतु वयस्क व्यक्ति की अधिकतर कोशिकाएँ आम तौर पर "विश्राम" की स्थिति में ही रहती हैं, और कभी–कभार ही विभाजित होती हैं जिससे कि जीवन–भर शरीर को स्थिर "बनाये रखा" जा सके और टूट–फूट की भरपाई की जा सके।

अब हम कोशिका–विभाजन के एक विशेष और बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकार पर आते हैं जिससे "युग्मक" (gametes) या "विवाह करने वाली कोशिकाएँ" बनती हैं जो प्रजनन की परिघटना के लिए ज़िम्मेवार हैं।

किसी भी द्विलिंगी सजीव प्राणी के बिल्कुल शुरू की अवस्था में ही इसकी कुछ कोशिकाएँ भविष्य में संतान पैदा करने की क्रिया के लिए "आरक्षित" करके अलग रख ली जाती हैं। ये कोशिकाएँ , जो विशेष प्रजनन–अंगों में रखी रहती हैं, शरीर की बढ़त के दौरान अन्य किसी भी प्रकार की कोशिकाओं की अपेक्षा बहुत कम बार साधारण विभाजन से गुज़रती हैं। जब नयी संतान पैदा करने का समय आता है तो ये तरोताज़ा और टूट–फूट से रहित होती हैं। अब इन प्रजनन–कोशिकाओं का विभाजन उस ढंग से नहीं होता जैसा कि साधारण कोशिकाओं का ऊपर वर्णित ढंग है, बल्कि एक अलग, बहुत सरलतर ढंग से। इनके नाभिक के अंगभूत क्रोमोसोम दो–दो में विभाजित नहीं हो जाते, जैसा कि साधारण कोशिकाओं में होता है, बल्कि प्रत्येक जोड़े के दो क्रोमोसोम एक–दूसरे से अलग खींच लिये जाते हैं (चित्र 93 क, ख, ग ) जिससे कि **क्रोमोसोमों के मूल समूह में से सिर्फ़ आधे ही प्रत्येक संतान-कोशिका के हिस्से में आते हैं।**

इस प्रक्रिया को, जिसमें ये "कम क्रोमोसोमों वाली" कोशिकाएँ बनती हैं, "मीयोसिस" कहते हैं, और यह साधारण विभाजन–प्रक्रिया से अलग है जिसे "माइटोसिस" कहते है। इस विभाजन से प्राप्त होने वाली कोशिकाओं को नर–शरीर में "शुक्राणु" या **नर युग्मक** कहते हैं, तथा मादा शरीर में "अंडाणु" या **मादा युग्मक**।

सजग पाठक को आश्चर्य हो सकता है कि मूल प्रजनन–कोशिका के दो बराबर भागों में विभाजन से नर या मादा गुणों वाले युग्मक कैसे बन सकते हैं। वास्तव में "क्रोमोसोमों के जोड़े में दोनों बिल्कुल समान (सर्वसम) होते हैं", इस कथन में एक अपवाद है, जैसा कि पहले ही बताया गया था, और इसी में उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर छिपा है। क्रोमोसोमों का एक विशेष जोड़ा ऐसा होता है, जिसके दो भाग मादा के शरीर में तो सर्वसम होते हैं, परंतु नर के शरीर में अलग–अलग। इन विशेष क्रोमोसोमों को लिंग–क्रोमोसोम कहा जाता है और ये दो प्रकार के होते हैं – X तथा Y। मादा के शरीर की कोशिकाओं में सदा दो X क्रोमोसोम होते हैं,

---

[7] इस गणना व इसके परिणाम की तुलना एक मिलती–जुलती गणना से करना रोचक होगा जो परमाणु–बम के विस्फोट से संबंधित है (देखिए, अध्याय सात)। एक किलोग्राम यूरेनियम (कुल $2.5\times10^{24}$ परमाणु) के हर परमाणु में विघटन करने के लिए कितनी बार क्रमिक परमाणविक विभाजन करना पड़ेगा, यह इसी प्रकार के समीकरण से जाना जा सकता है : $2^x = 2.5\times10^{24}$, जिससे प्राप्त होता है $x \approx 61$. (यह गणना ऐसा मान कर की गयी है कि हर परमाणविक नाभिक के विघटन से निकले हुए पूरे दो न्यूट्रोन अन्य नाभिकों के विघटन में काम आते हैं। –अनु०)

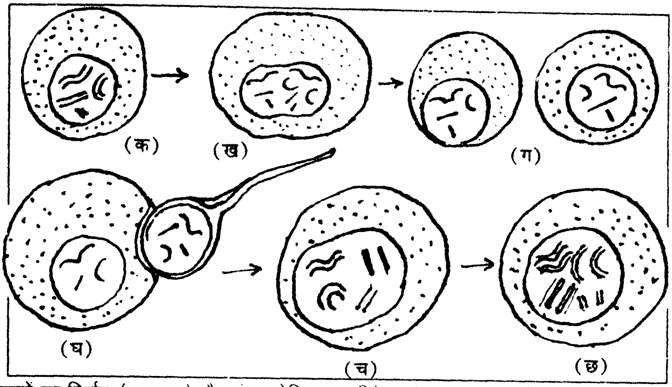


चित्र 93: युग्मकों का निर्माण (क, ख, ग) और अंड–कोशिका का निषेचन (घ, च, छ)। पहली प्रक्रिया (मीयोसिस) में निश्चित प्रजनन–कोशिका के क्रोमोसोमों की जोड़ियाँ प्रारंभिक विखंडन के बिना ही दो 'अर्ध कोशिकाओं' में बँट जाती हैं। दूसरी प्रक्रिया में नर शुक्राणु मादा अंडे को भेद कर उसमें प्रवेश करता है और इन दोनों के क्रोमोसोमों की जोड़ियाँ बन जाती है। परिणामतः निषेचित कोशिका चित्र 92 में दिखायी क्रिया के अनुसार नियमित विभाजन की तैयारी करने लगती है।

जबकि नर–कोशिका में एक X और दूसरा Y।[8] दोनों लिंगों में मूलभूत अंतर यही है कि नर में दोनों X क्रोमोसोमों में से एक की जगह Y होता है (चित्र 94)।

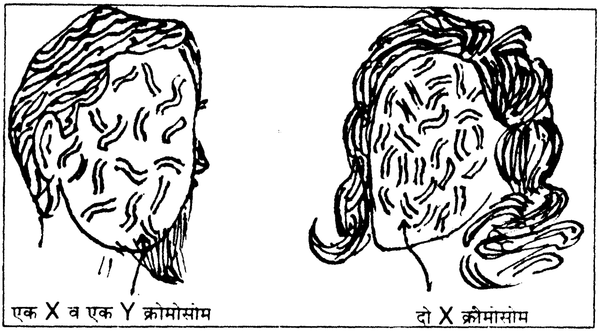


चित्र 94 : पुरुष और स्त्री मे मूलभूत अंतर : स्त्री के शरीर की सभी कोशिकाओं में 46 क्रोमोसोम और दो दो अभिन्न क्रोमोसोमों की जोड़ियां हैं, जबकि पुरुष के शरीर की कोशिकाओं में एक असंतुलित जोड़ी है। स्त्री की क्रोमोसोम जोड़ी के दो X-क्रोमोसोम के स्थान पर पुरुष के एक X और एक Y क्रोमोसोम होते हैं।

क्योंकि मादा के शरीर में आरक्षित सभी प्रजनन–कोशिकाओं में X क्रोमोसोमों की पूरी जोड़ी होती है, अतः जब कोई कोशिका मीयोसिस की प्रक्रिया द्वारा दो में बँटती है तो प्रत्येक आधे भाग (युग्मक) में एक X क्रोमोसोम आता है। परंतु नर की प्रत्येक प्रजनन–कोशिका में क्योंकि एक X और एक Y क्रोमोसोम होता है, अतः कोशिका का विभाजन होने पर जो दो युग्मक बनते हैं उनमें से एक में X तथा दूसरे में Y क्रोमोसोम होगा। तो जब निषेचन के क्रम में कोई नर युग्मक (वीर्य–कोशिका) और मादा युग्मक (अंड–कोशिका) का एकीकरण होता है तो उससे बनने वाली काशिका में दो X क्रोमोसोम हो सकते हैं या एक X तथा एक Y क्रोमोसोम – दोनों की संभाविता आधी–आधी है। पहले प्रकार से पैदा हुई संतान लड़की

[8] यह बात मानवों और सभी स्तनपायी जानवरों के लिए सत्य है। परंतु पक्षियों में स्थिति उलटी हो जाती है : जैसे, मुर्गे में दो सर्वसम युग्मक होते हैं, जबकि मुर्गी में दो अलग–अलग प्रकार (लिंगों) के होते हैं।

होगी तथा दूसरे से लड़का।* इस महत्त्वपूर्ण समस्या पर हम अगले परिच्छेद में लौटेंगे; अभी तो हमें प्रजनन की प्रक्रिया के वर्णन में आगे बढ़ना है।

जब नर शुक्राणु मादा अंडाणु के साथ एक हो जाता है – इस प्रक्रिया को "युग्मक–संलयन" (syngamy) कहते हैं – तो एक पूरी कोशिका बन जाती है, जो "माइटोसिस" प्रक्रिया द्वारा दो भागों में विभाजित होने लगती है, जैसा चित्र 92 में दिखाया गया था। इन दो नयी कोशिकाओं में प्रत्येक थोड़े–से विश्राम के बाद फिर दो में बँट जाती है; इस प्रकार बनी चारों कोशिकाएँ फिर इसी प्रक्रिया को दुहराती हैं, आदि। प्रत्येक संतान कोशिका को विरासत में मूल निषेचित अंडे के सभी क्रोमोसोमो की सही–सही नकल प्राप्त होती है, जिनमें से आधे माता से आये होते हैं और आधे पिता से। निषेचित अंडा कैसे क्रमशः वयस्क व्यक्ति में विकसित हो जाता है, इसकी रूपरेखा चित्र 95 में दिखायी गयी है। भाग (क) में हम स्थिर अंडाणु के शरीर में शुक्राणु को प्रवेश करते देखते हैं।

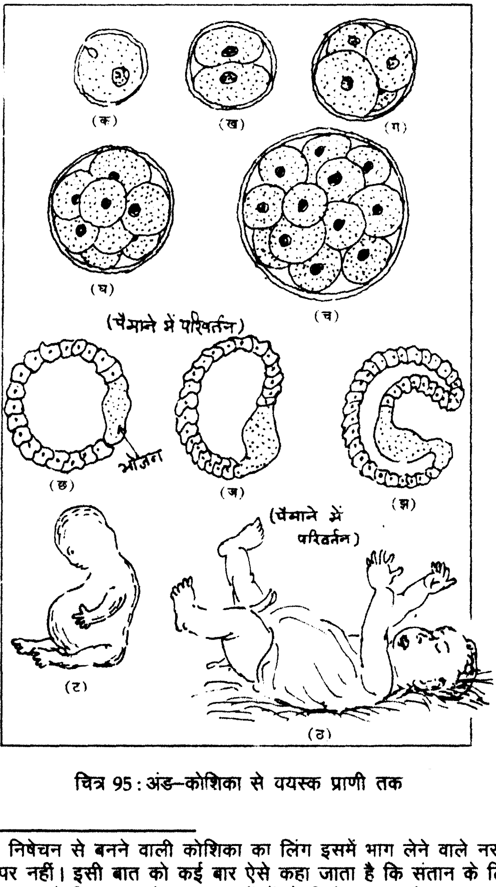


चित्र 95 : अंड–कोशिका से वयस्क प्राणी तक

* स्पष्ट है कि किसी एक निषेचन से बनने वाली कोशिका का लिंग इसमें भाग लेने वाले नर–युग्मक की प्रकृति पर निर्भर है, मादा युग्मक पर नहीं। इसी बात को कई बार ऐसे कहा जाता है कि संतान के लिंग की ज़िम्मेवारी पिता पर है, माँ पर नहीं। सच यह है कि बहुत–से नर–युग्मकों में से किसे चुना जायेगा, यह मादा शरीर में होने वाली बहुत–सी जटिल प्रक्रियाओं पर भी निर्भर है। –अनु०

दो युग्मकों के एकीकरण से पूरी हुई कोशिका में एक नयी क्रिया चल निकलती है, और यह कोशिका बँटते–बँटते क्रमशः 2, 4, 8, 16 आदि हो जाती है (चित्र 95 ख, ग, घ, च)। जब कोशिकाओं की संख्या कुछ बड़ी हो जातीं है तो ये इस प्रकार व्यवस्थित होने लगती हैं जिससे ये सभी सतह पर रहें, जहाँ इन्हें आसपास के पोषक माध्यम से भोजन प्राप्त करने में आसानी हो। विकास की इस अवस्था को, जिसमें शरीर अपने भीतर खोखला स्थान लिये हुए एक नन्हें बुलबुले जैसा दीखता है, "ब्लास्तुला" कहते हैं (छ)। बाद में खोखले की दीवार भीतर की ओर मुड़ने लगती है (ज), और शरीर "गैस्ट्रुला" नामक अवस्था में प्रवेश करता है (झ), जिसमें यह एक छोटे–से जेब जैसा दीखता है, जिसका मुख ताज़ा भोजन लेने तथा पची हुई सामग्रियों से बचे मल को निकालने, दोनों के काम आता है। कई सरल प्राणी, जैसे मूँगे, विकास के इस चरण से आगे प्रगति करते ही नहीं हैं। परंतु अधिक विकसित प्रजातियों में बढ़त तथा क्रमशः संशोधन की यह प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है। कुछ कोशिकाओं का विकास हड्डियों के ढाँचे के रूप में होता है, अन्यों का पाचन, श्वसन, तंत्रिका आदि के तंत्रों के रूपों में, और इस प्रकार विभिन्न भ्रूण–अवस्थाओं में से गुज़रता हुआ (ट) यह शरीर आख़िर एक छोटा प्राणी बन जाता है जिसे अपनी प्रजाति के सदस्य के रूप में पहचाना जा सकता है (ठ)।

जैसा ऊपर बताया गया, बढ़ते हुए शरीर की कुछ कोशिकाएँ विकास की शुरू की अवस्थाओं में ही अलग कर ली जाती हैं, या यूँ कहिए कि भावी प्रजनन के कार्य के लिए आरक्षित कर ली जाती हैं। जब शरीर परिपक्वता को प्राप्त हो जाता है, तो ये कोशिकाएँ मीयोसिस की प्रक्रिया से गुज़र कर युग्मक पैदा करती हैं, जो फिर से पूरी प्रक्रिया को प्रारंभ से चालू कर देते हैं। और इस प्रकार जीवन चलता जाता है।

## 2. आनुवंशिकता (ख़ानदानी गुण) और जीनें

प्रजनन की प्रक्रिया का सबसे अद्भुत पहलू यह तथ्य है कि दो अभिभावकों के शरीर से निकले दो युग्मकों के एकीकरण से जो नया जीव पैदा होता है, वह बढ़ कर किसी भी अंट–शंट तरह की सजीव वस्तु नहीं बन जाता, बल्कि ऐसे विशेष प्रकार से विकास करता है कि अपने अभिभावकों की काफ़ी यथार्थ प्रतिकृति बन जाता है, बल्कि अभिभावकों के पितरों की भी, हालाँकि ज़रूरी नहीं कि हर तरह से उनके जैसा ही हो।

सचमुच, हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि आइरिश सैटर कुत्तों के जोड़े से पैदा हुआ पिल्ला कुत्ते की आकृति के अनुसार तो रूप ग्रहण करेगा ही, न कि हाथी या खरगोश के अनुसार, अपितु बढ़त में यह हाथी जैसा बड़ा या खरगोश जैसा छोटा भी नहीं होगा, और यह भी कि इसकी चार टाँगें व एक लंबी पूँछ होगी और सिर पर दोनों ओर एक–एक आँख तथा एक–एक कान होंगे। यह भी काफ़ी निश्चय के साथ कह सकते हैं कि इसके कान कोमल तथा लटकते हुए होंगे, इसके बाल लंबे तथा रंग में सुनहरे भूरे–से होंगे, और बहुत संभावना है कि यह शिकार करना पसंद करेगा। इसके अलावा तरह–तरह की बहुत–सी छोटी–छोटी बातें होंगी जिनका संबंध इसकी माँ या पिता के गुणों से होगा, और शायद उनसे पहले के पूर्वजों से भी, और कुछ इसके अपने व्यक्तिगत गुण भी होंगे।

ये सभी तरह की भिन्न–भिन्न विशिष्टताएँ, जिनसे यह कुत्ता एक बढ़िया आइरिश सैटर कहलाता है, कैसे उन दो युग्मकों के ज़रा–से पदार्थ में समायी हुई थीं, जिनके एक होने से इस पिल्ले का विकास शुरू हुआ?

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, हर नये जीव को अपने क्रोमोसोमों में से आधे अपने पिता से और आधे माता से प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि किसी भी प्रजाति की मुख्य विशिष्टताएँ तो माता और पिता दोनों से आये क्रोमोसोमों में समान रूप से निहित रही होंगी, जबकि कई छोटे–छोटे गुण, जो, व्यक्ति–व्यक्ति में अलग–अलग हो सकते हैं, शायद अलग–अलग माता या पिता किसी एक से आये होंगे। इसमें ज़्यादा संदेह नहीं कि बहुत लंबे समय में, और बहुत सारी पीढ़ियों की अवधि में, जानवरों व पौधों के अधिकतर बुनियादी गुणों में भी परिवर्तन हो सकते हैं (जैसे बंदर से कुछ और बन सकता है – और जीवों का विकास इसका प्रमाण है)। फिर भी, मानव द्वारा प्रेक्षण की सीमित अवधि में तो केवल छोटी–मोटी विशिष्टताओं में हुए अपेक्षाकृत छोटे परिवर्तन ही नज़र आ सकते हैं।

इस प्रकार की (छोटी) विशिष्टताएँ, और इन विशिष्टताओं का अभिभावकों से संतानों को विरासत में मिलना, यह **आनुवंशिकी** (genetics) नामक नये विज्ञान की मुख्य विषय–वस्तु है। यद्यपि यह विज्ञान अभी व्यावहारिक रूप से अपने शैशव में ही है, तो भी यह हमें जीवन के गूढ़तम रहस्यों के बारे में बहुत–सी रोचक बातें बता सकता है। उदाहरणतया, हमने सीखा है कि, अधिकतर जैविक परिघटनाओं से उलटे, आनुवंशिकता के नियमों में लगभग गणित की–सी सरलता होती है, जिससे संकेत मिलता है कि यह जीवन की सबसे बुनियादी परिघटनाओं में से एक है।

उदाहरण के तौर पर मानव–आँख का एक जाना–बूझा दोष है रंगांधता (colour-blindness)। इसका सबसे आम रूप वह है जिसमें व्यक्ति लाल व हरे में भेद नहीं कर पाता। रंगांधता को समझना हो तो पहले यह समझना होगा कि हम रंगों को देख ही कैसे पाते हैं – इसके लिए रैटिना की जटिल रचना व गुण, विभिन्न तरंग–लंबाइयों वाले प्रकाश के कारण होने वाली प्रकाश–रासायनिक प्रतिक्रियाओं, इत्यादि का अध्ययन करना पड़ेगा।

परंतु यदि हम यह पूछें कि किसी **वंश में कैसे रंगांधता चली आती है,** तो भले ही यह प्रश्न पहली नज़र में रंगों को देखने की व्याख्या करने से भी अधिक जटिल लगे, पर इसका उत्तर अनपेक्षित रूप से सरल व सहज है। देखे गये तथ्य हमें बताते हैं कि (1) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष काफ़ी अधिक संख्या में रंगांध होते हैं, (2) रंगांध पुरुष व "सामान्य" स्त्री के बच्चे कभी रंगांध नहीं होते, परंतु (3) रंगांध स्त्री और "सामान्य" पुरुष के बच्चों में से पुत्र रंगांध होते हैं पर पुत्रियाँ नहीं। ये तथ्य साफ़–साफ़ बताते हैं कि विरासत में रंगांधता पाना किसी–न–किसी तरह लिंग से जुड़ा हुआ है। अब यदि हम मान कर चलें कि रंगांधता रूपी विशिष्टता किसी एक क्रोमोसोम में किसी दोष का परिणाम है, और इस क्रोमोसोम के साथ ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आ जाती है, तो ऊपर कहे 3 तथ्यों के साथ इस मान्यता को मिलाने से हमें संकेत मिलता है कि **रंगांधता उस क्रोमोसोम में दोष का परिणाम है जिसे ऊपर X कहा गया है।**

इसे मान कर चलने से रंगांधता संबंधी अनुभव से प्राप्त हुए नियम काँच की तरह साफ़ हो जाते हैं। आपको याद होगा कि स्त्री की कोशिकाओं में दो X क्रोमोसोम होते हैं, जबकि पुरुष की कोशिकाओं में सिर्फ़ एक ही X होता है (और दूसरा क्रोमोसोम Y होता है)। यदि पुरुष के अकेले X क्रोमोसोम में इस प्रकार का दोष है तो वह रंगांध होगा। स्त्री में दोनों X क्रोमोसोम ख़राब होने से ही रंगांधता आयेगी, क्योंकि एक भी X क्रोमोसोम ठीक होने से रंग का अनुभव सही होगा। अब यदि X क्रोमोसोम में ऐसी रंग–संबंधी ख़राबी होने की संभाविता, मान लीजिए, हर हज़ार में एक है, तो हर एक हज़ार पुरुषों में से एक रंगांध होगा। किसी स्त्री में दोनों X क्रोमोसोम ख़राब होने की संभाविता की मूल सिद्धांत से गणना करनी हो तो संभाविता की गुणा के नियम के अनुसार (देखिए अध्याय आठ) यह दोनों संभाविताओं के गुणनफल के बराबर होगी,

यानी : $\frac{1}{1000} \times \frac{1}{1000} = \frac{1}{1,000,000}$, अर्थात् दस लाख में से एक स्त्री के ही रंगांध होने की अपेक्षा है।

अब हम उस मामले का विचार करें जिसमें पति रंगांध और पत्नी "सामान्य" है (चित्र 96 क)। उनके बेटों को तो अपने पिता से कोई X क्रोमोसोम मिलेगा नहीं (केवल Y मिलेगा), और माँ से एक "अच्छा" X क्रोमोसोम मिलेगा; अतः कोई कारण नहीं कि वे रंगांध हों। दूसरी ओर, उनकी बेटियों को अपनी माँ से एक "अच्छा" X क्रोमोसोम और पिता से एक "ख़राब" वाला मिलेगा। एक X क्रोमोसोम "अच्छा" होने के कारण वे रंगांध नहीं होंगी, हालाँकि उनके संतान (बेटे) रंगांध हो सकते हैं।

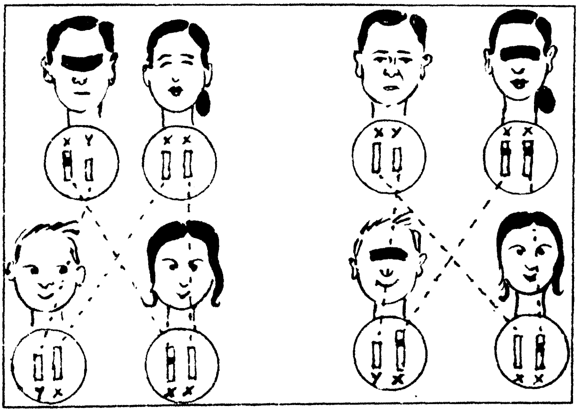

चित्र 96 : रंगांधता की आनुवंशिकता

इससे उलटी स्थिति में, जहां पत्नी रंगांध है और पति "सामान्य" है (चित्र 96ख), उनके बेटे तो ज़रूर रंगांध होंगे क्योंकि उनके पास जो एक X क्रोमोसोम है वह माँ से ही आया है, और माँ के दोनों X क्रोमोसोम "ख़राब" हैं। बेटियाँ, जिनको पिता से एक "अच्छा" X क्रोमोसोम और माँ से एक "ख़राब" वाला मिलेगा, रंगांध नहीं होंगी, परंतु जैसा कि पहले

*वाले मामले में हमने ग़ौर किया, उनके बेटे रंगांध होंगे।* भला इससे सरल क्या हो सकता है!*

*रंगांधता की तरह के आनुवंशिक विकार, जो* **जोड़ी के दोनों क्रोमोसोमों** *के विकृत* होने पर ही प्रकट होते हैं, **अप्रभावी** (recessive) कहलाते हैं। ये विकार दादा/दादी/नाना/नानी से पोता/पोती/नतिनी/नाती तक छिपे हुए रूप में (अर्थात् बीच की पीढ़ी को प्रभावित किये बिना) भी जा सकते हैं। इसी कारण से कभी–कभी ऐसे हादसे भी हो जाते हैं कि जैसे बढ़िया दीखने वाले जर्मन शैपर्ड कुत्ते–कुतिया के जोड़े से जन्मा पिल्ला जर्मन शैपर्ड नस्ल से बिल्कुल ही अलग दिखाई दे।

इससे ठीक उलटा होता है तथाकथित **प्रभावी** विकारों के बारे में, जो कि क्रोमोसोमों के जोड़े में से केवल एक के प्रभावित होने से भी नज़र आ जाते हैं। इसे उदाहरण से दर्शाने के लिए हम आनुवंशिकी के वास्तविक तथ्यों को छोड़ कर एक वरगोश (माफ़ कीजिए, खरगोश) का काल्पनिक उदाहरण लेंगे, जिसके जन्म से ही मिक्की माउस (चूहे) जैसे कान हैं। यदि हम यह मान कर चलें कि "मिक्की जैसे कान" आनुवंशिकता में एक प्रभावी (dominant) विकार है, यानी एक ही क्रोमोसोम में परिवर्तन हो जाना इस शर्मनाक तरह के (खरगोश के लिए) कान उगाने के लिए पर्याप्त है, तो हम पहले से बता सकते हैं कि खरगोशों की आने वाली पीढ़ियों के कान कैसे होंगे। चित्र 97 में इस प्रकार के परिणाम दिखाये गये हैं, यह मान कर कि शुरुआती और बाद में सभी एकीकरणों से पैदा होने वाले सभी खरगोश सामान्य खरगोशों से ही संतान पैदा करेंगे। चित्र में मिक्की जैसे कानों के लिए ज़िम्मेवार क्रोमोसोम के विकार को काले दाग़ द्वारा दर्शाया गया है।

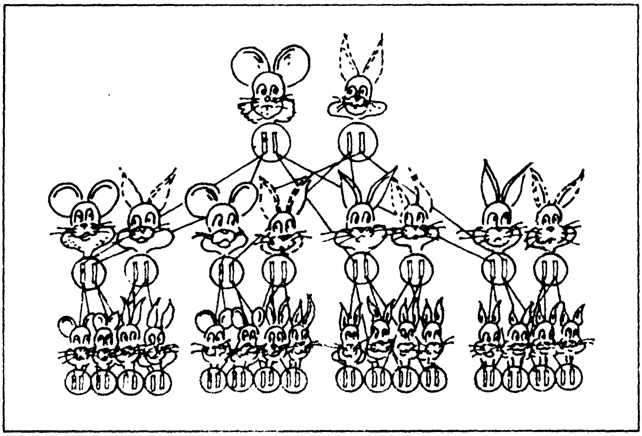

चित्र 97 : प्रभावी जीनों की आनुवंशिकता

प्रभावी एवं अप्रभावी किस्म के विकार तो ऐसे विकार हैं जो या तो पूरे प्रकट होते हैं या बिल्कुल नहीं। परंतु कुछ अन्य तरह की विशिष्टताएँ भी होती हैं जिन्हें **उदासीन**

* ऊपर जो तथ्य (2) दिया गया, उसमें "सामान्य" स्त्री का अर्थ उस स्त्री से है जिसके दोनों X क्रोमोसोम अच्छे हों। यदि केवल एक X क्रोमोसोम अच्छा और एक खराब हो, तो स्पष्ट है कि ऐसी स्त्री और उसके रंगांध पति के आधे बेटों और आधी बेटियों के रंगांध होने की अपेक्षा है परंतु व्यावहारिक रूप से एक ख़राब X क्रोमोसोम वाली स्त्री भी सामान्य कहलाती है क्योंकि वह रंगांध नहीं होती। तथ्य (2) की व्याख्या करने में इस बात का ध्यान रखना होगा। –अनु०

(indifferent) कहा जा सकता है। मान लीजिए कि हमारे बग़ीचे में चार बजे खिलने वाले लाल व सफ़ेद फूलों के पौधे हैं। जब लाल फूल वाले पौधों से पराग (पौधों के शुक्राणु) को हवा या कीड़ों द्वारा दूसरे लाल फूल वाले पौधे के केसर तक पहुँचाया जाता है, तो ये परागकण केसरों के मूल में स्थित अंडाणुओं के साथ एकीकरण करके बीज तैयार करते हैं, जिनसे फिर लाल फूल वाले पौधे उगेंगे। इसी प्रकार, यदि सफ़ेद फूलों के पराग से दूसरे सफ़ेद फूलों का निषेचन किया जाये तो अगली पीढ़ी के पौधे के सभी फूल सफ़ेद होंगे। परंतु यदि लाल फूलों का पराग सफ़ेद फूलों पर पड़े, या उससे उलटा हो, तो इस प्रकार तैयार किये गये बीजों से उगने वाले पौधों के फूल गुलाबी होंगे (चित्र 98)। ध्यान दीजिए कि गुलाबी फूल किसी अलग किस्म के नहीं हैं जो जैविक रूप से स्थायी हो, और यह आसानी से दर्शाया जा सकता है। यदि हम गुलाबी फूलों वाले पौधों का आपस में ही एकीकरण करायें, तो हम देखते हैं कि अगली पीढ़ी के पौधों में 50 प्रतिशत गुलाबी, 25 प्रतिशत लाल और 25 प्रतिशत सफ़ेद फूल वाले हैं।

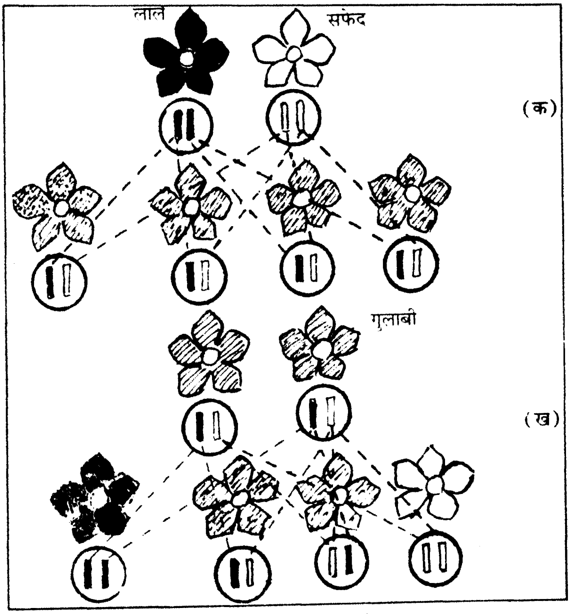

चित्र 98 : उदासीन विशिष्टता की व्याख्या

इसकी व्याख्या बड़ी आसानी से की जा सकती है यदि हम यह मान लें कि (1) लाल या सफ़ेद फूल होने का गुण पौधे की कोशिका के एक क्रोमोसोम द्वारा दिया जाता है, (2) जोड़ी के **दोनों** क्रोमोसोमों में एक ही रंग का गुण होने पर फूलों में उस प्रकार का शुद्ध रंग (लाल या सफ़ेद) आता है, और (3) यदि एक क्रोमोसोम "लाल" और दूसरा "सफ़ेद" वाला हो तो दोनों की औसत के रूप में गुलाबी रंग के फूल आते हैं, क्योंकि यह विशिष्टता प्रभावी या अप्रभावी नहीं है। चित्र 98 में रूपरेखीय विधि से पौधों की संतानों में रंग वाले क्रोमोसोमों का वितरण दर्शाया गया है; इसे देख कर हम ऊपर दिया गया संख्यात्मक संबंध समझ पायेंगे।

इससे मिलता–जुलता एक और चित्र खींच कर आसानी से दर्शाया जा सकता है कि यदि सफ़ेद और गुलाबी फूलों का परस्पर प्रजनन कराया जाये तो पहली पीढ़ी में 50 प्रतिशत सफ़ेद और 50 प्रतिशत गुलाबी फूल वाले पौधे मिलेंगे, परंतु लाल वाले एक भी नहीं। इसी प्रकार लाल और गुलाबी फूलों के प्रजनन से 50 प्रतिशत लाल व 50 प्रतिशत गुलाबी फूल मिलेंगे, सफ़ेद बिल्कुल नहीं। ऐसे हैं आनुवंशिकता के नियम, जिनकी खोज लगभग एक शताब्दी पूर्व उस आडंबरहीन मोरावियाई संन्यासी ग्रेगोर मेंडल ने ब्रन्स शहर के निकट अपने मठ की बारी में मटर उगाने के क्रम में की।

अभी तक हम हर संतान – शरीर द्वारा विरासत में प्राप्त किये गये गुणों को अपने अभिभावकों से पाये गये क्रोमोसोमों से जोड़ कर देख रहे हैं। परंतु विभिन्न गुण तो लगभग असंख्य ही हैं, और इसकी तुलना में क्रोमोसोमों की संख्या काफ़ी छोटी है (मक्खी की कोशिका में 8; मानव की कोशिका में 46); अतः हमें जबरन मानना ही पड़ेगा कि हर एक क्रोमोसोम एक नहीं बल्कि कई विशिष्टताओं की लंबी सूची अपने भीतर लिये रहता है, और हम कल्पना कर सकते हैं कि यह सूची इसकी रेखा जैसी देह की लंबाई पर लिखी रहती है। फल की मक्खी (**ड्रोसोफ़िला मेलानोगास्टर**[9]) की लार–ग्रंथियों के क्रोमोसोमों की लंबी देह पर बहुत–सी काली–काली पट्टियाँ आर–पार जाती देखी गयी हैं; ऐसा लगता है कि ये पट्टियाँ ही इस मक्खी द्वारा वहन किये गये विभिन्न गुणों के स्थान हैं। हो सकता है, इनमें से कई पट्टियाँ मक्खी के रंग का निर्धारण करती हों, कुछ इसके पंखों की आकृति का, और कुछ अन्य शायद इस बात के लिए ज़िम्मेवार हों कि इसकी **छः** टाँगें हैं, और यह लगभग **एक चौथाई इंच लंबी** होती है, और कुल मिलाकर यह फल–मक्खी जैसी दीखती है, न कि कानखजूरे या चूज़े जैसी।

और सचमुच, आनुवंशिकी–विज्ञान हमें बताता है कि यह अनुमान बिल्कुल सही है। यह दर्शाना संभव है कि क्रोमोसोम की रचना की ये लघु इकाइयाँ, जिन्हें "जीनें" कहा जाता है, अपने में विभिन्न आनुवंशिक गुणों की इकाइयों को समेटे रहती हैं। यही नहीं, बहुत–से मामलों में तो यह बता देना भी संभव है कि कौन–सी जीन इस या उस गुण–विशेष की वाहक है।

हाँ, यह अवश्य है कि बड़े से बड़ा आवर्धन करने पर भी सभी जीनें प्रायः एक–सी दिखाई पड़ती हैं, और उनके कार्य करने के ढंगों में जो अंतर हैं, वे उनकी आणविक रचना में कहीं गहरे छिपे रहते हैं। अतः उनमें से एक–एक जीन का "जीवन में प्रयोजन" जानने के लिए तो इस बात का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना होगा कि पौधों या जानवरों की प्रजाति–विशेष में विभिन्न आनुवंशिक गुण कैसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी सौंपे जाते हैं।

हमने देखा है कि किसी भी सजीव शरीर में आधे क्रोमोसोम पिता से और आधे माता से आते हैं। क्योंकि माता और पिता के क्रोमोसोम–समूह भी आधे–आधे उनके अपने–अपने माता एवं पिता से प्राप्त हुए होंगे, अतः यह अपेक्षा करनी चाहिए कि कोई भी बच्चा विरासत

[9] इस मक्खी की विशेषता है कि इसमें क्रोमोसोम अपवाद–स्वरूप बहुत बड़े होते हैं और माइक्रो–फ़ोटोग्राफ़ी की विधि द्वारा उनकी रचना का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।

में दादा–दादी में से किसी एक के और नाना–नानी में से किसी एक के ही गुण पायेगा।* परंतु अनुभव से हम जानते हैं कि ऐसा होना ज़रूरी नहीं है, और ऐसे मामले साफ़ देखे जा सकते हैं जिनमें **चारों बुज़ुर्गों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ नाती-पोते को विरासत में मिली हों।**

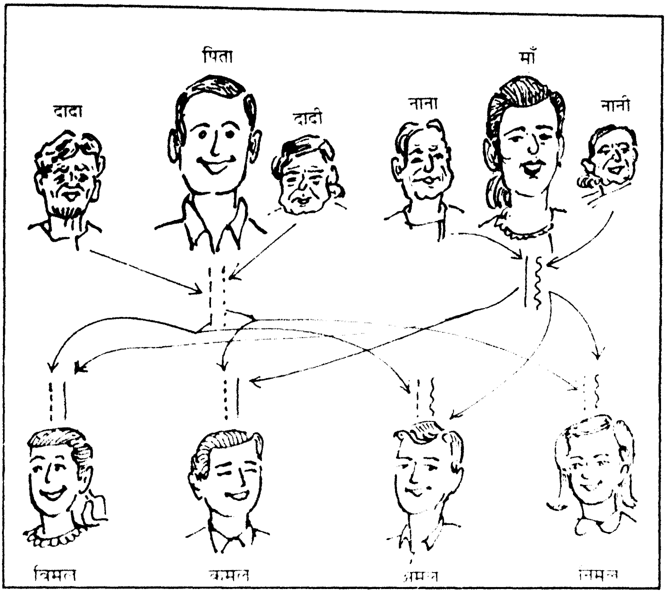


चित्र 98 ★ : तीसरी पीढ़ी में आनुवंशिक विरासत के बारे में एक तर्क

तो क्या इसका अर्थ यह है कि क्रोमोसोम विरासत में देने की ऊपर वर्णित योजना ग़लत है? नहीं, ग़लत तो नहीं है, परंतु इसे ज़रा ज़्यादा ही सरल बना दिया गया था। इस योजना में इस कारक को शामिल करना अभी बाकी है कि जब मीयोसिस की प्रक्रिया होती है, जिसके तहत अलग से रखी प्रजनन–कोशिकाएँ दो–दो युग्मकों में बँट जाती हैं, तो उससे पहले तैयारी के रूप में किसी भी जोड़ी के दो क्रोमोसोम अक्सर आपस में लिपट जाते हैं और उनके अंगों की अदला–बदली भी हो जाती है। इन अदल–बदल की प्रक्रियाओं से, जिनकी रूपरेखा चित्र 99क तथा ख में दिखायी गयी है, माँ–बाप से प्राप्त जीनों में घाल–मेल हो जाता है, और इसी से आनुवंशिकता में घाल–मेल हो जाता है। कई बार ऐसा भी होता है (चित्र 99ग) कि एक ही क्रोमोसोम मुड़ कर कुंडली बना ले और फिर टूट कर दूसरी तरह से जुड़ जाये, जिससे इसमें क्रमबद्ध जीनों का क्रम उलट–पलट हो जाता है।

---

* उदाहरणतया, चित्र 98★ में दिखाया गया है कि विमल एवं कमल को केवल नाना के गुण विरासत में मिले हैं, नानी के नहीं, जबकि अमल एवं निर्मल को केवल नानी के गुण विरासत में मिले हैं। स्पष्ट है कि यह तर्क पूर्ण नहीं है, क्योंकि क्रोमोसोमों की कई जोड़ियाँ और भी हैं, और यह बिल्कुल संभव है कि किन्हीं अन्य जोड़ियो में विमल एवं कमल को नानी वाले क्रोमोसोम भी प्राप्त हुए हों। आगे यह बताया गया है कि इस एक क्रोमोसोम–जोड़ी में निहित गुण भी चारों बुज़ुर्गों से प्राप्त हो सकते हैं। –अनु०

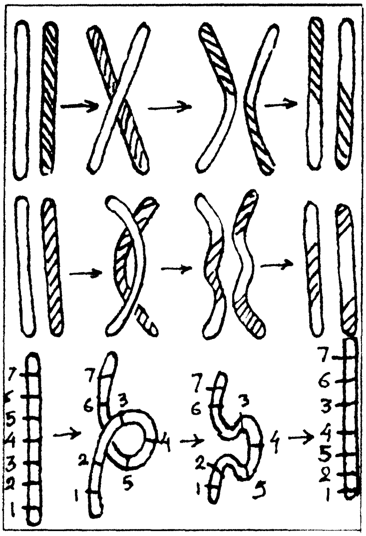


चित्र 99 : क्रोमोसोमों के अंगों की अदला–बदली

यह स्पष्ट है कि क्रोमोसोमों के जोड़े में आपस में, या अकेले क्रोमोसोम में ही, यदि जीनों की अदल–बदल होती है तो इसमें उन जीनों के बीच दूरी बदलने की संभाविता अधिक है जो मूल रूप में एक–दूसरे से दूर थीं, जबकि एक–दूसरे के निकट की जीनों की आपसी दूरी बदलने की संभाविता कम है। यह ठीक वैसा है जैसा ताश के पत्तों की गड्डी को काटने में होता है। इससे काट के ऊपर और नीचे वाले पत्तों के बीच की आपेक्षिक स्थिति बदल जाती है (और जो पत्ता सबसे ऊपर था और जो सबसे नीचे था, वे दोनों साथ आ जाते हैं), परंतु साथ–साथ रखे पत्तों की जोड़ियाँ अलग नहीं होंगी, सिवाय एक के।

अतः यदि यह देखने में आये कि क्रोमोसोमों की अदल–बदल में कोई दो विशेष आनुवंशिक गुण लगभग सदा साथ–साथ ही चलते हैं, तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनसे संबंधित जीनें एक–दूसरे की निकट पड़ोसी थीं। दूसरी ओर, जो जीनें अदल–बदल की प्रक्रिया में अक्सर आपेक्षिक स्थान बदल लेती हैं, वे मूल क्रोमोसोम में दूर–दूर स्थित रही होंगी।

इस ढंग से फल–मक्खी पर खोज करते हुए अमरीकी आनुवंशिकीविद टी०एच० मॉर्गन और उनके सहकर्मी इसके क्रोमोसोमों में जीनों का क्रम निश्चित रूप से प्रस्थापित करने में सफल रहे हैं। चित्र 100 के चार्ट में दर्शाया गया है कि फल–मक्खी के विभिन्न गुणों को वहन करने वाली जीनें उसकी कोशिकाओं में रहने वाले चार क्रोमोसोमों में किस प्रकार स्थित हैं, जैसा कि उक्त अनुसंधान से मालूम हुआ।

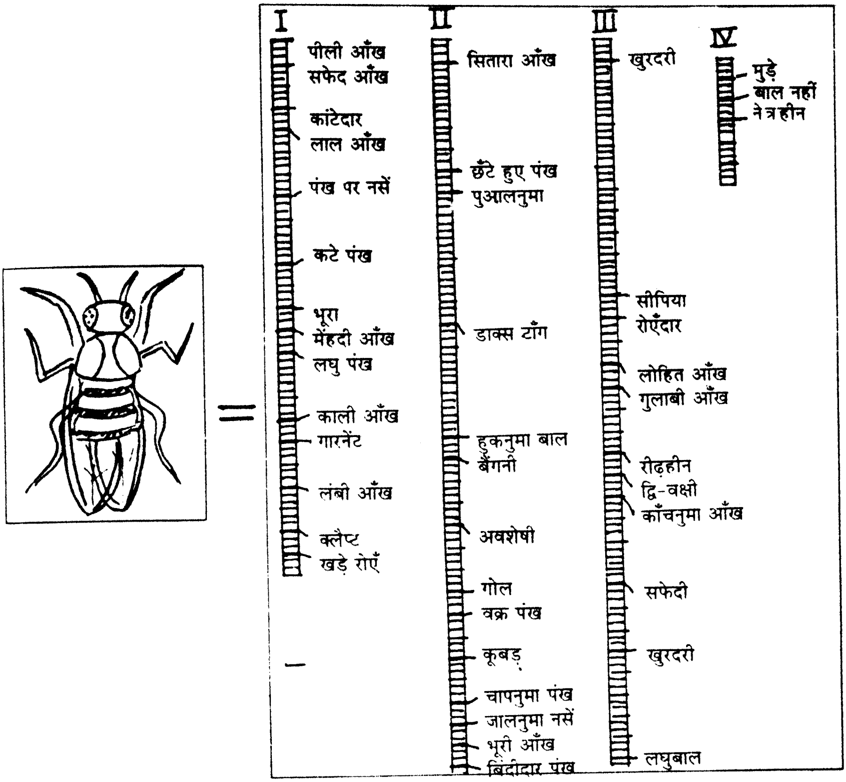


चित्र 100 : फल की मक्खी की विभिन्न जीनों का नक्शा

चित्र 100 में जैसा चार्ट दिखाया गया है, वैसा चार्ट निश्चय ही अधिक जटिल प्राणियों (मानव सहित) के लिए भी सिद्धांततः बनाया जा सकता है, हालाँकि इसके लिए बहुत अधिक सावधानीपूर्वक और विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा।[+]

### 3. जीनें – "सजीव अणु"

सजीव शरीरों की अति जटिल रचना का परत–दर–परत विश्लेषण करते हुए अब हम उन चीज़ों तक पहुँच गये हैं, जो **जीवन की मूलभूत इकाइयाँ** प्रतीत होती हैं। सचमुच, हमने देखा है कि वयस्क जीव के प्रायः सभी गुण, और उसके विकास का पूरा क्रम, जीनों के समूह के द्वारा नियंत्रित हैं, जो कि जीव की हर कोशिका की गहराई में छिपी हैं। यह कहा जा सकता है कि कोई भी जानवर या पौधा अपनी "जीनों के सहारे बढ़ता है"। यदि इस स्थिति को अति सरल करके इसकी भौतिक अनुरूपता दिखाना उचित हो, तो हम जीनों एवं सजीव प्राणी के संबंध की तुलना परमाणु के नाभिक एवं अकार्बनिक पदार्थ के बड़े टुकड़ों के

[+] अब तक अनेक जीवों (जैसे **ई० कोलाइ**) की जीनों का पूरा नक्शा तैयार किया जा चुका है। मानव की जीनों का नक्शा तैयार करने का कार्य एक बृहत परियोजना (Human Genome Project) के अंतर्गत कई वर्षों से चल रहा है। –अनु०

संबंध के साथ कर सकते हैं। यहाँ भी किसी पदार्थ के प्रायः सभी भौतिक एवं रासायनिक गुणों को परमाणविक नाभिकों के बुनियादी गुणों से समझा जा सकता है। हर नाभिक की पहचान के लिए बस एक ही संख्या पर्याप्त है जो उसका आवेश बताती है। अब जैसे, संख्या 6 का उदाहरण लें। छः बुनियादी इकाइयों का विद्युत–आवेश धारण करने वाला प्रत्येक नाभिक 6 इलैक्ट्रोनों के आवरणों से घिरा रहेगा, जिनके कारण इन परमाणुओं की एक नियमित षट्कोणीय डिज़ाइन में व्यवस्थित होने की प्रवृत्ति होगी, और दुर्लभ कठोरता व बहुत उच्च अपवर्तनांक (refractive index) वाले क्रिस्टल बनेंगे, जिनको हम हीरे कहते हैं। इसी प्रकार 29, 16 और 8 विद्युत–आवेशों वाले नाभिकों के समूह से ऐसे परमाणु बनेंगे जो एक साथ सट कर गहरे नीले रंग का क्रिस्टलीय पदार्थ बनायेंगे जिसे हम ताँबे का सल्फेट (नीला थोथा) कहते हैं। यह तो ठीक है कि सरल से सरल सजीव शरीर भी क्रिस्टलों से बहुत अधिक जटिल होता है, परंतु दोनों चीज़ों में यह विशिष्ट परिघटना मिलती है जिसमें बड़े पैमाने पर बनने वाली व्यवस्था का हर छोटा–बड़ा पहलू इस बात से तय होता है कि इस संगठन के सूक्ष्म केंद्रों के गुण क्या हैं।

ये संगठक केंद्र (जीन), जिनसे गुलाब की खुशबू से लेकर हाथी की सूँड तक सजीव शरीरों के सभी गुण तय होते हैं, कितने बड़े होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर आसानी से दिया जा सकता है। बस, एक सामान्य क्रोमोसोम के आयतन को इसमें मौजूद जीनों की संख्या से भाग देना होगा। सूक्ष्मदर्शी से किये प्रेक्षणों के अनुसार एक औसत क्रोमोसोम की लंबाई एक मिलीमीटर के हज़ारवें भाग ($10^{-4}$ सें०मी०) के लगभग है, अतः (चौड़ाई व मोटाई को इससे कुछ कम मानते हुए) इसका आयतन $10^{-14}$ घन सें०मी० के आसपास होगा। प्रजनन–संबंधी प्रयोगों से संकेत मिलता है कि ऐसा एक क्रोमोसोम अवश्य ही कई हज़ार अलग–अलग आनुवंशिक गुणों के लिए जिम्मेवार होगा। फल–मक्खी **डोसोफ़िला मेलानोगास्टर** के विशाल क्रोमोसोम की लंबाई को काटती हुए काली पट्टियों को (जो हम समझते हैं जीनें होंगी) गिनने से[10] प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली संख्या भी लगभग इतनी ही है। क्रोमोसोम के कुल आयतन को जीनों की संख्या से भाग देने पर हम पाते हैं कि एक जीन का आयतन $10^{-17}$ घन सें०मी० से अधिक नहीं है। अब क्योंकि एक औसत परमाणु का आयतन $(2x10^{-8})^3 \approx 10^{-23}$ घन सें०मी० होता है, अतः हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि **एक-एक जीन अवश्य लगभग दस लाख परमाणुओं से बनी होगी**।

हम किसी जीव के शरीर में, जैसे मानव–शरीर में, जीनों के कुल भार का भी आकलन कर सकते हैं। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, एक वयस्क व्यक्ति लगभग $10^{14}$ कोशिकाओं से बना है, जिनमें प्रत्येक में 46 क्रोमोसोम हैं। अतः मानव–शरीर में क्रोमोसोमों का कुल आयतन लगभग $10^{14} \times 46 \times 10^{-14} \approx 50$ घन सें०मी० है और, क्योंकि सजीव पदार्थ का घनत्व पानी के घनत्व के तुल्य है, अतः इसका भार कोई 50 ग्राम होगा। तो यह नगण्य–सा भार है उस "संगठक पदार्थ" का जो अपने आसपास अपने से हज़ारों गुणा भारी जानवर या पौधे के शरीर रूपी "आवरण" का ताना–बाना बुनता है, और जो "भीतर से" इस शरीर की

[10] साधारण आकार के क्रोमोसोम इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शी से किये जाने वाले प्रेक्षणों में उनकी जीनें अलग–अलग दिखाई नहीं देतीं।

बढ़त के एक–एक कदम का, इसकी रचना के एक–एक पहलू का, और यहाँ तक कि इसके व्यवहार के बहुत बड़े भाग का भी, नियंत्रण करता है।

लेकिन जीन स्वयं है क्या? क्या इसे एक जटिल "प्राणी" मानना पड़ेगा, जिसको और भी छोटी जैविक इकाइयों में बाँटा जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर निश्चय ही "नहीं" है। जीन सजीव पदार्थ की सबसे छोटी इकाई है। यह तो निश्चित है ही कि जीन में वे सभी विशिष्टताएँ हैं जिनसे सजीव पदार्थ को निर्जीव से अलग पहचाना जाता है। परंतु, दूसरी ओर, इसमें भी शायद ही कोई संदेह हो कि ये जीनें उन जटिल अणुओं (जैसे प्रोटीन के अणुओं) के साथ भी संबंधित हैं, जो कि साधारण रसायन–विज्ञान के सभी परिचित नियमों के अधीन हैं।

दूसरे शब्दों में, ऐसा मालूम होता है कि **जीन सजीव तथा निर्जीव पदार्थ के बीच की खोयी हुई कड़ी है, अर्थात् वह "जीता-जागता" अणु है जिसके बारे में इस अध्याय के शुरू में विचार किया गया था।**

सचमुच, यदि हम एक ओर जीनों के अद्भुत स्थायित्व को देखें, जिससे ये हज़ारों पीढ़ियों तक किसी प्रजाति के ख़ानदानी गुणों को लगभग बिना किसी चूक के वहन करती आती हैं, और दूसरी ओर एक जीन की रचना में काम आये परमाणुओं की अपेक्षाकृत छोटी संख्या* पर ध्यान दें, तो इस जीन को, बस, एक सुनियोजित साँचा ही मान सकते हैं, जिसमें प्रत्येक परमाणु या परमाणु–समूह अपने पूर्व–निश्चित स्थान पर स्थिर रहता है, और तब हम यह समझ पाते हैं कि विभिन्न जीनों की रचना में परमाणुओं के अलग–अलग वितरण के कारण ही जीनों के गुण अलग–अलग होते हैं। अब क्योंकि प्राणियों की बाहरी विशिष्टताएँ उन जीनों द्वारा नियंत्रित हैं, अतः प्राणियों की बाहरी विभिन्नता में जीनों के परमाणुओं के वितरणों की विभिन्नता ही प्रतिबिंबित होती है।

परमाणुओं के परिवर्तनीय ढाँचों के एक सरल उदाहरण के तौर पर, आइए, टी०एन०टी० (ट्राइ–नाइट्रो–टॉलुईन) अणु को लें। यह एक विस्फोटक सामग्री है जिसकी पिछले दो महायुद्धों में एक प्रमुख भूमिका रही। टी० एन० टी० का एक अणु 7 कार्बन, 5 हाइड्रोजन, 3 नाइट्रोजन एवं 6 ऑक्सीजन के परमाणुओं से बना है; ये परमाणु निम्नलिखित तीन प्रकार से व्यवस्थित हो सकते हैं। तीनों व्यवस्थाओं के बीच अंतर इस बात में है कि

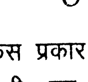

समूहों को कार्बन–मुद्रिका के साथ किस प्रकार (किस क्रम में) जोड़ा गया है। इन तीन प्रकारों से बनी सामग्रियों को $\alpha$, $\beta$ व $\gamma$ टी० एन० टी० नाम दिये जाते हैं (चित्र 100★)।

* यह संख्या (लगभग $10^6$) किसी भी पदार्थ के दिखाई देने वाले दाने में मौजूद अणुओं की संख्या ($\approx 10^{20}$) से बहुत ही छोटी है। – अनु०

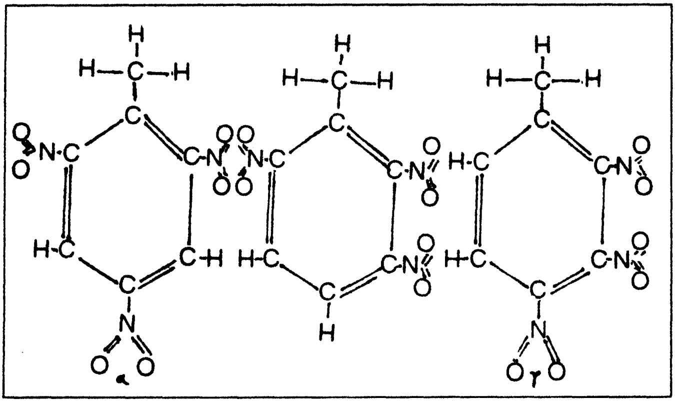

चित्र 100 ★ : टी०एन०टी० अणु के तीन प्रकार

तीनों पदार्थों को रासायनिक प्रयोगशाला में संश्लेषित किया (बनाया) जा सकता है। तीनों की प्रकृति विस्फोटक है, परंतु इनमें घनत्व, घुलनशीलता, गलन–बिंदु, विस्फोटक–शक्ति आदि की दृष्टि से छोटे–मोटे अंतर हैं। रसायन–विज्ञान की मानक विधियों द्वारा

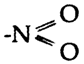

समूह को अणु में जुड़ने के एक बिंदु से दूसरे पर आसानी से बदला जा सकता है, जिससे कि टी० एन० टी० की एक किस्म को दूसरी में बदला जा सकता है। इस प्रकार के उदाहरण रसायन–विज्ञान में बहुत आम हैं, और जितना बड़ा अणु होगा, उतनी ही अधिक संख्या में अणु के विविध रूप (**सम-अवयवी रूप**) इस प्रकार बनाये जा सकते हैं।

अब यदि जीन को हम दस लाख परमाणुओं से बना एक विशाल अणु समझें तो विविध परमाणु–समूहों को इस अणु में विभिन्न स्थानों पर रखने की संभावनाओं की संख्या अति विशाल हो जायेगी। हम जीन को बार–बार (आवर्ती रूप से) दुहराने वाले परमाणु–समूहों की एक लंबी शृंखला के रूप में समझ सकते हैं, जिसमें जगह–जगह विविध अन्य समूह जुड़े रहते हैं, जैसे तावीज़ के धागे से मनके लटके हुए हों। सचमुच, जीव–रसायन–विज्ञान में हुई हाल की प्रगति से अब हम उस वंशानुगत तावीज़ का सही–सही रेखाचित्र बना सकते हैं। यह कार्बन, नाइट्रोजन, फ़ास्फ़ोरस, ऑक्सीजन व हाइड्रोजन से बनी है, और राइबो–न्यूक्लीक एसिड (आर० एन० ए०) के नाम से जानी जाती है।* चित्र 101 में हम ज़रा सांकेतिक ढंग से इस वंशानुगत तावीज़ का वह भाग दिखा रहे हैं (नाइट्रोजन व ऑक्सीजन परमाणुओं को छोड़ कर) जो किसी नवजात शिशु की आँखों के रंग का निर्धारण करता है। इससे जुड़े चार मनके बता रहे हैं कि शिशु की आँखें भूरी हैं। विभिन्न मनकों को एक काँटे से दूसरे में स्थानांतरित करके हम लगभग अनंत प्रकार के वितरण प्राप्त कर सकते हैं

* आधुनिक जानकारी के अनुसार जीन की रचना में लगा पदार्थ आर० एन० ए० नहीं, बल्कि उससे मिलता–जुलता डी० एन० ए० (डिऑक्सी–राइबो–न्यूक्लीक एसिड) है। –अनु०

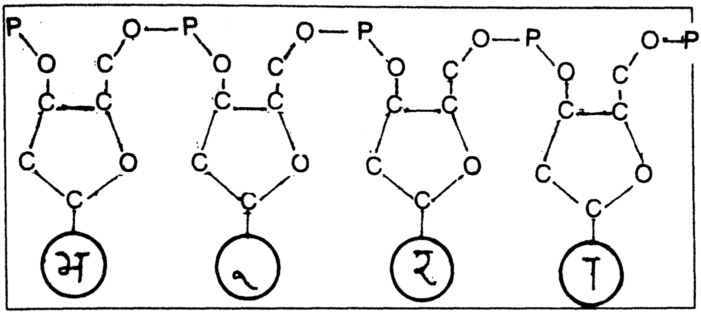

चित्र 101 : आनुवंशिकता की "तावीज़" का एक भाग जिससे आँखों का रंग नियत होता है

उदाहरणतया, यदि हमारे पास 10 अलग-अलग मनकों वाली तावीज़ हो तो इन दसों को हम 1x2x3x4x5x6x7x8x9x10 = 3,628,800 प्रकार से वितरित कर सकते हैं। यदि कुछ मनके एक समान हों, तो संभव वितरणों की संख्या कम होगी। अब जैसे, 5 ही प्रकार के मनके (हर प्रकार के दो-दो) होने से हमें केवल 113,400 संभावनाएँ ही मिलेंगी। परंतु यदि मनकों की कुल संख्या बढ़ने लगे, तो संभावनाओं की संख्या बहुत ही तेज़ी से बढ़ती है। जैसे, यदि 5 ही अलग-अलग प्रकार के मनकों की कुल संख्या 25 हो, तो वितरण-संभावनाओं की संख्या लगभग $6.23 \times 10^{13}$ हो जायेगी!

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न "मनकों" को लंबे कार्बनिक अणु के विविध "लटकाने के स्थानों" में तरह-तरह से वितरित करने से जो अलग-अलग संयोग बनते हैं, उनकी संख्या बहुत विशाल है : निश्चय ही यह संख्या न केवल सब तरह से ज्ञात सजीव रूपों को समा लेने के लिए पर्याप्त है, अपितु कल्पना से उपज सकने वाले सभी विचित्र प्रकार के ग़ैर-मौजूद जानवरों और पौधों के लिए भी।

जीव के गुणों को निर्धारित करने वाले "मनके", जो धागे के समान लंबे जीन के अणु पर स्थान-स्थान पर जुड़े होते हैं, उनके वितरण से संबंधित एक अति महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि यह वितरण कभी-कभी अनायास (अपने आप) बदल सकता है, जिसके परिणाम-स्वरूप पूरे शरीर में उसी के अनुरूप स्थूल परिवर्तन होते हैं। ऐसे परिवर्तनों का सबसे आम कारण तो तापीय गति में ही है, जिसके चलते अणु के पूरे शरीर में उसी प्रकार झटके और मरोड़ आते हैं जैसे आँधी के कारण पेड़ की शाखाओं में। जब तापमान पर्याप्त ऊँचा हो जाता है तो आणविक पिंडों के इस कंपन की शक्ति अणुओं के टुकड़े-टुकड़े कर देने के लिए काफ़ी हो जाती है – इस टूटने की प्रक्रिया को विच्छेद कहते हैं (देखिए, अध्याय आठ)। इससे थोड़े तापमान पर अणु भले ही अपनी अटूटता बरकरार रखे, पर आंतरिक कंपनों के फलस्वरूप आणविक रचना में कुछ अंदरूनी परिवर्तन तो हो ही सकते हैं। उदाहरणतया, हम कल्पना कर सकते हैं कि अणु को इस तरह से मरोड़ दिया जाये कि एक बिंदु पर जुड़ा एक मनका इसके शरीर के किसी अन्य बिंदु के पास आ जाये। ऐसी स्थिति में यह आसानी से हो सकता है कि मनका अपनी पहली स्थिति से अलग हो कर दूसरी जगह पर जुड़ जाये।

ऐसी परिघटनाओं को **समावयवी रूपांतरण**[11] कहते हैं, और साधारण रसायन–विज्ञान में, अपेक्षाकृत सरल आणविक रचनाओं के मामलों में, ये खूब जानी–पहचानी हैं। सभी अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं के समान ये रूपांतरण भी रासायनिक गतिकी (kinetics) के नियम का पालन करते हैं, जिसके अनुसार **तापमान में हर 10° सै० बढ़त होने से प्रतिक्रिया की गति लगभग दुगुनी हो जाती है।**

अब **जीन-अणुओं** की रचना इतनी जटिल है कि संभवतः लंबे समय तक कार्बनिक रसायनविदों के बढ़िया से बढ़िया प्रयासों को भी चकमा देती रहेगी। अतः सीधे–सीधे रासायनिक विश्लेषण द्वारा तो सम–अवयवी परिवर्तनों का पता लगाने का फ़िलहाल कोई उपाय नहीं है। हाँ, इस मामले में एक काम अवश्य किया जा सकता है जो एक दृष्टि से श्रम–साध्य रासायनिक विश्लेषण की अपेक्षा काफ़ी बेहतर समझा जा सकता है। यदि ऐसा कोई सम–अवयवी परिवर्तन किसी ऐसे नर या मादा युग्मक की जीनों में से एक में हो, जिनके एकीकरण से नया सजीव शरीर पैदा होने वाला हो, तो एकीकरण के बाद क्रोमोसोमों के विभाजन और कोशिका–विभाजन की बारंबार होने वाली प्रक्रियाओं में यह परिवर्तन उसी रूप में दुहराया जायेगा, और इस प्रकार पैदा होने वाले जानवर या पौधे के किसी स्थूल पहलू को प्रभावित करेगा, जो कि आसानी से पहचाना जा सकेगा।

और सचमुच, आनुवंशिकीय अध्ययनों के सबसे महत्त्वपूर्ण परिणामों में एक यह तथ्य है (जिसे 1902 में डच जीव–विज्ञानी दे राइस ने खोजा) कि **जीवित शरीरों में अपने आप होने वाले आनुवंशिक परिवर्तन सदा अलग-अलग झटकों में होते हैं जिनको उत्परिवर्तन (mutations) कहते हैं।**

एक उदाहरण के तौर पर फल–मक्खी (**ड्रोसोफ़िला मेलानोगास्टर**) के प्रजनन के प्रयोगों को ही लीजिए, जिसकी ऊपर चर्चा हो चुकी है। फल–मक्खी की जंगली किस्म में सलेटी शरीर और लंबे पंख हैं : ऐसी मक्खी को आप कभी भी बग़ीचे में पकड़ लें तो लगभग पूरे निश्चय के साथ कह सकते हैं कि इसमें ये गुण पूरे उतरेंगे। परंतु प्रयोगशाला की परिस्थितियों में इन मक्खियों के पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रजनन कराने पर कभी–कभार एक अजीब "विलक्षण किस्म" की मक्खी प्राप्त की जा सकती है जिसके पंख छोटे और शरीर लगभग काला होता है (चित्र 102)।

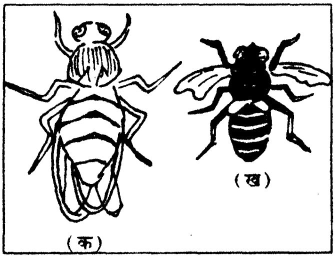


चित्र 102 : फल की मक्खी का अनायास उत्परिवर्तन :
(क) सामान्य किस्म : सलेटी शरीर, लंबे पंख; (ख) परिवर्तित किस्म : काला शरीर, छोटे पंख।

[11] "सम–अवयवी (isomeric)" यह नाम, जैसाकि पहले समझाया जा चुका है, उन अणुओं के लिए प्रयुक्त होता है जो समान परमाणुओं से बने हों, परंतु परमाणुओं को अलग–अलग ढंग से सजाये हुए हों।

इसमें महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि छोटे पंख वाली काली मक्खी के साथ–साथ आप शायद ऐसी दूसरी मक्खियाँ नहीं पायेंगे जिनमें सलेटी रंग के विविध शेड और विविध लंबाइयों के पंख हों, जो कि "सामान्य" और "विलक्षण" (लगभग काला शरीर और बहुत छोटे पंख) के बीच पीढ़ी–दर–पीढ़ी परिवर्तन के क्रमिक चरणों को दर्शायें। आम तौर पर किसी भी नयी पीढ़ी के सारे सदस्य (इनकी संख्या सैंकड़ों में हो सकती है) लगभग एक जैसे सलेटी और बराबर लंबे पंखों वाले होते हैं, बस एक (या कुछ) **बिल्कुल विलक्षण** हो सकता है और बीच की स्थिति में एक भी नहीं, अर्थात् **या तो कोई ख़ास परिवर्तन है ही नहीं, या फिर एकाएक काफ़ी बड़ा परिवर्तन (उत्परिवर्तन) है**। इसी प्रकार की स्थिति सैंकड़ों मामलों में देखी गयी है। उदाहरण के तौर पर, रंगांधता केवल विरासत के रूप में ही आये, यह आवश्यक नहीं है, और ऐसा ज़रूर कभी न कभी होता होगा कि कोई शिशु अपने पुरखों के किसी दोष के बिना भी रंगांध पैदा हो, अर्थात् जीन में परिवर्तन हो। यहाँ मानव–रंगांधता के बारे में भी वही बात है जो फल–मक्खी के छोटे पंखों के बारे में है, अर्थात् "या तो पूरा परिवर्तन या कुछ नहीं" वाला नियम यहाँ भी है। स्थिति यह नहीं है कि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा दो रंगों के भेद को पहचानने में थोड़ा बेहतर या थोड़ा कमज़ोर है : या तो वह पहचान सकता है या नहीं।

जैसा कि चार्ल्स डारविन का नाम जानने वाले सभी लोगों को मालूम होगा, पीढ़ियों के गुणों में ये परिवर्तन **अस्तित्व के संघर्ष तथा योग्यतम की उत्तरजीविता** के साथ मिल कर **प्रजाति के विकास** (evolution) की सतत प्रक्रिया का कारण बनते हैं[12]। इन्हीं कारणों से एक सरल मोलस्क, जो कुछ अरब वर्ष पूर्व प्रकृति का राजा था, वह आप सरीखे अति बुद्धिमान जीव तक विकसित हो गया है, यहाँ तक कि वह इस जैसी बहुत जटिल पुस्तक को भी पढ़ व समझ सकता है। जीन–अणुओं के ऊपर वर्णित सम–अवयवी परिवर्तनों के दृष्टिकोण से देखें तो आनुवंशिक गुणों का झटकानुमा परिवर्तन पूरी तरह समझा जा सकता है। वास्तव में जब जीन के गुणों को निर्धारित करने वाला "मनका" अपना स्थान बदलता है तो यह परिवर्तन आधा–अधूरा नहीं हो सकता : या तो यह अपने पुराने स्थान पर रह जाता है, या फिर नये स्थान पर जुड़ जाता है, और इस प्रकार जीव के गुणों में असतत परिवर्तन लाता है।

"उत्परिवर्तन" जीन–अणुओं में सम–अवयवी परिवर्तनों की वजह से ही होते हैं, इस दृष्टिकोण को वैसे अध्ययनों से भी सशक्त समर्थन मिलता है जिनमें किसी बाड़े में जानवरों या पौधों का प्रजनन कराकर उनके उत्परिवर्तनों की गति की बाड़े के तापमान पर निर्भरता जाँची जाती है। सचमुच, उत्परिवर्तनों की गति पर तापमान के प्रभाव पर टाइमोफ़ेयेफ़ व ज़िमर के प्रायोगिक कार्य से संकेत मिलता है कि (आसपास के माध्यम तथा कुछ अन्य कारकों से उठने वाली जटिलताओं को छोड़ दिया जाये तो) उत्परिवर्तनों की दर उसी बुनियादी भौतिक–रासायनिक नियम के अनुसार चलती है जिसके अनुसार कोई भी अन्य साधारण आणविक प्रतिक्रिया की दर चलती है। इस महत्त्वपूर्ण खोज के आधार पर मैक्स

---

12 उत्परिवर्तन की खोज के कारण डारविन की प्रतिष्ठित थ्योरी में इतना ही अंतर आया है कि विकास झटके जैसे असतत परिवर्तनों से होता है, न कि लगातार घिसटने के समान, जैसा कि डारविन ने समझा था।

डेलब्रुक ने (जो पहले सैद्धांतिक भौतिक विज्ञानी थे पर अब प्रायोगिक आनुवंशिकीविद हैं) इस युगांतरकारी विचार का विकास किया कि उत्परिवर्तन (जैविक परिघटना) और किसी भी अणु में सम–अवयवी परिवर्तन (शुद्धतः भौतिक–रासायनिक प्रक्रिया), दोनों समतुल्य हैं।

हम जीन–थ्योरी की भौतिक व्याख्या की चर्चा करते चले जा सकते हैं, विशेषतः एक्स–किरणों तथा अन्य विकिरणों से पैदा हुए उत्परिवर्तनों के अध्ययन से प्राप्त हुए बहुत–से प्रमाण बता सकते हैं। परंतु जितना कहा जा चुका है, उतना ही पाठक को इस तथ्य का विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त मालूम होता है कि **इस समय विज्ञान जीवन-रूपी "रहस्यमय" परिघटना की शुद्धतः भौतिक व्याख्या की दहलीज़ लाँघ रहा है।**

इस अध्याय को पूरा करने के पहले **वायरस** नामक जैविक इकाइयों की ओर ध्यान देना आवश्यक है, जो बिना कोशिका की **मुक्त जीनें** मालूम पड़ती हैं। अपेक्षाकृत हाल तक जीव–विज्ञानियों का विश्वास था कि जीवन के सरलतम रूप हैं एक कोशिका वाले सूक्ष्म जीव, जीवाणु (बैक्टीरिया), जो कि पौधों व जानवरों के सजीव ऊतकों में रह कर बढ़ते व संख्या बढ़ाते हैं, और कभी–कभी विविध रोगों का भी जन्म देते हैं। उदाहरणतया, सूक्ष्मदर्शी यंत्र से हुए अध्ययनों से पता चलता है कि टायफ़ायड बुखार का कारण एक विशेष प्रकार के जीवाणु हैं जिनके शरीर लंबे–से हैं, करीबन 3 माइक्रोन ($\mu$)[13] लंबे और $\frac{1}{2}\mu$ मोटे, जबकि लोहित ज्वर (scarlet fever) के जीवाणु $2\mu$ व्यास वाली गोलाकार कोशिकाएँ हैं। परंतु कई ऐसे भी रोग हैं, जैसे मानवों में इन्फ़्लुएंज़ा या तंबाकू की पत्तियों में मोज़ेक (रंगीन धब्बे) लगने का रोग, जिनमें साधारण सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों में कोई भी सामान्य आकार वाले जीवाणु नहीं खोजे जा सके। फिर भी यह तो मालूम है कि ये "जीवाणुहीन" रोग, रोगी के शरीर से स्वस्थ जीव के शरीर में उसी प्रकार छूत से पहुँच जाते हैं जैसे कि सभी अन्य साधारण जीवाणु वाले रोग, और यह भी कि इस प्रकार एक से दूसरे को लगी "छूत" तेज़ी से दूसरे जीव के पूरे शरीर में फैल जाती है। अतः यह मानना आवश्यक है कि ये रोग किसी न किसी तरह के जीव द्वारा फैलाये जाते हैं। ऐसे काल्पनिक जीवों को "वायरस" नाम दिया गया।*

यह तो अपेक्षाकृत हाल ही में हुआ कि **अतिसूक्ष्मदर्शी** (ultra-microscopic) **तकनीक**, जिसमें पराबैंगनी (ultra-violet) प्रकाश का उपयोग होता है, के विकास से और विशेषतः इलैक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी (जिसमें साधारण प्रकाश–किरणों के स्थान पर इलैक्ट्रोन–किरणों के प्रयोग से बहुत छोटी चीजों को स्पष्टता से देखा जा सकता है) के आविष्कार से सूक्ष्म–जीव–विज्ञानियों के लिए पहली बार वायरस की रचना को देखना संभव हुआ, जो पहले एक रहस्य बनी हुई थी।

यह पाया गया कि विविध वायरसें बड़ी संख्या में ऐसे कणों को इकट्ठा करके बनी हैं, जो सभी बिल्कुल समान आकार के हैं और साधारण जीवाणुओं से बहुत ही छोटे हैं (चित्र 103)। जैसे, इन्फ़्लुएंज़ा वायरस के कण $.1\mu$ व्यास के छोटे–छोटे गोले हैं, जबकि तंबाकू के जाले की वायरस के पतले, छड़ की आकृति के कण $.280\mu$ लंबे व $.015\mu$ मोटे होते हैं।

[13] माइक्रोन का अर्थ एक मिलीमीटर का एक हज़ारवाँ भाग या .0001 सें०मी० है।

* वायरस की माप बहुत छोटी होती है, जैसे कुछ मिली–माइक्रोन। वायरसें हमारी शत्रु भी हो सकती हैं और मित्र भी। पौधों, जानवरों या मानवों की कोशिकाओं में घुस कर शत्रु वायरसें कोशिकाओं को मार सकती हैं या उनमें प्रोटीनों एवं न्यूक्लीक एसिड के संश्लेषण की क्रियाओं में हेर–फेर कर सकती हैं, या जीनों के स्थान पर स्वयं स्थापित होकर कैंसर जैसी विकृतियों को जन्म दे सकती हैं। – अनु०

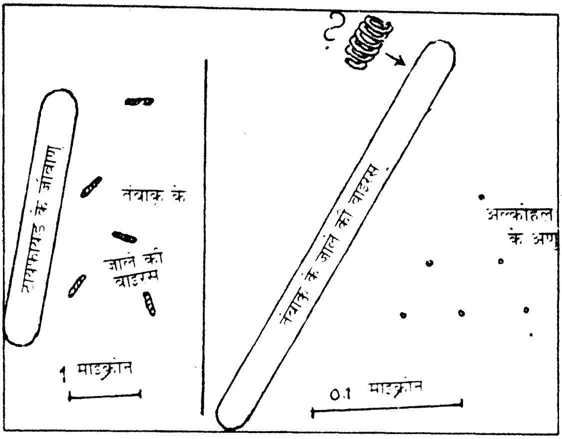


चित्र 103 : जीवाणुओं, वायरसों तथा अणुओं की तुलना

तंबाकू के मोज़ेक की वायरस के कण इस समय तक ज्ञात सजीव इकाइयों में सबसे छोटे हैं। यदि हम याद रखें कि एक परमाणु का व्यास लगभग .0003$\mu$ होता है, तो हम मापते हैं कि तंबाकू के रोग की वायरस के कण की मोटाई में केवल लगभग पचास परमाणु और लंबाई में, बस, एकाध हज़ार परमाणु ही हैं। कुल मिला कर बीसेक लाख से ज़्यादा परमाणु नहीं![14]

इस संख्या से तुरंत हमें याद आ जाता है कि एक अकेली जीन में भी परमाणुओं की संख्या हमने कुछ ऐसी ही पायी थी, और इससे यह संभावना उठती है कि कदाचित वायरसों को ऐसी "मुक्त जीनें" मानना चाहिए जिनको एक साथ मिल कर क्रोमोसोम नामक लंबे–लंबे समूह बनाने का, और कोशिका के जीवद्रव्य की ढेर–सी सामग्री से घिरे रहने का, कोई शौक नहीं है।

और सचमुच, वायरस के कणों की प्रजनन–प्रक्रिया ठीक उसी लकीर पर चलती प्रतीत होती है जैसे कोशिका–विभाजन की प्रक्रिया में क्रोमोसोम दुगने हो जाते हैं : इनका पूरा शरीर लंबाई के साथ–साथ बँट जाता है, जिससे दो नये वायरस–कण पैदा हो जाते हैं। लगता है कि यहाँ वही बुनियादी प्रजनन–प्रक्रिया काम आ रही है (जैसे चित्र 91 में अल्कोहल के प्रजनन के काल्पनिक मामले में दर्शायी गयी) जिसमें इस जटिल अणु की लंबाई पर स्थित विविध अणु–समूह आसपास के माध्यम में से अपने समान अणु–समूहों को आकर्षित करते हैं और उन्हें हू–ब–हू मूल अणु वाले क्रम में ही व्यवस्थित करते जाते हैं। जब यह व्यवस्था पूरी हो जाती है तो नया अणु, जो इतने में परिपक्व हो चुका है, मूल अणु से अलग हो जाता है। वास्तव में ऐसा लगता है कि इन आदिम किस्म के सजीव शरीरों में "बड़े होने" वाली सामान्य

[14] वास्तव में एक वायरस में लगे परमाणुओं की संख्या इससे काफ़ी कम हो सकती है, क्योंकि बहुत संभव है कि ये "भीतर से खोखली" हों, अर्थात् जैसी शृंखला चित्र 101 में दिखायी गयी थी, उसी प्रकार की आणविक शृंखला की कुंडलियों से बने हों। यदि हम मान लें कि तंबाकू के मोज़ेक की वायरस की वास्तव में ऐसी ही रचना है (जिसकी रूपरेखा चित्र 103 में दर्शायी गयी है), जिसमें अणुओं के समूह केवल बेलन की सतह पर ही स्थित हैं, तो एक–एक वायरस में परमाणुओं की कुल संख्या घटकर केवल कुछ लाख ही रह जायेगी। यही तर्क किसी जीन में मौजूद परमाणुओं की संख्या पर भी लागू होता है।

प्रक्रिया होती ही नहीं है, और नया शरीर पुराने वाले के बगल में "एक–एक अंग" करके ही बन जाता है। इस स्थिति को उदाहरण–रूप में समझने के लिए कल्पना करिए कि एक मानव शिशु अपनी माँ के शरीर के बाहर परंतु उससे जुड़ा हुआ एक–एक अंग करके विकसित हो, और जब पूरा आदमी या औरत बन जाये तो अलग होकर चल दे।* (लेखक इस स्थिति का चित्र नहीं खींचेगा, यद्यपि मन तो बहुत करता है।) कहना न होगा कि संख्या–वृद्धि की ऐसी प्रक्रिया तभी संभव होगी जब यह काम एक विशेष तरह के, कुछ–कुछ व्यवस्थित, माध्यम में ही हो। सचमुच, वायरस के कण केवल दूसरे जीवों के ज़िंदा जीवद्रव्य में ही अपनी संख्या बढ़ा सकते हैं; सामान्य तौर पर अपने "भोजन" के बारे में इनकी बड़ी सख़्त पसंद–नापसंदगी है। जीवाणुओं के बारे में ऐसा नहीं है, क्योंकि उनका अपना जीवद्रव्य होता है।

वायरसों का एक अन्य सामान्य गुण यह है कि **इनमें उत्परिवर्तन हो सकते हैं,** और उत्परिवर्तित वायरसें आनुवंशिकता के सभी परिचित नियमों के अनुरूप अपनी संतान को नये प्राप्त गुण सौंप देती हैं। वास्तव में जीव–विज्ञानियों ने एक ही वायरस की वंशज कई किस्मों (strains) को पहचान लिया है और उनकी "जाति के विकास" के प्रश्न को भी सुलझा लिया है। जब किसी समुदाय में नये सिरे से इन्फ़्लुएंज़ा की महामारी फैलती है, तो काफ़ी भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि वह इन्फ़्लुएंज़ा वायरस की किसी नयी उत्परिवर्तित किस्म से पैदा हुई होगी : नयी वायरस के कुछ नये दुरूह गुण होंगे, जिनके विरुद्ध मानव–शरीर को समुचित प्रतिरक्षण विकसित करने का अभी मौका नहीं मिला होगा।

पीछे के पृष्ठों की चर्चा में हमने कई सशक्त तर्कों का विकास किया है जिनसे दर्शाया गया कि **वायरस के कणों को सजीव इकाइयाँ मानना ही होगा।** अब हम उतने ही दम के साथ दावा कर सकते हैं कि **इन कणों को नियमित रासायनिक अणु भी मानना पड़ेगा,** जो भौतिकी एवं रसायन–विज्ञान के सभी नियमों–विनियमों के अधीन हैं। वास्तव में, वायरस की सामग्री के शुद्धतः रासायनिक अध्ययनों से यह बात पक्की हो गयी है कि किसी भी एक वायरस को एक सुनिश्चित रासायनिक यौगिक समझा जा सकता है, और उसे ठीक उसी तरह व्यवहार में लाया जा सकता है जैसे विविध जटिल कार्बनिक (किंतु निर्जीव) यौगिकों को, और वायरसों पर वैसी विविध प्रतिक्रियाएँ भी की जा सकती हैं जिनमें एक अणु–समूह के स्थान पर दूसरा आ जाता है। वास्तव में, लगता है कि देर–सवेर जैविक रसायनविद हर एक वायरस की रचना का एक रासायनिक सूत्र (formula) उतनी ही आसानी से लिख सकेंगे जैसे अभी अल्कोहल, ग्लिसरीन या चीनी के लिए लिखते हैं। इससे भी अधिक मार्के की बात यह है कि लगता है किसी भी एक किस्म के वायरस–कण अपने अंतिम परमाणु तक **हू-ब-हू समान आकार के** होते हैं।

वास्तव में यह दर्शा दिया गया कि वायरस–कणों को यदि उनके रहने–खाने की सुविधा देने वाले माध्यम से वंचित कर दिया जाये, तो ये साधारण क्रिस्टलों के समान नियमित नमूने में व्यवस्थित हो जाते हैं। उदाहरणतया, तथाकथित "टमाटर को बौना झाड़

---

* इस तरह से पुरुष तो बन ही नहीं सकता, क्योंकि "शिशु" हू–ब–हू माँ के समान बनेगा। स्पष्ट है कि इतने आदिम स्तर के जीवों में लिंग नहीं होता। –अनु०

बनाने वाली" वायरस बड़े–बड़े सुंदर समद्वादशभुज आकृति के क्रिस्टल बना लेती है। आप इस क्रिस्टल को फ़ेल्डस्पार तथा सेंधा नमक के साथ किसी खनिजों की पेटी में रख सकते हैं, परंतु इसे वापिस टमाटर के पौधे में घुसाने भर की देर है कि यह सजीव इकाइयों की भीड़ में बदल जायेगा।

सजीव शरीर को निर्जीव अकार्बनिक सामग्री से संश्लेषित करने का पहला महत्त्वपूर्ण कदम हाल में हाइंज़ फ़्राएंकल–कॉनरैट एवं रॉब्ली विलियम्स द्वारा कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय के वायरस संस्थान में उठाया गया। तंबाकू के मोज़ेक की वायरस पर कार्य करते हुए वे इस वायरस के कणों को दो भागों में बाँटने में सफल रहे, जिनमें से प्रत्येक एक निर्जीव (हालाँकि काफ़ी जटिल) कार्बनिक अणु है। यह तो लंबे समय से ज्ञात था कि लंबी छड़ियों की आकृति वाली यह वायरस, व्यवस्थित करने वाली सामग्री के लंबे सीधे अणुओं (**राइबो न्यूक्लीक एसिड** या आर० एन० ए०) के गुच्छे से बनी है* जिसके गिर्द लंबे प्रोटीन के अणु लिपटे हैं जैसे किसी विद्युत–चुंबक में लोहे के बीज के गिर्द बिजली की तार कुंडली में लिपटी रहती है। विविध रासायनिक अभिकर्मकों (पदार्थों) का उपयोग करते हुए फ़्राएंकल–कॉनरैट एवं विलियम्स इन वायरस–कणों को तोड़ने में सफल हुए, और उन्होंने आर० एन० ए० को प्रोटीन अणुओं से अलग कर दिया, बिना उन्हें कोई क्षति पहुँचाये। इस प्रकार उन्होंने एक परखनली में आर० एन० ए० का पानी में घोल तथा दूसरी में प्रोटीन अणुओं का घोल प्राप्त कर लिया। इलैक्ट्रोन–सूक्ष्मदर्शी के चित्रों में देखा गया कि परखनलियों में और कुछ नहीं, केवल इन दो पदार्थों के अणु ही थे, जिनमें जीवन का कोई नाम–निशान नहीं था।

**लेकिन** जब दोनों घोलों को साथ मिलाया गया तो आर० एन० ए० के अणु 24-24 के गुच्छों में मिलने लगे, जबकि प्रोटीन के अणु उनके गिर्द लिपटने लगे, और इस प्रकार उन वायरस कणों की हू–ब–हू नकलें बन गयीं जिनको लेकर प्रयोग शुरू किया गया था। तोड़ कर जोड़े गये इन वायरस–कणों को जब तंबाकू के पौधे की पत्तियों पर लगाया गया तो इन कणों के कारण पौधे में वही मोज़ेक वाला रोग हो गया, मानो इन कणों को कभी तोड़ा ही न गया हो। हाँ, यह तो सही है कि इस प्रयोग में परख–नलियों में रखे दोनों रासायनिक अवयव, सजीव वायरस को तोड़ कर ही प्राप्त किये गये थे। परंतु काम की बात यह है कि अब जीव–रासायनविदों के पास साधारण रासायनिक तत्त्वों से आर० एन० ए० तथा प्रोटीन

* कुछ वायरसों में डी० एन० ए० होती है और कुछ में आर० एन० ए०। एड्स, जो आज विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती बनी हुई है, एक ऐसी वायरस (एच० आई० वी०) का परिणाम है जो आर० एन० ए० से बनी है। किसी भी वायरस–जनित रोग के इलाज में दवाएँ प्रायः काम नहीं आतीं। इसका कारण यह है कि वायरस की रचना इसके शिकार जीव की जीनों से मिलती–जुलती है। अतः जो दवा वायरस को अपनी संख्या बढ़ाने से रोकेगी, वह उस जीव की कोशिकाओं के लिए भी घातक होगी। –अनु०

दोनों के अणुओं को संश्लेषित करने की विधियाँ हैं। यद्यपि वर्तमान समय में दोनों पदार्थों के अपेक्षाकृत छोटे–छोटे अणु ही संश्लेषित किये जा सकते हैं, तो भी इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि समय आने पर उतने लंबे अणु भी सरल तत्त्वों से बनाये जा सकेंगे जितने वायरसों में होते हैं। यही नहीं, ऐसे दो प्रकार के अणुओं को साथ लाने से मानव–निर्मित वायरस–कण पैदा हो जायेगा।**

**वायरसों व जीनों को जोड़ने–तोड़ने का कार्य अब काफ़ी प्रगति कर चुका है। आज यह संभव है (और भारत की अनेक प्रयोगशालाओं में भी दैनंदिन तौर पर किया जा रहा है) कि टुकड़े–टुकड़े जोड़ कर मनपसंद जीन बना ली जाये। यही नहीं, मनपसंद जीनों को जीवित कोशिका के किसी क्रोमोसोम में मनचाहे स्थान पर बैठाना भी संभव है। इससे उस कोशिका को मनचाही प्रोटीन का उत्पादन करने को बाध्य किया जा सकता है। उदाहरणतया, मधुमेह के रोगियों को सुई द्वारा दी जाने वाली दवा इन्सुलिन का मेंढक की कोशिकाओं में बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जा सकता है। इस तकनीक को पुनः संयोजित (recombinant) डी० एन० ए० कहा जाता है जिसका प्रयोग शुरू में अधिकतर जीवाणुओं पर हुआ। इसका उपयोग न केवल तरह–तरह के रासायनिक पदार्थ बनाने में, अपितु अन्न के उत्पादन, कचरे को सड़ा कर समाप्त करने आदि में भी किया जा सकता है। इससे भी आगे, नये–नये गुणों वाले पौधों या प्राणियों को बनाने की युगांतरकारी संभावना भी साकार होती दिखाई देती है। इसका इस्तेमाल हम विश्व के सभी लोगों की निर्धनता दूर करने और सर्वतोमुखी प्रगति के लिए करेंगे या विश्व के विनाश के लिए?
–अनु०

# चतुर्थ खण्ड

# बृहत् जगत्

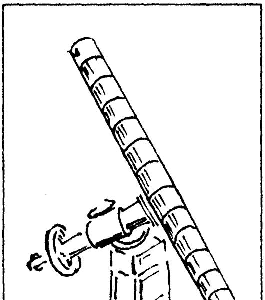

**दस**

# फैलते क्षितिज

## 1. पृथ्वी और इसके आसपास

अब हम अणुओं, परमाणुओं और नाभिकों के संसार की सैर से लौटकर वापिस रोज़मर्रा के आकार की चीज़ों पर आ गये हैं। और चलिए, अब एक नयी यात्रा शुरू की जाये उलटी दिशा में, अर्थात् सूर्य, सितारों, सुदूर तारों के बादलों और हमारे ब्रह्मांड की बाहरी सीमाओं की ओर। लघु जगत् की भाँति यहाँ भी हम देखेंगे कि विज्ञान के विकास के साथ-साथ हम दिन-प्रतिदिन की चीज़ों के परिचित आधार से दूर, दूर होते जाते हैं, और धीरे-धीरे अनंत विस्तार वाले क्षितिज हमारे सामने खुलते जाते हैं।

हम जिसे "ब्रह्मांड" कहते हैं, उसे मानव-सभ्यता की प्रारंभिक अवस्थाओं में इतना छोटा समझा जाता था कि आपको लगभग मज़ाक लगेगा। लोग पृथ्वी को चारों ओर से जल से घिरी एक बड़ी-सी चपटी तश्तरी समझते थे जो संसार-महासागर की सतह पर तैर रही हो। नीचे, जहाँ तक कल्पना की जा सके, पानी ही पानी था और ऊपर आकाश ही आकाश, जो कि देवताओं का लोक था। वह तश्तरी इतनी ही बड़ी थी कि उसमें उस समय ज्ञात भूगोल के सभी देश आ जायें – इनमें भूमध्य सागर के किनारे और उनसे लगे हुए यूरोप और अफ़्रीका के कुछ भाग और ज़रा-सा एशिया शामिल थे। पृथ्वी-रूपी तश्तरी के उत्तरी किनारे की सीमाओं पर एक ऊँची पर्वतमाला थी, जिसके पीछे छिप कर हर रात को सूर्य संसार-महासागर की सतह पर विश्राम करता था। चित्र 104 काफ़ी सही-सही दर्शाता है कि प्राचीन काल के लोगों की नज़र में संसार कैसा था।* परंतु ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में एक आदमी था जो दुनिया की इस सरल और सर्वमान्य-सी तसवीर को नहीं मानता था। वह था प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू। (उस ज़माने में विज्ञानी को "दार्शनिक" ही कहा जाता था।)

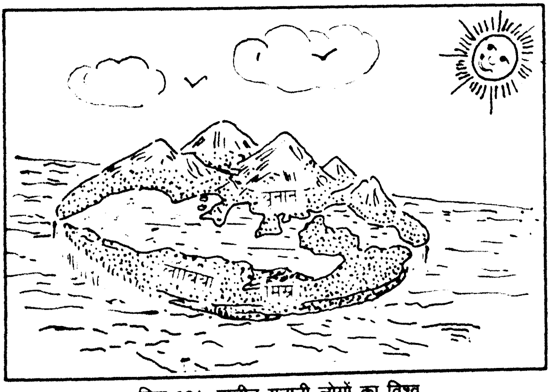


चित्र 104 : प्राचीन यूनानी लोगों का विश्व

* अमरीका के अधिकांश विद्वानों के लिए "प्राचीन मानव-सभ्यता" का अर्थ प्राचीन यूनान या मिस्र तक सीमित है। अतः चित्र 104 में प्राचीन काल के **यूनानी** लोगों की जानकारी का संसार दिखाया गया है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन भारत सहित हर प्राचीन समाज का संसार अपनी-अपनी तरह से सीमित था। – अनु०

अपनी पुस्तक "आकाश की बात" में अरस्तू ने यह विचार रखा कि हमारी पृथ्वी वास्तव में एक गोला है, जिसकी सतह पर कहीं ज़मीन है, कहीं पानी है, और जिसके सब ओर हवा है। अपने इस मत को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने कई तर्क दिये जिनसे हम परिचित हैं और जो अब हमें शायद बहुत सहज–साधारण लगेंगे। उन्होंने बताया कि दूर जाता हुआ जलपोत जिस ढंग से क्षितिज के पीछे छिप जाता है, अर्थात् पहले नीचे का भाग अदृश्य हो जाता है जबकि उसका झंडा पानी में ही खड़ा लगता है, उससे प्रमाणित होता है कि समुद्र की सतह गोलाकार है, सपाट नहीं। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि चंद्र–ग्रहण का कारण अवश्य हमारी पृथ्वी की छाया का चंद्रमा की सतह पर से गुज़रना ही होगा। अब क्योंकि यह छाया गोल दिखाई देती है, अतः पृथ्वी स्वयं भी गोलाकार ही होगी। परंतु उस समय उनकी बात पर विरले ही विश्वास कर पाये। लोगों की समझ में नहीं आता था कि यदि उनकी बात सही हो, तो जो कोई पृथ्वी के उलटी ओर रहते होंगे, जिनको "उलट–वासी" कह सकते हैं (भारत वालों के लिए ब्राज़ीलवासी), वे भला कैसे पैर ऊपर और सिर नीचे करके चल पाते होंगे, और वह भी पृथ्वी पर से नीचे गिरे बिना ही? और संसार के उस भाग में पानी भी क्या नीचे, नीले आकाश की ओर नहीं बह जाता होगा (चित्र 105)?

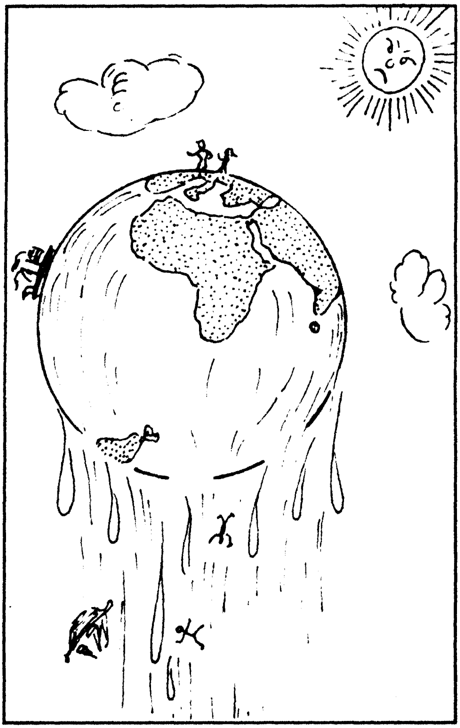

चित्र 105 : पृथ्वी की गोलाकार आकृति के विरुद्ध एक तर्क

आप समझ ही रहे होंगे कि उस ज़माने के लोगों को यह अहसास नहीं था कि चीज़ें नीचे इसलिए गिरती हैं कि उनको पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित करती है। उनके लिए "ऊपर"

और "नीचे" पृथ्वी के आपेक्षिक नहीं, बल्कि आकाश में निरपेक्ष दिशाएँ थीं, जो हर स्थान पर एक ही ओर जाती थीं। यदि आप पृथ्वी के गिर्द आधा चक्कर लगा लें तो "ऊपर" दिशा "नीचे" हो जा सकती है और "नीचे" "ऊपर", यह बात उनको उतनी ही ऊटपटाँग लगती होगी जितनी अजीब आइंस्टाइन की आपेक्षिकता की कई बातें आज के युग में बहुत–से लोगों को लगती हैं। भारी चीज़ों के नीचे गिरने को इस प्रकार नहीं समझा जाता था कि उन्हें पृथ्वी खींचती है, जैसा कि हम आज समझते हैं, बल्कि इस प्रकार कि "नीचे" गिरना तो हर चीज़ की "स्वाभाविक प्रवृत्ति" ही है; इसलिए यदि आपने ग्लोब–रूपी पृथ्वी के "नीचे" वाली सतह पर पैर रखने की हिम्मत की तो बस, नीचे अनंत आकाश में गिरते ही चले जायेंगे! यह आपत्ति इतनी ज़ोरदार थी, और नये विचारों को अपनाना इतना कठिन था, कि अरस्तू के लगभग दो हज़ार वर्ष बाद भी, यानी पंद्रहवीं शताब्दी तक प्रकाशित कई पुस्तकों में भी, ऐसे चित्र मिल जाते थे जिनमें पृथ्वी के गोल आकार का मख़ौल उड़ाते हुए उलट–देश के निवासियों को इसके "नीचे" वाले भाग में उल्टे–सिर खड़े दिखाया गया हो। कोलंबस महान जब भारत का "दूसरी ओर से जाने का रास्ता" खोजने के लिए यात्रा पर निकला, तो बहुत संभव है कि स्वयं उसे भी अपनी योजना के सहीपन पर पूरा विश्वास न रहा हो। ख़ैर, इतना तो निश्चित ही है कि बीच में अमरीकी महाद्वीप पड़ जाने के कारण वह योजना पूरी नहीं हुई। वह तो जब फर्नांदो दे मेगाल्याएस ने (जिसे मैजेलान के नाम से अधिक जाना जाता है) दुनिया के गिर्द अपनी प्रसिद्ध समुद्री यात्रा पूरी कर ली, तभी पृथ्वी की गोल आकृति के बारे में अंतिम शंकाएँ पूरी तरह समाप्त हुईं।

जब यह पहली बार सोचा गया कि पृथ्वी एक बहुत बड़े गोले की आकृति में है, तो यह पूछना स्वाभाविक ही था कि उस समय तक ज्ञात दुनिया की तुलना में यह गोला कितना बड़ा था? अब बेचारे यूनानी दार्शनिकों के लिए पृथ्वी के गिर्द पूरी यात्रा करने का तो प्रश्न ही नहीं था, पर इसके बिना भला कोई पृथ्वी के आकार की माप कैसे करता?

हाँ, उपाय तो है, और इसकी खोज सबसे पहले एराटोस्थानस नाम के प्रसिद्ध विज्ञानी ने की, जो कि तीसरी शताब्दी ई०पू० में यूनान–अधिकृत सिकंदरा (मिस्र) में रहते थे। उन्होंने साईन–निवासियों से सुन रखा था कि वहाँ उत्तर अयनांत* के दिन मध्याह्न के समय सूर्य ठीक सिर के ऊपर रहता है, जिससे कि सीधे खड़े खंभों की बिल्कुल छाया नहीं पड़ती। यह साईन नाम का शहर नील नदी के प्रारंभिक भाग के किनारे, सिकंदरा से कोई 5,000 मिस्री स्टेडियम दक्षिण की ओर[1] पड़ता था। दूसरी ओर, एराटोस्थानस जानते थे कि सिकंदरा में तो ऐसा कभी नहीं होता था, बल्कि उस दिन सूर्य आकाश के मध्य से (ठीक ऊपर जाने वाली दिशा से ) 7 डिग्री दक्षिण होकर गुज़रता था। सात डिग्री का अर्थ है पूरे चक्र (360 डिग्री) का लगभग पचासवाँ भाग। एराटोस्थानस ने पृथ्वी को गोलाकार मानते हुए उपर्युक्त बात की बड़ी सरल व्याख्या की, जो कि चित्र 106 को देखने से आप आसानी से समझ लेंगे। स्पष्ट ही है कि सूर्य की किरणें, जो साईन में ठीक ऊपर से (ऊर्ध्वाधर) पड़ रही हैं, वही सिकंदरा में पृथ्वी पर एक निश्चित कोण बनाती हुई तिरछी पड़ेंगी क्योंकि सिकंदरा अधिक उत्तर में

* उत्तर अयनांत (summer solstice) वह समय है जब सूर्य आकाश में सबसे अधिक उत्तर होकर गुज़रता है।—अनु०

[1] वर्तमान आसुआन बाँध के पास।

है⁺ और पृथ्वी की सतह समतल नहीं, बल्कि गोलाई में हैं। चित्र में आप यह भी देख सकते हैं कि यदि पृथ्वी के केन्द्र से एक सरल रेखा सिकंदरा से गुज़रती हुई और दूसरी सरल रेखा साईन से गुज़रती हुई खीचें, तो इन दोनों रेखाओं के बीच बनने वाला कोण ठीक वही होगा जो केन्द्र से सिकंदरा जाने वाली रेखा (अर्थात् सिकंदरा के लोगों के लिए सिर के ऊपर की दिशा) सूर्य की किरणों के साथ बनायेगी, उस समय जबकि सूर्य साईन में ठीक सिर के ऊपर होगा।

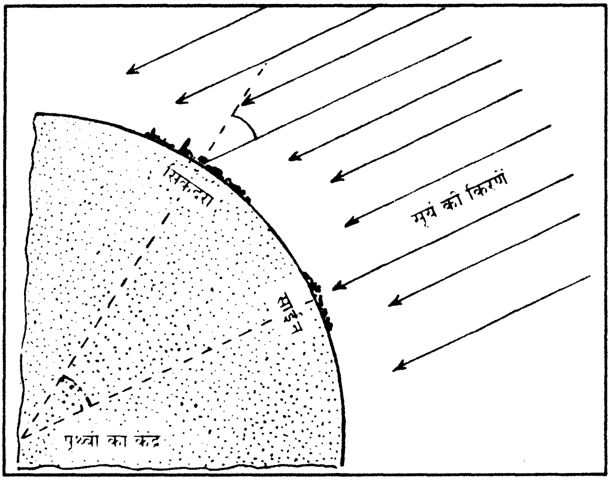


चित्र 106 : पृथ्वी की गोलाई की माप

अब क्योंकि यह कोण पूरे चक्र का पचासवाँ भाग है, अतः दोनों शहरों के बीच फ़ासला भी पृथ्वी की कुल परिमिति (घेरे) का पचासवाँ भाग होगा, अर्थात् पृथ्वी की परिमिति 5,000 x 50 = 250,000 स्टेडियम होगी। एक मिस्री स्टेडियम लगभग 1/10 मील होता है, अर्थात् एराटोस्थानस की गणना का परिणाम 25,000 मील या 40,000 किलोमीटर के बराबर निकला, जो कि सचमुच आधुनिक माप के काफ़ी क़रीब है।

लेकिन पृथ्वी के आकार की पहली माप की मुख्य विशेषता यह नहीं थी कि उत्तर कितना सही मिला, बल्कि यह अहसास था कि पृथ्वी **इतनी बड़ी** है। अरे भाई, इसकी कुल सतह उस समय यूनानियों को ज्ञात सभी देशों के कुल क्षेत्रफल से सैंकड़ों गुणा अधिक थी। उस समय के विज्ञानी सोचते होंगे, क्या पृथ्वी सचमुच इतनी बड़ी हो सकती है? यदि हाँ, तो हमारे परिचित देशों की सीमाओं के परे क्या है?

जब बड़ी–बड़ी दूरियों की बात उठी है, तो हमें पहले "लम्बनिक विस्थापन" (parallactic displacement) या "दिग्भेद" (parallax) कहलाने वाले तथ्य को समझना पड़ेगा। यह शब्द भले ही ज़रा डराने वाला लगे, पर वास्तव में दिग्भेद बहुत सरल चीज़ है और उपयोगी भी है।

दिग्भेद से परिचय का सिलसिला शुरू करने के लिए ज़रा किसी सुई के छिद्र में धागा डालिए। एक आँख बंद करके यह काम करने की कोशिश करिए, और आप बहुत जल्दी

⁺ याद रहे, दोनों शहरों में मध्याह्न एक साथ होता है क्योंकि दोनों का देशांतर एक समान है। –अनु०।

ही जान जाएँगे कि इस तरह काम नहीं होता : धागे का सिरा कभी सुई से पीछे अधिक दूर चला जाता है तो कभी कम दूर ही रह जाता है। सिर्फ एक आँख से सुई या धागे की दूरी का सही–सही निर्णय आप नहीं कर पाते। परंतु यदि आप दोनों आँखें खुली रखें तो यह काम आसानी से कर लेंगे या सीख लेंगे। जब आप किसी भी चीज़ को दो आँखों से देखते हैं, तो दोनों आँखें अपने आप उस चीज़ पर फ़ोकस हो जाती हैं। वह चीज़ जितनी पास होगी, आपको अपनी दोनों आँखों को उतना ही अधिक एक–दूसरी की ओर मोड़ना पड़ेगा, और इस हलचल में माँसपेशियों में जो अहसास होगा, उससे आपको चीज़ की दूरी का काफ़ी अच्छा अनुमान हो जायेगा।

अब यदि दोनों आँखों से देखने की बजाय आप पहले किसी चीज़ को एक आँख से देखें, और फिर दूसरी से, तो आपके ध्यान में आयेगा कि दूर की पृष्ठभूमि में उस चीज़ की स्थिति बदल गयी है, जैसे पीछे की दीवार पर सुई की स्थिति इधर से उधर हो जाती है। इसी प्रभाव को **लंबनिक विस्थापन** या **दिग्भेद** कहते हैं, और इससे सब कोई परिचित हैं। यदि आपने पहले कभी इसके बारे में न सुना हो तो करके देख लीजिए, या चित्र 107 को देखिए जिसमें आपकी सुई और पीछे की खिड़की का दाहिनी और बायीं आँख से देखा नज़ारा दिखाया गया है। कोई चीज़ आपसे जितनी अधिक दूर होगी, उसका दिग्भेद (दाहिनी और बायीं आँखों से देखने पर उसकी कोणीय स्थिति में अंतर) उतना ही कम होगा। इसलिए हम दूरियाँ मापने के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं। आँखों की माँसपेशियों के अहसास वाले सरल निर्णय की अपेक्षा यह अधिक परिशुद्ध रहेगा कि इस कोणीय अंतर को डिग्रियों में प्रामाणिक रूप से माप लिया जाये। परंतु याद रहे कि मानव की खोपड़ी में दोनों आँखों का फ़ासला केवल तीन इंच के लगभग है; अतः कुछ फुट से अधिक दूरियों के लिए यह तरीका कोई अच्छा नहीं रहेगा। यदि आपकी चीज़ काफ़ी अधिक दूर हो तो उसे देखते समय दोनों आँखों की दिशाएँ लगभग समांतर हो जायेंगी और दिग्भेद इतना कम हो जायेगा कि मापते नहीं बनेगा। अधिक बड़ी दूरियों का निर्णय करने के लिए हमें अपनी दो आँखों के बीच अंतर को बढ़ाना होगा, ताकि दिग्भेद बढ़ जाये। नहीं, नहीं, हमें डॉक्टरी ऑपरेशन की ज़रूरत नहीं है; यह कमाल दर्पणों से भी किया जा सकता है।

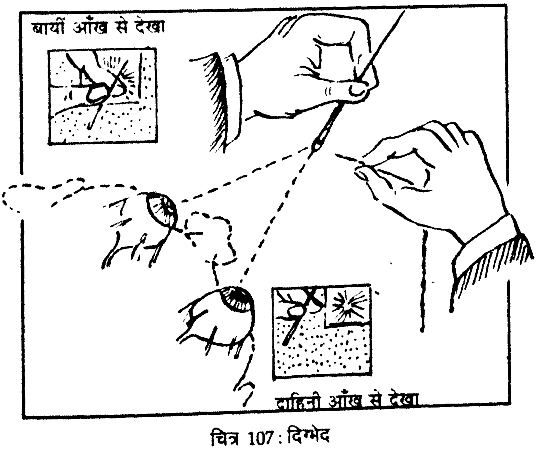


चित्र 107 : दिग्भेद

चित्र 108 में हम इस प्रकार का यंत्र देख सकते हैं, जिसका उपयोग नौसैनिक युद्ध में शत्रु के जहाज़ों की दूरी मापने में करते थे (राडार के आविष्कार से पहले)। इसमें एक लंबी–सी नली होती है जिसमें दोनों आँखों के सामने एक–एक दर्पण लगा होता है (A, A'), और नली के दोनों सिरों पर एक–एक अन्य दर्पण होता है (B, B')। यदि आप ऐसे दूरी–मापक में देखें तो कहा जा सकता है कि आपकी एक आँख बिंदु B से और दूसरी B' से देखेगी। अतः प्रभावी रूप से आपकी आँखों के बीच का अंतर, जिसे "दृष्टि का आधार" कहते हैं, काफ़ी बढ़ जाता है, और आप काफ़ी लंबी दूरियों का आकलन कर सकते हैं। और हाँ, निश्चय ही नौसैनिक सिर्फ़ अपनी आँखों की माँसपेशियों के अहसास से अनुमानित दूरी पर निर्भर नहीं रह सकते। अतः दूरी–मापकों में विशेष यंत्र और डायल लगे होते हैं जो बहुत अधिक परिशुद्ध रूप में दिग्भेद को माप सकते हैं।

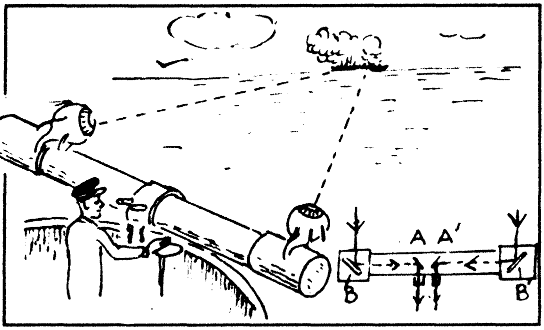

चित्र 108 : नौसेना का दूरी–मापक यंत्र

यह तो ठीक है कि नौसेना के ये दूरी–मापक बिल्कुल पक्का काम करते हैं, भले ही दुश्मन का जहाज़ इतना दूर हो कि लगभग क्षितिज के पार ही हो। परंतु खगोलीय दूरियों की तो बात ही और है। अब जैसे, यदि चाँद की दूरी मापने की कोशिश की जाये, जो अपेक्षाकृत काफ़ी निकट ही है, तो ये यंत्र बुरी तरह असफल हो जायेंगे। सचमुच, सुदूर तारों की पृष्ठभूमि में चंद्रमा का दिग्भेद ज़रा–सा भी महसूस करना हो तो हमारे दृष्टि के आधार को, अर्थात् दोनों "आँखों" के बीच की दूरी को, कम से कम कई सौ मील करना पड़ेगा। नहीं जी, यह ज़रूरी नहीं है कि कोई ऐसी प्रकाशकीय व्यवस्था (लैंस, दर्पण आदि के सहारे) बनायी जाये जिससे हम एक आँख से मानो कलकत्ता से और दूसरी आँख से मुंबई से देख पायें। बस, इतना ही करना होगा कि एक ही समय पर तारों से घिरे हुए चंद्रमा के दो फ़ोटोग्राफ़ लेने होंगे : एक कलकत्ता से और दूसरा मुंबई से। अब आप यदि इस दुहरे चित्र को किसी साधारण स्टीरियोस्कोप* में देखें तो आपको तारों की पृष्ठभूमि पर चंद्रमा आकाश में लटकता दिखाई देगा। खगोलशास्त्रियों ने इस प्रकार एक ही समय पर धरती के दो अलग–अलग स्थानों से लिये गये चित्रों में चंद्रमा और आस–पास के तारों पर माप करके (चित्र 109) जान लिया है कि पृथ्वी के व्यास के दो कोनों के बीच चंद्रमा का दिग्भेद $1^{0}54'5''$ होगा।+

* स्टीरियोस्कोप या त्रिविमदर्शी एक यंत्र/खिलौना है, जिसमें लैंस आदि की सहायता से तीन – आयामी चित्र देखे जा सकते हैं। इसमें किसी भी दृश्य के दो भिन्न स्लाइड लगाये जाते हैं : एक केवल बाँयी आँख को दिखाई देता है और दूसरा दाहिनी आँख को। –अनु०

+ एक डिग्री ($^{0}$) का साठवाँ भाग एक मिनट (') होता है और उसका साठवाँ भाग एक सैकंड (") । –अनु०

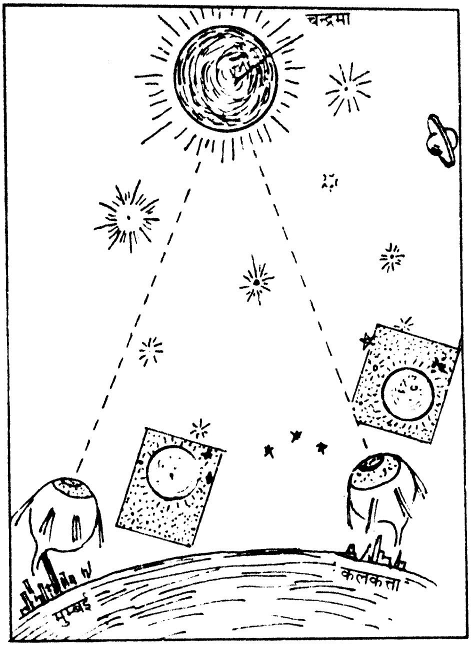


चित्र 109 : चंद्रमा का दिग्भेद

इससे जाना जा सकता है कि चंद्रमा की पृथ्वी से दूरी पृथ्वी के व्यास से लगभग 30.14 गुणा है, अर्थात् 384,403 कि. मी. या 238,857 मील।** इस दूरी को चंद्रमा के देखे हुए कोणीय व्यास++ से गुणा करने पर हमें पता चलता है कि हमारे चंद्रमा का व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग चौथाई भाग है। अतः इसकी कुल सतह पृथ्वी की सतह का केवल सोलहवाँ भाग, अर्थात् अफ़्रीका महाद्वीप के लगभग बराबर है।

उसी प्रकार के तरीके से सूर्य की दूरी भी मापी जा सकती है, हालाँकि सूर्य के बहुत दूर होने के कारण यह माप काफ़ी अधिक कठिन है। खगोलविदों ने मालूम किया है कि यह दूरी 149,450,000 कि. मी. (92,870,000 मील) है, अर्थात् चाँद की दूरी की अपेक्षा 385 गुणा है। सूर्य इतनी ज़बरदस्त दूरी पर स्थित है; इसीलिए यहाँ से देखने पर इसका आकार चंद्रमा के लगभग बराबर दिखाई देता है। वास्तव में तो यह चंद्रमा से बहुत अधिक बड़ा है – इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से भी 109 गुणा अधिक है।

यदि सूर्य एक बहुत बड़ा कुहड़ा (कद्दू) होता तो पृथ्वी मटर के दाने से भी छोटी होती, चंद्रमा सरसों के दाने–सा, और न्यूयार्क का एंपायर स्टेट भवन (जो कुछ समय पूर्व तक दुनिया का सबसे ऊँचा भवन था) सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखाई देने वाला छोटे से छोटा

---

**त्रिकोणमिति के सिद्धांतों के अनुसार, चंद्रमा की दूरी = पृथ्वी का व्यास ÷ $1^0 54' 5''$ (रेडियन में)

$$= \text{पृथ्वी का व्यास} \times \frac{180^0}{\pi \times 1^0 54' 5''} \quad \text{—अनु०}$$

++ कोणीय व्यास वह कोण है जो चंद्रमा का व्यास पृथ्वी पर बनाता है। –अनु०

जीवाणु। यहाँ आपको याद दिला दें कि प्राचीन यूनान में अनैक्सागोरस नामक प्रगतिशील दार्शनिक को देश निकाले की सज़ा दे दी गयी थी, और मृत्यु–दंड की धमकी भी दी गयी थी, सिर्फ़ इसलिए कि वे सिखाते थे कि सूर्य इतना बड़ा आग का गोला है कि पूरा यूनान देश उसमें समा जायेगा!

इसी प्रकार खगोलविद हमारे सौर–परिवार के विभिन्न ग्रहों की दूरियों का आकलन करने में सफल हुए हैं। सबसे दूर के ग्रह की, जिसे प्लैटो (यम) कहते हैं और जिसकी खोज हाल में ही हुई है, सूर्य से दूरी पृथ्वी की अपेक्षा चालीस गुणा अधिक है; सही–सही कहें तो यह $3.668 \times 10^9$ मील है!

## 2. तारों की मंदाकिनी

अब हम अंतरिक्ष में अपनी अगली छलाँग लगाते हैं ग्रहों से तारों की ओर। यहाँ भी दिग्भेद वाला तरीका काम आ सकता है। लेकिन कठिनाई यह है कि निकटतम तारे भी इतने अधिक दूर हैं कि पृथ्वी पर दूर से दूर दो बिंदुओं से (जैसे, दो विपरीत कोनों से) देखने पर भी सुदूर तारों की सामान्य पृष्ठभूमि में उनका कोई दिग्भेद मालूम नहीं होता। फिर भी इन विशाल दूरियों को मापने का एक उपाय हमारे पास है। यूँ सोचिये कि यदि हम पृथ्वी–रूपी अंतरिक्ष–यान पर सवार होकर सूर्य के चक्कर लगा रहे हैं तो इस लंबे रास्ते (कक्षा) का उपयोग करके तारों की दूरी क्यों नहीं मालूम कर सकते? दूसरे शब्दों मे, यदि हम पृथ्वी की कक्षा (orbit) के दो आमने–सामने के सिरों से तारामंडल को ग़ौर से देखें तो कम से कम कुछ तारों का दिग्भेद तो मालूम होना ही चाहिए? हाँ, यह तो ज़रूर है कि हमें दो प्रेक्षणों के बीच में छः महीने तक रुकना पड़ेगा, पर चलिए, यही सही!

ऐसा मन में सोच कर जर्मन खगोलविद बैसल ने सन् 1838 में छः महीने के अंतर पर दो रात्रियों में तारों की तुलनात्मक स्थितियों का प्रेक्षण शुरू किया। पहले पहल तो उनकी किस्मत नहीं चमकी। जो तारे उन्होंने प्रेक्षण के लिए चुने, वे शायद इतने अधिक दूर थे कि उनमें कोई दिग्भेद दिखाई ही नहीं देता था, यद्यपि पृथ्वी की कक्षा के पूरे व्यास को आधार बनाया गया था। पर वाह! तभी एक सितारा मिल गया, जिसको खगोलीय सूचियों में "हंस कां 61 वाँ" (हंस नाम के तारा–समूह में 61 वाँ हल्का–सा चमकने वाला तारा*) कहा गया था – यह तारा आधा वर्ष पहले देखी गयी स्थिति से जरा–सा हटा हुआ लग रहा था (चित्र 110)।

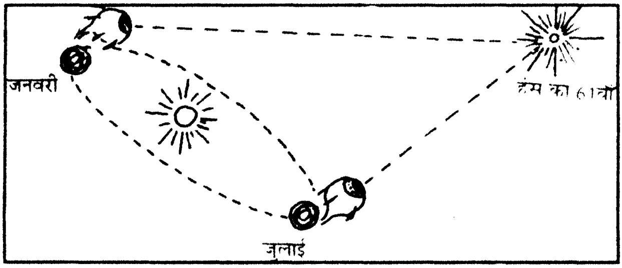


चित्र 110 : हंस के 61वें तारे का दिग्भेद

* इसे अंग्रेज़ी में 61 Cygni कहते हैं। –अनु०

आधा वर्ष और बीत गया, और यह सितारा फिर अपनी पुरानी जगह पर वापिस आ गया। इस प्रकार पक्का पता चल गया कि सचमुच दिग्भेद के कारण ही उसकी स्थिति बदली थी। तो बैसल ऐसा पहला व्यक्ति था जो हमारे परिचित ग्रह–परिवार की सीमाओं के पार तारों के बीच के अंतरिक्ष में मानो नापने की छड़ी लेकर निकल पड़ा था।

हंस के 61वें का जो अर्ध–वार्षिक विस्थापन देखा गया था, वह सचमुच बहुत ही थोड़ा था : केवल 0.6 कोणीय सैकंड[2], या जो कोण 500 मील दूर खड़ा हुआ आदमी आपकी आँख पर बनायेगा (यदि आप इतनी दूर देख सकें!), उतना छोटा। परंतु खगोल–शास्त्रीय यंत्र बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, और इतने छोटे कोणों को भी बहुत परिशुद्धता के साथ माप सकते हैं। जो दिग्भेद देखा गया उससे, और पृथ्वी की कक्षा के पहले से मालूम व्यास से, बैसल ने गणना की कि उनका तारा $1.03 \times 10^{14}$ कि. मी. दूर था, यानी सूर्य से भी 690,000 गुणा अधिक दूर! इस संख्या का वास्तविक अर्थ दिमाग़ में पचाना भी ज़रा मुश्किल ही है। यदि वही पुराना मॉडल लें जिसमें सूर्य एक कुहड़ा था, और पृथ्वी लगभग 200 फुट की दूरी पर इसके आसपास घूमने वाला छोटा–सा मटर का दाना, तो उस तारे की दूरी 30,000 मील के समान होगी !

खगोल–विज्ञान में यह रीति है कि बहुत बड़ी–बड़ी दूरियों को व्यक्त करने के लिए वह समय बताया जाता है जिसमें 300,000 कि. मी. प्रति सैकंड के विशाल वेग से चलने वाला प्रकाश उतनी दूरी तय करेगा (देखिए, अध्याय पाँच)। उदाहरणतया, पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा लेने में प्रकाश को मात्र 1/7 सैकंड लगेगा, चंद्रमा से यहाँ तक आने में 1 सैकंड से ज़रा ही अधिक, और सूर्य से यहाँ तक आने में कोई 8 मिनट। हंस के 61वें तारे से, जो कि इस ब्रह्मांड में हमारे निकटतम पड़ोसी सितारों में से एक है, पृथ्वी तक प्रकाश के आने में क़रीब 11 वर्ष लगते हैं। अब कल्पना कीजिए, यदि किसी अंतरिक्षी प्रलय के कारण हंस के 61वें तारे का प्रकाश बुझ जाता, या फिर (जैसा कि तारों के साथ अक्सर होता ही है) यह अचानक भभक कर फट जाता, तो हमें **11 वर्ष** की लंबी प्रतीक्षा के बाद ही यह ताज़ा समाचार मिलता कि एक तारे का अस्तित्व समाप्त हो गया, क्योंकि तारा फटने की वह ज्योति, प्रकाश की अंतिम किरण, अंतर–तारकीय अंतरिक्ष को द्रुत गति से पार करती हुई इतना समय लेती।

बैसल ने हंस के 61वें तारे और पृथ्वी की बीच जो दूरी मापी, उससे तारे के आकार की गणना भी की। पता चला कि रात्रि के आकाश की अँधेरी चादर पर चुपचाप टिमटिमाता हुआ एक प्रकाश–कण सा दिखने वाला यह तारा वास्तव में एक दैत्याकार प्रकाश–पुंज है जो हमारे महिमामय सूर्य से, बस, 30 प्रतिशत ही छोटा और ज़रा–सा ही कम दीप्तिमान है। कोपरनिकस ने जो क्रांतिकारी विचार दिया था कि हमारा सूर्य अनंत अंतरिक्ष में दूर–दूर फैले हुए करोड़ों तारों जैसा तारा मात्र है, उसका यह पहला सीधा प्रमाण था।

बैसल की खोज के बाद बहुत–से तारों के दिग्भेद मापे जा चुके हैं। कुछेक तारे तो हंस के 61वें की अपेक्षा हमारे अधिक निकट भी पाये गये हैं, जिसमें सबसे पास है अल्फ़ा सैंटाउरी (सैंटाउर नामक तारा–समूह में सबसे अधिक चमकीला तारा), जो केवल 4.3

---

[2] और भी परिशुद्ध रूप में कहें तो $0''.60 \pm 0.06$

प्रकाश–वर्ष दूर है। विस्तार और प्रकाश में यह सूर्य के समान ही है। परंतु अधिकतर तारे इन सबसे बहुत अधिक दूर हैं – इतने दूर कि उनकी दूरी मापने के आधार के लिए पृथ्वी की कक्षा का व्यास भी छोटा पड़ जाता है।

और हाँ, विभिन्न तारों के विस्तार और प्रकाश में भी बहुत अंतर है। एक ओर तो दीप्तिमान दैत्य हैं जैसे काक्षी (Betelguese, 300 प्रकाश–वर्ष दूर), जो कि हमारे सूर्य की अपेक्षा 400 गुणा बड़ा और 3,600 गुणा प्रकाशमान है, और दूसरी ओर मंद प्रकाश वाले बौने भी हैं, जैसे कि फ़ान मानेन का तारा (13 प्रकाश–वर्ष दूर), जिसका व्यास पृथ्वी से भी 25 प्रतिशत कम है और जिसका प्रकाश सूर्य से 10,000 गुणा कम है।

अब हम सभी तारों की संख्या गिनने की महत्त्वपूर्ण समस्या पर आते हैं। लोग समझते हैं, और शायद आप भी ऐसा ही मानते होंगे, कि आकाश के तारों को गिनना किसी के भी बस का नहीं है। परंतु सिर्फ़ लोगों के समझने से ही कोई बात सच नहीं हो जाती, और ऊपर कही मान्यता भी बिल्कुल ग़लत है, कम से कम जहाँ तक खाली आँख से दीखने वाले तारों का प्रश्न है। सच तो यह है कि पूरे गोल आकाश में इस प्रकार दिखाई देने वाले तारों की कुल संख्या 6000 और 7000 के बीच ही है। अब ध्यान दीजिए कि रात्रि में किसी भी एक समय पर क्षितिज से ऊपर के आधे गोले में इससे आधे ही तारे होंगे। यही नहीं, क्षितिज के पास के तारों की चमक वायुमंडल में सोख लिये जाने के कारण बहुत कम हो जाती है; अतः आम तौर पर किसी भी साफ़ अँधेरी रात के आकाश में खाली आँख से केवल 2000 के आसपास ही तारे दिखाई देंगे। अर्थात् यदि आप मुस्तैदी से गिनते जायें, समझिए 1 सैकंड में एक तारा गिनें, तो कोई आधे घंटे में सब के सब तारे गिन लेंगे!

हाँ, यदि आप द्विनेत्री दूरबीन का प्रयोग करें, तो आप शायद लगभग 50,000 अन्य तारे देख पायेंगे, और अढ़ाई इंच व्यास वाले दूरदर्शक यंत्र से लगभग दस लाख और भी। कैलिफ़ोर्निया की माउंट विल्सन प्रेक्षणशाला के प्रसिद्ध 100–इंची दूरदर्शक से तो आपको करीब आधा अरब तारे देख सकना चाहिए।* यदि खगोलविद लोग एक सैकंड में एक तारा करके प्रतिदिन सूर्यास्त से सूर्योदय तक गिनते रहें तो सब तारों को गिनने में एकाध शताब्दी का समय लग जायेगा !

स्वाभाविक ही, बड़े–बड़े दूरदर्शक यंत्रों से दीखने वाले सब तारों को एक–एक करके गिनने की कोशिश किसी ने नहीं की है। यह जो कुछ संख्या बतायी गयी है, उसकी गणना इस प्रकार की गयी है कि आकाश में विभिन्न दिशाओं में कई छोटे–छोटे क्षेत्रों में वास्तविक तारों की संख्या गिन कर औसत निकाली गयी और उस औसत को पूरे अंतरिक्ष के लिए सही मान लिया गया।

एक शताब्दी से अधिक समय बीता, प्रसिद्ध बर्तानी खगोलविद विलियम हर्शल जब स्वयं बनाये हुए बड़े–से दूरदर्शक से तारों–भरे आकाश का प्रेक्षण कर रहे थे, तो इस अद्‌भुत

* हाल के दशकों में बाहरी अंतरिक्ष में दूरदर्शक यंत्र (जैसे हबल अंतरिक्षी दूरदर्शक) लगा कर प्रेक्षण किये गये हैं। इससे लाभ यह है कि पृथ्वी का वातावरण बाधा नहीं बन सकता है। तारे व मंदाकिनियाँ रेडियो–तरंगें भी फेंकते हैं; अतः बड़े–बड़े एंटेना वाले रेडियो दूरदर्शकों का उपयोग भी बहुत बढ़ा है। –अनु०

तथ्य से चौंक गये कि जो तारे खाली आँख से आम तौर पर दिखाई नहीं देते, उनमें से अधिकतर दूरदर्शक की सहायता से एक ही क्षेत्र में दिखाई देते हैं। यह क्षेत्र है आकाश के आर–पार जाने वाली वह मंद–मंद चमकने वाली लंबी पट्टी जिसे **आकाश-गंगा** (Milky Way) कहते हैं। और खगोल–विज्ञान उन्हीं का ऋणी है इस तथ्य को जानने के लिए कि आकाश–गंगा कोई ऐसा–वैसा धुँधलका या अंतरिक्ष में फैली हुई गैस के बादल की पट्टी मात्र नहीं है, बल्कि वास्तव में बहुत सारे तारों से बनी है, जो यहाँ से इतने अधिक दूर और इतने मंद हैं कि हमारी आँख उन्हें अलग–अलग नहीं पहचान सकती।

अधिकाधिक शक्तिशाली दूरदर्शक यंत्रों का उपयोग करते हुए हम आकाश–गंगा के अधिकाधिक तारों को अलग–अलग देख पाये हैं; फिर भी उनका अधिकांश भाग तो अब भी दूधिया पृष्ठभूमि में ही है। परंतु यह सोचना त्रुटिपूर्ण होगा कि आकाश–गंगा के क्षेत्र में तारे आकाश के अन्य किसी भी भाग की अपेक्षा अधिक पास–पास स्थित हैं। आकाश में एक जगह यदि हमें अन्य जगहों की अपेक्षा अधिक तारों–भरी प्रतीत होती है, तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वहाँ तारों का वितरण–घनत्व (अर्थात् आयतन के अनुपात में तारों की संख्या) अधिक है। वह तो इसलिए है कि उस दिशा में **अधिक दूर तक** तारे ही तारे मिलते हैं। आकाश–गंगा की दिशा में तो जहाँ तक हम दूरदर्शक यंत्र की सहायता से देख सकते हैं, वहाँ तक तारे ही तारे फैले हैं, परंतु अन्य दिशाओं में अपेक्षाकृत कम दूरी पर ही तारे समाप्त हो जाते हैं और उसके बाद अधिकतर खाली–खाली अंतरिक्ष है।

आकाश–गंगा की दिशा में देखना किसी दूर तक फैले हुए साल के जंगल के पार देखने के प्रयास जैसा है। जंगल घना नही है; फिर भी हम उसके पार नहीं देख पाते, क्योंकि जंगल के केंद्र की दिशा में देखने पर दूर तक फैले वृक्षों के तने एक–दूसरे से मिलते हुए लगातार फैले प्रतीत होते हैं। परंतु यदि हम ऐसी दिशा में देखें जिसमें जंगल उतनी दूर तक फैला हुआ नहीं है (या ऊपर देखें) तो साल–वृक्षों की हरियाली के बीच–बीच में हमें नीला आकाश दिखाई देता है। इसी प्रकार आकाश–गंगा से अन्य दिशा में उतने तारे दिखाई नहीं देते क्योंकि उस दिशा में उतनी दूर तक तारे नहीं हैं।

इससे मालूम होता है कि हमारी तारों की दुनिया अंतरिक्ष में चपटे आकार का (रोटी जैसा) स्थान घेरे हुए है, जो कि आकाश–गंगा वाले समतल में तो बहुत, बहुत दूर तक फैला है, परंतु उसके लंबवत दिशा में अपेक्षाकृत कम दूर तक ही जाता है। सूर्य इस विशाल तारा–समाज के एक नाचीज़ सदस्य के तौर पर मौजूद है।

खगोलविदों की कई पीढ़ियों द्वारा किये अधिक विस्तृत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि हमारी इस सितारों की दुनिया में कोई $4 \times 10^{10}$ तारे शामिल हैं, जो कि एक लैंस की आकृति के क्षेत्र में फैले हैं। इस लैंस का व्यास कोई एक लाख प्रकाश–वर्ष है और मोटाई पाँच और दस हज़ार प्रकाश–वर्ष के बीच है। इस अध्ययन का एक और निष्कर्ष भी है जो मानव के गर्व पर प्रहार करता है – यह जानकारी कि हमारा सूर्य इस बृहत् तारकीय समाज के मध्य में बिल्कुल नहीं है, बल्कि इसके बाहरी किनारे के क़रीब है।

चित्र 111 में हमने बताने का प्रयास किया है कि तारों का यह विशाल जाल वास्तव में कैसा

है। अरे हाँ, अभी तक हमने इसका ज़िक्र तो किया ही नहीं कि विज्ञान की भाषा में आकाश–गंगा जैसा समूह **मंदाकिनी** कहलाता है। अंग्रेज़ी में इसके लिए "गैलेक्सी" शब्द है जो लैटिन से आया है। चित्र में मंदाकिनी का आकार $10^{20}$ गुणा छोटा करके दिखाया गया है, और हाँ, अलग–अलग तारों को दिखाने वाले बिंदुओं की संख्या $4 \times 10^{10}$ की अपेक्षा बहुत ही कम है, क्योंकि आप जानते ही हैं कि छपाई की भी सीमा है।

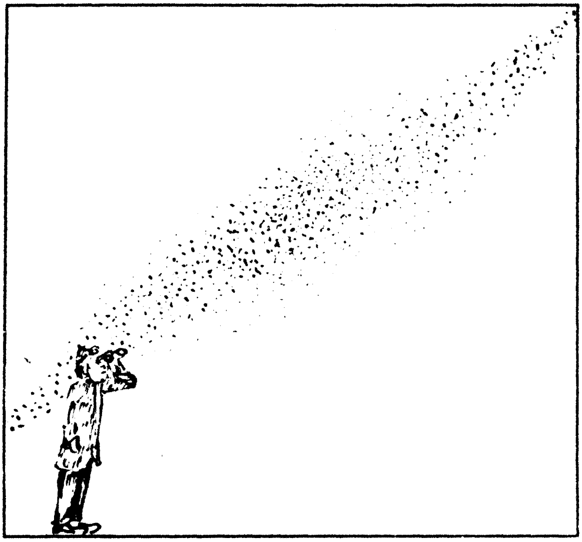

चित्र 111 : एक खगोल–विज्ञानी आकाश–गंगा के तारा–समूह के $10^{20}$ गुणा छोटे मॉडल को देख रहा है। खगोल–विज्ञानी का सिर लगभग उस जगह पर है जहाँ सूर्य स्थित है।

इस मंदाकिनी के रूप में तारों की जो बृहदाकार भीड़ है, उसके विशिष्ट गुणों में से एक यह है कि यह तेज़ी से **घूम रही है,** उसी प्रकार जैसे हमारे ग्रहों का परिवार। जैसे शुक्र, पृथ्वी, बृहस्पति और दूसरे ग्रह सूर्य के गिर्द लगभग वृत्ताकार कक्षाओं में चक्कर लगाते हैं, उसी प्रकार आकाश–गंगा के अंगरूप अरबों तारे एक बिंदु के गिर्द घूमते हैं जिसे मंदाकिनी का केन्द्र कहा जाता है। मंदाकिनी के घूमने का यह केन्द्र धनु (Sagittarius) नामक राशि* की दिशा में स्थित है। सचमुच, यदि आप आसमान में आकाश–गंगा की कुहरानुमा आकृति के साथ–साथ नज़र दौड़ायें, तो आपके ध्यान में आयेगा कि इस तारा–समूह के पास पहुँचते हुए आकाश–गंगा पहले से काफ़ी अधिक चौड़ी हो जाती है, जिससे संकेत मिलता है कि आप इस लैंस जैसे पिंड के केन्द्रीय मोटे भाग को देख रहे हैं। (चित्र 111 में हमारा खगोलविद इसी दिशा में देख रहा है।)

मंदाकिनी का केंद्र कैसा दीखता है? हम यह नहीं जानते, क्योंकि दुर्भाग्यवश यह हमारी दृष्टि से छिपा हुआ है। बात यह है कि तारों के बाहर भी पदार्थ के कुछ कण इधर–उधर उड़ते रहते हैं। कहीं–कहीं अँधेरे अंतर–तारकीय पदार्थ के बादल–से बन जाते हैं।

* यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मेष, वृष, धनु जैसी किसी राशि या नक्षत्र में शामिल तारों को एक–दूसरे का पड़ोसी समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। ये तारे एक–दूसरे के **निकट की दिशा** में दिखाई देते हैं, परंतु वास्तव में बहुत दूर–दूर भी हो सकते हैं। –अनु०

ऐसा ही एक घना बादल हमारे और मंदाकिनी–केंद्र के बीच में अंतरिक्ष में तैर रहा है। सचमुच, धनु के आसपास[3] के आकाश–गंगा के चौड़े भाग को देख कर आपको पहले ऐसा लगेगा कि देवताओं का यह आकाशीय राजमार्ग यहाँ आकर दो "एक–तरफ़ा उप–मार्गों" में बँट गया है (चित्र 112)। पर यह वास्तव में शाखाओं में बँटने जैसी स्थिति नहीं है। ऐसा आभास तो इसलिए होता है कि मोटाई वाले स्थान के ठीक मध्य में, हमारे और मंदाकिनी–केंद्र के बीच अंतरिक्ष में, अंतर–तारकीय धूल और गैसों का काला बादल लटका है। आकाश–गंगा के दोनों बाजू फैला अँधेरा तो खाली अंतरिक्ष की पृष्ठभूमि के कारण है, पर मध्यवर्ती अँधेरा उस काले अपारदर्शी बादल से पैदा हुआ है। उस अँधेरे केंद्रीय धब्बे पर जो थोड़े से तारे दिखाई देते हैं वे वास्तव में अग्रभूमि में हैं, अर्थात् बादल के इस ओर हैं।

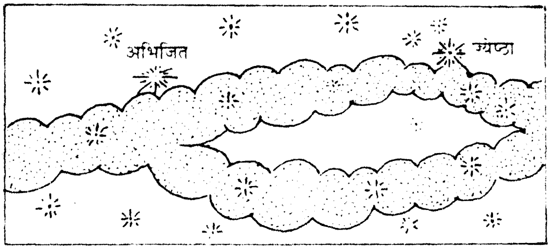


चित्र 112 : यदि हम आकाश–गंगा के केंद्र की ओर देखे तो पहले हमें प्रतीत होगा मानो यह आकाशीय सड़क दो एकतरफा उप–मार्गों में बँट जाती है।

जी हाँ, यह तो हमारी विवशता है कि हम उस रहस्यमय मंदाकिनी–केंद्र को नहीं देख सकते जिसके गिर्द हमारा सूर्य अन्य अरबों तारों के साथ घूम रहा है। पर आकाश–गंगा कोई अकेली मंदाकिनी नहीं है। इसके छोर से भी बहुत–बहुत आगे आकाश में ढेरों अन्य तारा–समुदाय या मंदाकिनियाँ बिखरी पड़ी हैं। इनके प्रेक्षण से हम जानते हैं कि मंदाकिनी का केंद्र कैसा होता है। ऐसा नहीं है कि मंदाकिनी का केंद्र कोई अतिविशाल तारा हो जो मुखिया की तरह समुदाय के सभी तारों को समेटे रहे, जैसे सूर्य सभी ग्रहों के परिवार का मुखिया है। कई अन्य मंदाकिनियों (जिनकी चर्चा हम कुछ बाद में करेंगे) के केंद्रीय भाग के अध्ययन से मालूम हुआ है कि वहाँ भी बहुत बड़ी संख्या में वैसे ही तारे हैं। अंतर सिर्फ़ इतना है कि वहाँ तारे बहुत ही घने–घने भरे हुए हैं, जबकि हमारे सूर्य के आस–पास अर्थात् हमारी मंदाकिनी के बाहरी भाग में उतने घने नहीं हैं। यदि हम अपने ग्रह–परिवार को एक राजतंत्र मानें, जहाँ सूर्य सब ग्रहों का राजा है, तो तारों की मंदाकिनी की तुलना एक तरह के प्रजातंत्र से की जा सकती है, जिसमें ढेर सारे सदस्य केंद्रीय और प्रभावी स्थानों पर आसीन रहते हैं, जबकि अन्य बेचारों को समाज के हाशिये पर कुछ छोटे किस्म के स्थानों पर ही गुज़ारा करना पड़ता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, हमारे सूर्य सहित सभी तारे विशाल वृत्तों में मंदाकिनी के केंद्र के गिर्द घूमते हैं। इसे प्रमाणित कैसे किया जा सकता है? तारों की कक्षाओं की त्रिज्याएँ कितनी बड़ी होती हैं, और एक चक्र पूरा करने में कितना समय लगता है? कुछ दशक पूर्व डच खगोल–विज्ञानी ऊर्ट ने इन सब प्रश्नों के उत्तर दिये। उन्होंने आकाश–गंगा नामक तारा–समुदाय पर वैसे ही तर्क लागू किये जो कोपर्निकस ने ग्रह–परिवार का विचार करते हुए प्रस्तुत किये थे।

---

[3] धनु को देखने के लिए सबसे अच्छा समय जुलाई–अगस्त की कोई रात्रि होगी जब आकाश साफ़ हो।

पहले कोपर्निकस के तर्क को ही याद करें। प्राचीन काल से ही बेबीलोन, मिस्र और अन्य देशों के लोगों ने देखा था कि शनि या बृहस्पति जैसे बड़े ग्रह आकाश के तारों के बीच ज़रा अजीब ढंग से चलते हैं। कभी तो सूर्य की भाँति वृत्ताकार रास्ते पर पश्चिम से पूर्व की ओर चलने लगते हैं, पर कभी अचानक रुकते हैं, पीछे हटने लगते हैं, और फिर दूसरी बार उलटे मुड़ कर मूल दिशा में चलने लगते हैं।* चित्र 113 में हमने शनि ग्रह द्वारा लगभग दो वर्ष की अवधि में तय की गयी ऐसी ही एक कुंडली की रूपरेखा दिखायी है। (शनि द्वारा चक्र पूरा करने की अवधि 29-1/2 वर्ष है) हाँ, तो कोपर्निकस के ज़माने में एक मज़हबी पूर्वाग्रह था कि पृथ्वी पूरे ब्रह्मांड के केन्द्र में है; अतः माना जाता था कि सभी ग्रह (और स्वयं सूर्य भी) पृथ्वी के आसपास घूमते हैं। इसलिए ग्रहों की ऊपर वर्णित चाल की कोई व्याख्या नहीं हो सकती थी, सिवाय इसके कि ग्रहों की कक्षा बड़ी अजीब होती है जिसमें कई कुंडलियाँ होती हैं।**

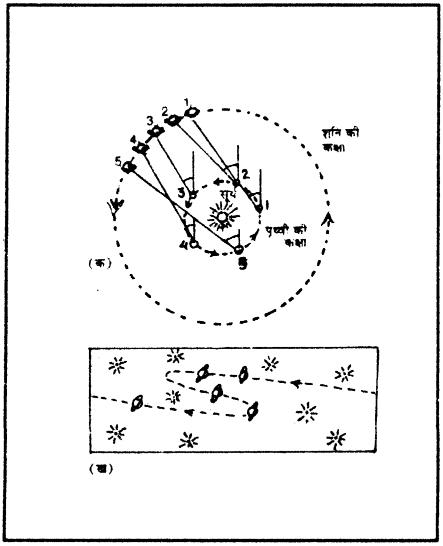


चित्र 113 : (क) सूर्य के गिर्द पृथ्वी व शनि की कक्षाएँ;
(ख) शनि की अजीब कक्षा, जैसी पृथ्वी से दीखती है।

परंतु कोपर्निकस इससे बेहतर समझते थे। अपनी प्रतिभा की एक किरण से उन्होंने रहस्यमय कुंडली वाले तथ्य की व्याख्या कर डाली – ऐसा इसलिए है कि पृथ्वी और अन्य सभी ग्रह सूर्य के गिर्द वृत्ताकार कक्षाओं में घूमते हैं। चित्र 113 में दी गई रूपरेखा को ध्यान से देखने पर यह व्याख्या आसानी से समझी जा सकती है।

सूर्य केन्द्र में है, पृथ्वी (छोटा गोला) छोटे वाले वृत्त पर घूमती है और शनि (मुद्रिका के साथ) बड़े वाले वृत्त के पथ पर पृथ्वी वाली दिशा में ही घूमता है। संख्याएँ 1, 2, 3, 4, 5 एक वर्ष की अवधि में पृथ्वी की विभिन्न स्थितियाँ बताती हैं, और उन्हीं समयों पर शनि की स्थितियाँ भी बताती हैं।

* भारतीय परंपरागत ज्योतिष–शास्त्र में सूर्य वाली दिशा में चलता हुआ ग्रह "मार्गी" और उलटी दिशा में चलता हुआ "वक्री" कहलाता है। –अनु०

**पूर्वाग्रह हों या न हों, इतना निश्चित है कि पृथ्वी से देखने पर सूर्य घूमता दीखता है और ग्रहों की चाल ऐसी "अजीब" और कुंडलियों वाली ही दीखती है। –अनु०

(याद रहे, शनि अपेक्षाकृत काफ़ी धीरे घूमता है।[+]) पृथ्वी की विभिन्न स्थितियों में जो ऊर्ध्वाधर रेखाएँ चित्र में दिखायी गयी हैं, वे किसी स्थिर तारे की दिशा दर्शाती हैं। पृथ्वी की प्रत्येक स्थिति से उस समय की शनि की स्थिति तक रेखा खींच कर हम उस कोण को देखते हैं जो दोनों दिशाओं (शनि की दिशा और तारे की दिशा) के बीच बनता है। यह कोण पहले बढ़ता है, फिर घटता है और पुनः बढ़ने लगता है। अतः शनि जो कुंडली के समान उलटा–सीधा चलता दीखता है, उसका कारण शनि की चाल की कोई गड़बड़ नहीं, बल्कि यह तथ्य है कि हम घूमती हुई पृथ्वी से शनि की गति को अलग–अलग कोणों पर देखते हैं।

अब तारों की मंदाकिनी के घूमने के बारे में ऊर्ट का तर्क चित्र 114 को देख कर समझा जा सकता है। इस चित्र के निचले भाग में हमें मंदाकिनी का केन्द्र दिखाई देता है (काले बादल सहित!), और इसके सब ओर चित्र के पूरे क्षेत्र में ढेर–से तारे छिटके हैं। जो तीन वृत्त दिखाये गये हैं, वे केन्द्र से अलग–अलग दूरी वाले तारों की कक्षाएँ दर्शाते हैं, जिनमें से मध्यम वृत्त हमारे सूर्य की कक्षा है।

अब हम ज़रा आठ तारों पर ध्यान दें (जिनको अन्य तारों से अलग पहचानने के लिए तीर के निशान लगाये गये हैं)। इन आठ में से दो तो सूर्य वाली कक्षा में ही गति कर रहे हैं (एक सूर्य से ज़रा आगे और दूसरा ज़रा पीछे), और तीन–तीन तारे थोड़ी–सी बड़ी और थोड़ी–सी छोटी कक्षा में हैं, जैसा चित्र में दिखाया गया है। हमें याद रखना होगा कि गुरुत्वाकर्षण के नियमों के कारण बाहर वाले तारों की कोणीय गति सबसे कम है, सूर्य वाली कक्षा में यह मध्यम है, जबकि भीतर वाले तारों की कोणीय गति सबसे अधिक है। (चित्र में इसे अलग–अलग लंबाई वाले तीरों के माध्यम से दिखाया गया है।)

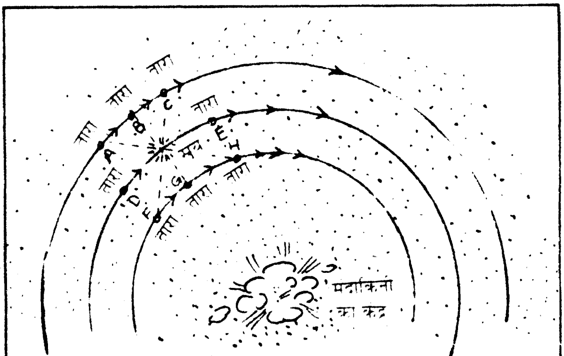


चित्र 114 : क्या सभी तारे मंदाकिनी के केंद्र की परिक्रमा कर रहे है?

अब हम जानना चाहते हैं कि यदि इस प्रकार मंदाकिनी के तारे केन्द्र की परिक्रमा कर रहे हैं, तो सूर्य से देखने पर (या पृथ्वी से देखने पर – बात एक ही है) विभिन्न तारों की गति कैसी दिखाई देगी? और वास्तव में प्रेक्षण करने पर क्या वैसी ही दिखाई देती है? तारों की गति को मापने के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक है डॉप्लर प्रभाव का उपयोग।[‡] परंतु इस विधि से दृष्टि–रेखा में ही गति

---

[+] शनैः शनैः चलने के कारण ही यह "शनिश्चर" या "शनि" कहलाता है। –अनु०

[‡] डॉप्लर प्रभाव यह है कि पास आते हुए तारे का रंग बैंगनी की ओर खिसक जाता है ओर दूर जाते हुए का लाल की ओर। अधिक चर्चा के लिए देखें पृ० 267.

आसानी से मापी जा सकती है। ("दृष्टि–रेखा" का अर्थ है प्रेक्षक और तारे को जोड़ने वाली रेखा, क्योंकि उसी रेखा में प्रेक्षक की दृष्टि जाती है।) यदि तारे की गति इस रेखा के साथ–साथ होगी, अर्थात् वह सीधा प्रेक्षक से दूर जा रहा होगा, या पास आ रहा होगा, तो उसकी यह गति आसानी से मापी जा सकती है। अतः अपनी चर्चा में हम गति के केवल उसी घटक पर ध्यान देंगे जो दृष्टि–रेखा में है, दाहिने–बायें जाने की गति पर नहीं।

चित्र 114 में देखने पर सबसे पहले इतना तो स्पष्ट है कि जो दो तारे (D और E) सूर्य वाली कक्षा में सूर्य के बराबर गति से चल रहे हैं वे सूर्य से (या पृथ्वी से) देखने पर स्थिर दिखाई देंगे, अर्थात् सूर्य से उनकी दूरी न घट रही होगी और न बढ़ ही रही होगी। यही बात दो अन्य तारों (B तथा G) पर भी लागू होती है जो सूर्य और केन्द्र को जोड़ने वाली रेखा पर स्थित हैं, क्योंकि इनकी गति सूर्य की गति के समांतर है और दृष्टि–रेखा के समांतर इसका कोई घटक नहीं है।

अब बाहरी वृत्त पर स्थित तारों A और C के बारे में क्या कहा जा सकता है? क्योंकि ये दोनों सूर्य की अपेक्षा धीमे घूमते हैं, अतः चित्र में देखते हुए यह निष्कर्ष स्पष्ट ही निकलता है कि सूर्य A को पीछे छोड़ता जा रहा है, जबकि C के निकट पहुँचता जा रहा है। इस प्रकार तारे A से सूर्य की दूरी बढ़ती जायेगी और C से घटती जायेगी, और इन दोनों तारों से आते हुए प्रकाश में निश्चय ही क्रमशः लाल और बैंगनी डॉप्लर प्रभाव दिखाई देगा। भीतरी वृत्त पर स्थित तारों F तथा H की बात इससे उल्टी होगी : तारे F पर बैंगनी डॉप्लर प्रभाव और H पर लाल डॉप्लर प्रभाव लागू होना पड़ेगा।

यहाँ यह मान लिया गया है कि ऊपर वर्णित घअनाओं का कारण सितारों की वृत्ताकार गति ही है। प्रायोगिक प्रेक्षणों से न केवल इस मान्यता की पुष्टि होती है, अपितु हम तारों की कक्षाओं की त्रिज्याओं और तारों के चलने की गतियों का आकलन भी कर पाते हैं। ऊर्ट ने आकाश के हर भाग के तारों को देखा, उनकी प्रतीत होने वाली गतियों के प्रेक्षणों के परिणामों को संकलित किया और यह प्रमाणित कर दिया कि लाल और बैंगनी किस्म के डॉप्लर प्रभाव वाले परिवर्तन सचमुच मौजूद हैं। इससे मंदाकिनी के घूमने की हमारी बात निस्संदेह प्रमाणित हो गयी।

इससे मिलते–जुलते तरीके से यह दर्शाया जा सकता है कि मंदाकिनियों के घूमने से दृष्टि–रेखा के लंबवत सितारों की गति भी प्रभावित होगी। यह तो ठीक है कि सितारों की गतियों के इस घटक को परिशुद्धतः मापना टेढ़ी खीर है, क्योंकि सुदूर तारों की रेखीय गति यदि बहुत अधिक भी हो तो उससे आकाश के विशाल गोले पर होने वाली कोणीय हलचल अतीव सूक्ष्म होगी। इसके बावजूद ऊर्ट तथा अन्यों ने इस प्रभाव को भी मापा।

तारों की गति के ऊर्ट प्रभाव की परिशुद्ध माप के द्वारा तारों की कक्षाओं के विस्तारों और चक्कर लगाने की अवधियों को मालूम करना अब संभव हो गया है। इस तरीके से गणनाएँ करके जाना गया है कि सूर्य की कक्षा, जिसका केन्द्र धनु राशि में है, उसकी त्रिज्या 30,000 प्रकाश–वर्ष है, जो कि पूरी मंदाकिनी की सबसे बाहरी कक्षा की त्रिज्या का कोई दो–तिहाई भाग है। मंदाकिनी–केन्द्र के गिर्द एक पूरा चक्कर लगाने में सूर्य को कोई 20 करोड़ वर्ष लगते हैं। यह अवधि बहुत लंबी ज़रूर है, पर यदि हम याद रखें कि हमारे पूरे तारा–समूह की आयु कोई $5 \times 10^9$ वर्ष (500 करोड़ वर्ष) है, तो हम पाते हैं कि अपने ग्रहों के परिवार को साथ लेकर सूर्य अब तक 20-25 पूरे चक्कर लगा चुका है। जैसे पृथ्वी द्वारा सूर्य का चक्कर लगाने की अवधि को हम पृथ्वी

का एक वर्ष कहते हैं, उसी प्रकार सूर्य के घूमने की अवधि को यदि एक "सौर वर्ष" मानें, तो हम कह सकते हैं कि हमारे इस ब्रह्मांड की आयु अभी 20-25 "वर्ष" ही है।* सचमुच, तारों की दुनिया में सब कुछ धीमी गति से होता है; इसलिए ब्रह्मांड के इतिहास में समय की माप के लिए सौर वर्ष काफ़ी सुविधाजनक इकाई है।

## 3. अज्ञात की सरहदों की ओर

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, हमारी मंदाकिनी ब्रह्मांड के विशाल सूनेपन में तैरता एकमात्र तारा–समुदाय नहीं है। दूरदर्शकीय अध्ययनों से पता चलता है कि दूर के आकाश में तारों के अन्य विशाल समूह भी मौजूद हैं, जो हमारे अपने तारा–समुदाय से बहुत मिलते–जुलते हैं। उनमें से जो सबसे निकट है, जिसका नाम एंड्रोमीडा नीहारिका (nebula) है, वह खाली आँख से भी देखा जा सकता है। यह हमें एक छोटा, मंद, ज़रा लंबा–सा धुँधला दीखता है; इसकी वास्तविक आकृति सर्पिल (spiral) है। ऐसे अनेक संकेत हैं कि हमारे अपने तारा–समाज का ढाँचा भी कुछ सर्पिल है, पर जब हम स्वयं किसी ढाँचे के भीतर हों, तो उसकी आकृति मालूम करना बड़ा कठिन हो जाता है। सचमुच, इस बात की पूरी संभावना है कि हमारा अपना सूर्य "आकाश–गंगा नामक महान नीहारिका" की एक कुंडली के बिल्कुल छोर पर स्थित है।

एक लंबे अर्से तक खगोल–विज्ञानी यह नहीं समझते थे कि आकाश में जो सर्पिल नीहारिकाएँ पायी जाती हैं, वे और कुछ नहीं, अपनी आकाश–गंगा से मिलते–जुलते तारा–समुदाय ही हैं। वे भ्रमवश उनको साधारण छितरे हुए कुहरों के समान ही मानते थे, जैसा एक कुहरा मृग या हरजुआठ (Orion) नामक तारा–समूह में दिखाई देता है – ऐसे कुहरे वास्तव में अंतर–तारकीय धूल के विशाल बादल होते हैं जो कि हमारी आकाश–गंगा के भीतर ही तारों के बीच तैरते हैं। परंतु बाद में पाया गया कि वे धुँधले–से सर्पिल पिंड ऊपर कहे कुहरे के समान बिल्कुल नहीं हैं, बल्कि ढेरों तारों से बने हुए हैं, जिनको अत्यधिक आवर्धन करने पर अलग–अलग बिंदुओं के रूप में देखा जा सकता है। परंतु वे इतने अधिक दूर हैं कि दिग्भेद वाली माप से किसी भी तरह उनकी वास्तविक दूरी का कोई अनुमान नहीं किया जा सकता।

अतः पहली नज़र में ऐसा प्रतीत हो सकता है कि ये नीहारिकाएँ इतनी दूर हैं कि आकाशीय दूरियाँ मापने के हमारे सभी उपायों की अंतिम सीमा से भी परे हों। पर नहीं जी! विज्ञान में ऐसा होता ही है कि जब हमारे सामने ऐसी कोई अलंघ्य कठिनाई आती है, तो प्रायः कुछ समय तक ही रुकावट रहती है। हर बार कुछ न कुछ ऐसा मिल ही जाता है जिसके सहारे हम फिर आगे बढ़ सकें। इस बार भी हार्वर्ड के खगोल–विज्ञानी हार्लो शैप्ली ने एक बिल्कुल अनोखी "मापने की छड़ी" ऐसे तारों के रूप में पा ली जिनको **धड़कते तारे** या सेफ़ीड कहते हैं।[5]

---

* भारतीय पौराणिक साहित्य मे ब्रह्मा का एक दिन 4 अरब 32 करोड़ वर्ष का माना जाता है : इतने समय में चार युगों का एक चक्र पूरा होने की मान्यता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीयों को सृष्टि के परिवर्तनशील होने की कल्पना थी और यह भी अंदाज़ था कि ऐसे परिवर्तनों या चक्रों में लगने वाली समय–अवधि अरबों वर्षों की होगी। परंतु यह संख्या उन्होंने किस आधार पर खोजी, यह हम नहीं जानते। –अनु०

5 इनका नाम सेफ़ीड इसलिए पड़ा कि "धड़कने" की घटना सबसे पहले बीटा–सेफ़ी नामक तारे में पायी गयी।

ये धड़कते तारे क्या हैं? यूँ तो हर ओर तारे ही तारे हैं। उनमें अधिकतर तो चुपचाप आकाश में एक समान चमकते रहते हैं, पर थोड़े-से ऐसे भी हैं जो निरंतर अपनी दीप्ति बदलते रहते हैं, अर्थात् नियमित चक्रों में तेज़ से मंद और मंद से तेज़ होते रहते हैं। इन तारों के बृहत् शरीर उतने ही नियमित रूप से स्पंदित होते हैं जितना कि हमारा हृदय, और इस स्पंदन के साथ ही उनकी दीप्ति में आवर्ती (periodic) परिवर्तन होता है।[6] मज़ेदार बात यह है कि जितना बड़ा तारा होगा, उसके स्पंदन की समय-अवधि भी उतनी ही अधिक होगी, उसी प्रकार जैसे लंबा पैंडुलम अपना दोलन पूरा करने में अधिक समय लगाता है और छोटा पैंडुलम कम। जो तारे बहुत ही छोटे होते हैं (तारों के मापदंड के अनुसार छोटे), वे तो अपना एक स्पंदन कुछ ही घंटों में पूरा कर लेते हैं, जबकि बिल्कुल दैत्यकार तारे कितने ही वर्ष लगा देते हैं। अब क्योंकि तारों के आकार का संबंध उनकी दीप्ति के साथ भी है, अर्थात् जितना बड़ा तारा होगा उतना ही अधिक प्रकाश देगा, अतः धड़कते तारों की अवधि का संबध उनकी औसत दीप्ति के साथ होगा। इस संबंध को ठीक से जानने के लिए हमें उन सेफ़ीडों का प्रेक्षण करना होगा जो हमारे इतने निकट हैं कि उनकी दूरी हम इससे पूर्व बताये उपायों से माप सकें। दूरी ज्ञात होने से उनकी वास्तविक दीप्ति भी ज्ञात हो जायेगी।*

अब यदि आपको एक ऐसा धड़कता तारा मिल जाये जिसकी दूरी दिग्भेद वाली माप की सीमा से परे हो, तो आपको इतना ही करना होगा कि दूरदर्शक यंत्र से उस तारे को देखते रहें और उसके एक स्पंदन की अवधि माप लें। अतः इस अवधि के अनुपात में आपको उसके आकार और वास्तविक दीप्ति का भी ज्ञान हो जायेगा। फिर वास्तविक दीप्ति की तुलना उसकी प्रतीत होने वाली चमक से करेंगे तो आप गणना कर सकेंगे कि वह कितना दूर है। यह था वह कमाल का उपाय, जिसके उपयोग से शैप्ली ने सफलतापूर्वक आकाश-गंगा के भीतर बहुत बड़ी-बड़ी दूरियों को मापा। हमारे तारा-समुदाय के पूरे विस्तार की माप करने में भी यह उपाय अतीव उपयोगी सिद्ध हुआ।

जब शैप्ली ने एंड्रोमीडा नीहारिका के बृहत् कुहरे में छिपे अनेक धड़कते तारों की दूरियों को मापने के लिए यही तरीका अपनाया, तो एक महान आश्चर्य उपस्थित हुआ। पृथ्वी से इन तारों की दूरी, अर्थात् स्वयं एंड्रोमीडा नीहारिका की दूरी, 17 लाख प्रकाश-वर्ष निकली – आकाश-गंगा के तारा-समुदाय के अनुमानित व्यास से बहुत अधिक। और एंड्रोमीडा नीहारिका का विस्तार हमारी पूरी मंदाकिनी (आकाश-गंगा) से ज़रा ही कम निकला। सप्तर्षि और कोमा बेरेनिसिस तारा-समूहों में जो सर्पिल नीहारिकाएँ दिखाई देती हैं, वे तो और भी अधिक दूर हैं, और उनके आकार भी एंड्रोमीडा के समतुल्य हैं।

इस खोज से उस पहले वाली धारणा पर वज्रपात हो गया कि सर्पिल नीहारिकाएँ हमारी ही मंदाकिनी में स्थित अपेक्षाकृत "छोटे पिंड" हैं, और वे हमारी अपनी मंदाकिनी आकाश-गंगा से मिलती-जुलती स्वतंत्र मंदाकिनियों के तौर पर प्रतिष्ठित हो गयीं। अब किसी भी खगोल-विज्ञानी को इसमें संदेह करने की गुंजाइश नहीं रही कि विशाल एंड्रोमीडा नीहारिका के अरबों तारों में से किसी

---

[6] आकाश में ऐसे दो तारों वाले समूह भी हैं जिनमें दो तारे एक-दूसरे के गिर्द घूमते रहते हैं और बार-बार एक-दूसरे को ढकते रहते हैं या ग्रहण लगाते रहते हैं। उन्हें "ग्रहण वाले परिवर्ती" कहते हैं। धड़कते तारों में और इनमें घालमेल नहीं करना चाहिए।

* यहाँ से देखने पर हमें तारों की जो चमक दिखाई देती है, वह उनकी वास्तविक दीप्ति के अनुपात में नहीं है, क्योंकि दूरी से भी बहुत अंतर पड़ता है। जिस अनुपात में दूरी बढ़ेगी, उसके वर्ग के अनुपात में चमक कम होगी। अतः दूरी मालूम हो जाने पर हम किसी तारे की वास्तविक दीप्ति जान सकते हैं। –अनु०

तारे के गिर्द चक्कर काटते किसी ग्रह पर यदि कोई प्रेक्षक बैठा हो तो उसे हमारी आकाश–गंगा वैसी ही दिखाई देगी जैसी हमें एंड्रोमीडा नीहारिका दिखाई देती है।

इन सुदूर तारा–समुदायों के बारे में और आगे अनेक अध्ययन हुए, जिनके लिए हम सबसे अधिक माउंट विल्सन प्रेक्षणालय के सुविख्यात तारा–दर्शक डा० ई० हबल के ऋणी हैं। इन अध्ययनों से बहुत–से तथ्य उजागर होते हैं जो अत्यधिक रोचक व महत्त्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह पायी गयी कि किसी अच्छे दूरदर्शक यंत्र से दीखने वाली मंदाकिनियों की संख्या खाली आँख से दीखने वाले तारों की संख्या से कहीं अधिक है। दूसरी बात, उन सब मंदाकिनियों की आकृति सर्पिल होना आवश्यक नहीं है, बल्कि आकृतियों में बहुत तरह की विविधता है। इनमें **गोलाकार मंदाकिनियाँ** हैं जो धुँधली सीमाओं वाले नियमित चक्रों के समान दीखती हैं, और **अंडाकार मंदाकिनियाँ** भी हैं जिनकी उत्केंद्रता (elongation) कई तरह की है। फिर, जो सर्पिल हैं, उनमें भी किन्हीं की कुंडलियाँ "अधिक कस कर लपेटी हुई" हैं तो किन्हीं की कम। कुछ बड़ी अजीब आकृतियाँ भी हैं जिन्हें "बाधित सर्पिल "(barred spiral) कहते हैं।

एक अतीव महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मंदाकिनीय आकृतियों के जितने विविध प्रकार देखे गये हैं, उन सबको एक नियमित क्रम में सजाया जा सकता है (चित्र 115); ऐसा अनुमान है कि यह क्रम इन विशाल तारा–समाजों के विकास के विभिन्न चरणों को दर्शाता है।

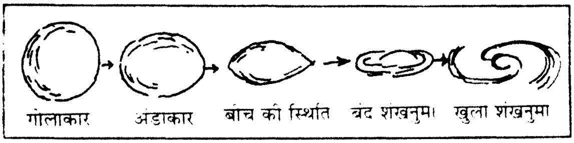


चित्र 115 : सामान्य मंदाकिनी–विकास के विभिन्न चरण

यद्यपि मंदाकिनियों के उद्‌भव को विस्तारपूर्वक समझना हमारे लिए अब भी काफ़ी दूर की बात है, तो भी बहुत संभावना है कि मंदाकिनियों के लगातार सिकुड़ने की प्रक्रिया ही इनके विकास का कारण है। यह तथ्य तो भली भाँति विदित है कि कोई भी धीमे–धीमे घूमने वाला गोलाकार पिंड यदि लगातार सिकुड़ता है तो इसकी घूमने की गति बढ़ जाती है और इसकी आकृति दबे हुए दीर्घवृत्तज (ellipsoid) या फूली हुई पूड़ी जैसी हो जाती है। संकुचन के एक चरण में जब ध्रुवीय (polar) त्रिज्या और विषुवतीय (equatorial) त्रिज्या का अनुपात 7/10 के बराबर हो जाता है, तो घूमते हुए पिंड को मसूर के दाने की आकृति में आना पड़ेगा और विषुवत के साथ–साथ चारों ओर एक पैना किनारा बन जाएगा। इससे भी अधिक संकुचन होने पर मसूर जैसी आकृति तो बनी रहेगी, पर उस घूमते हुए पिंड की गैसें विषुवतीय किनारे के साथ–साथ हर ओर आस–पास के अंतरिक्ष की ओर प्रवाहित होने लगेंगी, जिससे कि विषुवत वाले समतल में एक पतला गैसीय आवरण–सा बन जायेगा।

वैसे तो ऊपर के सभी कथन प्रसिद्ध बर्तानी भौतिकीविद एवं खगोलविद सर जेम्स जीन्स द्वारा घूमते हुए गैस के गोले के लिए गणितीय विधि से प्रमाणित किये गये थे। परंतु इन कथनों को बिना फेर–बदल किये मंदाकिनी कहलाने वाले विशाल तारकीय बादलों पर भी लागू किया जा सकता है। सचमुच, इस प्रकार के अरबों तारों के समूह को हम गैस का गुच्छा समझ सकते हैं जहाँ एक–एक तारा गैस के अणु की भूमिका में है।

एक ओर जीन्स की सैद्धान्तिक गणनाएँ हैं और दूसरी ओर हबल द्वारा अनुभव के आधार पर किया गया मंदाकिनियों का वर्गीकरण है। यदि हम इन दोनों की तुलना करते हैं, तो पाते हैं कि ये बृहत् तारा–समुदाय विकास के बिल्कुल उसी क्रम पर चलते हैं जो थ्योरी द्वारा वर्णित है। विशेष रूप से हम देखते हैं कि पूड़ी की आकृति की मंदाकिनियों में सबसे अधिक "दबी हुई" आकृति वह है जो कि 7/10 के त्रिज्या–अनुपात से प्राप्त होती है (जिसे E7 कहा जाता है), और इसी आकृति में पहली बार एक पैना विषुवतीय किनारा पाया जाता है। विकास के अंतिम चरणों में जो सर्पिल कुंडलियाँ फूटती हैं, वे अनुमानतः उस पदार्थ से बनती हैं जिसे मंदाकिनी तेज़ घूमने के कारण फेंकती जाती है। हाँ, वर्तमान समय तक हमारे पास इस बात की पूरी तरह संतोषजनक व्याख्या नहीं है कि ये सर्पिल आकार में क्यों और कैसे आ जाती हैं, और साधारण तथा बाधित कुंडलियों में अंतर का कारण क्या है?

तारों की मंदाकिनियों के विभिन्न भागों की बनावट, गति और तारों की संख्या का और आगे अध्ययन करके बहुत कुछ सीखना अभी बाकी है। उदाहरणतया, दो–एक वर्ष पूर्व माउंट विल्सन के एक खगोल–विज्ञानी डब्ल्यू० बाडे ने अपने प्रेक्षणों के परिणाम–स्वरूप यह दर्शाया कि सर्पिल नीहारिकाओं के केन्द्र तो उसी प्रकार के तारों से बने हैं जिनसे गोलाकार और दीर्घगोलाकार मंदाकिनियाँ बनी हैं, परंतु कुंडलियों के तारा–समुदाय कुछ अलग किस्म के हैं। इनमें केन्द्रीय क्षेत्र के तारा–समुदाय की अपेक्षा अंतर क्या है? अंतर यह है कि कुंडलियों में बहुत गर्म और दीप्तिमान सितारे मौजूद हैं जिनको "नीले दैत्य" कहा जाता है, जबकि केन्द्रीय क्षेत्र में या गोलाकार/दीर्घगोलाकार मंदाकिनियों में ये नहीं पाये जाते हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे (अध्याय ग्यारह में), इस बात की पूरी संभावना है कि ये नीले दैत्य सबसे हाल में बने तारे हैं। अतः यह सोचना उचित ही होगा कि सर्पिल कुंडलियाँ मानो नये तारागण के उपजने की जगहें हैं। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि सिकुड़ती हुई दीर्घगोलाकार मंदाकिनी के विषुवतीय उभार से निकलते हुए पदार्थ का एक बड़ा भाग सृष्टि की आदिम गैसों से बना है। मंदाकिनियों के बाहर के ठंडे अंतरिक्ष में आकर ये गैसें घनीभूत होकर बड़े–बड़े पिंड बना देती हैं, जो बाद में और सिकुड़ कर बहुत गर्म और दीप्तिमान हो जाते हैं।

अध्याय ग्यारह में हम फिर तारों के जन्म और जीवन की समस्याओं के प्रश्नों पर वापिस आयेंगे। अभी तो हमें यह सोचना है कि ब्रह्मांड के विशाल विस्तार में अलग–अलग मंदाकिनियाँ किस प्रकार बिखरी हैं।

यहाँ सबसे पहले यह बता देना होगा कि धड़कते तारों पर आधारित दूरियाँ मापने की विधि से यद्यपि हमारी आकाश–गंगा के निकट की बहुत–सी मंदाकिनियों के बारे में तो बहुत ही अच्छे परिणाम निकलते हैं, तथापि अंतरिक्ष के दूर–दराज़ क्षेत्रों में जाने पर यह विधि भी असफल हो जाती है। कारण यह है कि जल्दी ही हम इतनी अधिक दूर पहुँच जाते हैं कि अति शक्तिशाली दूरदर्शक से देखने पर भी मंदाकिनी के नाम पर बस एक छोटा–सा लंबाकार कुहरा ही दिखाई देता है; अलग–अलग तारों को पहचानना संभव नहीं होता। इसके आगे तो, बस, एक ही उपाय है। यह लगभग अच्छी तरह मालूम है कि एक ही प्रकार की सभी मंदाकिनियाँ लगभग बराबर आकार की होती हैं। (तारों के आकारों के बारे में ऐसा नहीं है।) अतः किसी मंदाकिनी की दूरी का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वह यहाँ से कितनी छोटी दीखती है। यूँ समझिए कि यदि आपको मालूम हो कि सभी आदमी एक समान ही लंबे होते हैं, कोई भी दैत्य या बौने नहीं होते, तो दूर के किसी आदमी की दृश्य लंबाई को देख कर आप जान सकते हैं कि वह कितना दूर है।

बहुत ही दूर, बाहरी सीमाओं की मंदाकिनियों की दूरी का आकलन करने के लिए इस तरीके का उपयोग करके डा० हबल यह प्रमाणित कर पाये कि जहाँ तक हमारी आँखें अधिकाधिक शक्तिशाली दूरदर्शक यंत्रों की मदद से देख सकती हैं, अंतरिक्ष में मंदाकिनियाँ मोटे तौर पर एक समान बिखरी हैं। यहाँ "मोटे तौर पर" इसलिए कहा है कि ऐसे कई स्थान भी हैं जहाँ ये बड़े समूहों में एकत्रित हैं, जिनमें कभी–कभी तो हज़ारों सदस्य भी होते हैं, उसी प्रकार जैसे ढेर–से अलग–अलग तारे मंदाकिनियों में एकत्रित होते हैं।

ऐसा लगता है कि हमारी मंदाकिनी, आकाश–गंगा, एक अपेक्षाकृत छोटे झुंड में शामिल है जिसमें कुल तीन सर्पिल मंदाकिनियाँ (हमारी वाली और एंड्रोमीडा नीहारिका सहित) और छः दीर्घगोलाकार तथा चार अनियमित नीहारिकाएँ हैं (जिसमें से दो मैजेलैनिक बादल हैं)।

फिर भी, कहीं–कहीं स्थित ऐसे जमघट को छोड़ दिया जाए तो माउंट पालोमार प्रेक्षणालय के 200 इंच व्यास के दूरदर्शक यंत्र से दीखने वाली मंदाकिनियाँ काफ़ी समान रूप से ही अंतरिक्ष में $10^9$ प्रकाश–वर्षों की दूरी तक बिखरी हुई हैं। दो पड़ोसी मंदाकिनियों के बीच औसत दूरी लगभग 50 लाख प्रकाश–वर्ष है। जहाँ तक हम देख पाते हैं, ब्रह्मांड में तारों के ऐसे कई अरब अलग–अलग संसार (मंदाकिनियाँ) हैं।

पहले हमने जो उपमा दी थी, जिसमें एंपायर स्टेट बिल्डिंग का प्रतिनिधि एक जीवाणु माना गया था, पृथ्वी का प्रतिनिधि मटर का दाना और सूर्य का प्रतिनिधि एक कुहड़ा, उसके अनुसार एक मंदाकिनी को अरबों कुहड़ों की विशाल भीड़ मानना होगा जो, मोटे तौर पर कहा जाये तो, बृहस्पति की पूरी कक्षा में बिखरे हुए हैं, और कुहड़ों की ऐसी अरबों भीड़ें एक पूरे गोलाकार आयतन में फैली हैं जिसकी त्रिज्या हमारे निकटतम तारे की दूरी से कुछ ही कम है। जी हाँ, ब्रह्मांडीय दूरियों को व्यक्त करने के लिए समुचित पैमाना खोजना बहुत मुश्किल है, यहाँ तक कि पृथ्वी को मटर के दाने के बराबर छोटा बना देने पर भी अब तक ज्ञात ब्रह्मांड का विस्तार तारकीय दूरियों के समतुल्य आता है।* चित्र 116 में हमने आपको यह अनुभूति कराने का प्रयास किया है कि कैसे, एक–एक कदम बढ़ाते हुए, खगोल–विज्ञानी ब्रह्मांड की दूरियों की खोज में आगे बढ़े हैं : पृथ्वी से शुरू करके चंद्रमा, फिर सूर्य, फिर तारों, सुदूर मंदाकिनियों और अज्ञात सरहदों की ओर ........

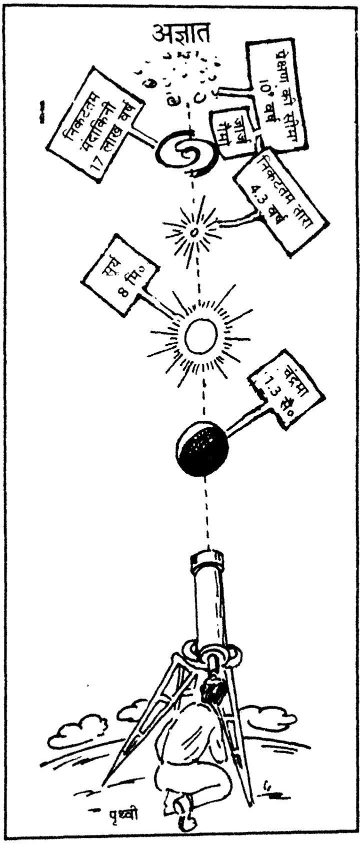


चित्र 116 : ब्रह्मांड की खोज में मील के पत्थर : दूरियाँ प्रकाश–वर्षों में व्यक्त हैं।

* ऐसे में यदि चंद्रमा, पृथ्वी, सूर्य, मंदाकिनी और ब्रह्मांड का चित्र एक ही जगह बनाना हो तो लघुगणक के पैमाने (log scale) का प्रयोग करना होगा। –अनु०

अब हम अपने ब्रह्मांड के विस्तार संबंधी इस मूलभूत प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार हैं : ब्रह्मांड अपरिमित–अनंत है या परिमित? **क्या हमें अपने ब्रह्मांड को अनंत दूरी तक फैला हुआ मानना होगा और समझ लेना होगा कि जैसे-जैसे आज की अपेक्षा अधिकाधिक बड़े और बढ़िया दूरदर्शक यंत्र आते जायेंगे, वैसे-वैसे अंतरिक्ष-विज्ञानियों की जिज्ञासा-भरी दृष्टि के लिए सदा अंतरिक्ष के नये-नये और अभी तक अनखोजे क्षेत्रों का उद्‌घाटन होता ही जायेगा? या, दूसरी ओर, हम यह विश्वास करें कि ब्रह्मांड का आयतन भले ही बहुत विशाल हो, फिर भी वह अनंत नहीं है, और कम से कम सिद्धांत रूप में उसके हरएक तारे की खोज की जा सकती है?**

जब हम इस संभावना की बात करते है कि हमारा ब्रह्मांड "परिमित आकार" का है, तो स्वाभाविक ही इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि कोई खोज करने निकले तो बहुत दूर, शायद कई अरब प्रकाश–वर्ष दूर, कहीं उसे एक शून्य की दीवार मिलेगी जिस पर सूचना टँगी होगी : "आगे जाना मना है"!

वास्तव में, हमने अध्याय तीन में ही देखा है कि **आकाश के परिमित होने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वह किसी सीमा के अंदर बंद हो**। ऐसा भी तो हो सकता है कि बस, वह मुड़ता–मुड़ता "अपने आप पर बंद" हो जाये, जिससे कि हमारी कल्पना का अंतरिक्ष–खोजी अपने रॉकेट--चालित अंतरिक्ष–यान को यथासंभव नाक की सीध में चलाता हुआ भी अंतरिक्ष में एक अल्पांतरी* पर ही चलता जाये, और चलता–चलता उसी बिंदु पर वापिस पहुँच जाये जहाँ से उसने शुरू किया था। यह स्थिति वैसी ही होगी जैसी किसी प्राचीन यूनानी खोजी की होती, जो अपने शहर एथेन्स से पश्चिम की ओर निकल पड़ता और सीधा चलते–चलते लंबी यात्रा के बाद स्वयं को उसी शहर के पूर्वी दरवाज़े में प्रवेश करता हुआ पाता।

हम जानते हैं कि पूरे संसार का चक्कर लगाये बिना भी पृथ्वी की सतह की वक्रता का पता लगाया जा सकता है; इसके लिए उसके अपेक्षाकृत छोटे–से भाग की ज्यामिति का अध्ययन करना ही काफ़ी होगा। ठीक उसी प्रकार ब्रह्मांड के तीन–आयामी आकाश की गोलाई के प्रश्न का उत्तर भी वैसी ही मापों के द्वारा दिया जा सकता है, जो वर्तमान में उपलब्ध दूरदर्शक यंत्रों की पहुँच के भीतर हैं। अध्याय पाँच में हम देख चुके हैं कि दो प्रकार की वक्रताओं के बीच अंतर समझना जरूरी है : एक तो धनात्मक, जिससे परिमित आयतन वाले बंद आकाश का पता चलता है, और दूसरा ऋणात्मक, जिससे घोड़े की काठी जैसे खुले अनंत आकाश का संकेत मिलता है (चित्र 42 देखें)। आकाश के इन प्रकारों में अंतर को इस प्रकार समझाया जा सकता है। मान लीजिए कि ढेर सारी वस्तुएँ समान रूप से सब ओर बिखरी हुई हैं। एक प्रेक्षक गिनता है कि मेरे आसपास फ़लाँ दूरी तक कितनी वस्तुएँ हैं। यदि वस्तुओं की संख्या उस दूरी के घन के अनुपात में बढ़ती है, अर्थात् दूरी को दुगुनी करने पर वस्तुओं की संख्या आठ गुणा बढ़ जाती है, तो यह सीधा–सपाट आकाश है। यदि वस्तुओं की संख्या इससे अधिक तेज़ी से बढ़ती है तो यह **वक्र खुला आकाश** है। यदि इससे उलटा हो तो यह **वक्र बंद आकाश** है।

* पृथ्वी की सतह पर सीधी से सीधी रेखा अल्पांतरी (geodesic) कहलाती है। स्पष्ट है कि ऐसी रेखा वृत्ताकार होगी जिसका व्यास पृथ्वी के व्यास के बराबर होगा। इसी प्रकार तीन–आयामी वक्र आकाश में अल्पांतरी की कल्पना की गयी है (देखिए, अध्याय पाँच)। –अनु०

हमारे ब्रह्मांड में ये "समान रूप से बिखरी हुई वस्तुएँ" मंदाकिनियों के रूप में हैं। अतः ब्रह्मांड की वक्रता की गुत्थी को सुलझाने के लिए हमें इतना ही करना है कि विभिन्न दूरियों के भीतर पड़ने वाली मंदाकिनियों को गिन लें। इस प्रकार की गिनती डा० हबल ने वास्तव में की है, और उन्होंने खोज निकाला है कि **मंदाकिनियों की गिनती दूरी के घन के अनुपात में नहीं, बल्कि उससे कुछ धीरे बढ़ती है, जिससे आकाश की धनात्मक वक्रता और परिमितता का संकेत मिलता है।** परंतु ध्यान देने की बात है कि हबल द्वारा देखा गया यह अंतर बहुत सूक्ष्म है, और माउंट विल्सन के दूरदर्शक यंत्र से जितनी दूर तक देखा जा सकता है, उसकी अंतिम सीमा पर ही जाकर कहीं यह अंतर ध्यान में आता है। माउंट पालोमार के 200–इंची परावर्ती दूरदर्शक से किये गये हाल के प्रेक्षणों से अभी इस महत्त्वपूर्ण पहेली पर पहले से अधिक प्रकाश नहीं पड़ा है।

एक और उलझन भी है जिसने ब्रह्मांड की परिमितता या अनंतता संबंधी अनिश्चितता को बढ़ाया है। वह उलझन इस बात से उत्पन्न होती है कि अति दूर की मंदाकिनियों की दूरी मापने का एकमात्र आधार है उनकी दिखाई देने वाली चमक, जो कि दूरी के वर्ग के उलटे अनुपात के नियम से नियमित है। इस तरीके में हम यह मान कर चलते हैं कि सभी मंदाकिनियों की दीप्ति एक बराबर है। अब यदि हर मंदाकिनी की दीप्ति समय के साथ परिवर्तनशील हो, या यूँ समझिए कि दीप्ति का संबंध मंदाकिनी की आयु के साथ हो, तब तो ऊपर की गणना हमें ग़लत निष्कर्ष पर पहुँचा सकती है। यहाँ यह याद रखना होगा कि माउंट पालोमार के दूरदर्शक से दीखने वाली सुदूर मंदाकिनियाँ यहाँ से एक अरब प्रकाश–वर्ष दूर हैं, और इसलिए उन्हें हम जिस स्थिति में आज देखते हैं, वह एक अरब वर्ष पूर्व की स्थिति है, आज की नहीं। यदि कोई भी मंदाकिनी बढ़ती आयु के साथ धीरे–धीरे मंद होती जाती हो (शायद इस कारण से कि कुछ तारों के बुझते जाने से सक्रिय तारों की संख्या घटती जाती हो), तो हबल के निष्कर्षों में संशोधन करना पड़ेगा। वास्तव में यदि सुदूर मंदाकिनियों की दीप्ति में एक अरब वर्ष में (जो कि उनकी कुल आयु का लगभग सातवाँ भाग है) मात्र कुछ प्रतिशत का ही अंतर आता हो, तो यह ब्रह्मांड के परिमित होने के उपर्युक्त निष्कर्षों को उलट देने के लिए पर्याप्त है।

इस प्रकार हमें यह भान हुआ कि हमारा ब्रह्मांड परिमित है या अनंत, इस बारे में सुनिश्चित रूप से कुछ भी कहने से पहले अभी बहुत–सा कार्य करना बाकी है।

ग्यारह

# सृष्टि के आरंभिक दिन

### 1. ग्रहों का जन्म

हम लोगों के लिए, जो दुनिया के सात महादेशों में रहते हैं (दक्षिणी ध्रुव–प्रदेश के वासी के तौर पर डा० काज़िम को गिन लीजिए), "ठोस ज़मीन" – यह शब्द स्थायी और अविकारी का समानार्थक–सा है। हमें ऐसा लगता है मानो भूतल के सभी परिचित अंग – इसके महादेश और महासागर, इसके नदियाँ–पहाड़ – काल के आरंभ से ही ऐसे के ऐसे रहे हों। परंतु भू–विज्ञान के इतिहास के आँकड़े बताते हैं कि पृथ्वी की सतह धीरे–धीरे बदल रही है; विभिन्न महादेशों के बड़े–बड़े भाग समुद्रों के पानी में डूब सकते हैं, जबकि पानी के नीचे के भू–भाग सतह पर आ सकते हैं।

हम यह भी जानते हैं कि पुराने–पुराने पर्वत धीरे–धीरे वर्षा के पानी से घिसते जा रहे हैं, और समय–समय पर पृथ्वी की परतों की हलचल के फल–स्वरूप नयी पर्वत–मालाएँ उभर रही हैं, परंतु ये सभी परिवर्तन तो केवल हमारी पृथ्वी के ऊपरी ठोस भूपृष्ठ (crust) के ही परिवर्तन हैं।

फिर भी यह समझना कठिन नहीं है कि कभी न कभी ऐसा समय रहा होगा, जब इस तरह की कोई ठोस परत थी ही नहीं, और हमारी पृथ्वी पिघली हुई चट्टानों का एक दीप्तिमान गोला था। सचमुच, पृथ्वी की गहराइयों का अध्ययन करने से मालूम होता है कि इसका अधिकतर भाग तो अभी भी पिघला हुआ ही है, और जिसे हम बात–बात में "ठोस ज़मीन" कह जाते हैं, वह वास्तव में एक अपेक्षाकृत पतली–सी चादर मात्र है जो पिघले हुए मैग्मा (पृथ्वी के भीतरी पदार्थ) के ऊपर तैर रही है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए सीधे से सीधा प्रमाण तो यही है कि पृथ्वी की सतह के नीचे विभिन्न गहराइयों पर मापा गया तापमान हर एक किलोमीटर की गहराई पर लगभग 30 डिग्री सै० ($16^\circ$ फ़ा० प्रति हज़ार फुट) की दर से बढ़ता है। उदाहरणतया, संसार की सबसे गहरी खदान (रॉबिन्सन डीप, दक्षिणी अफ़्रीका, में एक सोने की खदान) में दीवारें इतनी अधिक गर्म हैं कि खनन–कर्मियों को ज़िन्दा भुन जाने से बचाने के लिए वहाँ एक वातानुकूलन यंत्र लगाना पड़ा।

इस दर से बढ़ने पर तो 50 किलोमीटर की गहराई तक पहुँचते–न–पहुँचते पृथ्वी का तापमान चट्टानों के गलने के बिंदु ($1200^\circ$ और $1800^\circ$ सै० के बीच) तक ज़रूर पहुँच जायेगा। (याद रहे, यह गहराई पृथ्वी के केंद्र तक की दूरी के एक प्रतिशत से भी कम है।) इसके नीचे का सारा पदार्थ, जो कि पृथ्वी के कुल शरीर के 97 प्रतिशत से भी अधिक है, ज़रूर पूरा पिघला हुआ ही होगा।

यह तो स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति हमेशा–हमेशा से नहीं रही होगी, बल्कि एक समय में पृथ्वी पूरी तरह पिघली हुई रही होगी। आज भी इसके धीरे–धीरे ठंडी होने और जमने की प्रक्रिया का एक चरण हम देख रहे हैं, और यह जमने की प्रक्रिया तभी रुकेगी जब सुदूर

भविष्य में पृथ्वी केन्द्र तक पूरी की पूरी ठोस हो जायेगी। ठंडे होने की दर और ठोस परत की मोटाई बढ़ने की दर का मोटा–मोटा अनुमान करने पर संकेत मिलता है कि ठंडा होने की यह प्रक्रिया अवश्य कई अरब वर्ष पूर्व शुरू हुई होगी।

पृथ्वी की ठोस परत जिन चट्टानों से बनी है, उनकी आयु का आकलन करने से भी वही आँकड़ा प्राप्त किया जा सकता है। यह कैसे किया जाता है? वैसे तो पहले–पहल लगता है कि चट्टानों में कोई परिवर्तनशील बात है ही नहीं; तभी तो "चट्टान के समान स्थिर" जैसे मुहावरे भी पैदा हुए हैं। फिर भी, वास्तव में बहुत–सी चट्टानों में एक तरह की प्राकृतिक घड़ी होती है, जो भूगर्भ–विज्ञानी की अनुभवी आँखों को बता देती है कि पिघली हुई स्थिति से जम जाने के बाद कितना समय बीत चुका है।

आयु का राज़ बताने वाली यह चट्टानी घड़ी यूरेनियम और थोरियम की ज़रा–सी मात्रा से बनी है। ये तत्त्व पृथ्वी की सतह तथा विभिन्न गहराइयों से ली गयी विविध चट्टानों में अक्सर पाये जाते हैं। जैसा हमने अध्याय सात में देखा, इनके परमाणु धीरे–धीरे अपने आप रेडियोधर्मी रूप से विकृत होते जाते हैं ओर अंत में स्थायी तत्त्व सीसा (lead) बनाते हैं। ऐसे रेडियोधर्मी तत्त्वों वाली किसी चट्टान की आयु मालूम करने के लिए हमें, बस, इतना ही करना होगा कि रेडियोधर्मी विकार के फल–स्वरूप अनेकों शताब्दियों में इकट्ठे हुए सीसे की मात्रा मापनी होगी।

बात यह है कि जब तक उस चट्टान का पदार्थ पिघला हुआ था तब तक उसमें विसरण (diffusion) और संवहन (convection) जैसे प्रक्रियाएँ संभव थीं, और इस प्रकार रेडियोधर्मी विघटन से पैदा हुए तत्त्व उस द्रव में लगातार अपने जन्म के स्थान से इधर–उधर जा सकते थे। पर जैसे ही वह पदार्थ ठोस होकर चट्टान बन गया, तो रेडियोधर्मी तत्त्व के बगल में ही सीसा इकट्ठा होना शुरू हो गया होगा, और इसकी मात्रा से हमें सही–सही अंदाज़ हो सकता है कि यह कितने समय से इकट्ठा हो रहा है। जैसे, मानो नौसेना की एक टुकड़ी दो निर्जन द्वीपों पर थोड़ा–थोड़ा समय ठहर कर आगे बढ़ी हो तो दुश्मन के जासूस दोनों द्वीपों पर वृक्षों के बीच बिखरे हुए बियर के खाली डिब्बे गिन कर, उनकी परस्पर तुलना करके, अंदाज़ कर सकते हैं कि किस द्वीप पर वह टुकड़ी कितना अधिक रुकी थी।

हाल में कई सर्वेक्षण किये गये हैं जिनमें परिष्कृत तकनीकों का प्रयोग करके चट्टानों में जमा हुए सीसे के आइसोटोपों (और रूबिडियम-87 तथा पोटाशियम-40 जैसे अन्य अस्थिर आइसोटोपों के विकार से उत्पन्न पदार्थों) के परिशुद्ध माप किये गये हैं। इस प्रकार आकलन किया गया है कि पुरानी से पुरानी ज्ञात चट्टानों की अधिकतम आयु लगभग साढ़े चार अरब वर्ष है। अतः निष्कर्ष निकलता है कि **पृथ्वी का ठोस भूपृष्ठ लगभग पाँच अरब वर्ष पूर्व पिघले हुए पदार्थ से जम कर बना होगा।**

इस प्रकार यदि हम पाँच अरब वर्ष पूर्व की पृथ्वी की कल्पना करें, तो पूरी तरह पिघला हुआ अंडाकार पिंड दिखाई देगा, जिसके सब ओर हवा, जल–वाष्प और संभवतः अन्य अति–वाष्पशील पदार्थों का घना वातावरण होगा।

आदिकाल की सामग्रियों का यह गर्म ढेर कैसे बन गया? इसकी उत्पत्ति में किस तरह

की ताकतों का हाथ था, और इसकी रचना के लिए सामान किसने जुटाया? हमारी धरती और इसी प्रकार अन्य सभी ग्रहों की उत्पत्ति को लेकर ये जितने प्रश्न हैं, वे **सृष्टि-विज्ञान** (ब्रह्मांड की उत्पत्ति की थ्योरी) के मूलभूत मुद्दे हैं; ये वे पहेलियाँ हैं जिन पर कई शताब्दियों से खगोल–विज्ञानी दिमाग़ लड़ा रहे हैं।

इन प्रश्नों का वैज्ञानिक विधि से उत्तर देने का पहला प्रयास प्रसिद्ध फ्रांसीसी प्रकृति–विज्ञानी जार्ज–लुई लेक्लर्क, साहिब–ए–बुफ़ों, ने 1749 में किया, जो उनके लिखे "प्राकृतिक इतिहास" के चवालीस खंडों में से एक में दर्ज है। बुफ़ों ने माना कि अंतर–तारकीय अंतरिक्ष की गहराइयों से आये एक धूमकेतु से सूर्य की टक्कर के फल–स्वरूप ग्रह–परिवार की उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपनी कल्पना में जीवंत दृश्य खींचा कि लंबी चमकदार पूँछ वाला एक **"कातिल कॉमेट"** उस समय के अकेले सूर्य की सतह को छूता हुआ और इसके विशाल शरीर से थोड़ी–सी छोटी "बूँदों" को अलग तोड़ता हुआ चला गया, और ये बूँदें उस धक्के के बल से आकाश में घूमने लगीं (चित्र 117क)।

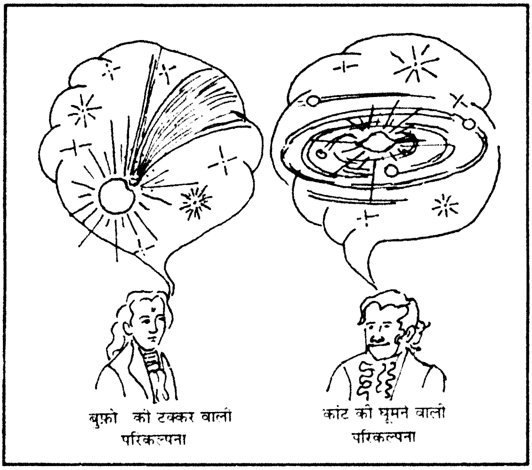


चित्र 117 : ब्रह्मांड की उत्पत्ति के विषय में दो विचार–धाराएँ

कुछ दशक बाद हमारे ग्रह–परिवार की उत्पत्ति के बारे में बिल्कुल अलग प्रकार का मत प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक इमानुअल कांट ने प्रतिपादित किया। उनको यह अधिक ठीक लगता था कि सूर्य ने अपने आप, किसी अन्य आकाशीय पिंड के हस्तक्षेप के बिना ही, अपना ग्रह–परिवार बना लिया। कांट ने सूर्य की प्रारंभिक स्थिति का चित्रण अपेक्षाकृत ठंडे गैस के गोले के रूप में किया जो कि आज के ग्रह–परिवार के पूरे आयतन में फैला हुआ था और अपनी धुरी पर धीरे–धीरे घूम रहा था। आसपास के खाली अंतरिक्ष में विकिरण (धूप) देते रहने से यह बराबर ठंडा होता गया, अतः धीरे–धीरे सिकुड़ता गया, जिससे इसके घूमने की गति बढ़ती गयी।* इसके फलस्वरूप अपकेंद्री (centrifugal) बल भी बढ़ता गया, जिससे उस

* भौतिक विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है कोणीय संवेग (angular momentum) की अविनाशिता, जिसके अनुसार घूमती हुई कोई वस्तु यदि सिकुड़े तो उसकी घूमने की गति बढ़ जायेगी। –अनु०

गैसीय पिंड का आकार उत्तरोत्तर चपटा होता गया, जिसके अंतिम परिणाम के रूप में इसके फैले हुए विषुवत (किनारे) से गैसों की मुद्रिकाएँ निकलने लगीं (चित्र 117ख)। घूमते हुए पिंड से मुद्रिकाएँ बनने की क्रिया को प्लैटू के प्रसिद्ध प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रयोग में तेल का एक बड़ा गोला लिया गया (सूर्य के समान गैस के गोले से प्रयोग नहीं किया जा सका), जिसे उसके बराबर घनत्व वाले एक दूसरे द्रव में तैराया गया (जिससे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव निरस्त हो जाये)। अब किसी बाहरी यंत्र से उस तेल के पिंड को तेज़ी से घुमाने पर देखा गया कि जब उसकी गति एक सीमा से आगे बढ़ी तो उसके आस–पास तेल की मुद्रिकाएँ बन गयीं। ऐसा माना गया कि सूर्य से इस प्रकार अलग हुई मुद्रिकाओं की गैसों के जमने से विभिन्न ग्रह बन गये होंगे जो विभिन्न दूरियों पर सूर्य के चक्कर काट रहे होंगे।

बाद में प्रसिद्ध फ़्रांसीसी गणितज्ञ पियेर–सिमोन, अमीर–ए–लैप्लैस, ने इस मत को अपना कर और आगे विकसित करके अपनी पुस्तक "एक्सपोज़ीसियोन दु सिस्तेमे दु मोंदे" (अर्थात् ब्रह्मांड की व्यवस्था की व्याख्या) में दुनिया के सामने प्रस्तुत किया, जो 1796 में प्रकाशित हुई। महान गणितज्ञ होने के बावजूद लैप्लैस ने इस विचारों का गणितीय ढंग से विवेचन करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि इस थ्योरी को गुणात्मक, अर्धशास्त्रीय चर्चा तक ही सीमित रखा।

जब साठ साल बाद अंग्रेज़ भौतिकीविद क्लर्क मैक्सवैल ने पहली बार इस प्रकार के गणितीय विवेचन की कोशिश की, तो कांट और लैप्लैस के सृष्टि–विज्ञान संबंधी विचारों के सामने अंतर्विरोध की अलंघ्य–सी दीवार आ खड़ी हुई। वास्तव में इस गणितीय विवेचन द्वारा प्रमाणित हो गया कि आज के सौर–परिवार के ग्रहों में जितना पदार्थ जमा है, वह सारा यदि सौर–परिवार के पूरे आयतन में एक समान फैला होता, तो उसका घनत्व इतना कम होता कि गुरुत्वाकर्षण का क्षीण बल इस पदार्थ को अलग–अलग इकट्ठा करके ग्रहों का रूप देने के लिए क़तई पर्याप्त नहीं होता। इस प्रकार सूर्य के सिकुड़ते हुए शरीर से निकलती हुई मुद्रिकाएँ सदा के लिए मुद्रिकाएँ ही रहतीं। आखिर शनि ग्रह के गिर्द भी तो मुद्रिका है : हम जानते हैं कि यह शनि के गिर्द वृत्ताकार कक्षाओं में घूमते हुए अगणित छोटे–छोटे कणों से बनी है, पर यह इकट्ठी होकर एक ठोस उपग्रह बनने का नाम ही नहीं ले रही!

इस कठिनाई से पार पाने का एकमात्र रास्ता यह मान लेना है कि सूर्य से निकले हुए आदिम आवरण में आज के ग्रहों की अपेक्षा बहुत अधिक (कम से कम 100 गुणा) मसाला था, और ग्रहों के बनने की प्रक्रिया में सिर्फ़ एक प्रतिशत पदार्थ ही ग्रहों में आया; बाकी सारा का सारा वापिस सूर्य में गिर गया।

परंतु ऐसा मानने से एक और अंतर्विरोध खड़ा हो जायेगा जो कोई कम गंभीर नहीं है। यदि इतना सारा पदार्थ सचमुच सूर्य में गिर जाता, जो गिरने से पहले अवश्य उतने ही वेग से घूम रहा होगा जितने वेग से आज ग्रह घूम रहे हैं, तो अनिवार्य रूप से यह सूर्य को बड़े ज़ोर से घुमा डालता – उसको आज के सूर्य की अपेक्षा 5,000 गुणा अधिक कोणीय गति दे डालता। यदि ऐसा हुआ होता, तो सूर्य लगभग 4 सप्ताह में एक चक्कर पूरा करने की बजाय एक घंटे में 7 चक्कर काटता हुआ घूमता !

इन तर्कों से ऐसा लगा कि कांट ओर लैप्लैस के मॉडल की धज्जियाँ उड़ गयीं, और खगोल–विज्ञानियों की निगाहें दूसरी–दूसरी दिशाओं में खोजने लगीं। ऐसे में अमरीका के विज्ञानियों टी०सी० चैंबरलिन तथा एफ़० आर० मौल्टन ओर ब्रिटेन के प्रसिद्ध विज्ञानी सर जेम्स जीन्स के शोध–कार्य से बुफ़ों की टक्कर वाली पुरानी थ्योरी फिर से जीवित हो उठी। अलबत्ता, बुफ़ों की मूल धारणाओं को काफ़ी दूर तक सँवार कर आधुनिक बनाना पड़ा, क्योंकि उन धारणाओं को गढ़ने के बाद से कई नयी अहम जानकारियाँ आ चुकी थीं। यह विश्वास अब नकार दिया गया कि सूर्य से आ टकराने वाला आकाशीय पिंड एक धूमकेतु था,क्योंकि तब तक मालूम हो चुका था कि धूमकेतुओं का भार तो चंद्रमा तक की तुलना में नगण्य होता है। और इसलिए अब यह माना गया कि धक्का देने वाला पिंड एक अन्य तारा था जो कि विस्तार एवं भार में सूर्य के समतुल्य था।

यह पुनर्जीवित टक्कर वाली थ्योरी उस समय कांट–लैप्लैस की परिकल्पना की मूलभूत कठिनाइयों से बचने का एकमात्र रास्ता लगती थी, लेकिन बाद में इसका अपना रास्ता भी दलदल वाला नज़र आया। यह समझना बड़ा ही कठिन था कि जब दूसरे तारे ने इतने ज़ोर से धक्का दिया, तो उसके परिणाम–स्वरूप सूर्य के बाहर फेंके गए खंड ग्रह बन कर लगभग **वृत्ताकार** कक्षाओं में ही क्यों चलने लगे? खूब लंबाई लिए हुए दीर्घवृत्ताकार (elliptical) रास्तों पर क्यों नहीं?*

बात को सही बनाने के लिए यह मानना आवश्यक था कि जिस समय गुज़रते हुए तारे के धक्के से ग्रहों की उत्पत्ति हुई, तब सूर्य एक गैस के आवरण से घिरा हुआ था जो समान गति से घूम रहा था। इससे यह हुआ कि ग्रह पहले तो लंबाई वाली कक्षाओं में फेंके गये, परंतु इस आवरण के कारण वे धीरे–धीरे गोल–मटोल वृत्तों में बदल गये। परंतु हमारी आज की जानकारी में ग्रहों के आसपास के क्षेत्र में वह आवरण या माध्यम कहीं नहीं है; अतः यह मान लिया गया कि बाद में वह आवरण धीरे–धीरे अंतर–तारकीय अंतरिक्ष में बिखर गया होगा, ओर जो **राशिचक्रीय ज्योति** (zodiacal light) नाम की बहुत मंद कांति वर्तमान में क्रांतिवृत्त के समतल में सूर्य के गिर्द फैली हुई है, वही उस पुरानी कीर्ति की बची हुई निशानी है। यह चित्र, जो कांट–लैप्लैस की सूर्य के मूल गैसीय आवरण वाली मान्यता और बुफ़ों की टक्कर वाली मान्यता, दोनों का एक तरह का मिला–जुला रूप था, काफ़ी असंतोषजनक था। परंतु जैसी कि कहावत है, दो गड़बड़ों में से एक को चुनना ही हो तो छोटी गड़बड़ चुन लेनी चाहिए। अतः ग्रह–परिवार के उद्भव की टक्कर वाली थ्योरी को ही सही स्वीकार किया गया, और हाल तक सभी वैज्ञानिक ग्रंथों, पाठ्य–पुस्तकों और लोकप्रिय साहित्य में भी इसी को मान्यता दी गयी (लेखक की दो पुस्तकों सहित, जिनके नाम हैं "द बर्थ एंड डैथ ऑफ़ द सन", 1940, और "बायोग्राफ़ी ऑफ़ द अर्थ", संशोधित संस्करण 1959, प्रथम संस्करण 1941)।

यह तो 1943 के पतझड़ में ही हुआ कि युवा जर्मन भौतिकीविद सी० वाइज़ैख़र ने ग्रहों की थ्योरी की अड़ियल गाँठ को खोल कर मामला सुलझाया। हाल की खगोल–भौतिकीय

* गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के आधार पर तो ग्रहों की कक्षाएँ वृत्ताकार भी हो सकती हैं और दीर्घवृत्ताकार भी। ग्रह लगभग वृत्ताकार कक्षाओं में चलते हैं, जबकि धूमकेतु दीर्घवृत्ताकार रास्तों पर चलते हुए थोड़े समय के लिए सूर्य के क़रीब आते हैं और फिर बहुत दूर चले जाते हैं। यह तर्क उचित ही लगता है कि ज़बरदस्त धक्के के कारण अलग हुए ग्रहों को दीर्घवृत्ताकार कक्षा में फेंका जाना चाहिए था। –अनु०

रिसर्च के द्वारा संकलित नयी जानकारियों का उपयोग करके वे यह दर्शाने में सफल हुए कि कांट–लैप्लैस की परिकल्पना के विरुद्ध उठायी गयी सभी पुरानी आपत्तियों का आसानी से निराकरण किया जा सकता है, और इसी रास्ते पर चलते हुए हम ग्रहों की उत्पत्ति की एक विस्तृत थ्योरी बना सकते हैं : इससे ग्रह–परिवार के ऐसे बहुत–से गुणों की व्याख्या की जा सकेगी जिनको कोई भी पुरानी थ्योरी छू तक नहीं सकी थी।

वाइज़ैखर के कार्य का मुख्य आधार यह है कि ब्रह्मांड में फैले पदार्थ की रासायनिक रचना के बारे में खगोल–भौतिकीविदों का विचार पिछले कुछ दशकों में पूरी तरह बदल चुका है। पहले यह आम राय थी कि सूर्य तथा अन्य सभी तारे उन्हीं रासायनिक तत्त्वों के उतने–उतने प्रतिशत से ही बने हुए हैं जैसे हम अपनी पृथ्वी पर देखते हैं। भू–रासायनिक विश्लेषण हमें बताता है कि पृथ्वी के शरीर में मुख्यतः ऑक्सीजन (विविध ऑक्साइडों के रूप में), सिलिकॉन, लोहा तथा अन्य अधिक भारी तत्त्वों की कमतर मात्राएँ शामिल हैं। हाइड्रोजन व हीलियम जैसी हल्की गैसें (और साथ ही अन्य तथाकथित दुर्लभ गैसें जैसे नियोन, आर्गोन, आदि) पृथ्वी पर बहुत ही थोड़ी मात्राओं में मौजूद हैं।[1]

जब तक कोई बेहतर जानकारी प्राप्त नहीं थी, तब तक खगोलविदों ने मान लिया था कि ये हल्की व "दुर्लभ" गैसें सूर्य तथा अन्य तारों के शरीरों में भी बहुत दुर्लभ होंगी। परंतु तारों की रचना के अधिक विस्तृत सैद्धांतिक अध्ययन से डैनिश खगोल–भौतिकीविद बी० स्ट्रोमग्रेन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऐसी मान्यता बिल्कुल ग़लत है: वास्तव में हमारे सूर्य का कम से कम 35 प्रतिशत पदार्थ हाइड्रोजन ही होगा। बाद में इस आकलन को बढ़ा कर 50 प्रतिशत से भी अधिक कर दिया गया, और यह भी पाया गया कि सूर्य में बचे बाकी पदार्थ में एक बड़ा प्रतिशत हीलियम का है। सूर्य के भीतरी भाग के सैद्धांतिक अध्ययन (जिनकी परिणति हाल में एम० श्वार्त्सचाइल्ड के महत्त्वपूर्ण कार्य में हुई), और इसकी सतह के अधिक विस्तृत वर्णक्रमी (spectral) अध्ययन, दोनों से खगोल–भौतिकीविद इस आश्चर्यजनक निष्कर्ष पर पहुँचे कि : **पृथ्वी को बनाने वाले आम रासायनिक तत्त्व सूर्य के भार का लगभग एक प्रतिशत मात्र भाग ही बनाते हैं; शेष सारा भार तो हाइड्रोजन और हीलियम में लगभग बराबर-बराबर बँटा है** जिनमें हाइड्रोजन का हिस्सा ज़रा अधिक है। लगता है कि यही विश्लेषण दूसरे तारों की रचना के लिए भी उपयुक्त है।

यही नहीं, अब तो यह भी मालूम हो गया है कि **अंतर-तारकीय आकाश बिल्कुल खाली नहीं है,** बल्कि गैस व महीन धूल के मिश्रण से भरा है, **जिसका औसत घनत्व लगभग 10 लाख घन मील आकाश में 1 मिलीग्राम** है, और लगता है इस फैले हुए अति विरल पदार्थ की रासायनिक बनावट भी वैसी ही है जैसी कि सूर्य व अन्य तारों की है।

ऐसे अतीव विरल घनत्व के बावजूद इस अंतर–तारकीय पदार्थ की मौजूदगी आसानी से प्रमाणित की जा सकती है। बात यह है कि कुछ तारे हमसे इतनी दूर हैं कि उनसे आने वाले प्रकाश को हमारे दूरदर्शक यंत्रों में प्रवेश करने से पहले लाखों प्रकाश–वर्षों की दूरी तय करनी पड़ती है; इस प्रकाश के कुछ चुने हुए रंगों को अंतर–तारकीय पदार्थ कुछ सोख

[1] हाइड्रोजन हमारे ग्रह पर अधिकतर ऑक्सीजन के साथ एकीकृत हुई, पानी में ही पायी जाती है। अब पृथ्वी पर कितना पानी है? सब जानते हैं कि पृथ्वी की सतह का तीन–चौथाई भाग पानी से ढका है, परंतु पानी का कुल भार पृथ्वी के पूरे शरीर के भार की तुलना में बहुत ही कम है।

लेता है। इन "अंतर–तारकीय अवशोषण–रेखाओं" की तीव्रता एवं तरंग–लंबाई से हमें उस फैले हुए पदार्थ के घनत्व का अच्छा–भला आकलन मिल जाता है, और हम यह भी जान लेते हैं कि इसमें लगभग पूरी तरह हाइड्रोजन और शायद हीलियम है। इसमें जो धूल होती है, जो विविध "पृथ्वी वाले" पदार्थों के छोटे कणों (व्यास लगभग .001 मि०मी०) से बनी होती है, इस माध्यम के कुल भार के 1 प्रतिशत से अधिक मात्रा में नहीं है।

अब वाइज़ैखर की थ्योरी के मुख्य विचार पर लौटें, तो हम कह सकते हैं कि ब्रह्मांड की सामग्री की रासायनिक बनावट से संबंधित यह नयी जानकारी सीधे–सीधे कांट–लैप्लैस की परिकल्पना के अनुरूप बैठती है। सचमुच, यदि सूर्य का आदिकालीन गैसीय आवरण शुरू में ऐसी ही सामग्री से बना था तो **इसका केवल एक छोटा-सा भाग, पृथ्वी वाले भारी-भारी तत्त्वों वाला भाग, ही पृथ्वी व अन्य ग्रहों को बनाने में काम आ सका होगा।** शेष भाग, जिसमें ठोस न होने वाली हाइड्रोजन व हीलियम गैसें होंगी, अवश्य किसी तरह हटा दिया गया होगा–यह या तो सूर्य में ही गिर पड़ा होगा, या फिर आसपास के अंतर–तारकीय आकाश में बिखर गया होगा। जैसा ऊपर समझाया गया, इनमें से पहली संभावना का परिणाम यह होता कि सूर्य अपने अक्ष पर बहुत अधिक तेज़ी से घूमता, जो कि सत्य नहीं है। अतः हमें दूसरे विकल्प को ही स्वीकार करना होगा, अर्थात् "पृथ्वी वाले" पदार्थों से जब ग्रह बन गये, तो इसके बाद जल्दी ही "बची हुई" गैसीय सामग्री आकाश में बिखर गयी।

इन सारी बातों से ग्रह–परिवार के जन्म का निम्नलिखित ख़ाका बनता है। जब अंतर–तारकीय पदार्थ के घनीकरण के द्वारा पहले–पहल हमारा सूर्य बना (देखिए, अगला परिच्छेद), तो इसका एक बड़ा हिस्सा, जो शायद वर्तमान ग्रहों के संयुक्त भार से एक सौ गुणा भारी था, सूर्य के बाहरी भाग में ही एक विशाल घूमता हुआ आवरण बन गया। (घूमने का कारण आसानी से समझा जा सकता है : जो अंतर–तारकीय गैस आदिकालीन सूर्य के रूप में घनीभूत हुई, उसके विभिन्न भाग अलग–अलग गतियों से घूम रहे थे।) इस तेज़ी से घूमते हुए आवरण का यूँ चित्रण करना चाहिए कि इसमें कुछ तो **न जमने वाली** गैसें थीं (हाइड्रोजन, हीलियम ओर कमतर मात्रा में अन्य गैसें), और फिर विविध पृथ्वी वाले पदार्थों के धूल–कण थे (जैसे लोहे की ऑक्साइडों, सिलिकॉन के यौगिकों* पानी के लघुकणों और बर्फ़ के क्रिस्टलों के कण), जो कि गैस में तैर रहे थे और इसकी चक्रीय गति के साथ बहे जा रहे थे। "पृथ्वी वाले" पदार्थ के बड़े–बड़े खंड, जिन्हें हम अब ग्रह कहते हैं, इस तरह ही बने होंगे कि धूल–कण आपस में टकराते रहे होंगे ओर क्रमशः पदार्थ इकट्ठा करते–करते आकार में बड़े होते गये होंगे। ये टक्करें अवश्य वैसे ही वेग से हुई होंगी जैसे वेग से उलकाएँ गिरती हैं।

चित्र 118 में हम ऐसी परस्पर टक्करों के परिणामों के उदाहरण दे रहे हैं। यदि आप तर्कपूर्वक विचार करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि जब ऐसे उच्च वेगों के साथ चलते हुए बराबर भार वाले दो कण टकरायेंगे तो परिणाम यही होगा कि दोनों चकनाचूर हो जायेंगे (चित्र 118क): इस प्रक्रिया से वे कण मिल कर बड़े पिंड नहीं बनेंगे, बल्कि बड़े टुकड़े भी नष्ट हो जायेंगे। दूसरी ओर, जब कोई छोटा कण बड़े के साथ

* सिलिकॉन का मुख्य यौगिक है इसकी ऑक्साइड, अर्थात् बालू। –अनु०

टकरायेगा (चित्र 118ख), तो स्पष्ट है कि यह बड़े वाले के भीतर समा जायेगा, जिससे एक नया पिंड बन जायेगा जो पहले से ज़रा बड़ा होगा।

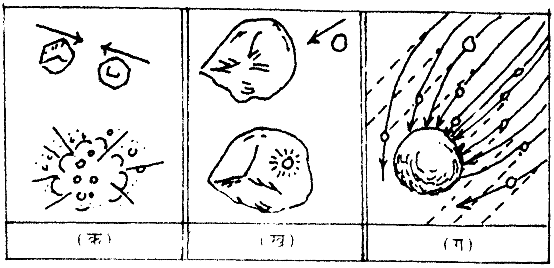


चित्र 118 : उच्च वेग वाले कणों की टक्कर के कई संभव परिणाम

स्पष्ट है कि इन दोनों प्रक्रियाओं के परिणाम–स्वरूप छोटे कण धीरे–धीरे ग़ायब होते जायेंगे और इनका पदार्थ बड़े पिंडों के साथ जुड़ता जायेगा। यह प्रक्रिया बाद के चरणों में और भी तेज़ हो जायेगी, क्योंकि अपेक्षाकृत बड़े–बड़े खंड गुरुत्वाकर्षण के द्वारा अपने पास से गुज़रते हुए छोटे–छोटे कणों को खींच कर अपने बढ़ते हुए शरीर में मिला लेंगे। यह बात चित्र 118ग में चित्रित की गयी है, जिसमें दिखाई देता है कि पदार्थ के बड़े–बड़े खंडों की कणों को पकड़ने की क्षमता गुरुत्वाकर्षण के कारण काफ़ी बढ़ जाती है।

वाइज़ैखर यह दर्शाने में सफल हुए कि **यह महीन धूल जो आज ग्रह-परिवार द्वारा घेरे हुए पूरे क्षेत्र में फैली थी, अवश्य ही लगभग 10 करोड़ वर्षों में थोड़े-से बड़े-बड़े खंडों में इकट्ठी होकर ग्रहों के रूप में आ गयी होगी।**

जब तक ग्रह सूर्य के गिर्द रास्तों पर जाते हुए विभिन्न आकारों के अंतरिक्षी पदार्थ के टुकड़ों को अपने में मिला कर बढ़ते जा रहे थे, तब तक तो इन टुकड़ों की लगातार वर्षा से ग्रहों का शरीर बहुत गर्म रहा होगा। परंतु जैसे ही तारों की धूल, कंकड़ों तथा बड़ी–बड़ी चट्टानों का भंडार समाप्त हो गया, जिससे कि ग्रहों के और अधिक बढ़ने की प्रक्रिया रुक गयी, वैसे ही अंतर–तारकीय अंतरिक्ष में विकिरण फेंकने के कारण इन ग्रहों की सतह तेज़ी से ठंडी होने लगी होगी, और धीरे–धीरे इन नये बने हुए आकाशीय पिंडों में ठोस भूपृष्ठ (पपड़ी) बन गया होगा। इनके भीतर का भाग तो अब भी धीरे–धीरे ठंडा हो रहा है, और इसके साथ ही यह भूपृष्ठ और मोटा होता जा रहा है।

ग्रहों की उत्पत्ति की किसी भी थ्योरी को इससे आगे जो महत्त्वपूर्ण गुत्थी सुलझानी होगी, वह है उस अजीब नियम (**टाइटस- बोड** नियम) की व्याख्या करना, जिससे विभिन्न ग्रहों की सूर्य से दूरी नियंत्रित होती है। तालिका 1 में सौर परिवार के नौ ग्रहों की सूर्य से दूरियाँ दी गयी हैं, और साथ ही **क्षुद्र ग्रहों** की मुद्रिका की भी। यह मुद्रिका एक अपवाद वाला मामला है जिसमें विभिन्न टुकड़े एक बड़े ग्रह में एकत्रित होने में सफल नहीं हुए, बल्कि मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच में एक वृत्ताकार क्षेत्र में फैले हुए हैं।

**तालिका 1 : सौर परिवार के ग्रहों की सूर्य से दूरी**

(नोट : किसी भी ग्रह की दूरी थोड़ी घटती–बढ़ती रहती है; यहाँ औसत दूरी दी गयी है।)

| ग्रह का नाम | सूर्य से ग्रह की दूरी / सूर्य से पृथ्वी की दूरी | ग्रह की सूर्य से दूरी / उससे ऊपर लिखे ग्रह की सूर्य से दूरी |
|---|---|---|
| बुध | .387 | --- |
| शुक्र | .723 | 1.87 |
| पृथ्वी | 1.000 | 1.38 |
| मंगल | 1.524 | 1.52 |
| क्षुद्रग्रह | लगभग 2.7 | 1.77 |
| बृहस्पति | 5.203 | 1.92 |
| शनि | 9.539 | 1.83 |
| अरुण (U) | 19.191 | 2.01 |
| वरुण (N) | 30.07 | 1.57 |
| यम (P) | 39.52 | 1.31 |

अंतिम कालम में दिये गये आँकड़ों में आपको विशेष रुचि होगी। कुछ उतार–चढ़ाव के बावजूद यह साफ़ दिखाई देता है कि इन अनुपातों में से कोई भी 2 से बहुत दूर नहीं है, जिससे हम यह मोटा नियम बना सकते हैं : **प्रत्येक ग्रह के पथ की त्रिज्या सूर्य की दिशा में इसके सबसे निकट के ग्रह की अपेक्षा मोटे तौर पर दुगुनी है।**

मज़े की बात यह है कि इसी प्रकार का नियम किसी ग्रह के विभिन्न उपग्रहों पर भी लागू होता है। इस तथ्य को उदाहरणतया शनि के नौ उपग्रहों की आपेक्षिक दूरियों के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, जो तालिका 2 में दी गयी हैं।

**तालिका 2 : शनि के उपग्रहों की शनि से दूरी**

| उपग्रह का नाम | उपग्रह की शनि से दूरी / शनि की त्रिज्या | दो क्रमिक दूरियों के बीच बढ़त का अनुपात |
|---|---|---|
| मीमास | 3.11 | -- |
| इन्सेलादुस | 3.99 | 1.28 |
| टेथिस | 4.94 | 1.24 |
| डायोन | 6.33 | 1.28 |
| रिया | 8.84 | 1.40 |
| टाइटैन | 20.48 | 2.32 |
| हाईपरियोन | 24.82 | 1.21 |
| जैपिटस | 59.68 | 2.40 |
| फ़ीबे | 216.8 | 3.63 |

जैसा हमने ग्रहों के लिए देखा था, यहाँ भी हमें काफ़ी बड़े विचलन दिखाई देते हैं (विशेषतः फ़ीबे के लिए), परंतु यहाँ भी मोटे तौर पर उसी प्रकार की नियमितता मौजूद तो ज़रूर है।

हम इस तथ्य की व्याख्या कैसे कर सकते हैं कि सूर्य के आसपास फैले हुए मूल धूल के बादल में जो जमने की प्रक्रिया हुई, उसमें एक ही ग्रह नहीं बना? और फिर जो कई खंड बने, वे इतनी–इतनी दूरियों पर ही क्यों बने?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें उस मूल धूल के बादल में होने वाली हलचलों का कुछ अधिक विस्तृत सर्वेक्षण करना होगा। पहले तो हमें यह याद रखना होगा कि हर भौतिक पदार्थ जो सूर्य के गिर्द घूम रहा हो – चाहे वह नन्हा–सा धूल–कण हो, छोटी उलका हो या बड़ा–सा ग्रह – न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार उसे सूर्य के केन्द्र को फ़ोकस मानते हुए एक दीर्घवृत्ताकार पथ में चलना पड़ेगा। अब यदि ग्रहों को बनाने वाला पदार्थ पहले अलग–अलग कणों के रूप में था, जिनमें प्रत्येक का व्यास 0.0001 सेंमी मान लिया जाये[2], तो ऐसे कोई $10^{45}$ कण रहे होंगे जो कि विभिन्न विस्तारों एवं उत्केन्द्रताओं (eccentricities) वाले दीर्घवृत्ताकार पथों पर चल रहे होंगे। स्पष्ट है कि इतने भारी यातायात में विभिन्न कणों के बीच बहुत–सी टक्करें होती होंगी, जिनके फलस्वरूप इस पूरी भीड़ की हलचल कुछ हद तक व्यवस्थित हो गयी होगी। वास्तव में यह समझना कठिन नहीं है कि ऐसी टक्करों से या तो "यातायात के नियम तोड़ने वाले" चूर–चूर हो जाते होंगे, या फिर वे "रास्ता बदल कर" कम भीड़ वाली "लेन" में चलने को मजबूर हो जाते होंगे। ऐसे "व्यवस्थित", या कुछ–कुछ व्यवस्थित, यातायात को नियंत्रित करने वाले नियम क्या होंगे?

इस समस्या के हल तक पहुँचने के लिए पहले चरण में हम ऐसे कणों को चुनते हैं जो सभी सूर्य के गिर्द परिक्रमा करने में **समान अवधि** लगाते हैं। इनमें से कुछ तो उपयुक्त त्रिज्या वाली वृत्ताकार कक्षा में चलते हैं, जबकि दूसरे कई कण कम या अधिक उत्केन्द्रता वाली दीर्घवृत्ताकार कक्षाओं में (चित्र 119क)। अब आइए, इन विविध कणों की गतियों का वर्णन ऐसे निर्देशांक–तंत्र (x, y) के अनुसार करने का प्रयास करें, जो सूर्य के केन्द्र के गिर्द उसी आवृत्ति के साथ घूम रहा है जैसे ये सभी कण।

सबसे पहले तो यह स्पष्ट है कि जो कण वृत्ताकार कक्षा में चक्कर लगा रहा था (A), वह इस घूमते हुए तंत्र के दृष्टिकोण से किसी बिंदु A' पर बिल्कुल स्थिर दिखाई देगा। कोई कण B, जो कि सूर्य के गिर्द दीर्घवृत्ताकार पथ पर चल रहा था, वह कभी सूर्य के पास आता था और कभी दूर जाता था। केन्द्र के गिर्द इसका कोणीय वेग पास आने पर अधिक और दूर जाने पर कम होता था। अतः समान गति से घूम रहे निर्देशांक–तंत्र (x, y) की अपेक्षा यह कभी (कोण में) आगे निकल जायेगा और कभी पीछे रह जायेगा। यह समझना कठिन नहीं है कि इस दृष्टिकोण से वह कण एक **बंद, सेम के दाने की आकृति वाले**, पथ पर चलता नज़र आयेगा, जिसे चित्र 119 में B' नाम से दर्शाया गया है। एक और कण C, जो अधिक उत्केन्द्रता वाले पथ पर चल रहा था, अब (x, y) तंत्र में उसी प्रकार के किंतु कुछ बड़े दाने की आकृति C' पर चलता मालूम होगा।

[2] अंतर–तारकीय पदार्थ के धूल–कणों का आकार लगभग इतना ही होता है।

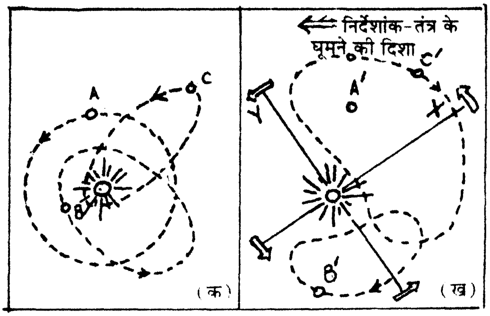


चित्र 119 : वृत्ताकार और दीर्घवृत्ताकार गतियाँ, जैसी (क) स्थिर निर्देशांक – तंत्र से दीखती हैं, और (ख) घूमते हुए निर्देशांक–तंत्र से।

अब यह स्पष्ट है कि यदि हम कणों की इस पूरी भीड़ की गति को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहें कि वे एक–दूसरे से बिल्कुल न टकरायें, तो इसका अर्थ यह है कि **समगति से घूमने वाले तंत्र से देखने पर इन कणों के जो प्रक्षेप-पथ दीखते हैं, (सेम जैसी आकृतियाँ) वे कभी एक-दूसरे को न काटें।**

याद रखिए कि वे सभी कण, जिनके **सूर्य के गिर्द चक्कर लगाने की अवधि समान है,** उनकी **सूर्य से औसत दूरी भी समान है।*** अतः आप पायेंगे कि उपर्युक्त घूमने वाले तंत्र से देखने पर ऐसे सभी कणों के पथ, जो एक–दूसरे का पथ काटते न हों, सूर्य के गिर्द "सेम के दानों की माला"–सी बनायेंगे।

ऊपर दिया गया विश्लेषण पाठकों के लिए कुछ ज़्यादा कठिन हो सकता है, परंतु सिद्धांत–रूप में यह काफ़ी सरल–सा तरीका है। इसका उद्देश्य यही दिखाना है कि कणों के जो समूह सूर्य से बराबर दूरी पर चलते हैं और इसीलिए जिनके चक्कर लगाने की अवधि भी बराबर है, **उनके यातायात के लिए आपस में नहीं काटने वाले डिज़ाइन कैसे बनते हैं।**

वास्तव में स्थिति इससे अधिक जटिल होगी, क्योंकि आदिकालीन सूर्य के आसपास के मूल धूल के बादल में अवश्य सब तरह की अलग–अलग दूरियाँ और उन्हीं के अनुरूप अलग–अलग अवधियाँ रही होंगी। अतः केवल एक "सेम के दानों की माला" नहीं, बल्कि ऐसी अनेक मालाएँ बनेंगी जो एक–दूसरे की अपेक्षा विभिन्न गतियों से घूम रही होंगी। इस स्थिति का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर वाइज़ैखर यह दर्शा पाये कि ऐसे निकाय की स्थिरता के लिए यह ज़रूरी है कि हर एक माला **पाँच** अलग–अलग भँवरों से मिल कर बनी हो। (भँवर का अर्थ है "सेम के दाने जैसी" आकृति वाले कई पथ, जो एक–दूसरे के भीतर बंद हों।) अतः सभी प्रक्षेप–पथों की कुल स्थिति चित्र 120 जैसी दीखेगी। ऐसी व्यवस्था से प्रत्येक माला के भीतर तो "सुरक्षित यातायात" सुनिश्चित हो जायेगा, परंतु क्योंकि ये मालाएँ अलग–अलग गतियों से घूम रही थीं, अतः जहाँ एक माला दूसरी को छू रही थी, वहाँ कुछ "सड़क दुर्घटनाएँ" ज़रूर हुई होंगी। एक माला और दूसरी पड़ोसी माला के बीच की सीमा

* कैप्लर के नियम के अनुसार। –अनु०

पर पड़ने वाले कणों के बीच बड़ी संख्या में टक्करें हुई होंगी, और इन्हीं के कारण सूर्य से इतनी ही दूरियों पर पदार्थ के जमा होने और कुछ खंडों के अधिकाधिक बड़े होते जाने की प्रक्रियाएँ हुई होंगी। इस प्रकार धीरे–धीरे प्रत्येक माला के भीतर कणों का घनत्व कम होते जाने से और विभिन्न मालाओं के बीच के सीमा–क्षेत्र में पदार्थ एकत्र होते जाने की प्रक्रिया से ही अंततः ग्रहों का निर्माण हुआ होगा।

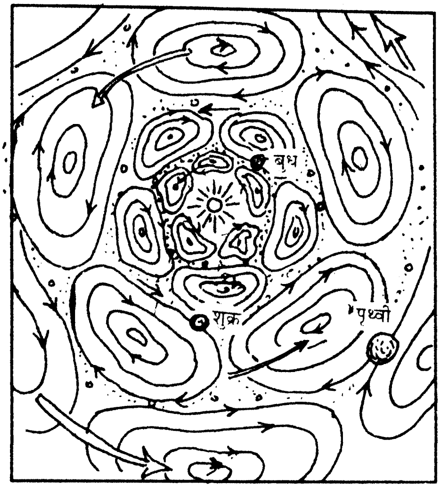


चित्र 120 : शुरुआती सौर आवरण में धूल की गति के रास्ते

ग्रहों के निर्माण की ऊपर वर्णित व्याख्या से हम ग्रहों की कक्षाओं की त्रिज्याओं के उपर्युक्त संबंध को आसानी से समझ सकते हैं। सचमुच, सरल ज्यामितीय नियमों का तकाज़ा है कि चित्र 120 की तरह के डिज़ाइन में **पड़ोसी मालाओं के बीच की सीमा-रेखाओं की त्रिज्याएँ एक सरल गुणोत्तर श्रेणी (geometrical progression) बनाती हैं, जिसमें प्रत्येक त्रिज्या पहले वाली से दुगुनी बड़ी है।** यह भी स्पष्ट है कि उस संबंध के बिल्कुल सही होने की उम्मीद क्यों नहीं की जा सकती। बात यह है कि जो संबंध हमने ऊपर प्राप्त किया है, वह धूल के बादल के कणों की गति को नियंत्रित करने वाले किसी **कड़े और परिशुद्ध नियम** का परिणाम नहीं है; वह तो धूल के यातायात की अस्त–व्यस्त प्रक्रिया की **मोटी प्रवृत्ति** ही दर्शाता है।

यही संबंध ग्रहों के विभिन्न उपग्रहों की त्रिज्याओं पर भी लागू होता है : यह तथ्य संकेत करता है कि उपग्रहों के निर्माण की प्रक्रिया भी कुछ इसी तरह रही होगी। जब सूर्य के आसपास का मूल धूल का बादल अलग–अलग कण–समूहों में बँट गया जिनसे ग्रह बने, तो यही प्रक्रिया हर ग्रह के लिए दुहरायी गयी होगीः अधिकतर पदार्थ केंद्र में एकत्रित होकर ग्रह का मुख्य भाग बन गया, जबकि शेष पदार्थ गुरुत्वाकर्षण के कारण इसके गिर्द चक्कर लगाता रहा और धीरे–धीरे अनेक उपग्रहों के रूप में घनीभूत हो गया।

धूल–कणों की आपसी टक्करों और बढ़त आदि की चर्चा में हम यह बताना तो भूल ही गये हैं कि आदिकालीन सूर्य के आवरण में जो गैस थी – आपको याद होगा कि यह आवरण के कुल भार का 99 प्रतिशत थी – उसका क्या हुआ? इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षाकृत सरल है।

जब धूल–कण आपस में टकरा कर पदार्थ के अधिकाधिक बड़े खंड बनाते जा रहे थे तो गैसें, जो कि घनीकरण की प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकती थीं, धीरे–धीरे अंतर–तारकीय आकाश में फैल रही थीं। अपेक्षाकृत सरल गणनाओं से यह दर्शाया जा सकता है कि ऐसे फैलाव के लिए आवश्यक समय लगभग 10 करोड़ वर्ष रहा होगा, अर्थात् प्रायः उतना ही, जितने में ग्रहों की बढ़त पूरी हुई। अतः जब तक ग्रह पूरी तरह बने, तब तक सूर्य के मूल आवरण की अंगभूत हाइड्रोजन व हीलियम गैसों का अधिकतर भाग सौर परिवार से बाहर निकल गया होगा, और केवल नगण्य–सा भाग ही बाकी रह गया होगा, जिसे हमने ऊपर राशिचक्र की ज्योति कहा है।

वाइज़ैखर की थ्योरी का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि **ग्रह-परिवार का निर्माण कोई आकस्मिक या अपवादी घटना नहीं थी; यह ऐसी घटना थी जो प्रायः सभी तारों के निर्माण में घटी होगी।** ध्यान दीजिए कि टक्कर वाली थ्योरी का निष्कर्ष तो इससे बिल्कुल अलग है : उसके अनुसार तो ग्रहों के निर्माण का कारण किसी अन्य तारे के साथ सूर्य की टक्कर थी, जो कि ब्रह्मांड के इतिहास में अपवाद ही होगा। सचमुच, ऐसी गणना की गयी है कि ग्रह–परिवार बनाने योग्य तारों की टक्करें बहुत ही विरल किस्म की घटनाएँ हैं, और हमारे तारा–समूह आकाश–गंगा की मौजूदगी की कुल अवधि (कई अरब वर्ष) में इसके $4 \times 10^{10}$ तारों में ऐसी थोड़ी–सी टक्करें ही हुई होंगी।

जैसा कि अब (वाइज़ैखर की थ्योरी के बाद) लग रहा है, **यदि वास्तव में हरएक तारे के गिर्द अपना ग्रह परिवार हो,** तो अकेली हमारी मंदाकिनी में ही ऐसे लाखों ग्रह होंगे, जहाँ परिस्थितियाँ लगभग हू–ब–हू हमारी पृथ्वी जैसी ही होंगी। और यदि इन "रहने योग्य" ग्रहों में जीवन, यहाँ तक कि उच्चतम किस्म का जीवन, विकसित नहीं हो सकता हो, तो यह बड़ी ही अजीब बात होगी।**

वास्तव में, जैसा हम अध्याय नौ में देख चुके हैं, जीवन के सबसे सरल रूप, जैसे विभिन्न प्रकार के वायरस, कुछ जटिल–से अणु ही हैं जो मुख्यतः कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन व नाइट्रोजन परमाणुओं से बने हैं। क्योंकि ये परमाणु किसी भी नवजात ग्रह की सतह पर पर्याप्त मात्रा में मौजूद होंगे ही, अतः हमें मानना ही होगा कि जब वहाँ मिट्टी की ठोस परत बन गयी होगी और वातावरण की भाप के बादलों ने भी बरस–बरस कर बड़े–बड़े जलाशय बना दिये होंगे, तो उसके बाद कभी–न–कभी संयोगवश सही परमाणुओं के सही क्रम में एकीकरण से ऐसे अणु (वायरस) ज़रूर प्रकट हो गये होंगे। हाँ, यह तो निश्चित है

**गणनाओं से लगता है कि ब्रह्मांड में ढेरों तारों के ग्रह–परिवार होंगे, परंतु हमारे सीमित प्रेक्षण–यंत्रों के द्वारा आज तक सूर्य के अतिरिक्त किसी भी तारे के ग्रह–परिवार के होने की निश्चित तौर पर सूचना नहीं मिली है। उच्चतम किस्म का जीवन तो काफ़ी दूर की बात है; हाँ, अंतर–तारकीय बादलों में कई जटिल कार्बनिक अणु देखे गये हैं जो डी०एन०ए० के भागों के समान हैं। –अनु०

कि सजीव अणु इतने जटिल होते हैं कि उनके संयोगवश बन जाने की संभाविता बहुत, बहुत कम होगी। मान लीजिए, हमारे पास टुकड़े जोड़ कर चित्र बनाने वाली पहेली (जिगसॉ पज़ल) है। यदि हम इसके टुकड़ों को डिब्बे में भर कर बस हिलाते ही रहें, और आशा करें कि संयोगवश ये टुकड़े सही ढंग से मिल कर चित्र बना लेंगे, तो इस घटना की संभाविता कितनी कम होगी? ऊपर वर्णित अणु बनने की संभाविता की तुलना इसी संभाविता के साथ की जा सकती है। परंतु दूसरी ओर हमें यह भी नहीं भूलना है कि ऐसे किसी नये ग्रह पर विशाल संख्या में परमाणु लगातार एक–दूसरे से टकराते रहे होंगे, और सही परिणाम प्राप्त करने के लिए बहुत लंबा समय भी उपलब्ध रहा होगा। हमारी पृथ्वी पर भूपृष्ठ बनने के बाद काफ़ी जल्दी ही जीवन प्रकट हो गया, इस बात से पता चलता है कि सजीव किस्म का कार्बनिक अणु संयोगवश बन जाना भले ही कितना भी असंभावित लगे, इस काम में वास्तव में दस–बीस करोड़ वर्ष ही लगते होंगे। नये बने ग्रह की सतह पर एक बार जब जीवन का सरलतम रूप प्रकट हो गया, तो फिर सजीव प्रजनन की प्रक्रिया और क्रमिक विकास से अधिकाधिक जटिल जीव बनते गये होंगे।[3] यह तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि विभिन्न "रहने योग्य" ग्रहों पर जीवन का विकास हमारी पृथ्वी वाली लकीर पर ही चला होगा या किसी और तरह। यदि हम विभिन्न संसारों में विकसित हुए जीवन के रूपों का अध्ययन कर सकते तो इससे विकास की प्रक्रिया के बारे में हमारी समझ में महत्त्वूपर्ण वृद्धि हो जाती।

परंतु हम ऐसा कैसे कर पायेंगे? मंगल व शुक्र ग्रहों पर (जो कि हमारे सौर परिवार में पृथ्वी के बाद सबसे अधिक "रहने योग्य" हैं) विकसित जीवन के रूपों का अध्ययन करने के लिए तो हो सकता है हमें बहुत लंबी प्रतीक्षा न करनी पड़े। किसी "परमाणु शक्ति से चलने वाले अंतरिक्ष–यान" के द्वारा इन ग्रहों की साहसिक यात्रा की कल्पना की जा सकती है।* परंतु सैकड़ों और हज़ारों प्रकाश–वर्ष दूर दूसरे तारों के संसारों में जीवन है या नहीं, या कैसे रूप में है, यह प्रश्न शायद हमेशा विज्ञान की एक अनबूझ पहेली ही बना रहेगा।**

## 2. तारों का निजी जीवन

कोई तारा कैसे अपने ग्रह–परिवार को जन्म देता है, इसका तो कमोबेश पूरा ख़ाका हमने देख लिया; अब हम तारों के अपने जीवन के बारे में विचार कर सकते हैं।

---

[3] हमारे ग्रह पर जीवन की शुरुआत व विकास के बारे में अधिक विस्तृत चर्चा लेखक की पुस्तक "ए प्लैनेट काल्ड अर्थ" (न्यूयार्क, द वाइकिंग प्रैस, 1963) में पायी जा सकती है।

* शुक्र और मंगल ग्रहों पर अभी तक मानव की "साहसिक यात्रा" तो नहीं हुई है, परंतु हाल के दशकों में अनेक मानवहीन अंतरिक्ष–यानों ने इन ग्रहों के चक्कर लगाये हैं और इन पर उतरे भी हैं। शुक्र ग्रह तक गये मैरिनर, पायनियर, वेनेरा आदि यानों ने जो चित्र तथा अन्य जानकारियाँ भेजी हैं, उनसे पता चलता है कि इस ग्रह के वातावरण में अधिकतर कार्बन–डाई–ऑक्साइड है। वहाँ ऑक्सीजन व पानी नहीं हैं। कुछ छोटे अणु अवश्य पाये गये हैं (जैसे $H_2SO_4$- गंधक का अम्ल), परंतु जटिल अणुओं या जीवन का कोई निशान नहीं मिला। इसी प्रकार मंगल ग्रह पर गये वाइकिंग अंतरिक्ष–यानों की सूचना के अनुसार वहाँ के वातावरण में भी ऑक्सीजन, पानी आदि नहीं के बराबर हैं और जीवन का कोई आसार नहीं है। हाल (1997) के "पाथ–फ़ाइंडर" अभियान की सूचना के अनुसार मंगल ग्रह पर अरबों वर्ष पहले तो पानी था, पर अब नहीं है। शुक्र की सतह पर औसत तापमान है $475^0$ सै० और मंगल पर $-50^0$ सै०। अतः इन दोनों को "रहने योग्य" मानना कठिन है। –अनु०

**दूरस्थ तारों के ग्रहों तक मानव की यात्रा तो असंभव–सी मालूम होती है, परंतु वहाँ जीवन और सभ्यता का पता लगाने के लिए बड़े–बड़े एंटेना के द्वारा रेडियो–तरंगें भेजने का कार्य हो रहा है। यदि कहीं कोई सभ्यता हो तो शायद "वे लोग" भी कुछ संदेश भेजते होंगे, यह मान कर उनके रेडियो–संदेशों को ग्रहण करने का भी प्रयास जारी है। परंतु ऐसे किसी संदेश के आने–जाने में कितना समय लगेगा! –अनु०

किसी तारे का जीवन–क्रम कैसा होता है? इसके जन्म का विस्तृत घटना–क्रम कैसा होता है? अपने लंबे जीवन में यह किन परिवर्तनों में से गुज़रता है, और अंत में इसका क्या हश्र होता है?

इस प्रश्न के अध्ययन की शुरुआत हम अपने सूर्य से कर सकते हैं, जो कि आकाश–गंगा परिवार के अरबों तारों में से एक प्रतिनिधि–सा तारा है। सबसे पहले हम जानते हैं कि हमारा सूर्य कुछ पुराना–सा तारा है क्योंकि जीव–अवशेषों के आँकड़ों से मालूम होता है कि यह कई अरब वर्षों से एक–समान तीव्रता के साथ चमक रहा है जिससे पृथ्वी पर जीवन विकसित हो रहा है। कोई भी साधारण स्रोत इतनी अधिक ऊर्जा इतने लंबे समय तक नहीं दे सकता, और सूर्य के विकिरण की समस्या विज्ञान की सबसे अधिक चकराने वाली पहेलियों में से एक बनी रही, जब तक कि रेडियोधर्मी परिवर्तनों एवं तत्त्वों के कृत्रिम रूपांतरणों की खोज होने से हमें परमाणविक नाभिकों की गहराई में छिपे अगाध ऊर्जा के स्रोतों का पता न लग गया। हम अध्याय सात में ही देख चुके हैं कि प्रायः हर एक रासायनिक तत्त्व को छिपी हुई अगाध ऊर्जा वाला कीमियाई ईंधन माना जा सकता है, और कम भार वाले तत्त्वों को कई मिलियन डिग्री के तापमान तक गर्म करने से ऐसी ऊर्जा को मुक्त किया जा सकता है।

अब ऐसे उच्च तापमानों को पृथ्वी की प्रयोगशालाओं में प्राप्त करना तो कतई व्यावहारिक नहीं है, परंतु तारों के संसार में यह साधारण–सी बात है। उदाहरणतया, सूर्य की सतह पर तो तापमान केवल 6000° सै० है, परंतु भीतर जाने के साथ–साथ क्रमशः बढ़ता जाता है ओर केन्द्र में यह 2 करोड़ डिग्री जैसा विकराल हो जाता है। सूर्य की सतह के तापमान की माप तथा सूर्य के भीतर की गैसों के ऊष्मा–चालन के ज्ञात गुणों से ऊपर बताया आँकड़ा प्राप्त करना बहुत कठिन नहीं है। यह गणना कुछ वैसी ही है जैसे किसी गर्म–गर्म आलू को काटे बिना उसके भीतर का तापमान मालूम करना, यदि हमें मालूम हो कि इसकी सतह का तापमान कितना है और इसके पदार्थ की ऊष्मा–चालकता कितनी है।

सूर्य के केन्द्र के तापमान की इस जानकारी को विविधि नाभिकीय रूपांतरणों की गतियों संबंधी ज्ञात तथ्यों के साथ मिला कर देखें, तो हम मालूम कर सकते हैं कि वे कौन–कौन प्रतिक्रियाएँ हैं जो सूर्य में ऊर्जा के उत्पादन के लिए ज़िम्मेवार हैं। इस प्रकार दो नाभिकीय भौतिकीविदों एच० बेथे तथा सी० वाइज़ैख़र ने, जो खगोल–भौतिकी में रुचि लेने लगे थे, इन प्रतिक्रियाओं की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया को एक ही समय पर खोज निकाला, जिसे "कार्बन–चक्र" कहते हैं।

यह ताप–नाभिकीय प्रक्रिया, जो सूर्य के अंदर ऊर्जा के उत्पादन के लिए मुख्यतः ज़िम्मेवार है, किसी एक ही प्रकार के नाभिकीय रूपांतरण तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें आपस में जुड़े हुए रूपांतरणों का पूरा क्रम है, जिसे **प्रतिक्रिया–शृंखला** कहते हैं। प्रतिक्रियाओं के इस क्रम का एक बड़ा मज़ेदार पहलू यह है कि यह एक **बंद गोल शृंखला** है, जो हर छः कदमों के बाद हमें फिर शुरू के बिंदु पर ले आती है। चित्र 121 में दर्शायी इस सौर प्रतिक्रिया–शृंखला में हम देखते हैं कि **इस क्रम में मुख्य भागीदार कार्बन व नाइट्रोजन के नाभिक हैं, और साथ ही तापीय प्रोटोन* भी हैं जिनसे ये दोनों टकराते हैं।**

* "तापीय" प्रोटोन का अर्थ है उतनी ऊर्जा वाला प्रोटोन जितनी वर्तमान तापमान पर गैस के किसी भी कण की ऊर्जा होती है (देखिए, अध्याय आठ)। – अनु०

उदाहरणतया, साधारण कार्बन ($C^{12}$) से शुरू करें (चित्र 121 में सबसे ऊपर का बिंदु), तो हम देखते हैं कि एक प्रोटोन ($H^{1}$) से टकराने से नाइट्रोजन का हल्का वाला आइसोटोप ($N^{13}$) प्राप्त होता है और कुछ नाभिकीय ऊर्जा $\gamma$(गामा) किरण के रूप में मुक्त होती है। इस प्रतिक्रिया को नाभिकीय भौतिकीविद अच्छी तरह जानते हैं, और इसे प्रयोगशाला में भी प्रोटोनों को कृत्रिम रूप से उच्च ऊर्जा तक त्वरित करके प्राप्त किया जा चुका है। अब $N^{13}$ का नाभिक क्योंकि अस्थिर हैं, अतः यह एक धनात्मक इलैक्ट्रोन ($e^{+}$ कण या पॉज़िट्रोन) बाहर फेंक कर अँगड़ाई लेता है, और इस प्रकार कार्बन का भारी वाला स्थिर आइसोटोप $C^{13}$ बन जाता है। (यह आइसोटोप साधारण कोयले में भी थोड़ी मात्रा में मौजूद रहता है।) अब यह कार्बन का आइसोटोप एक और तापीय प्रोटोन से टकराने पर साधारण नाइट्रोजन ($N^{14}$) बन जाता है; साथ ही एक और गामा किरण निकलती है। फिर यह $N^{14}$ का नाभिक (जिसे हम चक्र के शुरू के बिंदु के रूप में भी प्रस्तुत कर सकते थे) एक और (तीसरे) प्रोटोन के साथ टकरा कर ऑक्सीजन का एक अस्थिर आइसोटोप ($O^{15}$) बनता है, जो बहुत जल्दी एक पॉज़िट्रोन फेंक कर स्थिर $N^{15}$ बन जाता है। अंत में $N^{15}$ एक और (चौथे) प्रोटोन को अपने भीतर लेकर दो असमान भागों में बँट जाता है, जिनमें से एक तो वही $C^{12}$ नाभिक है जिसे लेकर हमने खेल शुरू किया था, और दूसरा हीलियम ($He^{4}$) नाभिक अर्थात् अल्फ़ा ($\alpha$) कण है।

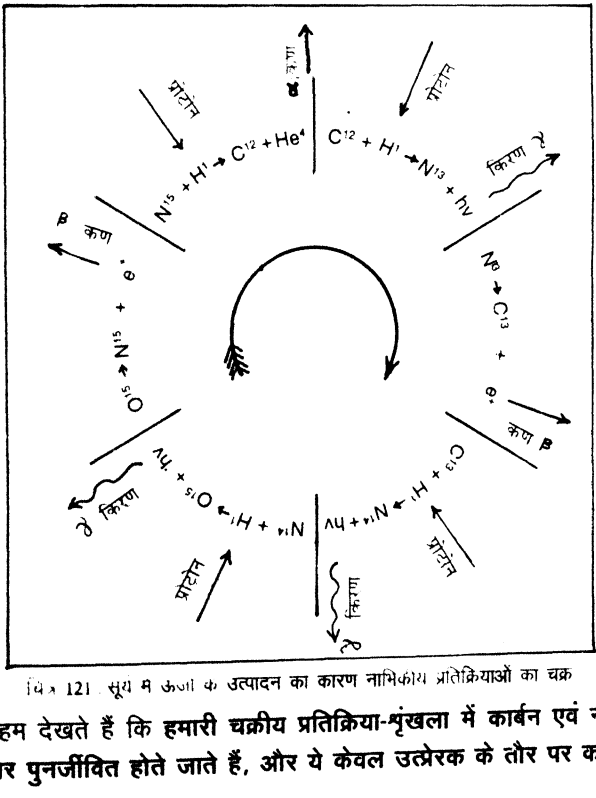


चित्र 121 सूर्य में ऊर्जा के उत्पादन का कारण नाभिकीय प्रतिक्रियाओं का चक्र

अतः हम देखते हैं कि **हमारी चक्रीय प्रतिक्रिया-शृंखला में कार्बन एवं नाइट्रोजन के नाभिक बराबर पुनर्जीवित होते जाते हैं, और ये केवल उत्प्रेरक के तौर पर कार्य करते हैं,**

जैसा कि रसायन–विज्ञानी कहते हैं। ले–देकर प्रतिक्रिया–शृंखला का कुल परिणाम यह हुआ कि इस चक्र में एक–एक करके कूदे चार प्रोटोनों से एक हीलियम नाभिक बन गया। अतः हम पूरी प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं कि **हाइड्रोजन उच्च तापमान के प्रभाव से, कार्बन तथा नाइट्रोजन की उत्प्रेरक क्रिया की सहायता से, हीलियम में रूपांतरित हो गयी।**

बेथे ने दर्शा दिया कि 2 करोड़ डिग्री के तापमान पर उनकी प्रतिक्रिया–शृंखला में मुक्त हुई ऊर्जा **उतनी ही है जितनी विकिरण वास्तव में सूर्य देता है।** क्योंकि दूसरी सभी संभव प्रतिक्रियाओं के परिणाम खगोल–भौतिकी के आँकड़ों से बेमेल हैं, अतः यह निश्चित रूप से मान लेना चाहिए कि कार्बन–नाइट्रोजन चक्र की प्रक्रिया ही सूर्य की ऊर्जा के उत्पादन के लिए मोटे तौर पर ज़िम्मेवार है। यह भी बताना आवश्यक है कि सूर्य के भीतरी तापमान पर चित्र 121 में दिखाया गया चक्र पूरा करने में कोई 50 लाख वर्ष लगते हैं; अतः इस अवधि के अंत में हर कार्बन या नाइट्रोजन नाभिक, जो शुरू में प्रतिक्रिया में दाख़िल हुआ था, जब फिर से बाहर निकलेगा तो वह वैसा ही तरोताज़ा होगा जैसा शुरू में था।

इस प्रक्रिया में कार्बन की बुनियादी भूमिका को देखते हुए लगता है कि उस पुराने विश्वास में कुछ तो दम है कि "सूर्य की गर्मी कोयले से उत्पन्न होती है"! बस, इतना जोड़ना होगा कि यहाँ "कोयला" जल जाने वाला ईंधन नहीं है, बल्कि शुक्राचार्य के असुरों की तरह फिर–फिर जीवित हो उठता है।

यहाँ विशेष ध्यान देना चाहिए कि सूर्य में ऊर्जा उत्पन्न करने वाली प्रतिक्रिया की गति मुख्यतः इसके केंद्रीय भाग में मौजूद तापमान व घनत्व पर ही निर्भर है; तो भी यह कुछ हद तक तो इस पर भी निर्भर होगी कि सूर्य के अंदर के पदार्थ में हाइड्रोजन, कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा कितनी–कितनी है। यह निष्कर्ष तुरंत सूर्य की गैसों के विश्लेषण की एक विधि की ओर संकेत करता है : प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थों की मात्रा कम या अधिक मान कर सूर्य की दीप्ति की गणना करिए और देखिए कि क्या–क्या मात्राएँ होने पर वास्तविक दीप्ति प्राप्त होती है। इस तरीके पर आधारित गणनाएँ बिल्कुल हाल में ही एम० श्वार्त्सचाइल्ड द्वारा की गयीं, जिनके फलस्वरूप यह खोज हुई कि **सूर्य के पदार्थ का आधे से भी अधिक भाग शुद्ध हाइड्रोजन है, आधे से थोड़ा-सा कम शुद्ध हीलियम है, और शेष बचा बहुत थोड़ा भाग अन्य सभी तत्त्व।**

सूर्य में ऊर्जा–उत्पादन की व्याख्या को अन्य अधिकतर तारों पर भी आसानी से लागू किया जा सकता है, जिसका निष्कर्ष यह है कि भिन्न–भिन्न भारों वाले तारों के केंद्रीय तापमान भी भिन्न–भिन्न हैं; अतः ऊर्जा उत्पादन की गतियाँ भी भिन्न–भिन्न हैं। इस प्रकार $O_2$ एरिडानी C नामक तारा सूर्य से पाँच गुणा हल्का है, और इसी के अनुरूप उसके चमकने की दीप्ति सूर्य की कोई 1 प्रतिशत मात्र है। दूसरी ओर, X कैनिस मेजोरिस A, जिसे आम तौर पर **व्याध** (Sirius) कहा जाता है, सूर्य से लगभग अढ़ाई गुणा भारी ओर चालीस गुणा अधिक दीप्तिमान है। ऐसे भीमकाय तारे भी हैं, जैसे Y 380 सिग्नाई, जो कि सूर्य की अपेक्षा चालीस गुणा भारी और कई लाख गुणा चमकदार है। इन सभी मामलों में बढ़ते भार और बहुत अधिक बढ़ती दीप्ति के बीच संबंध की काफ़ी संतोषजनक व्याख्या की जा सकती है जिसका आधार यह है कि केन्द्रीय तापमान की अधिकता के कारण "कार्बन–चक्र" प्रतिक्रिया की गति

में वृद्धि हो जाती है। तारों की इस "मुख्य श्रेणी" में हम यह भी पाते हैं कि बढ़ते भार के परिणाम–स्वरूप तारे की त्रिज्या भी बढ़ती है ($O_2$ एरिडानी C में सूर्य–त्रिज्या की 0.43 गुणा से Y 380 सिग्नाई में सूर्य–त्रिज्या की 29 गुणा तक) और औसत घनत्व कम होता है ($O_2$ एरिडानी C में 2.5 से लेकर सूर्य में 1.4 और Y 380 सिग्नाई में 0.002 तक)। मुख्य श्रेणी के तारों के बारे में आँकड़े चित्र 122 में इकट्ठे किये गये हैं।

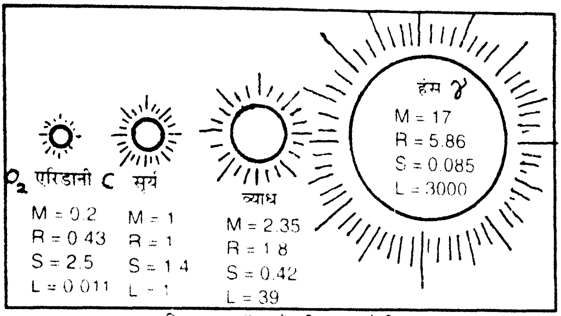


चित्र 122 : सितारों की मुख्य श्रेणी

इन "सामान्य" तारों के अलावा, जिनकी त्रिज्या, घनत्व और दीप्ति उनके भार से ही ज्ञात हो जाते हैं, खगोलविदों ने आकाश में तारों की कुछ ऐसी किस्में भी पायी हैं जो इस सरल नियम के दायरे से निश्चित रूप से बाहर हैं। सबसे पहले तो "लाल दैत्य" व "महादैत्य" तारे हैं। इन तारों में पदार्थ की मात्रा तो उतनी ही होती है जितनी कि बराबर दीप्ति वाले किसी "सामान्य" तारे में होती है, परंतु ख़ास बात यह है कि इनका आकार बहुत अधिक बड़ा होता है। चित्र 123 में हमने इस असामान्य श्रेणी के तारों की रूपरेखा दर्शायी है, जिसमें **ब्रह्महृदय** (Capella), **स्वीट**, **रोहिणी** (Aldebaran), **काक्षी** (Betelguese), **रास अल्गेठी** और **सारथी** (ε Aurigae) जैसे प्रसिद्ध तारे भी शामिल हैं।

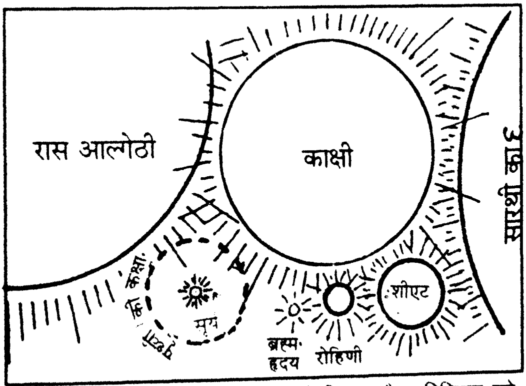


चित्र 123 : हमारे सौर परिवार की तुलना में विशाल और अतिविशाल तारे

ऐसा लगता है कि कुछ आंतरिक बलों ने, जिनको हम अभी तक समझ नहीं पाये हैं, इन तारों के शरीरों को फुला कर अद्भुत विराट आयाम दे दिया, जिसके कारण इनका औसत घनत्व घट कर सामान्य तारों के घनत्व से काफ़ी कम रह गया।

इन "फूले हुए" तारों के विपरीत तारों का एक और समूह है जो सिकुड़ कर बहुत ही छोटे व्यास में आ गये हैं। इस श्रेणी के तारों को "सफ़ेद बौने" कहते हैं[4] जिनमें से एक चित्र 124 में दिखाया गया है; साथ में तुलना के लिए पृथ्वी भी दिखायी गयी है। "व्याध (Sirius) के साथी" के भीतर पदार्थ तो लगभग उतना ही है जितना कि सूर्य में, परंतु व्यास में यह पृथ्वी से सिर्फ़ तीन गुणा बड़ा है, अतः इसका औसत घनत्व अवश्य जल से कोई 500,000 गुणा अधिक होगा! इसमें शायद ही किसी को शंका हो कि सफ़ेद बौने, तारों के विकास के उन बाद वाले चरणों को दर्शाते हैं जहाँ तारा अपने भीतर उपलब्ध हाइड्रोजन को पूरी तरह समाप्त कर चुका होता है।

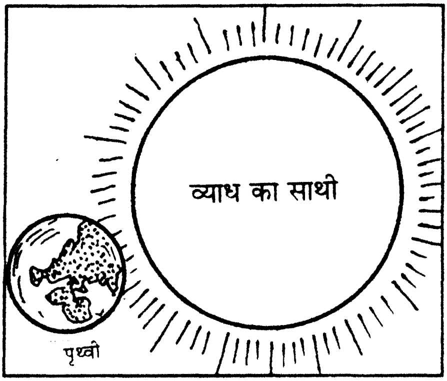


चित्र 124 : सफ़ेद बौने और पृथ्वी के आकारों की तुलना

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, तारों के जीवन–स्रोत तो उस कीमियाई प्रतिक्रिया में हैं जो हाइड्रोजन को धीरे–धीरे हीलियम में रूपांतरित करती है। अब क्योंकि छोटी आयु के तारे में, जो हाल में ही फैले हुए अंतर–तारकीय पदार्थ के जमा होने से बना हो, 50 प्रतिशत से भी अधिक भार हाइड्रोजन का होता है, अतः हम अपेक्षा कर सकते हैं कि तारों की जीवन–अवधियाँ बहुत लंबी होंगी। जैसे, हमारे सूर्य की मापी हुई दीप्ति से गणना की जा सकती है कि यह प्रति सैकंड लगभग 66 करोड़ टन हाइड्रोजन पचा जाता है। क्योंकि सूर्य का कुल भार $2 \times 10^{27}$ टन है, जिसमें से आधा हाइड्रोजन के रूप में है, अतः सूर्य की जीवन–अवधि होगी $1.5 \times 10^{18}$ सैकंड, या लगभग $5 \times 10^{10}$ वर्ष! आपको याद होगा कि सूर्य की वर्तमान आयु केवल 3 या $4 \times 10^{9}$ वर्ष है[5], अतः इसे अभी काफ़ी बालक मानना होगा, और यह आने वाले अरबों वर्ष तक लगभग वर्तमान तीव्रता के साथ चमकता रहेगा।

---

4 "लाल दैत्य" और "सफ़ेद बौना", इन नामों के मूल में इन तारों की दीप्ति और सतह–क्षेत्रफल के बीच का संबंध है। जो तारे फूल कर विरल हो जाते हैं, उनके भीतर पैदा हुई ऊर्जा के विकिरण के लिए क्योंकि बहुत बड़ी सतह उपलब्ध है, अतः उनकी सतह का तापमान अपेक्षकृत कम होता है, जिससे उनका रंग लाल दीखता है। दूसरी ओर, जो तारे बहुत अधिक घने हो जाते हैं, उनकी सतह स्वाभाविक ही अधिक गर्म होगी और सफ़ेद दिखाई देगी।

5 सूर्य की वर्तमान आयु की इस गणना में माना गया है कि यह पृथ्वी की अनुमानित आयु के बराबर दर्जे की है। ऐसा इसलिए है कि वाइज़ैखर की थ्योरी के अनुसार सूर्य का जन्म ग्रह–परिवार के बनने के बहुत पहले नहीं हुआ होगा।

परंतु जो तारे अधिक भारी हैं, और इसलिए अधिक दीप्तिमान भी हैं, वे अपने शुरूआती हाइड्रोजन–भंडार को इससे बहुत अधिक गति से ख़र्च करते हैं। उदाहरणतया, व्याध सूर्य से केवल 2.3 गुणा अधिक भारी होते हुए भी 39 गुणा अधिक दीप्तिमान है। अर्थात् इसके पास ईंधन का शुरुआती भंडार तो सूर्य की अपेक्षा 2.3 गुणा अधिक ही है, पर यह हर सैकंड में सूर्य से 39 गुणा अधिक ख़र्च करता जा रहा है; अतः स्वाभाविक ही व्याध इसे मात्र $3\times10^9$ वर्ष में समाप्त कर डालेगा। इससे भी अधिक चमकदार तारों में, जैसे Y 380 सिग्नाई में तो (सूर्य से 35 गुणा भारी, और 300,000 गुणा दीप्तिमान) शुरू की हाइड्रोजन का भंडार एक करोड़ वर्ष भी नहीं चलेगा।

जब किसी तारे की हाइड्रोजन का सारा भंडार खाली हो जाता है, तब क्या होता है?

क्योंकि नाभिकीय ऊर्जा ही बाहर की ओर दबाव डाल कर तारे को जीवन–भर कमोबेश यथास्थिति में बनाये रखती है, अतः इस ऊर्जा का स्रोत समाप्त हो जाने पर अवश्य ही तारे का शरीर सिकुड़ना शुरू होगा, जिसके कारण वह क्रमशः अधिकाधिक घनत्व वाली स्थितियों से गुज़रेगा।

खगोलीय प्रेक्षणों से बड़ी संख्या में ऐसे "संकुचित तारों" की मौजूदगी का पता चला है जिनका औसत घनत्व जल से कई लाख गुणा अधिक है। ये तारे अभी भी बहुत गर्म हैं और अपनी सतह के उच्च तापमान के कारण बहुत चमचमाते सफ़ेद प्रकाश से देदीप्यमान होते हैं : इस प्रकार ये मुख्य श्रेणी के साधारण तारों से बिल्कुल अलग दीखते हैं, जो कि ज़रा पीले–से या लाल–से दीखते हैं। हाँ, यह बात ज़रूर है कि इन सफ़ेद तारों का आकार बहुत छोटा होने के कारण कुल दीप्ति भी कुछ कम ही होती है: हमारे सूर्य की अपेक्षा हज़ारों गुणा कम। तारकीय विकास की इन आख़िरी मंज़िलों को खगोलविद "सफ़ेद बौने" कहते हैं, जहाँ बौने का अर्थ ज्यामितीय आकार में भी और कुल दीप्ति में भी छोटा मानना चाहिए। समय बीतने के साथ उन सफ़ेद लघुतारों के श्वेत–गर्म पिंड धीरे–धीरे अपनी दीप्ति खोते जायेंगे और अंत में वे "काले बौने" हो जायेंगे, जो कि पदार्थ के बड़े–बड़े ठंडे पिंड हैं जिन तक साधारण खगोलीय प्रेक्षण नहीं पहुँच सकते हैं।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि अपनी हाइड्रोजन की सारी जीवन–शक्ति को ख़त्म कर चुके इन बूढ़े तारों की सिकुडने और क्रमशः ठंडे होने की प्रक्रिया हमेशा शांत और व्यवस्थित ढंग से नहीं होती। इन मरते हुए तारों को अपना "अंतिम मील" चलने में अक्सर ज़बरदस्त दौरे पड़ते हैं, जैसे ये होनी के विरुद्ध विद्रोह कर रहे हों।

ये विध्वंसकारी घटनाएँ जिनको **नोवा** और **सुपरनोवा** विस्फोट के नामों से जाना जाता है, तारों के अध्ययन के सबसे रोचक विषयों में से एक हैं। कोई तारा, जो पहले आकाश के अन्य तारों से बहुत अलग नहीं लगता था, कुछ दिन के भीतर ही अपनी दीप्ति को लाखों गुणा बढ़ा लेता है और स्पष्ट हो जाता है कि इसकी सतह अतीव गर्म हो गयी है। दीप्ति में इस अचानक वृद्धि के साथ इसके वर्णक्रम में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन से पता चलता है कि तारे का शरीर तेज़ी से फूलता है और इसकी बाहरी परतें कोई 2,000 कि०मी० प्रति सैकंड की गति से फैलती हैं। परंतु दीप्ति में ऐसी वृद्धि अस्थायी ही होती है, और अधिकतम

दीप्ति से गुज़रने के बाद तारा धीरे–धीरे शांत होने लगता है। विस्फोट कर चुके तारे की दीप्ति फिर पहले जैसी होने में आम तौर पर लगभग एक वर्ष लगता है, यद्यपि तारे के विकिरण में हल्के उतार–चढ़ाव इसके बहुत देर बाद भी देखे गये हैं। यद्यपि तारे की दीप्ति फिर से सामान्य हो जाती है, तथापि इसके अन्य गुणों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। तारे के वातावरण का एक भाग, जो विस्फोट वाले चरण में हुए त्वरित फैलाव में भागीदार था, अब भी बाहर की ओर बढ़ता रहता है। इस प्रकार उस तारे के आसपास गैस का एक चमकीला आवरण रहता है जिसका व्यास क्रमशः बढ़ता जाता है। तारे के मुख्य भाग में कैसे–कैसे स्थायी परिवर्तन होते हैं, इस बारे में अभी तक की जानकरी अधूरी–सी ही है क्योंकि अब तक केवल एक मामले (नोवा आउरिगे, 1918) में ही ऐसा हुआ कि विस्फोट से पहले तारे के वर्णक्रम की फ़ोटो उतारी जा चुकी हो। परंतु यह एक फ़ोटो भी इतनी अपूर्ण लगती है कि विस्फोट–पूर्व चरण में सतह के तापमान और त्रिज्या संबंधी निष्कर्षों को बहुत अनिश्चित ही मानना होगा।

तारे के शरीर में विस्फोट के परिणामों की कुछ बेहतर जानकारी तथाकथित सुपरनोवा विस्फोटों के प्रेक्षणों से मिल सकती है। ये प्रचंड तारकीय विस्फोट, जो हमारे तारा–परिवार में कई शताब्दियों में एक बार ही होते हैं (जबकि साधारण नोवा प्रकट होने की दर कोई 4 प्रतिवर्ष है), साधारण नोवे से कई हज़ार गुणा अधिक दीप्ति वाले होते हैं। ऐसे फटते तारे द्वारा दिया गया प्रकाश अपने अधिकतम स्तर पर पूरे तारा–परिवार के कुल प्रकाश के तुल्य होता है। टाइको ब्राहि द्वारा 1572 में देखा गया तारा, जो दिन के उजाले में देखा जा सकता था, चीनी खगोलविदों द्वारा वर्ष 1054 में दर्ज किया गया तारा, और शायद ईसा के जन्म के समय बेथलेहम का तारा – ये सभी हमारे तारा–परिवार (आकाश–गंगा) के भीतर ऐसे सुपरनोवों के प्रतिनिधि उदाहरण हैं।

हमारी मंदाकिनी के बाहर का पहला सुपरनोवा 1885 में महान एंड्रोमीडा नीहारिका नामक पड़ोसी तारा–परिवार में देखा गया था। इसकी दीप्ति हमारे तारा–परिवार में कभी भी देखे गये अन्य सभी नोवों की अपेक्षा एक हज़ार गुणा अधिक थी। ऐसे तीव्र विस्फोट अपेक्षाकृत विरल हैं; इसके बावजूद हाल के वर्षों में इनके गुणों के अध्ययन में काफ़ी प्रगति हुई है। ऐसा बादे एवं ज़्विक्की नामक विज्ञानियों के प्रेक्षणों की बदौलत संभव हुआ, जिन्होंने सबसे पहले दोनों तरह के विस्फोटों के बीच के महान अंतर को पहचाना, और दूर के विविध तारा–परिवारों में प्रकट होने वाले सुपरनोवों का क्रमबद्ध अध्ययन शुरू किया।

दीप्ति में ज़बरदस्त अंतर के बावजूद सुपरनोवा विस्फोट की परिघटना के बहुत–से लक्षण साधारण नोवा से मिलते–जुलते हैं। दीप्ति में तेज़ी से बढ़त और बाद में इसमें धीरे–धीरे आने वाली कमी सुपरनोवा के मामले में भी प्रायः वैसी ही वक्र के द्वारा दिखायी जा सकती है जैसी कि नोवा के मामले में (सिवाय इसके कि दोनों में पैमाने अलग–अलग रहेंगे)। जैसा कि साधारण नोवा में होता है, सुपरनोवा विस्फोट से भी तेज़ी से फैलने वाला गैसीय आवरण पैदा होता है, परंतु इस आवरण में तारे के भार का अपेक्षाकृत काफ़ी अधिक भाग रहता है। वास्तव में, जहाँ नोवा द्वारा फेंका गैसीय आवरण अधिकाधिक पतला होता हुआ तेज़ी से आसपास के आकाश में विलीन हो जाता है, वहाँ सुपरनोवा द्वारा फेंका गैसीय पिंड

विस्फोट–स्थल को घेरे हुए विस्तृत चमकदार नीहारिका बन जाता है। उदाहरणतया, इस बात को निश्चित रूप से प्रमाणित माना जा सकता है कि तथाकथित "कर्क नीहारिका" (Crab Nebula), जो कि वर्ष 1054 में हुए सुपरनोवा वाले स्थान पर दिखाई देती है, उस विस्फोट के दौरान फेंकी गयी गैसों से बनी थी।

इस एक सुपरनोवा के मामले में तो हमें विस्फोट के बाद रह गये तारे के बारे में भी कुछ जानकारी प्राप्त है। वास्तव में प्रेक्षणों से कर्क नीहारिका के केन्द्र में ही एक हल्के–से तारे की मौजूदगी का पता चलता है, जिसको अपने गुणों के आधार पर अत्यंत घना सफ़ेद बौना ही मानना होगा।+

ये सब बातें संकेत देती हैं कि सुपरनोवा विस्फोट की भौतिक प्रक्रियाएँ ज़रूर साधारण नोवा के सदृश ही होंगी, यद्यपि यहाँ सब कुछ अपेक्षाकृत बहुत बड़े पैमाने पर होता है।

ऊपर हमने देखा कि नोवा व सुपरनोवा का कारण बूढ़े होते सितारों का "ढह जाना" है। इस संदर्भ में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि वे कारण क्या हैं जिनसे तारे का पूरा शरीर इतनी तेज़ी से सिकुड़ने लगता है? वर्तमान में यह तो अच्छी तरह प्रमाणित किया जा चुका है कि तारे गर्म गैसों के विशाल पिंड हैं, और संतुलन की स्थिति में तारे की आकृति बनाये रखने में पूरी तरह भीतर के गर्म पदार्थ का उच्च दबाव ही सहारा देता है : जब तक तारे के केंद्र में ऊपर वर्णित "कार्बन–चक्र" चालू रहता है, तब तक तो सतह से विकिरण की गयी ऊर्जा की पूर्ति भीतर पैदा होने वाली नाभिकीय ऊर्जा से होती रहती है, और तारे की स्थिति ख़ास बदलती नहीं है। परंतु जैसे ही हाइड्रोजन पूरी तरह समाप्त हो जाती है, वैसे ही नाभिकीय ऊर्जा मिलना बंद हो जाता है, और तारे को गुरुत्वाकर्षण के मारे सिकुड़ना ही पड़ता है। इस प्रक्रिया में इसकी गुरुत्व वाली स्थितिज ऊर्जा (potential energy) विकिरण की ऊर्जा में बदलती जाती है। परंतु ऐसे गुरुत्व–आधारित संकुचन की प्रक्रिया बहुत धीमी ही चलेगी, क्योंकि सूर्य के पदार्थ की अत्यधिक अपारदर्शिता के कारण भीतर से सतह तक गर्मी पहुँचने (और वहाँ से बाहर निकलने) की गति धीमी होगी। उदाहरणतया, यह आकलन किया जा सकता है कि हमारे सूर्य को अपनी वर्तमान त्रिज्या की आधी तक सिकुड़ने के लिए एक करोड़ से अधिक वर्ष लगेंगे। इससे अधिक तेज़ी से संकुचन की किसी भी कोशिश से तुरंत अतिरिक्त गुरुत्व की ऊर्जा मुक्त होगी, जिससे भीतरी आग का तापमान व गैसीय दबाव बढ़ जायेगा और संकुचन धीमा हो जायेगा। ऊपर के तर्कों से यह दिखाई देता है कि तारे के संकुचन को तेज़ करने और जल्दी से ढहा देने (जैसा नोवा व सुपरनोवा में देखा गया है) का एक ही उपाय है : कोई ऐसी व्यवस्था जो संकुचन में मुक्त होने वाली ऊर्जा को भीतरी

+ अधुनातम थ्योरी के अनुसार सुपरनोवा विस्फोट के तारे के भीतरी भाग का विकास तीन प्रकार से हो सकता है: (क) यदि भीतरी भाग में पदार्थ की मात्रा बहुत कम हो तो यह सफ़ेद बौना बन जायेगा। एस० चंद्रशेखर ने प्रमाणित किया कि इसके लिए अधिकतम भार सूर्य के भार का 1.4 गुणा (चंद्रशेखर सीमा ) है। (ख) यदि मात्रा मध्यम है तो यह पदार्थ अपने ही भार के दबाव से और अधिक सिकुड़ जायेगा और न्यूट्रोनों में बदल जायेगा, जिससे न्यूट्रोन तारा बन जायेगा। (ग) यदि भीतरी भाग की मात्रा सूर्य से 25 गुणा से भी अधिक हो गुरुत्वाकर्षण के अत्यधिक दबाव से न्यूट्रोन भी पिचक जायेंगे और यह अंध–गुफ़ा (black hole) बन जायेगा। अंध–गुफ़ा में पदार्थ की मात्रा व घनत्व इतना अधिक होता है कि प्रकाश का कण (फ़ोटोन) भी इसके गुरुत्व–बल के विरुद्ध इसके बाहर नहीं निकल सकता। –अनु०

भाग से जल्दी–जल्दी हटा दे। जैसे, यदि तारे के पदार्थ की पारदर्शिता को कई अरब गुणा बढ़ाया जा सकता, तो संकुचन भी उसी अनुपात में तेज़ हो जाता, और ऐसा सिकुड़ता हुआ तारा कुछ दिनों के भीतर ही फुस्स हो जाता। परंतु इस संभावना को पूरी तरह नकारा जा सकता है क्योंकि विकिरण की वर्तमान थ्योरी निश्चित रूप से दर्शाती है कि तारे के पदार्थ की अपारदर्शिता पूरी तरह इसके घनत्व व तापमान पर ही निर्भर है, और इसे सौ गुणा या दस गुणा भी कम करना असंभव के बराबर है।

हाल में लेखक और उनके सहकर्मी डॉ० शेनबर्ग ने प्रस्ताव किया था कि तारों के ढह जाने का सही कारण व्यापक स्तर पर **न्यूट्रीनो** कणों का बनना है : ये लघु नाभिकीय कण हैं जिनकी विस्तृत चर्चा अध्याय सात में की जा चुकी है। न्यूट्रीनों के गुणों से यह स्पष्ट है कि सिकुड़ते हुए तारे के भीतर से फ़ालतू ऊर्जा हटाने के लिए ये बिल्कुल उपयुक्त वाहक हैं, क्योंकि तारे का पूरा शरीर न्यूट्रीनो के लिए वैसा ही पारदर्शी है, जैसा साधारण प्रकाश के लिए खिड़की का काँच। अब इतना ही देखना रह गया कि क्या सिकुड़ते हुए तारे के भीतरी भाग में न्यूट्रीनो पैदा होंगे? और क्या ये पर्याप्त संख्या में पैदा होंगे?

कुछ प्रतिक्रियाएँ ऐसी हैं जिनके साथ न्यूट्रीनो का निकलना अनिवार्य है – इन प्रक्रियाओं में द्रुत गति से चलते इलैक्ट्रोन विविध तत्त्वों के नाभिकों में रोक लिये जाते है। जब कोई तेज़ इलैक्ट्रोन परमाणु के नाभिक के भीतर पैठता है, तो तुरंत एक उच्च ऊर्जा वाला न्यूट्रीनो बाहर फेंका जाता है। इलैक्ट्रोन नाभिक में ही रह जाता है, जिससे मूल नाभिक उसी परमाणु–भार वाले दूसरे, अस्थिर नाभिक में रूपांतरित हो जाता है।* अस्थिर होने के कारण इस नये बने नाभिक का अस्तित्व कुछ ही देरी के लिए रह सकता है, जिसके बीतने पर यह टूट जाता है, जिससे एक इलैक्ट्रोन फिर बाहर फेंका जाता है – एक और न्यूट्रीनो के साथ।** उसके बाद पूरी प्रक्रिया फिर पहले क़दम से शुरू हो जाती है, जिससे नये न्यूट्रीनो निकलते हैं.... (चित्र 125)।

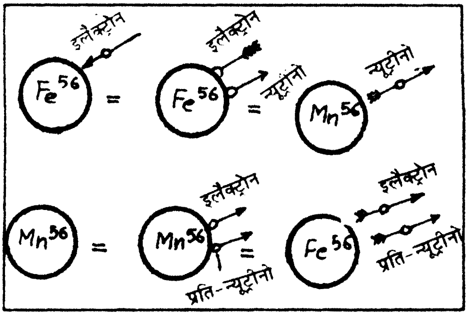


चित्र 125 : लौह नाभिक में अर्का प्रक्रिया, जिससे असीमित संख्या में न्यूट्रीनो पैदा होते हैं

* क्योंकि इलैक्ट्रोन नाभिक के प्रोटोन को न्यूट्रोन बना देता है :

$e^- + p^+ \rightarrow n + \upsilon$ (न्यूट्रीनो) –अनु०

**नवीनतम जानकारी के अनुसार यह कण न्यूट्रीनो नहीं बल्कि प्रति–न्यूट्रीनो ($\bar{\upsilon}$) होता है, जो न्यूट्रीनो का विलोम है : $n \rightarrow p^+ + e^- + \bar{\upsilon}$ । सबसे पहले ली एवं यांग ने और अलग से अब्दुस्सलाम ने सुझाया था कि न्यूट्रीनो और प्रति न्यूट्रीनो अलग–अलग कण हैं; यह बात प्रयोगों द्वारा प्रमाणित की जा चुकी है। –अनु०

यदि तापमान और घनत्व पर्याप्त हों, जैसा कि सिकुड़ते हुए तारों के भीतरी भाग में होता ही है, तो न्यूट्रीनों के फेंके जाने के कारण ऊर्जा के बाहर जाने की दर बहुत विशाल होगी। उदाहरणतया, लोहे के नाभिकों द्वारा इलैक्ट्रोनों के पकड़ने और छोड़ने से $10^{11}$ अर्ग प्रति ग्राम प्रति सैकंड की प्रचंड दर से ऊर्जा न्यूट्रीनों के साथ बाहर चली जायेगी। यदि हम लोहे की जगह ऑक्सीजन को लें (इस बार अस्थिर उत्पाद होगा रेडियोधर्मी नाइट्रोजन, जिसके टूटने की अवधि 9 सैकंड मात्र है), तो तारा $10^{17}$ अर्ग प्रति ग्राम प्रति सैकंड ऊर्जा भी बाहर निकाल सकता है। इस दूसरे मामले में तो ऊर्जा का लोप इतना अधिक तेज़ी से होता है कि तारे को पूरी तरह ढह जाने में मात्र 25 मिनट लगेंगे!

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिकुड़ते हुए तारों के गर्म केन्द्रीय हिस्सों से न्यूट्रीनो–विकिरण शुरू हो जाने की प्रक्रिया से हमें तारों के ढह जाने की पूरी व्याख्या मिल गयी है।*

हाँ, यह तो कहना ही पड़ेगा कि न्यूट्रीनो निकलने के द्वारा होने वाले ऊर्जा के लोप की दर का आकलन करना भले ही अपेक्षाकृत आसान हो, तारे के ढहने की प्रक्रिया के अध्ययन में और भी कई गणितीय कठिनाइयाँ हैं; अतः वर्तमान में तो इस घटना–क्रम की केवल गुणात्मक व्याख्या ही की जा सकती है।

ऐसा सोचना तो स्वाभाविक ही है कि तारे के भीतरी भाग में गैसीय दबाव की कमी के फलस्वरूप इसके विशाल बाहरी भाग का पदार्थ गुरुत्व के बल से खिंचा हुआ केंद्र की ओर धँसने लगेगा। परंतु क्योंकि हरएक तारा आम तौर पर कम या अधिक तेज़ी से घूमता रहता है, अतः ढहने की प्रक्रिया सब दिशाओं में समान रूप से नहीं चलती : जो ध्रुवीय पदार्थ हैं (घूमने की धुरी के निकट हैं), वे विषुवत वाले पदार्थों को बाहर धकेलते हुए स्वयं पहले गिरते हैं (चित्र 126)।

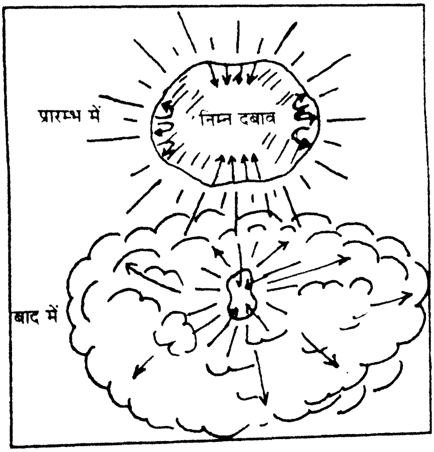


चित्र 126 : सुपरनोवा के विस्फोट के प्रारंभिक व बाद के चरण

* SN 1987 a सुपरनोवा में से आते हुए न्यूट्रीनों व प्रति–न्यूट्रीनों की बौछार को पृथ्वी पर रखे संसूचकों (detectors) में "देख" लिये जाने से इस थ्योरी की पुष्टि हो गयी। –अनु०

इससे वह पदार्थ बाहर आ जाता है जो पहले तारे के भीतरी भाग में छिपा हुआ और कई अरब डिग्री के तापमान तक गर्म किया हुआ था; इस तापमान के कारण ही तारे की दीप्ति अचानक बढ़ जाती है। जैसे–जैसे यह प्रक्रिया चलती जाती है, वैसे–वैसे पुराने तारे का ढहता हुआ पदार्थ स्वयं केंद्र में जमा हो कर एक घना सफ़ेद बौना बनता है, जबकि बाहर फेंके गये पदार्थ धीरे–धीरे ठंडे होते जाते हैं और फैलते ही जाते हैं, जिससे वैसा धुँधलका–सा बनता है जैसा कि कर्क नीहारिका में दिखाई देता है।

### 3. आदिकालीन गर्त और फैलता हुआ ब्रह्मांड

पूरे ब्रह्मांड को मिलाकर विचार करें तो तुरंत इस बारे में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न सामने आते हैं : समय के साथ ब्रह्मांड का विकास कैसे हुआ होगा? क्या हमें यह मानना ही पड़ेगा कि यह हमेशा लगभग वैसा ही था, और आगे भी सदा वैसा ही रहेगा, जैसा कि हम इसे अब देख रहे हैं? या ब्रह्मांड विकास की विभिन्न मंज़िलों से गुज़रता हुआ निरंतर बदलता रहता है?

विज्ञान की कई बहुत अलग–अलग तरह की शाखाओं से जो प्रायोगिक तथ्य इकट्ठे किये गये हैं, उनके आधार पर इस बात की जाँच करने पर हमें बिल्कुल निश्चित उत्तर मिलता है : **हाँ, हमारा ब्रह्मांड धीरे-धीरे बदल रहा है।** बहुत पुराने भूले–बिसरे ज़माने की इसकी स्थिति, वर्तमान स्थिति, और जो स्थिति सुदूर भविष्य में हो जायेगी, ये तीनों बहुत भिन्न स्थितियाँ हैं। यही नहीं, विविध विज्ञानों से इकट्ठे किये गये ढेर सारे तथ्य बताते हैं कि हमारे ब्रह्मांड की एक निश्चित **शुरुआत भी थी,** जहाँ से क्रमिक विकास की प्रक्रिया के द्वारा इसकी वर्तमान स्थिति का निर्माण हुआ। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, हमारे ग्रह–परिवार की आयु कुछ अरब वर्ष आँकी गयी है। इस प्रश्न पर कई अलग–अलग दिशाओं से और कई स्वतंत्र विधियों द्वारा खटखटाने पर हर बार यही आँकड़ा मिलता है। चंद्रमा भी, जो कि लगता है सूर्य की प्रबल गुरुत्वाकर्षण की शक्ति द्वारा पृथ्वी से तोड़ कर अलग कर दिया गया, कई अरब वर्ष पहले बना होगा।

अकेले–अकेले तारों के विकास के अध्ययन से पता चलता है कि जो तारे हम आज आकाश में देख सकते हैं,उनमें से अधिकतर भी **कई अरब वर्ष** पुराने हैं। तारों की गति के सामान्य अध्ययन से, और विशेष रूप से तारों की जोड़ी और तिकड़ी और अधिक जटिल, **मंदाकिनीय समूह** कहलाने वाले तारों के परिवारों के अध्ययन से, खगोलविद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऐसे समूहों की आयु भी इससे अधिक नहीं होगी।

विविध रासायनिक तत्त्वों की, विशेषतः थोरियम व यूरेनियम जैसे धीरे–धीरे टूटते जाने वाले रेडियोधर्मी तत्त्वों की, तुलनात्मक प्रचुरता पर विचार करने से बिल्कुल स्वतंत्र जानकारी मिलती है। लगातार टूटते जाने के बावजूद यदि ये तत्त्व अब भी संसार में मौजूद हैं, तो हमें मानना होगा कि या तो ये वर्तमान में भी दूसरे हल्के नाभिकों से लगातार बनाये जा रहे हैं, या फिर ये प्रकृति द्वारा बहुत लंबे समय पहले बनाये गये भंडार के बचे हुए भाग हैं।

नाभिकीय रूपांतरण–प्रक्रियाओं की हमारी वर्तमान जानकारी के अनुसार हमें इनमें से पहली संभावना को नकारना ही होगा, क्योंकि गर्म से गर्म तारों के भीतरी भागों में भी

तापमान कभी उन ज़बरदस्त ऊँचाइयों तक नहीं पहुँचता जो भारी रेडियोधर्मी नाभिकों को "पका कर बनाने" के लिए आवश्यक हैं। सचमुच, जैसा हम पिछले परिच्छेद में देख ही चुके हैं, तारों के भीतरी तापमान करोड़ों डिग्री में मापे जाते हैं, जबकि अपेक्षाकृत हल्के तत्त्वों को "पका" कर भारी रेडियोधर्मी नाभिक बनाने के लिए कई अरब डिग्री की ज़रूरत होती है।

इस प्रकार हमें मानना ही पड़ेगा कि भारी तत्त्वों के नाभिक ब्रह्मांड के विकास के किसी बीते युग में बने थे, और **उस युग में ब्रह्मांड के सारे पदार्थ पर बहुत ही उच्च तापमान व उसी के अनुरूप उच्च दबाव का शासन था।**

ब्रह्मांड की यह "तपती हुई" स्थिति लगभग कब थी, इसका भी हम आकलन कर सकते हैं। हम जानते हैं कि थोरियम व यूरेनियम-238, जिनकी औसत जीवन–अवधि क्रमशः 18 अरब और 4½ अरब वर्ष है, जब से बने थे तब से अब तक नहीं के बराबर ही टूटे हैं, क्योंकि वर्तमान में मोटे तौर पर ये उतने ही प्रचुर हैं, जितने कि अन्य स्थिर भारी तत्त्व हैं। दूसरी ओर, यूरेनियम-235, जिसकी औसत जीवन–अवधि सिर्फ आधे अरब वर्ष के आसपास है, यूरेनियम-238 की अपेक्षा 140 गुणा कम प्रचुर है। यूरेनियम-238 एवं थोरियम वर्तमान में इतने अधिक प्रचुर हैं, इससे पता चलता है कि इन तत्त्वों का निर्माण हुए अभी कुछ अरब वर्ष से अधिक नहीं बीते होंगे। यूरेनियम-235 की बची हुई थोड़ी मात्रा से तो और भी सही आकलन किया जा सकता है। वास्तव में, इस आइसोटोप की मात्रा यदि हर 50 करोड़ वर्ष में आधी हो जाती है, तो इसकी प्रचुरता के 140 गुणा कम हो जाने में ऐसी लगभग सात अवधियाँ (350 करोड़ वर्ष) लगी होंगी (क्योंकि $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = 1/128$)।

रासायनिक तत्त्वों की आयु का यह आकलन, जो सिर्फ़ नाभिकीय भौतिकी के आँकड़ों से प्राप्त हुआ, वह ग्रहों, तारों व तारा–समूहों की आयु के उन आकड़ों के साथ कितना बढ़िया मेल खाता है जो शुद्धतः खगोलीय अध्ययनों से आकलित किये गये हैं!

परंतु उस आदिकाल में, कई अरब साल पहले, जब शायद सब कुछ (तारे आदि) बन रहा था, ब्रह्मांड की स्थिति कैसी थी? और इस बीच क्या–क्या परिवर्तन हो गये जो ब्रह्मांड को अपनी वर्तमान स्थिति तक ले आये?

इस प्रश्न का पूर्ण से पूर्ण उत्तर एक परिघटना के अध्ययन से मिल सकता है: "सार्वत्रिक फैलाव"। पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि ब्रह्मांड का सुविस्तृत आकाश विशाल तारा–परिवारों (मंदाकिनियों) से भरा हुआ है, और हमारा सूर्य इनमें से एक मंदाकिनी, आकाश गंगा, में स्थित अरबों तारों में से, बस, एक है। हमने यह भी देखा है कि जहाँ तक आँख देख पाती है (जी हाँ, 200- इंची दूरदर्शक यंत्र की सहायता से), ये मंदाकिनियाँ आकाश में कमोबेश एक समान बिखरी हैं।

इन सुदूर मंदाकिनियों से आने वाले प्रकाश के वर्णक्रम (spectrum) का अध्ययन करते हुए मा० विल्सन के खगोलविद ई० हबल ने पाया कि सभी रेखाएँ वर्णक्रम के लाल छोर की ओर ज़रा–सा खिसकी हुई हैं, और विभिन्न मंदाकिनियों के मामलों में यह तथाकथित "लाल विचलन" (red shift) हमसे उनकी दूरी के अनुपात में है।

इस परिघटना की व्याख्या का सबसे सहज तरीका यह मान लेने में है कि **सभी मंदाकिनियाँ हमसे दूर जा रही हैं और दूर जाने का वेग हमसे दूरी के अनुपात में बढ़ता है।** इस व्याख्या का आधार है तथाकथित "डॉप्लर प्रभाव", जो कहता है कि **हमारी ओर** आते हुए किसी भी स्रोत के प्रकाश का रंग बदल कर वर्णक्रम के **बैंगनी छोर की ओर** चला जाता है, जबकि **हमसे दूर** जाते हुए स्रोत के प्रकाश का रंग **लाल की ओर** बदलता है। हाँ, यह ज़रूर है कि यह बदल देखने में आने योग्य तभी होगी यदि प्रेक्षक और स्रोत के बीच का आपेक्षिक वेग काफ़ी अधिक हो। इस संबंध में एक मज़ेदार किस्सा यह है कि जब प्रो० आर० डब्लू० वुड को बाल्टीमोर शहर में एक चौक पर लाल बत्ती पार कर जाने के लिए गिरफ़्तार किया गया, तो उन्होने न्यायाधीश को कहा, "श्रीमान, क्योंकि मैं कार में बैठ कर लाल बत्ती की ओर जा रहा था, अतः डॉप्लर प्रभाव के कारण मुझे वह हरी दिखाई दी।" जी हाँ, वे न्यायाधीश को बना रहे थे। यदि न्यायाधीश महोदय को भौतिकी का कुछ ज्ञान होता, तो वे कहते, "अच्छा, प्रोफ़ेसर साहब, ज़रा गणना करके बताइए कि लाल बत्ती को हरा देखने के लिए आपकी रफ़्तार कितनी रही होगी?", और निश्चय ही प्रोफ़ेसर साहब सीमा से अधिक तेज़ चलने के मामले में फँस जाते!

हाँ, तो मंदाकिनियों में देखे गये "लाल विचलन" पर विचार करें तो हम ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जो कि पहली नज़र में कुछ अटपटा लगता है। ऐसा लगता है कि ब्रह्मांड की सभी मंदाकिनियाँ हमारी आकाश–गंगा से दूर भागी जा रही हैं, जैसे यह मंदाकिनियों की दुनिया में कोई भयंकर राक्षस हो। तो हमारे अपने तारा–परिवार में ऐसी क्या भयंकर बात है, और यह सभी मंदाकिनियों में इतनी अप्रिय क्यों मालूम होती है? यदि आप इस बारे मे ज़रा सोचें, तो आप आसानी से बूझ लेंगे कि हमारी आकाश–गंगा में कोई ख़ास ख़राबी नहीं है, और वास्तव में दूसरी सभी मंदाकिनियाँ केवल आकाश–गंगा से ही नहीं, बल्कि एक–दूसरी से भी दूर भाग रही हैं।

ज़रा एक गुब्बारे की कल्पना कीजिए जिसकी सतह पर रंग से बिंदियों का डिज़ाइन बना हुआ हो (चित्र 127)। यदि आप इसे फुलाना शुरू करें, तो जैसे–जैसे इसकी सतह उत्तरोत्तर बड़ी होती जाती है, वैसे–वैसे किन्हीं भी दो बिंदियों के बीच दूरी लगातार बढ़ती जाती है। किसी भी एक बिंदी पर यदि कोई चींटी बैठी हो, तो उसे लगेगा कि "सारी बिंदियाँ मुझसे ही दूर भाग रही हैं"। यही नहीं, फूलते हुए गुब्बारे पर विभिन्न बिंदियों के दूर भागने के वेग उस चींटी (प्रेक्षक) से दूरी के अनुपात में होंगे।

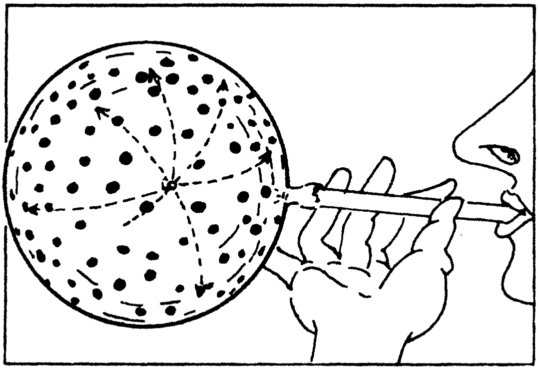

चित्र 127: जब गुब्बारा फैलता है तो बिंदियाँ एक–दूसरे से दूर भागती हैं

इस उदाहरण से बिल्कुल स्पष्ट हो गया होगा कि हबल ने जो देखा कि मंदाकिनियाँ दूर जा रही हैं, इसका हमारी मंदाकिनी के विशिष्ट गुणों से कुछ भी लेना–देना नहीं है। इसकी व्याख्या तो, बस, इसी प्रकार करनी होगी कि **ब्रह्मांड के आकाश में बिखरी मंदाकिनियों के परिवार में आम, एक समान, फैलाव हो रहा है**; इसी से यह परिघटना होती है।

इस फैलाव के मापे हुए वेग से, और पड़ोसी मंदाकिनियों के बीच वर्तमान दूरियों की जानकारी से, आसानी से गणना की जा सकती है कि **यह फैलाव पाँच अरब वर्ष से भी अधिक पहले शुरू हुआ होगा।**[6] उससे पहले ब्रह्मांड के पूरे विस्तार में तारों का एक समान वितरण था, जिसके हिस्सों के रूप में तारों के वे विभिन्न बादल थे जिन्हें हम अब मंदाकिनियाँ कहते हैं। उससे और पहले की तारीख़ में स्वयं तारे भी एक साथ मिले हुए थे, अर्थात् ब्रह्मांड लगातार फैली हुई गर्म गैस से भरा हुआ था। समय की सीढ़ी पर उससे भी नीचे उतर जायें तो हम पाते हैं कि यह गैस और अधिक गर्म और घनी थी, और यही वह युग था जब विभिन्न रासायनिक तत्त्व (विशेषतः भारी, रेडियोधर्मी तत्त्व) बने। एक क़दम और पीछे जाने से हम पाते है कि ब्रह्मांड का सारा पदार्थ पिचक कर वैसा अतिघना, अतिगर्म नाभिकीय द्रव बना हुआ था जैसा अध्याय सात में बताया गया।

अब हम इन सभी बिंदुओं को एक साथ रख कर उन घटनाओं को सही क्रम में देख सकते हैं जो ब्रह्मांड के विकासमय निर्माण में प्रमुख थीं।

कहानी ब्रह्मांड की भ्रूण (embryo) - स्थिति से शुरू होती है। माउंट विल्सन के दूरदर्शक यंत्र की दृष्टि की सीमाओं में (अर्थात् 50 करोड़ प्रकाश–वर्ष की त्रिज्या के भीतर) आज हम जितना भी पदार्थ आकाश में फैला हुआ देख सकते हैं, वह सारा एक गोले के अंदर सिमटा हुआ था जिसकी त्रिज्या सिर्फ़ आज के सूर्य की त्रिज्या से कोई आठ गुणा बड़ी थी।[7] परंतु यह अतिघनी स्थिति बहुत देर तक नहीं रही होगी, क्योंकि तेज़ी से होते फैलाव के कारण पहले दो सैकंड में ही ब्रह्मांड का घनत्व घट कर पानी के घनत्व से दस लाख गुणा रह गया होगा, और कुछ घंटों के भीतर ही पानी के घनत्व के बराबर।* लगभग इसी समय वह गैस, जो पहले लगातार फैली हुई थी, अलग–अलग गैसीय गोलों में बँट गयी होगी जिनसे अब एक–एक तारा बना है। ये तारे उत्तरोत्तर फैलाव के क्रम में एक–दूसरे से दूर खिंचते हुए अलग–अलग तारकीय बादलों में बँट गये होंगे जिनको हम मंदाकिनियाँ कहते हैं, और जो अब भी एक–दूसरे से दूर ब्रह्मांड की अज्ञात गहराइयों में भागती जा रही हैं।

---

[6] हबल के मूल आँकड़ों के अनुसार, दो पड़ोसी मंदाकिनियों के बीच औसत दूरी क़रीबन 17 लाख प्रकाश–वर्ष (या $1.6 \times 10^{19}$ कि०मी०) है, जबकि परस्पर दूर भागने का वेग लगभग 300 कि०मी० प्रति सैकंड है। यदि हम ऐसा मानें कि फैलाव की दर हमेशा एक समान रही है, तो फैलाव में लगा समय होगा $1.6 \times 10^{19}/300 = 5 \times 10^{16}$ सै० $= 1.6 \times 10^{9}$ वर्ष। परंतु ताज़ा जानकारियों के आधार पर इससे कुछ लंबी अवधि प्राप्त होती है।

[7] नाभिकीय द्रव का घनत्व क्योंकि $10^{14}$ ग्राम/घन सें० मी० है, और आकाश में पदार्थ का वर्तमान घनत्व $10^{-30}$ ग्राम/घन सें० मी० है, अतः रेखीय संकुचन का गुणक $\sqrt[3]{10^{14}/10^{-30}} \approx 5 \times 10^{14}$ था। अतः वर्तमान त्रिज्या $5 \times 10^{8}$ प्रकाश–वर्ष है तो उस समय $5 \times 10^{8}/5 \times 10^{14} = 10^{-6}$ प्रकाश–वर्ष $\approx 1$ करोड़ कि०मी० ही थी।

* ब्रह्मांड के आरंभ की इस घटना को महा–धमाका (big bang) कहा गया है। इस थ्योरी के विकल्प के रूप में बर्तानी ब्रह्मांड–विज्ञानियों के एक दल ने 1984 में ऐसी थ्योरी रखी जिसके अनुसार ब्रह्मांड का घनत्व लगातार स्थिर बना रहता है। जैसे–जैसे ब्रह्मांड फैलता है, वैसे–वैसे नयी मंदाकिनियाँ पैदा होती जाती हैं। परंतु इस विचार को अधिक मान्यता नहीं मिली। – अनु०

अब हम पूछ सकते हैं कि ब्रह्मांड के इस फैलाव के लिए किस प्रकार के बल ज़िम्मेवार हैं? और क्या यह फैलाव कभी रुकेगा, या कभी उलट कर सिकुड़न में भी बदल जायेगा? क्या इस बात की कोई संभावना है कि ब्रह्मांड के फैलते पदार्थ वापिस हमारी ओर लौट पड़ेंगे और हमारे तारा–परिवार, आकाश–गंगा, सूर्य, पृथ्वी और पृथ्वी पर रहते मानव, सब सिकुड़ कर नाभिकीय घनत्व वाला कचूमर बन जायेंगे?

अब तक उपलब्ध परिशुद्धतम जानकारी के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष कहते हैं कि ऐसा कभी नहीं होगा। बहुत पहले, विकास के प्रारंभिक चरणों में, फैलते हुए ब्रह्मांड ने उन सब संबंधों को तोड़ दिया जो इसे एक साथ जोड़कर रख सकते थे, और अब तो यह जड़ता के सीधे–सादे नियम के अनुसार अनंत में फैलता जा रहा है। ऊपर जिन "संबंधों" की बात कही गयी, वे गुरुत्व–बल के संबंध थे जो ब्रह्मांड के भागों को एक–दूसरे से दूर जाने से रोकने का काम करते थे।

अब ज़रा एक बम के गोले की कल्पना करिए जो अंतरिक्ष में फट पड़ा हो, और उसके टुकड़े सभी दिशाओं में उड़ रहे हों (चित्र 128 क)। गुरुत्व–बल का प्रभाव इन्हें सबके साझे केंद्र की ओर वापिस खींचने की ओर है, परंतु उसके विरुद्ध, विस्फोट के बल से फेंके गये ये टुकड़े एक–दूसरे से दूर उड़ चलते हैं। बम के टुकड़ों के मामले में तो कहने की ज़रूरत नहीं कि परस्पर गुरुत्वाकर्षण के बल नहीं के बराबर है, अर्थात् ये इतने कमज़ोर हैं कि आकाश में उन टुकड़ों की गति पर ज़रा भी प्रभाव नहीं डाल पाते। परंतु यदि गुरुत्व वाले बल अधिक शक्तिशाली होते, तो ये उन उड़ते हुए टुकड़ों को धीरे–धीरे रोक सकते और उन्हें फिर साझे गुरुत्व–केन्द्र की ओर वापिस ला सकते (चित्र 128ख)। इन टुकड़ों का वापिस आना या अनंत की ओर उड़ जाना इस पर निर्भर है कि इन टुकड़ों की गतिज ऊर्जा तथा उनके बीच के गुरुत्व–बलों की स्थितिज ऊर्जा में से कौन अधिक है।

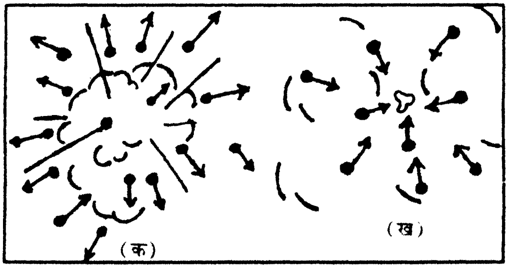


चित्र 128 : इन दोनों में से हमारे ब्रह्मांड की नियति क्या है?

अब बम के टुकड़ों के स्थान पर विभिन्न मंदाकिनियों को रखिए, और फैलते ब्रह्मांड का चित्र सामने आ जाता है, जैसा कि पीछे के पृष्ठों पर वर्णित किया गया है। हाँ, इतना ही अंतर है कि यहाँ हर एक टुकड़े अर्थात् मंदाकिनी का भार बहुत अधिक होने के कारण

गुरुत्व–बलों की स्थितिज ऊर्जा, गतिज ऊर्जा की तुलना में काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो जाती है[8], जिसके परिणाम–स्वरूप ब्रह्मांड के फैलाव के भविष्य का निर्णय करने के लिए दोनों मात्राओं का बहुत सावधानीपूर्वक अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

मंदाकिनियों के भारों के बारे में अब तक उपलब्ध परिशुद्ध से परिशुद्ध जानकारी के अनुसार ऐसा लगता है कि वर्तमान में दूर जाती मंदाकिनियों की गतिज ऊर्जा उनकी परस्पर गुरुत्व–ऊर्जा की अपेक्षा कई गुणा अधिक है, जिससे निष्कर्ष निकलेगा कि **हमारा ब्रह्मांड अनंत में फैलता जा रहा है, और इस बात की कोई संभावना नहीं है कि गुरुत्व के बलों के खिंचाव से इसके भाग कभी फिर से पास-पास एकत्र हो जायें।** तो भी यह याद रखना ही होगा कि पूरे ब्रह्मांड के आँकड़ों के रूप में जो भी संख्याएँ उपलब्ध हैं, उनमें से अधिकतर बहुत परिशुद्ध नहीं हैं, और यह संभव है कि भविष्य के अध्ययनों से ये निष्कर्ष उलट जायें।* परंतु यदि फैलता हुआ ब्रह्मांड अपने रास्ते पर रुक भी जाये, और वापिस लौट कर सिकुड़ने की गति में आ जाये, तो भी जिस भयंकर दिन की कल्पना किसी नीग्रो भजन में की गयी थी, "जब तारे गिरने लगेंगे", और जब हम लोग ढहती हुई मंदाकिनियों के भार तले चकनाचूर हो जायेंगे, उसे आने में अभी अरबों वर्ष बाकी हैं।

अच्छा, पर वह शक्तिशाली विस्फोटक सामग्री क्या थी जिसके बल पर ब्रह्मांड के टुकड़े ऐसे वेग से एक–दूसरे से दूर उड़ने लगे? इसका उत्तर शायद आपको निराश कर सकता है : संभवतः उस तरह का कोई "विस्फोट" था ही नहीं, जैसा इस शब्द से आम तौर पर समझा जाता है। ब्रह्मांड अब इसलिए फैल रहा है क्योंकि इतिहास के किसी पुराने काल में (स्वाभाविक ही, इसका कोई प्रमाण नहीं छोड़ा गया है) यह अनंत विस्तार से सिकुड़ कर बहुत ही अधिक घनत्व की स्थिति तक पहुँचा, और दबाये हुए पदार्थ में जो शक्तिशाली स्प्रिंगनुमा बल निहित रहते हैं, उन्हीं से प्रेरित होकर यह फिर से उछला। यदि आप किसी खेल के कमरे में ठीक ऐसे समय प्रवेश करें जब टेबल–टैनिस की गेंद मेज़ से उठ कर हवा में ऊँचे उछल रही हो, तो आप तुरंत समझ जायेंगे (इसके बारे में ख़ास सोचे बिना) कि आपके कमरे के अंदर घुसने से एक क्षण पहले वह गेंद लगभग उतनी ही ऊँचाई से मेज़ पर गिरी होगी, और वह अपनी लचक के कारण ही फिर से उछल रही है।

अब हम अपनी कल्पना को बिना किसी सीमा के उड़ने दें, और पूछें कि जब ब्रह्मांड सिकुड़ने की ओर अग्रसर था, उस चरण में क्या वही सब घटनाएँ उलटे क्रम में हो रही थीं जो अब घट रही हैं?

---

[8] गतिमान पदार्थों की गतिज ऊर्जा उनके भारों के अनुपात में बढ़ती है, जबकि उनकी परस्पर स्थितिज ऊर्जा (गुरुत्वाकर्षण की ऊर्जा) उनके भारों के **वर्ग** के अनुपात में बढ़ती है।

* हाल में ब्रह्मांड के भार के ऊपर कहे आकलन को लेकर कुछ शंकाएँ उठायी गयी हैं। एक तो यह मालूम हुआ है कि ब्रह्मांड में बहुत–सा "अदृश्य भार" है – दीखने वाले भार की अपेक्षा कई गुणा। यह शायद ऐसे अति–हल्के कणों के जम जाने से बना है कि इससे कोई प्रकाश नहीं निकलता। हो सकता है कि ब्रह्मांड के विशाल भार की यह गुत्थी मूलभूत कणों की किसी नयी थ्योरी के द्वारा सुलझे। –अनु०

कोई आठ या दस अरब वर्ष पूर्व क्या आप इस पुस्तक को अंतिम पृष्ठ से पहले की ओर पढ़ रहे थे?** और क्या उस समय के लोग अपने मुँहों से भुने हुए मुर्गे निकाला करते थे, और कसाईखाने में ले जाकर उनमें प्राण भर देते थे, और फिर उन्हें मुर्गी–घर में भेज देते थे जहाँ वे वयस्क से शिशु की ओर "बढ़ते" थे, और अंत में अंडों के खोलों में घुस कर कुछ सप्ताह के बाद ताज़े अंडे बन जाते थे? ऐसे प्रश्न भले ही कितने भी रोचक हों, शुद्धतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके उत्तर नहीं दिये जा सकते, क्योंकि ब्रह्मांड जब अधिक से अधिक सिकुड़ गया होगा, तो सारा पदार्थ दब कर समान नाभिकीय द्रव बन गया होगा और सारे प्रमाण पूरी तरह मिट गये होंगे।

------x------

**और क्या तभी से उर्दू को उलटे क्रम में पढ़ा जाता है?!! –अनु०

# इंडैक्स


अधिकल्पित (imaginary) संख्याएँ 26-31
  और चार—आयामी आकाश 67-68
अधिस्थिरता (metastability) 136
अनिश्चितता का सिद्धांत 111-118
अनुपूरकता (complementarity) 115
अनंत संख्याएँ 12-19
  की तुलना 12-18
अणु/परमाणु—
  की किरणें 99
  की फ़ोटो उतारना 101
  की मोटाई 97
अप्रभावी (recessive) गुण 200
अभाज्य संख्याएँ (prime) 21-24
अमीबा 188
अरस्तू 219
अरिष्टार्कस 5
अर्को प्रक्रिया 264
अलिफ़ 18
अल्पांतरी (geodesic) 85
अल्फ़ा कण 106,138,140,143
अल्फ़ा सैंटाउरी 227
आइंस्टाइन, अल्बर्ट 65,66,67,87
आइसोटोप 119
  विलगन (separation) व संवर्धन 151
आकाश (space) -
  के अजीब गुण 35-53
  बंद या खुला? 89
  में सममिति (symmetry) 50
आकाश—गंगा (Milky Way) 239-235
  का केंद्र 230
  का घूमना 230,231
  की चपटी आकृति 229
आनुवंशिकी (genetics) 197-212
आपेक्षिकता (relativity) 69-90
  की सामान्य (general) थ्योरी 83-89
आयन, आयनीकरण 105,110,141,160
आयलर, लियोनार्द -
  अधिकल्पित संख्याएँ 27
  अभाज्य संख्याएँ 22
  फ़ेरमा के प्रमेय का प्रमाण 25
  बहुफलक का स्थिति—विज्ञान 40
  (topology of polyhedron)
आर० एन० ए० 208
आर्किमीदस 5
आर्गंद, रॉबर्ट 27
आवर्त—सारणी (periodic table) 108
इलैक्ट्रोन 105-111
  के चक्र (shells) 108-112
  की जोड़ी का विनाश व सृष्टि 122
  धनात्मक (पॉज़िट्रोन) 122
  का भार व आवेश (charge) 106
  मुक्त 111
  से विद्युत—चुंबकीय विकिरण 111
  (electro-magnetic radiation)
ईथर, प्रकाश—वाहक 73
ईथर—पवन 75
उतार—चढ़ाव (fluctuations) 183
उत्पत्ति, ग्रहों की 244-254
  तत्त्वों की 269
उत्परिवर्तन (mutation) 210
  तापमान का प्रभाव 211
उत्प्रेरण (activation) की ऊर्जा 136
उदासीन (indifferent) गुण 201
उपग्रहों की दूरियाँ 250
उलटे परमाणु (anti-atoms) 125
ऊतक (tissue) 186

ऊर्ट का तर्क 231
ऊष्मा की गतिक (kinetic) थ्योरी 101
ऊष्मा—संचालकता 111,166
(thermal conductivity)
एककोशी (monocellular) जीव 188
एक्स (X) किरण –
के कारण उत्परिवर्तन 212
के गुण 102
द्वारा फ़ोटो उतारना 158
एक्स (X) क्रोमोसोम 194
एंट्रॉपी 167,179-185
एंड्रोमीडा नीहारिका (nebula) 235
की दूरी 236
एंपीडोक्लीस 94,97
एराटोस्थानस 21,221
ऐब्बे की थ्योरी 102
ऐस्टन, एफ़० डब्लू० 119
अंडाणु (ovule) 201
अंतर—तारकीय पदार्थ 247
अंतरिक्षी किरणें (cosmic rays) 124
अंध गुफ़ा (black hole) 263
कर्क नीहारिका (Crab Nebula) 263,266
कांट, इमानुअल 244,246
कार्दान, एच० 26
कार्बन—चक्र 256
काले बौने (black dwarfs) 261
कीमिया (alchemy) 96
कूरॉं, आर० 14,40
कूट—संदेश (coded message) 174
कैंटोर, जोर्ग 13
कोपर्निकस 231
कोशिका (cell) 187
के गुण 188
का विभाजन 190
क्रोमैटिन 190
क्रोमोसोम 191,193,202,205
आपस में लिपटना 203
क्लाइन बोतल 52
क्वथनांक (boiling point) 159
क्वांटम, क्रिया (action) का 115
क्वांटम भौतिकी 114
क्वांटम यांत्रिकी—देखिए,सूक्ष्म—यांत्रिकी
क्वार्क की थ्योरी 131
क्षुद्रग्रह (planetoids) 249
ख़ज़ाने की खोज वाली समस्या 28
ख़ानदानी गुण 197-205
गलनांक (melting point) 157
गामा किरणें 122,124,257
गुरुत्वाकर्षण (gravitation) 88
गैमो, जॉर्ज 133,264
गैल—मान 131
गैलीलियो 61
गैस के बादल 229,230,235
गैस्ट्रुला 49,197
गोल्डबाख़ की अटकल 23
ग्रह, अन्य तारों के 254
ग्रहों की उत्पत्ति 243-254
गैसीय आवरण वाली थ्योरी 244
टक्कर वाली थ्योरी 244
मिली—जुली थ्योरी 248
ग्रहों पर जीवन 254
ग्रहों की दूरियॉं 250
चार—आयामी आकृतियॉं 54
गोला (sphere) 56
घन (cube) 55
दूरियॉं 64-68

चार रंगों की समस्या 43
चैंबरलिन, टी०सी० 246
चैंबरलेन, ओ० 122
चौथे आयाम की कल्पना 55
चंद्रमा की दूरी 224
छपाई मशीन वाली समस्या 9
जमना व पिघलना 157
ज़िमर, के०जी० 211
जीन (gene) 202,203,205
जीन्स, सर जेम्स 237,246
जीवद्रव्य (protoplasm) 190
जीवाणु (bacteria) 156,184,212
जोड़ने वाले बल (cohesive forces) 132
ज्यामितीय प्रकाशिकी
(geometrical optics) 116
ज्यामितीय शृंखला
(geometric progression) 7,9,193
ज़्विक्की, एफ़० 262
टमाटर की खर्वीकारी वाइरस
(dwarfing) 214
टाइटस–बोड नियम 249
टामोफ़ेयेफ़, एन०डब्ल्यू० 211
टी०एन०टी० 121,154,207
डॉप्लर प्रभाव 233,267
डायोफ़ांटस 24
डारविन, चार्ल्स 211
डिरिक्ले, एल० 25
डी०एन०ए० 208
पुनः संयोजित (recombinant) 216
डेकार्टे, रेने 40
डेल्ब्रुक, मैक्स 212
डैमोक्रिटस 94,97
ड्यूटीरियम व ड्यूटरोन 154
**ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर** 191,206
में उत्परिवर्तन 210
में जीनों का नक्शा 204
तत्त्व, रासायनिक 108
तरंग–प्रकाशिकी (wave optics) 116
तापीय (thermal) –
अव्यवस्था (disorder) 156-161
आयनीकरण 160
गति 101,156
विच्छेदन (dissociation) 159
तारे –
में ऊर्जा का स्रोत 256-258
का ढह जाना 263
की त्रिज्या 259
की दीप्ति 258,261
की दूरी 226-228,235
में धड़कन (pulsation) 235
का भार 258-261
में विस्फोट 261
की संख्या 228
तंबाकू–मोज़ेक की वायरस 212,215
त्रिभुज के कोणों का योग 84,90
त्वरित्र (accelerators) 142
थॉमसन, जे.जे. 105
थोरियम व यू -233 153
दक्षता (efficiency), कण–वर्षा की 145
दाली, सल्वादोर 49
दाहिने को बायाँ बनाना 49-53
दिग्भेद (parallax) 223
चन्द्रमा की दूरी 224
तारों की दूरी 226
सूर्य की दूरी 225
दुर्लभ गैसें 110
दुर्लभ मिट्टियाँ (rare earths) 109

दूरियाँ, आकाशी व सामयिक
(space-like, time-like) 68
चलते वाहन से मापना 70
चार–आयामी (four-dimensional) 64
धड़कते तारे (pulsars) 235
धातु की चालकता (conductivity) 110
नक्शे में रंग भरना 43
नाभिक (nucleus), कोशिका का 190
नाभिक (nucleus),
परमाणविक 106,107,120-155
से ऊर्जा (energy) 146-155
में जोड़ने वाले बल 132
को तोड़ना 137-146
द्रव की बूँद से तुलना 132
के रूपांतरण (transformation) 140
का विखंडन (fission) 135,145,147-150
का विलयन (fusion) 135,154
निर्देशांक–व्यवस्थाएँ
(co-ordinate systems) 35-37
ध्रुवीय(polar) 35
समकोणीय (ractangular) 35
निषेचन (fertilisation) 195
नीले दैत्य 238
नीहारिका (nebula) 235,262
नोवा 261-262
न्यूटन, आइज़ाक,
क्रिया व प्रतिक्रिया 114
निरपेक्ष आकाश व समय
(absolute space and time) 72
न्यूट्रोन 120,129,145
की विखंडन में भूमिका 147-153
न्यूट्रीनो 126-128,129,131
तारों के ढहने में भूमिका 264
परमाणु –
का आकार (size) 97-99
को काटना 103-111
की ज्यामितीय आकृति 104
का फ़ोटो उतारना 101-103
से विवर्तन (diffraction) 117
की कल्पना 94
परमाणु–भार (atomic weight) 108,119
परमाणु–संख्या (atomic number) 108
पाइथागोरीय त्रिभुज 25
पाउली, डब्लू० 127
पायोन (pion) 129,130,131
पियक्कड़ की चहलकदमी 161-164
पृथ्वी –
का आकार 221
की आयु 243
की गोलाई 220-222
का भीतरी भाग 242
प्रकाश–मील 64
प्रकाश–वर्ष 63
प्रकाश के विविध व्यवहार 116
का व्यतिकरण (interference) 99
प्रकाश का वेग (velocity) 62,63
माप के तरीके 61-63
प्रक्षेप (projection), ज्यमितीय 54,69,80,163
प्रक्षेप–पथ (trajectory) 115
प्रति–न्यूट्रोन 125
प्रति–प्रोटोन 125
प्रभावी (dominant) गुण 200
प्राउट, विलियम 119
प्रोटोन 120,129,141,256
प्लूटोनियम 153
फफूँद (fungus) 188

फ़िज़ू का प्रयोग 62
फ़िट्सजैरल्ड संकुचन (contraction) 78
फ़ेरमा (Fermat) –
 अभाज्यों का फार्मूला 22
 अंतिम प्रमेय 24
फ़ैराडे, माइकेल 105
फ़्राएंकल–कॉनरैट, एच० 215
बनारस के मंदिर वाली समस्या 8
बहुफलक (polyhedron) 38-43
बाडे, डब्लू० 238,262
बादल–बक्सा (cloud- chamber) 141
बॉल, डब्लू० डब्लू० आर० 8
बीटा–विकार 126,257
बुफ़ों, साहिब–ए (जार्ज–लुई द) 179,244
बेथे, एच० 256
बैक्वेरल, एच० 137
बैसल, एफ़० डब्लू० 226
बोर, नील्स 115,135,170
बोर्न, एम० 123
ब्रह्मांड की आयु 9,267
 का आकार (size) 239
 का इतिहास 269
 को अंदर–बाहर उलटना 49
ब्राउन, टी० बी० 123
ब्राउन, रॉबर्ट, और ब्राउनीय गति 157,164
ब्रैग, डब्लू० एल० 102
ब्रोग्ली, लुई द 117
ब्लास्तुला 197
ब्लैकेट, पी० एम० एस० 143
भारी पानी 152,154
भास्कर 26
भ्रूण (embryo) 196
माइकेलसन का प्रयोग 75-79
माइटोसिस 192-194
माउंट पालोमार 241
माउंट विल्सन 228,241
मॉर्गन, टी० एच० 204
मिन्कोव्स्की के निर्देशांक 67
मिलिकैन, आर० 106
मीयोसिस 194,195
मुख्य क्रम, तारों का 259
मूलभूत कण (elementary particles) 130
मेंडल, जी० 202
मेंडलीफ़, डी० 108
मैक्सवेल, क्लर्क 245
मैजेलान 112,221
मैसोन 129,131
मोबियस की सतह (Mobius strip) 52
मौल्टन, एफ़० आर० 246
मंदक (moderater) 151
मंदाकिनी (galaxy) 230
 विकास के चरण 237
 विभिन्न आकृतियाँ 237
 के समूह 239,266
 की संख्या व दूरी 239
यांत्रिकी, परंपरागत व क्वांटम (mechanics, classical and quantum) 111-118
युग्मक (gamete) 194
 का संलयन (syngamy) 196
यूक्लिड 21,85
यूरेनियम (235 व 238) 148-153
 का पुंज (रिएक्टर) 152
यूरेनियम -233 153
रदरफ़ोर्ड, ई० (लॉर्ड) 106,120,140
राइस, एच० दे 210
रॉबिन्स, एच० 40
राशिचक्र की ज्योति (zodiacal light) 246,254

रासायनिक रूपांतरण (chemical change) 95
 की प्राचीन धारणा 94
रिएक्टर (पुंज) 152
रेखाकार त्वरित्र (linear accelerator) 143
रेडियो–धार्मिता (radio-activity) 137
 द्वारा चट्टानों की आयु मापना 243
रेडियोधर्मी शृंखलाएँ (series) 138
रेडियम 139
रोयमर, ओ० 61
रंगांधता (colour-blindness) 198
लात्सेरीनी 179
लाल दैत्य (red giants) 259
लाल रंग की ओर विचलन (red shift) 267
लैप्लैस, अमीर–ए (पियेर–सिमोन) 245
वक्र आकाश (curved space) 83-89
 बंद आकाश का उदाहरण 45-47
वक्रता–धनात्मक या ऋणात्मक 89-90
वाइजैख़र, सी० एफ० 246,256
वाइनबर्ग 132
वाई (Y) क्रोमोसोम 194
वायरस 212-216
 में उत्परिवर्तन (mutation) 214
 का संश्लेषण (synthesis) 215
वाल्ले पुस्सिन, दे ला 24
विकास (evolution) 211
विखंडन (fission) 135-137,139,145,147-153
विखंडनीय/विदल्य पदार्थ
(fissionable/fissile material) 149,153
विच्छेदन (dissociation), तापीय 159
विद्युत–चुम्बकीय विकिरण 111
विद्युत–बल 111
विनाश, इलैक्ट्रोन–पाज़िट्रोन का 122
विनोग्रादोफ़ 23
विलियम्स, रॉब्ली 215
विल्सन का बक्सा 141
विवर्तन (diffraction), प्रकाश का 116
विसरण (diffusion) 165-166,243
वुड, आर० डब्लू० 268
वेग का मानक 61
वैसल 27
व्यतिकरण (interference) 76,99
व्हीलर, टी० ए० 135
शतरंज वाली समस्या 6
शनि की गति का रहस्य 232
शुक्राणु (sperm) 194
शून्य तापमान, परिशुद्ध (absolute) 157
शृंखला–प्रतिक्रिया, नाभिकीय
(chain-reaction) 149,257
शेनबर्ग, एम० 264
श्निरलमैन 23
श्रोडिंजर, ई० 117
श्वार्त्सचाइल्ड, एम० 247
सजीव अणु 211-216
सजीव पदार्थ,
 बनाम निर्जीव 188
 एककोशी (monocellular) 188
सतत गति (perpetual motion) 182,185
सपाट देश 51
सफ़ेद बौने (white dwarfs) 260,261
सम–अवयवी रूप (isomers) 208
सम–अवयवी रूपांतरण (transformation) 210
सममिति (symmetry) 49-53
समय,
 चौथा निर्देशांक
 (fourth co-ordinate) 54-60
 धीमा पड़ना (dilation) 71,81-83
सलाम, अब्दुस 132
सर्पिल मंदाकिनियाँ (spiral galaxies) 237

साइक्लोट्रोन 143
सांख्यिकीय व्यवहार
(statistical behaviour) 161
सुपरनोवा 261-266
सूक्ष्म–यांत्रिकी (micro-mechanics) 111-118
सूर्य की दूरी 225
सृष्टि (creation), जोड़ी की 123,124
सृष्टि–विज्ञान (cosmogony) 244
सेग्रे, ई० 122
सैफ़ीड 235
सैंट्रोसोम 192
सौर वर्ष (solar year) 235
संख्याएँ (numbers) –
  अधिकल्पित (imaginary) 26-31,67
  अनंत (infinite) 12-19
  अभाज्य (prime) 21-24
  की थ्योरी 20-26
  बड़ी–बड़ी 3-19
  मिश्रित (complex) 27
  लिखने का तरीका –
    मिस्री 4
    रोमन 4
संभाविता (probability) का गणित 167-179
  कूट–संदेश का अर्थ निकालना 174
  झंडा और तीलियाँ 177
  पोकर का खेल 170
  सिक्कों को उछालना 167
  संभाविताओं की गुणा व जोड़ 168
  संपाती (coincident) जन्मदिन 172
संश्लेषण, अपने आप (auto-synthesis) 189
संसार–रेखा (world-line) 59
  घन की 58
  मानव–शरीर की 59
  वक्र आकाश में 88
  सूर्य आदि की 59
स्टर्न, ऑटो 101,117
स्टेडियम 5
स्ट्रासमान, एफ़० 147
स्ट्रोमग्रेन, बी० 247
स्थिति–विज्ञान (topology) 37-49
स्थिर–विद्युत (electrostatic) जेनेरेटर 142
हबल, ई० 237,241
हर्शल, विलियम 228
हाइसनबर्ग, डब्लू० 115
हादामर्द, टी० एस० 24
हान, ओ० 147
हिल्बर्ट, डेविड 14,20
हंस का 61 वाँ तारा 226